वैदिक वाङ्मय का इतिहास

तृतीय भाग

ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ

मूल लेखक

पं. भगवद्दत्त

परिवर्धक तथा सम्पादक

सत्यश्रवा एम.ए.



पं. भगवद्दत्त

आर्यसमाज में वैज्ञानिक वैदिक शोध के प्रवर्तक पं. भगवद्दत्त ने डी. ए. वी. कालेज, लाहौर के शोध विभाग के अध्यक्ष के रूप मे १६२१ से १६३४ तक कार्य किया। इस अवधि में उन्हें प्राचीन संस्कृत साहित्य के ऐतिहासिक अनुशीलन का अवसर मिला। उनके स्वयं के द्वारा संग्रहीत लगभग सात हजार पाण्डुलिपियाँ भी उनके ज्ञानवर्धन में सहायक हुई। इस बीच उन्होंने पाश्चात्य विद्वानों, विशेषतः वेवर, मैक्समूलर, मैकडॉनल, ए. बी. कीथ तथा विन्टरनिट्ज़ के भारतीय वाङ्मय विषयक ग्रन्थों को सूक्ष्म रीति से पढ़ा। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पाश्चात्य विद्वानों का यह कार्य स्तुत्य है किन्तु इसमें विद्यमान उनका पूर्वाग्रह, विशेषतः आर्य वाङ्मय की गहनता, गम्भीरता तथा उदात्तता को जानबूझ कर स्वीकार न करने की मानसिकता अवश्य चिन्तनीय है। इस अध्ययन के दौरान उन्होंने निश्चय किया कि वे स्वयं पूर्णरूपेण भारतीय दृष्टिकोण को अपना कर वैदिक साहित्य का विस्तृत, शोधपूर्ण इतिहास लिखेंगे जिसमें वेदों तथा उनसे सम्बद्ध ब्राह्मण, आरण्यक, कल्पसूत्र आदि ग्रन्थों की विशद चर्चा होगी।

शेष अंतिम फ्लैप पर...

वैदिक वाङ्मय का इतिहास

तृतीय भाग

ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ

मूल लेखक

स्वर्गीय पं॰ भगवद्दत्त

अनुसंधानाध्यक्ष, डी.ए.वी.कालेज, लाहौर;
महोपाध्याय, कैम्प कालेज, पंजाब विश्वविद्यालय, दिल्ली
तथा भारतवर्ष का बृहद् इतिहास आदि अनेक ग्रन्थों के रचयिता

परिवर्धक तथा सम्पादक

सत्यश्रवा एम॰ए॰

Formerly Director, State Museum, Lucknow;
Deputy Keeper (Archaeology), National Museum, New Delhi;
Officer Archaeological Survey of India, New Delhi
Author : Sakas in India; The Kushāṇa Numismatics;
A Comprehensive History of Vedic Literature;
The Dated Kushāṇa Inscriptions;
Irrigation in India Through the Ages; प्राचीन भारत में सिंचाई
सम्पादक : भारतवर्ष का बृहद् इतिहास (2 भाग) तथा
भारतवर्ष का इतिहास



विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

वैदिक वाङ्मय का इतिहास : तीन भाग

1. अपौरुषेय वेद तथा शाखा
2. वेदों के भाष्यकार
3. ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ

ISBN : 978- 81-7077-109-X(set)
ISBN : 978- 81-7077-112-4(vol-III)

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली–110006
दूरभाष : 23977216
Email : ajayarya@vsnl.com
Website : vedicbooks.com

Celebrating 83 Years of Publishing (1925-2008)

संस्करण : 2008
मूल्य : 400.00 रुपये
मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली–110032

Vedic Vāṅmaya Kā Itihāsa Part-III By Pt. Bhagavadutt, Editor : Sh. Satya Shrava M.A.

वैदिक यथार्थवाद के प्रवर्तक

वैदिक वाङ्मय के संरक्षक

पूज्य पिता

स्वर्गीय पं. भगवद्दत्त

(२७ अक्टूबर १८९३—२२ नवम्बर १९६८)

तथा

पूज्या माता

स्वर्गीया श्रीमती सत्यवती शास्त्री

(मार्च १८९५—१४ जनवरी १९६७)

की पुण्य स्मृति में

प्रकाशकीय

श्री पं॰ भगवद्दत्त जी का स्नेह, आशीर्वाद व सहयोग **गोविन्दराम हासानन्द** को सदैव मिलता रहा है। सन् 1962 में स्व॰ श्री विजयकुमार जी के आग्रह पर पं॰ भगवद्दत्त जी ने **सत्यार्थ प्रकाश** का एक बहुपयोगी संस्करण अत्यन्त परिश्रम से तैयार किया जिसका प्रकाशन निरन्तर हो रहा है।

पं॰ भगवद्दत्त जी की कालजयी कृति **वैदिक वाङ्मय का इतिहास** तीनों भागों का प्रकाशन कर मुझे अत्यन्त गौरव अनुभव हो रहा है। यह ग्रन्थ पर्याप्त समय से अनुपलब्ध था तथा विद्वानों, विद्यार्थियों, अनुसंधानकर्ताओं तथा सुधी पाठकों द्वारा निरन्तर इसकी मांग की जा रही थी।

मैं आभारी हूँ श्रीमती श्रुति जी का जिनकी अनुमति से इसका पुनः प्रकाशन सम्भव हो पाया।

मेरा प्रयास होगा की इस ग्रन्थ का अगला संस्करण कम्प्यूटर द्वारा पुनः मुद्रित कर और भी भव्य साज–सज्जा के साथ प्रस्तुत किया जाए।

—अजय कुमार

गोविन्दराम हासानन्द

विषय सूची

मूल लेखक द्वारा रचित तथा सम्पादित पुस्तकें

विरचित

१. ऋग्वेद पर व्याख्यान
२. बार्हस्पत्य सूत्र की भूमिका
३. वैदिक कोष की भूमिका
४. वैदिक वाङ्मय का इतिहास
   प्रथम भाग—वेदों की शाखाएं
   द्वितीय भाग—ब्राह्मण और आरण्यक
   तृतीय भाग—वेदों के भाष्यकार
५. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास—प्रथम भाग
६. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास—द्वितीय भाग
७. भारतवर्ष का इतिहास—गुप्त साम्राज्य के अन्त तक
८. भाषा का इतिहास
९. Western Indologists
१०. वेद-विद्या-निदर्शन
११. Story of Creation—as seen by Seers

सम्पादित

१. वाल्मीकीय रामायण (पश्चिमोत्तर पाठ) बाल तथा अरण्य काण्ड का कुछ भाग
२. अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका
३. माण्डूकी शिक्षा
४. आथर्वण ज्योतिष
५. उद्गीथाचार्यकृत ऋग्वेद भाष्य, दशम मण्डल का कुछ भाग
६. ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वरचित जन्म चरित
७. ऋग्-मन्त्र व्याख्या
८. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन
९. गुरुदत्त लेखावली—भाषा-अनुवाद

सम्पादक द्वारा लिखित पुस्तकें

१. Sakas in India
२. Irrigation in India
३. प्राचीन भारत में सिंचाई

नोट : उपलब्ध पुस्तकें प्रणव प्रकाशन से प्राप्य हैं।

भूमिका

प्रातः स्मरणीय मेरे पूज्य पिता जी तथा माता जी की हार्दिक इच्छा थी कि हमारे कुल में वैदिक साहित्य, भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के शोध, प्रसार तथा उसे पुनर्जीवित करने का कार्य निरन्तर चलता रहे। पूज्य पिता जी का स्वर्गवास २२ नवम्बर, १९६८ को रात्रि ८-४० पर हुआ था। चार दिन के अन्दर ही गृह कलह के आसार स्पष्ट रूप ले रहे थे। एकमात्र पुत्र होने के नाते, भले-बुरे का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मुझ पर ही आ पड़ा। प्रकाशन कार्य में अवरोध हुआ। लगभग साढ़े चार वर्ष अति कठिनाई रही। वयोवृद्ध, इस युग के मनीषि साहित्यकार श्री गुरुदत्त तथा अन्य वृद्धजनों के आशीर्वाद व ईश कृपा से आज यह पुस्तक आप के सम्मुख प्रस्तुत करने में सफल हुआ हूँ।

१४ जनवरी, १९६७ को मेरी पूज्या माता जी का देहान्त हुआ था। तब मैं राजकीय संग्रहालय उत्तर प्रदेश, लखनऊ का निदेशक था। पूज्य पिता जी जून, १९६७ में हमारे पास लखनऊ आए। उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि इस कार्य के लिए मुझे देहली आ जाना चाहिए। अतः अगस्त आरम्भ तक मैं सपरिवार देहली लौट आया। यहां आकर इस कार्य को आगे बढ़ाने में, मैंने तथा मेरी धर्मपत्नी ने सक्रिय भाग लिया। परिणामतः मूल लेखक की विशेष पुस्तक Story of Creation छप सकी। इस पुस्तक की सर्व प्रथम प्रति मूल लेखक ने अपने पौत्र चिरंजीव निगमेश को विशेष सौहार्द से भेंट की थी। विज्ञान का छात्र होने के कारण इस का अध्ययन, उस के अन्वेषण कार्य में अधिक सहायक हो सकता था। प्रस्तुत पुस्तक छापने में भी श्री निगमेश की सहायता विशेष रही है।

वैदिक वाङ्मय एक दुरूह विषय है। कतिपय एतद्देशीय व पाश्चात्य विद्वानों ने इस क्षेत्र में जो कार्य किया उस का परिणाम आज के भारत में स्पष्ट है। इस का विश्लेषणात्मक अध्ययन एक वांछित स्वप्न ही है। इस दिशा में मूल लेखक का प्रयास आरम्भ से ही पूर्ण रूप से श्लाघनीय रहा था। भारत तथा योरुप के विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से उन के कार्य की सराहना की तथा उस से लाभ उठाया। ऐसा सुस्पष्ट ऐतिह्य मूल लेखक ने ही आर्य जगत् के सामने सर्व प्रथम रखा था।

वैदिक वाङ्मय में मेरी गति उन के साथ बैठ कर अध्ययन करने से निरन्तर उत्तरोत्तर विकसित होती गयी। इस विषय पर उन्होंने १९१५ से ही लिखना प्रारम्भ कर दिया था। यह ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों का इतिहास उन के लेखों का सामञ्जस्य है। मूल लेखक के 'ब्राह्मण तथा आरण्यक भाग' से विशेष सहायता ली गयी है। पिछले साठ वर्ष में हुए शोध कार्य का इस में यथा सम्भव सम्मिश्रण किया गया है।

सम्पादकीय सामग्री—इस में लगभग पचहत्तर पृष्ठ की नयी सामग्री जोड़ दी गयी है। प्रत्येक उपलब्ध तथा अनुपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ सम्बन्धी नयी सामग्री उद्धरणों द्वारा प्रमाणित करके आप के सामने रखी जा रही है। अनेकों उद्धरण पहली बार एकत्रित किए गए हैं। इस से पुस्तक की उपादेयता अधिक हो गयी है। तलवकार ब्राह्मण को ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में रखा गया है। ऐसा ही मूल लेखक का मत था। भविष्य की खोज इस विषय को हल करने में सहायक होगी।

ब्राह्मण ग्रन्थों को आधारभूत मान 'पृथिवी का इतिहास' सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री इस पुस्तक में पहली बार दी जा रही है। मूल लेखक के दो अनुपम ग्रन्थ 'वेद विद्या निदर्शन' तथा Story of Creation से ही यह सामग्री मुख्यतः ली गयी है।

'ब्राह्मण ग्रन्थों के भाष्यकारों' पर नयी विशेष सामग्री इकट्ठी की गयी है।

'क्या ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं' यह अध्याय पढ़ने से अनेक भ्रान्तियां विलुप्त हो जाएंगी।

वेद का अर्थ एक विवादास्पद विषय रहा है। अनेक भ्रान्तियां मध्यकालीन भाष्यकारों के विकृत अर्थ के कारण आज भी कठिनाई उपस्थित करती हैं। वेद का उचित सन्दर्भात्मक अर्थ समझने में 'ब्राह्मण ग्रन्थ और वेदार्थ' नामक अध्याय विशेष सहायक रहेगा।

उद्धृत ग्रन्थ-सूची प्रत्येक आर्य तथा शोध कर्ता के लिए विशेष सहायक रहेगी। इसी प्रकार शब्द-सूची अपनी उपादेयता रखती है।

नयी सामग्री पिछले एक वर्ष में इकट्ठी की गयी है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक की विस्तृत ज्ञान गरिमा का ग्रीष्म ऋतु के लगभग तीन मास निरन्तर लाभ उठाकर इस पुस्तक को यह रूप देने में सफल हुआ हूँ। वैदिक कोष के कर्ता पं० हंसराज ने भी विशेष सहायता दी है। किसी भी कठिनाई में आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री का सुझाव अमूल्य रहा है।

श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती का मूल लेखक से विशेष प्रेम था। पारस्परिक विचार विमर्श सदा रहता था। सिद्धान्ती जी की प्रेरणा तथा रुचि के कारण व उन्हीं की देख रेख में यह पुस्तक इस रूप में आपके सम्मुख आ रही है।

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, के पुस्तकाध्यक्ष पं. बालकृष्ण वत्स तथा उन के सहकारी श्री घनेन्द्र सिंह द्वारा पुस्तकों की सहायता अटूट रही है। इसी प्रकार भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली के पुस्तकाध्यक्ष डा. दया कृष्ण कपूर तथा वहीं के कार्यकर्ता श्री भगवत साही ने सहायता दी है। मैं उन का अनुगृहीत हूँ।

मेरी छोटी बहन श्रीमती सुवर्चा खेड़ा ने अपूर्व त्याग करके इस शोध कार्य को आगे चलाने में मुझे सामर्थ्य दी है। इस पुस्तक का अशुद्धि-पत्र तथा शब्द-सूची बनाने में उन की विशेष सहायता रही है। मैं उन का आभारी हूँ।

श्री चन्द्रमोहन शास्त्री का प्रेस एक साहित्यिक क्षेत्र है। उन के सौम्य स्वभाव के कारण ही यह पुस्तक लगभग तीन मास में तैयार हो गयी है। उन के कार्यकर्ताओं में से विशेष कर ला. भूप लाल तथा पं० जयनारायण के आन्तरिक उत्साह के कारण ही यह ऐसा कठिन ग्रन्थ सुचारु रूप से तैयार हो सका है। मैं उन का विशेष आभारी हूँ।

प्रत्येक लेखक तथा सम्पादक का जिन के उद्धरण इस पुस्तक में हैं अपने निजी ओर से मैं उन का धन्यवाद करता हूँ।

आशा है आप सब की सहायता से यह शोध कार्य निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होगा। अन्य ग्रन्थ भी छप कर आप के सामने शीघ्र आ जाएंगे।

१/२८ पंजाबी बाग, नई दिल्ली

सत्यश्रवा

वैदिक वाङ्मय का इतिहास

प्रथम अध्याय—ब्राह्मण ग्रन्थ क्या हैं

१. ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द और उसका अर्थ

वैदिक तथा संस्कृत साहित्य के ग्रन्थकारों, भाष्यकारों, वार्तिककारों और टीकाकारों ने ब्राह्मण शब्द का अर्थ शायद ही कहीं लिखा हो। सायण आदि भाष्यकार लक्षण मात्र ही लिख कर संतुष्ट हो गए हैं। अपने ऋग्वेद-भाष्य की भूमिका में सायण कहता है—'जो परम्परा से मन्त्र नहीं वह ब्राह्मण है और जो ब्राह्मण नहीं वह मन्त्र है।'[1]

व्याकरण की रीति से ब्राह्मण शब्द का अर्थ ब्रह्म वै मन्त्रः[2] अर्थात् ब्रह्म ही मन्त्र तथा वेदो ब्रह्म अर्थात् वेद सम्बन्धी है।[3]

दयानन्द सरस्वती स्वामी परिशोधित अनुभ्रमोच्छेदन में लिखा है—'जिस से ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों का व्याख्यान हैं अर्थात् ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि।'[4] ऐसा ही मत सत्यार्थप्रकाश में भी व्यक्त किया गया है। यथा—'उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ।'[5]

कपर्दि आपस्तम्ब-परिभाषा-सूत्र पर अपनी टीका में लिखता है—मन्त्रो मननात्। ब्राह्मणमभिधानात्।[6] अर्थात् मन्त्र नाम मनन से है, ब्रह्म का कथन करने से ब्राह्मण का अभिप्राय है।

स्कन्द स्वामी भी लिखता है—तथा अमीमदन्त पितरो यथा भागमावृषायिषत्। इत्यस्य यथा भागमाशिषुरित्येवैतदाहेति शतपथब्राह्मणे विवरणात्।[7]

---

१. पृ० १७, ऋ० भा०, उपोद्घात भाग १, वै० सं० मं०, पूना, सन् १९३३।
२. काण्ड ७, अध्याय १, ब्राह्मण १।५।।, श० ब्रा०, भाग ३, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९४०।
३. ४।११।४।३।।; ४।२५।३।।, जै० उ० ब्रा०, रामदेव, लाहौर, १९२१।
४. पृ० ६, बनारस, संवत् १९३७।
५. पृ० २९९, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, हरियाणा, संवत् २०२९।
६. सूत्र ३२, देखें पृ० ७४, दर्शपूर्णमासप्रकाश, आनन्दाश्रम, पूना, १९२४।
७. १।३२।३।।, ऋ०, विश्वबन्धु, वि० वै० शोध सं०, होशियारपुर, संवत् २०२१।

वह पुनः लिखता है—'शतपथे यद्वै तु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठः इति वसिष्ठशब्दस्य श्रेष्ठशब्देनार्थ-विवरणदर्शनात् ॥'[१]

२. ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द

ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द का प्रयोग नपुंसक लिङ्ग में ही मिलता है। वेद अर्थात् मन्त्र संहिताओं में ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द का अभाव है। ब्राह्मणों का प्रवचन मन्त्रों के प्रकाश के पीछे हुआ। इसलिए मन्त्रों में इस शब्द का अस्तित्व मिलना भी न चाहिए। तैत्तिरीय संहिता,[२] ब्राह्मणों,[३] सूत्रों[४] और निरुक्त[५] आदि ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग बहुधा मिलता है। वहां सर्वत्र यह शब्द नपुंसक लिङ्ग में ही है। अमर आदि कोषों में इस शब्द का उल्लेख नहीं है। हां, मेदिनीकोष के णान्त वर्ग में निम्नलिखित श्लोकार्ध है—

ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्।
..................................॥६७॥[६]

अर्थात् ब्रह्मसंघात और वेदभाग[७] में ब्राह्मण शब्द नपुंसक लिङ्ग में है। वायु पुराण में ब्राह्मण शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा—मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽणनात् ॥[८] यहां अणनात् से कथन का अभिप्राय है। अणन अर्थात् कथन पाणिनि से पूर्व की व्युत्पत्ति के अनुसार है।

वाङ्मय शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में शास्त्र समूह के लिए हुआ है।[९]

बौधायन धर्म सूत्र में वाग् से ब्राह्मण का संकेत है।[१०] विष्णुधर्मोत्तर में एक प्रयोग और प्रकार का है—

मन्त्राः सब्राह्मणाः प्रोक्तास्तदर्थं ब्राह्मणं स्मृतम्।
कल्पना च तथा कल्पाः कल्पश्च ब्राह्मणस्तथा।[११]

---

१. १।३०।१०॥, ऋ०।
२. (क) सुवर्गं लोकं न प्रजानन्ति तेभ्य इदं ब्राह्मणं ब्रूहि। काण्ड ३, प्रपाठक १, अनुवाक ९, तै० सं०, सातवलेकर, संवत् २०१३।
 (ख) सोऽब्रवीद्ब्राह्मणं, ३।५।२॥, वही।
३. (क) यद् वाकोवाक्यं ब्राह्मणं तदेवैतेनाऽनुवन्ति तदवरुन्धते। ४।६।९।२०॥, श० ब्रा०, भाग १, पृ० ५५६, काशी, संवत् १९९४।
 (ख) १।११६॥ जै० ब्रा०, रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, नागपुर, १९२४।
४. छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि, ४।२।६५॥ पाणिनीयाष्टक, पूर्वार्द्धम्, गंगादत्त, हरिद्वार, १९६१।
५. ४।२७॥, निरुक्त शास्त्रम्, भगवद्दत्त, रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, संवत् २०२१।
६. मेदिनीकोष, संपादक सोमनाथ मुखोपाध्याय, कलकत्ता, १८६९।
७. मध्यकालीन ग्रन्थकार ब्राह्मण ग्रन्थों को वेदावयव ही मानते थे।
८. (क) ५९।१४१॥ आनन्दाश्रम, पूना। (ख) ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय ३४।
९. जगुर्गृहेऽभ्यस्त समस्त वाङ्मये। श्लोक १२, कादम्बरी भूमिका, उपेन्द्रनारायण मिश्र, इलाहाबाद, १९६४।
१०. वागिति ब्राह्मणमुच्यते।१।७।१०॥, उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौ० सं० सी०, वाराणसी।
११. ३।१७।१॥, प्रियबाला शाह, बड़ोदा, १९५८।

अर्थात् मन्त्र साथ ब्राह्मणों के प्रवचन किए गए। उन्हीं मन्त्रों के (व्याख्यानादि के) लिए ब्राह्मण जानना चाहिए। कल्पना और कल्प तथा कल्प और ब्राह्मण (मन्त्र विनियोग बताते हैं)।

यहां श्लोक के अन्त में आने वाला ब्राह्मण पद संदिग्ध है। यदि यह जाति-वाची माना जाय, तो अर्थ संगत नहीं होता। अतः क्या पुंल्लिग में भी ब्राह्मण शब्द प्रयुक्त हुआ है, अथवा यहां पाठ भ्रष्ट हुआ है, अथवा अर्थ कुछ और है।

महाभारत उद्योग पर्व का एक श्लोक इस विषय पर और भी प्रकाश डालता है।[1] उसमें ब्राह्मण शब्द पुंल्लिग में प्रयुक्त है—

य इमे ब्राह्मणाः प्रोक्ता मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम्।
एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव ॥१७।६॥

अर्थात् ये जो ब्राह्मण और मन्त्र गोमेध में पढ़े गये हैं, हे वासव ! ये आपको प्रमाण हैं वा नहीं।

दाक्षिणात्य शान्तिपर्व के एक श्लोक में ब्रह्मणा प्रयोग है। यथा—

बृहस्पति सवेनेष्ट्वा सुरापो ब्राह्मणः पुनः।
समितिं ब्राह्मणो गच्छेदिति वै ब्रह्मणः श्रुतिः ॥[2]

तब यह मन्त्रों का विशेषण होगा। सम्भव है कुछ जन, इन प्रयोगों को आर्ष कहकर टाल दें। पर वस्तुतः इस विषय में जांच की बड़ी आवश्यकता है।

३. ब्राह्मण शब्द का अर्थ है—यज्ञ क्रिया का व्याख्यान

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ सम्बन्धी क्रिया की व्याख्या में भी ब्राह्मण शब्द प्रयुक्त हुआ है। जैसे कहा है—दूरोहणं रोहति तस्योक्तं ब्राह्मणम्।[3] इस के पूर्व ऐतरेय ब्राह्मण में ही दूरोहण ब्राह्मण का व्याख्यान इस प्रकार किया है—दूरोहणं रोहति। स्वर्गो वै लोको दूरोहणं। स्वर्गमेव तं लोकं रोहति य एवं वेद। यदेव दूरोहणं ३ असौ वै दूरोहो योऽसौ तपति। कश्चिद्वा अत्र गच्छति। स यद्दूरोहणं रोहत्येतमेव तद्रोहति। हंसवत्या रोहति। हंसः शुचिषदित्येष वै हंसः शुचिषत्। इत्यादि।[4]

इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस 'दूरोहण ब्राह्मण' में दूरोहण शब्द का व्याख्यान पाया जाता है।

इसी प्रकार लिखा है, 'यद्गौरिवीतं तस्योक्तं ब्राह्मणम्।[5] इस से पूर्व ऐतरेय ब्राह्मण में इस का ब्राह्मण=व्याख्यान इस प्रकार किया है—गौरिवीतं षोडशि साम कुर्वीत तेजस्कामो ब्रह्मवर्चस्कामस्तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरिवीतं। तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति य एवं विद्वान् गौरिवीतं षोडशि साम कुरुते। नानवं षोडशि साम कर्तव्यमित्याहुः।[6]

---

१. भण्डारकर, पूना संस्करण।
२. ३४।१८।
३. पंचिका ६। अध्याय २९। खण्ड ६। ऐ० ब्रा०, भाग २, पृ० ७५७, आनन्दाश्रम, सन् १९३१।
४. ४।१८।६, भाग १।
५. ८।३६।२॥, ऐ० ब्रा०।
६. ४।१६।२॥

इस गौरिवीत ब्राह्मण में गौरिवीत शब्द का व्याख्यान पाया जाता है।

इसी परम्परा में अथास्मा औदुम्बरीमासंदी संभरन्ति। तस्या उक्तं ब्राह्मणम् लिखा है।[१] इस से पूर्व ऐतरेय ब्राह्मण में ही इसका ब्राह्मण कहा है। यथा—औदुम्बरीं समन्वारभन्त इषमूर्जमन्वारम्भ इत्यूर्ज्वा अन्नाद्यमुदुंबरो यद्वै तद्देवा इषमूर्जं व्यभजन्त तत उदुंबरः समभवत्तस्मात्स त्रिः संवत्सरस्य पच्यते।[२]

उवट यजुर्वेद के भाष्य में श्रुति का अर्थ ब्राह्मण करता है। यथा—श्रुतिर्ब्राह्मणम्।[3]

इस से पता चलता है कि ब्राह्मणों के प्रवक्ता ऋषि इस शब्द का अर्थ ब्रह्म की व्याख्या समझते थे।[४]

ब्राह्मण ग्रन्थों में कई स्थानों पर ऐसा भी लिखा है—इत्येक व्याख्यानाः।[५] अर्थात् यह ऋचाएं समान व्याख्यान वाली हैं। इतना लिख कर इन मन्त्रों का ब्राह्मण नहीं लिखा जाता। इस से भी प्रतीत होता है कि व्याख्यान शब्द ब्राह्मण का पर्यायवाची ही है।

४. ब्राह्मण ग्रन्थ क्या हैं

वेद की जितनी शाखाएं प्रसिद्ध हैं, प्रायः उन सब के ब्राह्मण ग्रन्थ भी पुराकाल में विद्यमान थे। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन भी उन्हीं ऋषियों ने किया था, जिन्होंने उनकी संहिताओं का। शाखा ग्रन्थों के साथ साथ ब्राह्मण ग्रन्थों का भी निर्देश हुआ था। पाणिनीय सूत्रों में ब्राह्मण ग्रन्थों के दो भेद निर्दिष्ट हैं। एक सूत्र में पाणिनि ने ब्राह्मण ग्रन्थों का सामान्य निर्देश किया है। यथा—'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि।[६]

एक अन्य सूत्र में ब्राह्मण ग्रन्थों के प्राचीन व अर्वाचीन दो विभागों की ओर संकेत है। यथा—पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु।[७]

पुराणप्रोक्त तथा अर्वाक् प्रोक्त ब्राह्मण ग्रन्थों की क्या सीमा थी। क्या वह कृष्ण द्वैपायन व्यास का शाखा प्रवचन था। अर्थात् कृष्ण द्वैपायन के शाखा प्रवचन से पूर्व-प्रोक्त ब्राह्मण प्राचीन और उसके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा प्रोक्त ब्राह्मण अर्वाचीन हैं।

काशिकाकार जयादित्य पुराणप्रोक्त ब्राह्मणों में भाल्लव, शाट्यायन, ऐतरेय और अर्वाचीन ब्राह्मणों में याज्ञवल्क्य अर्थात् शतपथ ब्राह्मण का उल्लेख करता है। वह शतपथ ब्राह्मण को अर्वाचीन मानता है।[८] शतपथ

---

१. ८।३१।३॥ ऐ० ब्रा०।

२. ५।२४।५॥

३. १८।१॥, यजुर्वेद, उवट-भाष्य समेत, निर्णय सागर प्रेस, १९२९।

४. अर्थात् वाक्=मन्त्र। सत्य। वेद। यज्ञ।
   (क) पृ० ४२२, वैदिक कोष, हंसराज, प्रथम संस्करण, लाहौर, १९२६।
   (ख) पृ० ७६३, ब्राह्मणोद्धारकोष, विश्वबन्धु, होशियारपुर, संवत् २०२३।
   (ग) पृ० ६२७, वही। (घ) पृ० ३७१, वही। (ङ) पृ० ६६१, वही।

५. ६।७।४।६॥ श० ब्रा०।

६. ४।२।६६॥, अष्टाध्यायी, श्रीशचन्द्र वसु, प्रथम भाग, पृ० ७२०, मोतीलाल बनारसीदास, १९६२।

७. ४।३।१०५॥ अष्टाध्यायी।

८. ४।३।१०५॥ काशिका, सम्पादक शर्मा आदि, संस्कृत परिषत्, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, १९६९।

ब्राह्मण का दूसरा नाम वाजसनेय ब्राह्मण भी है।[1] जयादित्य प्राचीन ब्राह्मणों के साथ ताण्ड और अर्वाचीन ब्राह्मणों के साथ सौलभ ब्राह्मण का नाम भी लेता है।[2]

५. ब्राह्मणान्तर्गत विद्याओं के सम्बन्ध में एक आथर्वण मन्त्र

ब्राह्मणों में जो विषय संगृहीत हैं, उन्हीं विषयों का कथन अथर्ववेद के एक मन्त्र में मिलता है—

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥[3]

इस मन्त्र में किसी ग्रन्थ विशेष का संकेत नहीं है। सामान्य रूप से विद्या विशेषों का वर्णन है। इन्हीं इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी आदि का संग्रह ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है।

६. ब्राह्मण—पर्याय प्रवचन

ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द का अन्य पर्याय प्रवचन रहा है। लिखा है—'प्रवचन शब्देन ब्राह्मणमुच्यते।'[4] प्रावचन चरण का भी उल्लेख मिलता है।[5] गङ्गराज श्रीपुरुष के शक ६९३ के ताम्रशासन में लिखा है—हारित गोत्रस्य नीलकण्ठनामधेयस्य प्रावचनचरणस्य ॥[6] वीरमित्रोदय के आह्निक प्रकाश में ऐसा ही अभिप्राय व्यक्त है—वासिष्ठः अपि च काठके प्रवचने विज्ञायते अद्य श्वो वा विजनिष्यमाणः…………।[7]

अनुशासन पर्व के अनुसार श्राद्ध में ब्राह्मण-प्रवचन पंक्ति-पावन माना गया है। यथा—अग्र्या सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ॥[8] ऐसा ही अभिप्राय एक अन्य स्थान पर भी व्यक्त है। गोभिल-गृह्य कर्मप्रकाशिका में प्रवचनकार का उल्लेख है।[9] यहां दस प्रवचनकारों का तर्पण कहा गया है। यथा—शाटिः। भाल्लविः। काल्बविः। ताण्ड्यः। वृषाणः। शमबाहुः। रुरुकिः। अगस्त्यः। बष्कशिराः। हूहूः।

७. ब्राह्मण सम्बन्धी विज्ञायते शब्द

विज्ञायते शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग गोपथ ब्राह्मण में पाया जाता है। यथा—आत्मा वै स यज्ञस्येति विज्ञायते।[10] अर्थात् वह यज्ञ का आत्मा ही है, यह ब्राह्मण से जाना जाता है। विज्ञायते शब्द का अर्थ है, 'श्रुत्यन्तर में यह विशेषता है। अपनी शाखा में यह नहीं है।' यह भाव पुरुषोत्तम की प्रवरमंजरी से प्रकट होता है।[11]

---

१. ४।३।१०६॥ गणपाठ, कपिलदेव शास्त्री, कुरुक्षेत्र।
२. ४।२।६६॥ काशिका।
३. १५।६।११॥, सातवलेकर, स्वाध्यायमंडल, १९५८।
४. ८।८॥, पुष्पसूत्रम्, पृ० १०६, लक्ष्मण शास्त्री, चौ० सं० सी०, १९२३।
५. पृ० ३४१, संख्या २०, प्रथम भाग, भगवद्दत्त, वै० वा० इ०, द्वितीय संस्करण, अमृतसर, संवत् २०१३।
६. Epigraphia Indica, Vol. XXVII, p. 151.
७. पृ०५६४, नित्यानन्द शर्मा, चौ० सं० सी०, १९१०।
८. ९०।२८॥, भण्डारकर, पूना संस्करण।
९. पृ० ३००, शुकदेव वर्मा, सन् १९३२।
१०. २।२।६॥ पृ० १०९, राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, १८७२।
११. पृ० १४, १५।

ऐतरेय ब्राह्मण में भी विज्ञायते शब्द पाया जाता है।[१] परन्तु यहां इस का अर्थ और प्रतीत होता है। विज्ञायते शंब्द का व्याख्यान निम्नलिखित स्थानों में भी अवश्य देखना चाहिए—

(क) गौतम धर्म सूत्र ११।११॥ और ११।१६॥ पर मस्करी भाष्य।[२]

(ख) ऋक्सर्वानुक्रमणी १।१॥ पर षड्गुरुशिष्य की वृत्ति।[3]

(ग) बौधायन धर्म सूत्र पर गोविन्द स्वामी का विवरण यही अर्थ प्रकट करता है।[४]

(घ) सायण भी अपने ऋग्वेद भाष्य में यही अभिप्राय प्रकट करता है।[५]

श्रौत[६], गृह्य[७], शुल्व[८], धर्म[९] आदि सूत्रों, निरुक्त[१०] और निदान[११] आदि ग्रन्थों में तैत्तिरीयादि संहितास्थ ब्राह्मण प्रवचनों व ब्राह्मणान्तर्गत वचनों को इति विज्ञायते कहकर प्रायः उद्धृत किया गया है।[१२] यह शब्द क्यों ब्राह्मण वचनों का द्योतक माना गया है इसका हमें अभी तक पता नहीं लगा है। धूर्त स्वामी की आपस्तम्ब श्रौत सूत्र की टीका में भी ऐसा ही वर्णन है।[१३] याज्ञवल्क्य स्मृति की बाल क्रीड़ा टीका में भी ऐसा ही सम्बोधन है।[१४]

---

१. ४।१८।८॥

२. (क) धर्मस्य ह्यशंभाग्भवतीति विज्ञायते।११।११॥
(ख) ब्रह्मप्रसूतं हि क्षत्रमृध्यते न व्यथते इति च विज्ञायते ॥११।१६॥ गौतम धर्म सूत्र, मस्करी भाष्य सहित, वेदमित्र, देहली, १९६९।

३. पृ० १, कात्यायन कृत ऋक्सर्वानुक्रमणी, मैकडानल, आक्सफोर्ड, १८८६।

४. अन्यत्रापि विज्ञायते इत्युक्ते श्रुतिपाठ इत्यवगन्तव्यम् ॥ प्रश्न १। अध्याय ४। खण्ड ६।१५॥, चिन्न स्वामी शास्त्री, चौ० सं० सी०, १९९१।

५. पृ० ५ पंक्ति ६, भाग प्रथम, ऋग्वेद, सायण भाष्य समेत, मैक्समूलर, चौ० सं० सी०, १९६६।

६. २।५।२॥; २।११।६॥; आपस्तम्ब श्रौत सूत्र, धूर्तस्वामी टीका समेत, मैसूर १९४५।

७. (क) १। १०।१५॥; ३।५।७॥ आश्वलायन गृह्य सूत्र, भवानी शंकर शर्मा, बम्बई, १९०९।
(ख) १।३।१४॥; २।५।७२॥ बौधायन गृह्य सूत्र, शाम शास्त्री, मैसूर, १९२०।
(ग) २४।२०॥ काठक गृह्य सूत्र, पृ० ८७, कालेण्ड, लाहौर, १९२५।

८. ३०।८॥, पृ० ४०९, भाग ३, बौधायन शुल्व सूत्रम्, कालेण्ड, कलकत्ता, १९१३।

९. १।३६॥; १।४६॥; ४।३॥; ५।८॥; १।१४। ; २।३१॥; २३।३३॥ वासिष्ठ धर्म शास्त्र, फ्यूहरर पूना, १९३०।

१०. २।११॥; २।१८॥

११. ३।५॥, पृ० ४९, निदानसूत्र, भटनागर, देहली, १९७१।

१२. यह आश्चर्य है कि निरुक्त ४।४॥ में ऋग्वेदीय मन्त्रस्थ पदों को इति विज्ञायते कह कर उद्धृत किया गया है। वैसे ही बौधायन पितृ सूत्र १।१३।९॥ में ऋग्वेद १।८९।९॥ को तदपि दाशतये विज्ञायते कह कर लिखा है।

१३. पृ० ३१, नरसिंहाचार, मैसूर, १९४५।

१४. अत्र विज्ञायत इति श्रुत्युपन्यासादेतद्व्यतिरेकेण पृ० १२०, भाग २, गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम १९२४।

दुर्गाचार्य निरुक्त टीका २।१२।। और २।१७।। में इति विज्ञायते का अर्थ एवं ब्राह्मणेऽपि विज्ञायते विचार्यमाणे ज्ञायते करता है।[1]

८. दो प्रकार के ब्राह्मण

भट्ट भास्कर तैत्तिरीय संहिता के भाष्य की भूमिका में लिखता है—द्विविधं ब्राह्मणम्। कर्म-ब्राह्मणं कल्पब्राह्मणं चेति ॥[2] अर्थात् तैत्तिरीय आदि संहिता व ब्राह्मण ग्रन्थों में दो प्रकार के ब्राह्मण हैं। एक कर्म ब्राह्मण, दूसरे कल्प ब्राह्मण। पुनः वह लिखता है कि कर्म ब्राह्मण वह है जो केवल कर्मों का विधान करता है और मन्त्रों का विनियोग बताता है। न ही प्रशंसा करता है, न ही निन्दा।[3] कल्प ब्राह्मणों में मन्त्रों का पाठ मात्र है, विनियोग नहीं।[3]

भट्ट भास्कर प्रदर्शित ये परिभाषाएं कितनी पुरानी हैं, यह चिन्तनीय है। वह ब्रह्म शब्द का अर्थ ब्राह्मण भी करता है। यथा—ब्रह्मणामन्त्रैर्ब्राह्मणैर्वा।[4]

९. आठ प्रकार के ब्राह्मण

सायण तैत्तिरीय आरण्यक के व्याख्यान में बृहदारण्यक उपनिषद् के प्रमाण से ब्राह्मणों के आठ भेद दर्शाता है। यथा—ब्राह्मणं चाष्टधाभिन्नम्। तद्भेदास्तु वाजसनेयिभिराम्नायते इतिहास पुराणं विद्या उपनिषद: श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानि व्याख्यानानि इति।[5]

आचार्य शंकर ने भी बृहदारण्यक उपनिषद् के उक्त वचन में ब्राह्मणों के यही आठ विभाग लिखे हैं।[6]

१०. अनुब्राह्मण

अष्टाध्यायी में एक सूत्र है—अनुब्राह्मणादिनिः।[7]

काशिकाकार जयादित्य लिखता है—ब्राह्मणसदृशोऽयं ग्रन्थो अनुब्राह्मणम्।[8] प्रायः सब ही टीकाकार लिखते हैं कि ब्राह्मण तो नहीं, पर ब्राह्मणों से मिलते जुलते ग्रन्थों को अनुब्राह्मण कहा जाता है। इसी अभिप्राय से कुछ लोग सामवेद के छोटे-छोटे ब्राह्मणों में से भी किसी को अनुब्राह्मण कह देते हैं।

सत्यव्रत सामश्रमी आर्षेय ब्राह्मण को मुखपृष्ठ पर अनुब्राह्मण भी लिखता है। पुनरपि निरुक्तालोचन में लिखता है—तांड्यांशसूतानि, तांड्यपरिशिष्टसूतानि, वा अनुब्राह्मणानि वा अपराण्यपि सप्ताधीयन्ते च।[9]

---

१. निरुक्त, भदकमकर, बम्बई, १९१८।
२. १।८।१।।, भाग ३, पृ० १०५, मैसूर, १८९५।
३. वही।
४. ७।४।१२।, तै० सं०, पृ० ७४, भाग १२, मैसूर १८९८।
५. ८।२।।, द्वितीय भाग, पृ० ५६३, आनन्दाश्रम, पूना, १९२७।
६. २।४।१०।। बृ० उप०, शंकर भाष्य समेत, आनन्दाश्रम, १९२७।
७. ४।२।६२।।, ऊपर देखें।
८. ४।२।६२।।
९. पृ० १९७, कलकत्ता, १९०७।

इस लेख से सत्यव्रत का यही अभिप्राय है कि सामवेद के ताण्ड्य के अतिरिक्त सातों ब्राह्मण अनुब्राह्मण माने जा सकते हैं।[1] निदान सूत्र में भी बहुधा अनुब्राह्मण कहकर अनेक प्रमाण उल्लिखित हैं।[2]

भट्ट भास्कर तैत्तिरीय संहिता १।८।१॥ की भूमिका में तैत्तिरीय ब्राह्मणान्तर्गत १।६।११।१॥ को उद्धृत करता है—**अनुब्राह्मणं च भवति-अष्टावेतानि हवींषि भवन्ति । इति ।**

माधव अपने तैत्तिरीय ब्राह्मण भाष्य में १।६।१॥ में प्रयुक्त इस अनुवाक के सारे ब्राह्मणों का नाम ही इस प्रकार लिखता है—**अथ राजसूयस्यानुब्राह्मणं** ...... ।[3] शांखायन श्रौत के भाष्यकार आनर्त्तीय वरदत्त सुत ने लिखा है—**एवं तर्हि अनुब्राह्मणमेतत् महाकौषीतकोदाहृतं कल्पकारेणाध्यायत्रयम् ।**

प्रतीत होता है कि कल्प सूत्रकारों द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों का जो भाग कल्प सूत्रों में संगृहीत किया गया है वह कल्प सूत्रान्तर्गत भाग अनुब्राह्मण कहाता है।[4]

अनुशाखा के समान अनुब्राह्मण भी ब्राह्मणों के अवान्तर विभाग थे ।

अनुप्रवचन शब्द का भी प्रयोग हुआ है। अष्टाध्यायी में यह प्रयुक्त है।[5] जैसे ब्राह्मण पर्याय प्रवचन है, क्या अनुप्रवचन अनुब्राह्मण पर्याय है ।

११. ब्राह्मणाच्छंसि

मन्त्रों में कई स्थानों पर यह शब्द मिलता है। तैत्तिरीय संहिता में कुछ स्थानों पर इस शब्द का अर्थ करते हुए भट्ट भास्कर लिखता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के वचनों से जो स्तुति किया गया हो। यथा—**ब्राह्मणाद्-आहृत्य शंसति ब्राह्मणानि शंसति वा ।**[6]

इसी प्रकार का अभिप्राय महाभाष्यकार लिखता है—**ब्राह्मणानि शंसतीति ब्राह्मणाच्छंसी......... ब्राह्मणेभ्यो गृहीत्वा......शंसतीति ब्राह्मणाच्छंसी ।**[7] अर्थात् जो ब्राह्मणों में से लिया गया है। इस अर्थ मानने का यह अभिप्राय है कि मन्त्रों से पहले भी कोई ब्राह्मण थे। पर यह बात इतिहास विरुद्ध है। इसका अभिप्राय ऐसा हो सकता है कि जो ब्राह्मणों में से लिया गया है, क्या वह अनुब्राह्मण है ?

---

१. कुमारिल तो सब को ब्राह्मण ही मानता है। तन्त्रवार्तिक १।३।१२॥ देखें मीमांसा दर्शन, शाबर भाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पूना १६२६ ।
२. भटनागर, दिल्ली १६७१ ।
३. १।६।१॥, तै० सं०, मैसूर, १८६५ ।
४. ४।१०।१॥, देखें व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, यु० मि०, पृ० २४३, द्वितीय संस्करण ।
५. ५।१।१११
६. १।८।१८॥ भाग ३, पृ० २०३ ।
७. ६।३।२॥, पृ० १४२, भाग ३, कीलहार्न, बम्बई, १६०६ ।

दूसरा अध्याय

उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ

प्राचीन और अर्वाचीन ब्राह्मण

पाणिनि ने अष्टाध्यायी के सूत्र पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु[1] में ब्राह्मण ग्रंथों के प्राचीन और अर्वाचीन दो भाग स्पष्ट किये हैं। काशिकाकार जयादित्य इसी सूत्र पर अपनी वृत्ति में लिखता है—पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ताः। ब्राह्मणेषु तावत् भाल्लविनः। शाट्यायनिनः। ऐतरेयिणः। कल्पेषु—पैङ्गी कल्पः। पुराण-प्रोक्तेषु इति किम्? याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि। पुराण प्रोक्त ब्राह्मणों में भाल्लव शाट्यायन और ऐतरेय का तथा अर्वाचीन ब्राह्मणों में याज्ञवल्क्य अर्थात् शतपथ ब्राह्मण का उसने उल्लेख किया है। अष्टाध्यायी के एक अन्य सूत्र पर भी काशिकाकार प्राचीन ब्राह्मणों के साथ ताण्ड और अर्वाचीन ब्राह्मणों में सौलभ ब्राह्मण का नाम लेता है। यथा—ब्राह्मणानि खल्वपि—ताण्डिनः। भाल्लविनः। शाट्यायनिनः। ऐतरेयिणः। याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्क्यानि। सौलभानि।[2]

लाट्यायन श्रौत सूत्र में 'तथा पुराणं ताण्डम्' लिखा है।[3] यहां ताण्ड के लिए पुराण विशेषण प्रयुक्त है। इस सूत्र के अनुसार क्या ताण्ड ब्राह्मण दो प्रकार का था, एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन। सम्भवतः उपलब्ध ताण्ड ब्राह्मण अर्वाचीन हो।

पुराण और अर्वाचीन ब्राह्मण ग्रंथों में क्या सीमा थी? भारतीय ऐतिह्यानुसार यह सीमा है कृष्ण द्वैपायन व्यास का काल। कृष्ण द्वैपायन व्यास के शिष्य प्रशिष्यों द्वारा प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प नवीन माने जाते हैं और कृष्ण द्वैपायन से पूर्ववर्ती ऐतरेय आदि द्वारा प्रोक्त प्राचीन कहे जाते हैं।

संक्षिप्तसार व्याकरण के टीकाकार गोपीचन्द औत्यासानिक ने अयाज्ञवल्क्यादेर्ब्राह्मणे सूत्र की वृत्ति में पुराण प्रोक्त ऐतरेय और शाट्यायन ब्राह्मण के साथ भागुरि ब्राह्मण का उल्लेख किया है।[4] यह ब्राह्मण भी पुराण प्रोक्त है। बौधायन श्रौत सूत्र में एक पुराण प्रोक्त पैङ्गलायनि ब्राह्मण उद्धृत है।[5]

१. ४।३।१०५॥ २. ४।२।६६॥

३. ७।१०।१७॥ लाट्यायन श्रौत सूत्र, आनन्द चन्द्र, कलकत्ता, १८७१।

४. तद्धित प्रकरण, ४५४।

५. गां दक्षिणां दद्यादिति पैङ्गलायनि ब्राह्मणं भवति, २।७॥ भाग १, बौ० श्रौत सूत्र, कालेण्ड, कलकत्ता, १९०४।

काशिकाकार याज्ञवल्क्य ब्राह्मण को याज्ञवल्क्यादयोऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्ता में अर्वाचीन प्रकट करता है।[१] परन्तु वार्तिककार कात्यायन ने याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात् में इस ब्राह्मण को प्राचीन बताया है।[२] क्या कात्यायन ने पाणिनि के पुराण प्रोक्त शब्द का अर्थ सूत्रकार से पूर्व प्रोक्त इतना सामान्य ही स्वीकार किया है ?

ऋग्वेदीय ब्राह्मण

१. ऐतरेय ब्राह्मण[3]

ग्रन्थ परिमाण—ऐतरेय ब्राह्मण में आठ पंचिकाएं हैं। प्रत्येक पंचिका में पांच अध्याय हैं। सम्पूर्ण ब्राह्मण में चालीस अध्याय हैं।

संकलन—उस परम्परा के अनुसार जो सायण को ज्ञात थी, इस ब्राह्मण का प्रवक्ता महीदास ऐतरेय था। षड्गुरुशिष्य सायण से पूर्ववर्ती है। उसने सन् १२५२ में इस ब्राह्मण पर अपनी वृत्ति लिखी। वह इस वृत्ति के आरम्भ में ऐतरेय को याज्ञवल्क्य की इतरा-कात्यायनी नाम्नी पत्नी से उत्पन्न कहता है।[४] यह कल्पना ही प्रतीत होती है। पुनः एक अन्य स्थान पर वह लिखता है—**महीदासैतरेयर्षिसन्दृष्टं ब्राह्मणं तु यत्**।[५] इस बात के मानने में अणुमात्र भी आपत्ति नहीं कि महीदास ने ही इन चालीस अध्यायों का संकलन किया था।

ऐतरेय ब्राह्मण कृष्ण द्वैपायन व्यास से पुराण प्रोक्त है। छान्दोग्य उपनिषद् के **एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः............स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्**[६] और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण के **एतद्ध तद्विद्वान् ब्राह्मण उवाच महिदास ऐतरेयः.........स ह षोडशशतं वर्षाणि जिजीव**[७] से भी यही मत पुष्ट होता है। आह, उवाच और जिजीव से परोक्षभूत की क्रियाओं का उल्लेख है। यहां महिदास के निधन का भी कथन है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में उसे ब्राह्मण कहा है।

---

१. ४।३।१०५॥

२. ४।३।१०५॥, पृ० ३१६, भाग २, महाभाष्य, कीलहार्न, बम्बई, १९०६।

३. (क) ऐतरेय ब्राह्मणम्, मार्टिन हाग, बम्बई सन् १८६३।
   (ख) ऐतरेय ब्राह्मण, सायण भाष्य समेत, सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, सम्वत् १९५२।
   (ग) Das Aitareya Brahmana, सम्पादक Theodor Aufrecht, Bonn, सन् १८७९।
   (घ) ऐतरेय ब्राह्मणम्, सायण भाष्य समेत, सम्पादक काशीनाथ शास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना, सन् १९३१।
   (ङ) Aitareya Brahmana, षड्गुरुशिष्य की सुखप्रदा वृत्ति सहित अनन्तकृष्ण शास्त्री सम्पादित, त्रिवेन्द्रम्, १९४२।

४. आसीद् विप्रो यज्ञवल्को द्विभार्यस्तस्य द्वितीयामितरेति चाहुः।
   स ज्येष्ठायाकृष्टचित्तः प्रियां तामुक्त्वा द्वितीयामितरेति ह्योचे। पृ० ४, प्रथम अध्याय, ऐ० ब्रा०, त्रिवेन्द्रम, १९४२।

५. पृ० २ वही।

६. ३।१६।७॥ शिवशंकर शर्मा, अजमेर, संवत् १९७३।

७. ४।२।११॥ सम्पादक बी० रामचन्द्र शर्मा, तिरुपति, १९६७।

पाणिनि को उतने ही ब्राह्मण का ज्ञान था जितना हमारे पास पहुँचा है। वह एक सूत्र में ३० और ४० अध्याय वाले त्रैंश और चात्वारिंश संज्ञक ब्राह्मणों का निर्देश करता है। यथा—**त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण्।**[1] त्रैंश और चात्वारिंश नामों से किन ब्राह्मण ग्रन्थों का उल्लेख है, यह नहीं लिखा है। कौषीतकि और शांखायन ब्राह्मणों में ३० अध्यय हैं। पाणिनि का त्रैंश प्रयोग क्या इन ब्राह्मणों के लिए है। यहां चालीस अध्याय के ब्राह्मण से ऐतरेय ब्राह्मण का ही अभिप्राय पाणिनि को अभिमत है। ऐतरेय ब्राह्मण को षड्गुरु शिष्य चात्वारिंश कहता है।

आश्वलायन गृह्य सूत्र,[2] कौषीतकि गृह्य सूत्र[3] तथा शांखायन गृह्य सूत्र[4] के तर्पण प्रकरण में ऐतरेय तथा महैतरेय का उल्लेख है। क्या ऐतरेय में कभी ३० अध्याय थे और महैतरेय से ४० अध्याय अभिप्रेत हैं। यह विचारणीय है। इस ब्राह्मण में शाकल संहिता का परोक्षरूप में उल्लेख मिलता है।[5] ऐतरेय ब्राह्मण का वर्तमान प्रवचन शौनक का है। क्या उसी ने इस ब्राह्मण के अन्त के दस अध्याय जोड़े हैं और मूल ब्राह्मण में ३० ही अध्याय थे ?

ऐतरेय ब्राह्मण में सकलपाठ में पढ़े कुछ मन्त्र वर्तमान संहिता में नहीं हैं।[6]

विशेषताएं—ब्राह्मणों में तदाहुः का प्रायः प्रयोग होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में ब्राह्मण प्रवक्ता आचार्यों की अपेक्षाकृत सम्मतियां बहुत कम उद्धृत की गयी हैं। केवल पैङ्ग्य शाकल और कौषीतकि का मत उद्धृत है।[7] इससे कीथ परिणाम निकालता है कि यह अध्याय ही प्रक्षिप्त है।[8] हमारा ऐसा मत नहीं है। प्रतीत होता है महिदास अन्य ब्राह्मणों के प्रवचन कर्त्ताओं के समान प्राचीन परम्परागत सामग्री में बहुत कम हस्तक्षेप करता था। जैसा ऊपर लिखा है ऐतरेय-प्रोक्त ब्राह्मण का शौनक ने पुनः परिष्कार किया और कदाचित् इस कारण इसमें उत्तरवर्ती सामग्री भी जोड़ दी गयी। ऐतरेय ब्राह्मण की प्रथम ६ पंचिकाओं में सोमयाग का वर्णन है। अन्तिम दो पंचिकाओं में राज्याभिषेक का कथन है।

ऐतरेय ब्राह्मण के काल के सम्बन्ध में कीथ के कथन की परीक्षा

ऐतरेय ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणों की अपेक्षा कुछ अधिक पुराना है, इस पर लिखते हुए कीथ ने कुछ युक्तियां दी हैं। इनका खण्डन यथास्थान स्वयं हो जाएगा। यहां एक युक्ति के सम्बन्ध में हमने कुछ कहना है।

---

१. ५।१।६२ ॥ अष्टाध्यायी।
२. ३।४।४॥ पृ० १२७, भवानी शंकर शर्मा, बम्बई, १९०९।
३. २।५॥ पृ० ९०, भवत्रात टीका समेत, चिन्तामणी, मद्रास, १९४४।
४. ४।१०॥ पृ० ५२, सीताराम सहगल, दिल्ली, १९६०।
५. शाकल्यशब्दः सर्पविशेष वाची। शाकल नाम्नोऽहेः सर्पविशेषस्य यथा सर्पणं गमनं तथैवयमग्निष्टोमः। १४।५॥ पृ० ४०८-४०९, भाग २, सायण भाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पूना।
६. पृ० १७१, ऐ० ब्रा०, भाग प्रथम।
७. (क) पूर्वां पौर्णमासीमुपवसेदिति पैङ्ग्यमुत्तरासिति कौषीतके या पूर्वाः ७।३२।९।११॥ पृ० ८२७, भाग ४, आनन्दाश्रम, पूना।
   (ख) ३।१४।५।४३॥ पृ० ४०८, भाग २, आनन्दाश्रम, पूना।
८. पृ० २४, Rigveda Brahmanas, Keith A. B., मोतीलाल बनारसी दास, १९७१।

कीथ लिखता है—

'The Aitareya has no allusion to Svetaketu or the more famous Aruni, and therefore we have another suggestion in favour of its comparatively older date.'[1]

अर्थात्—ऐतरेय में श्वेतकेतु अथवा प्रसिद्ध आरुणि का उल्लेख नहीं है। अतः ऐतरेय के कुछ अधिक पुराना होने में यह एक और हेतु हो सकता है।

इस विषय पर हम विस्तार पूर्वक इस ग्रन्थ में आगे लिखेंगे। यहां इतना लिखना पर्याप्त है कि ऐतरेय ६।३०॥ में बुलिल आश्वतराश्वि का उल्लेख है। इसी को दूसरे स्थानों में बुडिल आश्वतराश्विः भी कहा गया है।[2] छान्दोग्य उपनिषद् के प्रमाण से यही आचार्य उद्दालक आरुणि का समकालीन है।[3] इसलिए जब महिदास आरुणि के साथी को जानता था तब वह आरुणि को अवश्यमेव जानता था। नई खोज के अनुसार उद्दालक आरुणि ऐतरेय ब्राह्मण में उद्धृत है।[4] अतएव ऐतरेय ब्राह्मण के कुछ अधिक पुराना होने में कीथ का अनुमान प्रमाण कोटि में नहीं आ सकता।

अभिप्रतारी के पुत्र वृद्धद्युम्न के पश्चात् महिदास ऐतरेय का काल है।[5]

ऐतरेय ब्राह्मण के प्रचार के देश—चरणव्यूह सूत्र के यजुर्वेद खण्ड की टीका में महिदास महार्णव से निम्नलिखित श्लोक लेता है—

> **तुंगा कृष्णा तथा गोदा सह्याद्रिशिखरावधि।**
> **आ आन्ध्रदेशपर्यन्तं बह्वृचश्चाश्वलायनी॥**[6]

इसका अभिप्राय यही है कि ऋग्वेदीय आश्वलायन शाखाध्यायी ब्राह्मण, जो कि ऐतरेय ब्राह्मण के भी पढ़ने वाले हैं, तुङ्गभद्रा, कृष्णा और गोदावरी (नासिक आदि महाराष्ट्र राज्यों) व सह्याद्रि से लेकर आन्ध्र देश पर्यन्त रहते थे। यह बात अभी तक ठीक उतर रही है। प्राचीन ग्रन्थों की खोज करते हुए हमने देखा है कि आज भी इन्हीं देशों में इस शाखा के पढ़ने वाले मिलते हैं।

२. कौषीतकि ब्राह्मण[7]

ग्रन्थ परिमाण—कौषीतकि ब्राह्मण में तीस अध्याय हैं।

विशेषताएं—लिण्डनर के संस्करण के अन्त में ऋषि नामों की सूची देखने से किसी साधारण पुरुष को भी पता लग सकेगा कि, कौषीतकि, कौषीतक और पैङ्ग्य का नाम अथवा मत इस ब्राह्मण में बहुधा

---

१. पृ० ४८, Rigveda Brahmanas, Keith A. B.
२. ४।६।१।६। श० ब्रा०, पृ० ५२८, भाग १, काशी, १९९४।
३. ५।११॥ पृ० ६८५, शिवशंकर शर्मा, अजमेर, संवत् १९७३।
४. ८।७॥ ह स्माऽऽहोद्दालक आरुणियम्, आनन्दाश्रम, पूना।
५. पृ० ६२९, ६३०, भाग १, ऐतरेय ब्राह्मण, षड्गुरुशिष्य, अनन्तकृष्ण शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९४२।
६. पृ० ३३, दूसरा खण्ड, महीदास, चौ० सं० सी०, १९३८।
७. (क) कौषीतकि ब्राह्मणम्, सम्पादक बी० लिण्डनर, सन १८८७।
   (ख) शांखायन ब्राह्मणम्, सम्पादक गुलाबराय वजेशंकर, आनन्दाश्रम, पूना, १९११।

मिलता है। २५।१।। में पुनर्मृत्यु शब्द मिलता है। यह शब्द ब्राह्मण काल में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का स्पष्ट द्योतक है।

कुषीतक वंश के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख

ताण्ड्य ब्राह्मण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कुषीतक वंश वाले व्रात्य भाव को प्राप्त हो गए थे और उन्होंने शमनीचामेढ्रों के साथ कुषीतक में गृहपति बन कर यज्ञ किया था। कनीयांस स्तोमों का प्रयोग करने से कुषीतकों में कोई भी श्रेय को प्राप्त नहीं हुआ। वे यज्ञावकीर्ण अर्थात् विभ्रष्ट ब्रह्मचर्य वाले थे। यथा—एतेन वै शमनीचामेढ्रा अयजन्त तेषां कुषीतकः सामश्रवसो गृहपतिरासीत्तान् लुशाकपिः खार्गलिरनुव्याहरदवाकीर्षत् कनीयांसौ स्तोमावुपागुरिति तस्मात्कौषीतकानां न कश्चनाऽतीव जिहीते यज्ञावकीर्णा हि।[1]

आगे चल कर हम बताएंगे कि समुपलब्ध अधिकांश ब्राह्मणों का संकलन लगभग समकाल में हुआ। इसलिए एक स्थान में किसी सिद्धान्त के मिल जाने से, उस काल में उस सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार मानना पड़ेगा।

संकलन—आक्सफोर्ड नगर के बोडलियन पुस्तकालय[2] में इस ब्राह्मण के हस्तलेखों के अन्त में यह पाठ है—कौषीतकिमतानुसारी शाङ्खायन ब्राह्मणम्।

पूना के प्रसिद्ध विद्वान् पं० श्रीधर शास्त्री ने सन् १९२२ में आनन्दाश्रम में शाङ्खायनारण्यक छपवाया था। उसकी प्रस्तावना के पृ० १-२ में अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने भी निश्चित किया है कि आरण्यक भाग का नाम शाङ्खायनारण्यक ही है।

चरणव्यूह की द्वितीय कण्डिका की महीदास कृत टीका में महार्णव से कुछ श्लोक उद्धृत किए गए हैं। उनमें से एक श्लोक निम्नलिखित है—

> उत्तरे गुर्जरे देशे वेदो बह्वृच ईरितः।
> कौषीतकिब्राह्मणं च शाखा शाङ्खायनी स्थिता ॥[3]

इस श्लोक के अनुसार शाङ्खायनी शाखा के ब्राह्मण का नाम कौषीतकि कहा गया है।

आचार्य शंकरस्वामी वेदान्त सूत्र १।१।२८॥ और ३।३।१०॥ में कौषीतकि ब्राह्मण नाम स्वीकार करते हैं।

ऐसी अवस्था में जब कि ग्रन्थ का नाम निर्धारण करना कठिन है, हम नहीं कह सकते कि इस ब्राह्मण का वास्तविक प्रवचन कर्ता कौन है। तो भी कौषीतकि अथवा शांखायन में से एक हो सकता है।

शांखायन आरण्यक में निम्न वंश वर्णित है—अथ वंशः ॥ नमो ब्रह्मणे नम आचार्येभ्यो गुणाख्याच्छाङ्खायनादस्माभिरधीतं गुणाख्यः शाङ्खायनः कहोलात्कौषीतकेः कहोलः कौषीतकिरुद्दालकादारुणेरुद्दालक आरुणिः.........।[4]

---

1. १४।४।३।। पृ० २७९, भाग, ता० म०, ब्रा०, चौ० सं० सी०, संवत् १९९३।
2. सूचीपत्र २।४।।
3. पृ० ३३, दूसरा खण्ड, चौ० सं० सी०, १९३८।
4. १५।१।। पृ० ४७, शाङ्खायनारण्यक, आनन्दाश्रम, १९२२।

इस से पता लगता है कि उद्दालक से कहोल कौषीतकि ने विद्या पढ़ी और कहोल कौषीतकि ने गुणाख्य शाङ्खायन से। शाङ्खायन ही इस विद्या का प्रसिद्ध अन्तिम आचार्य है। अतः कौषीतकि व शाङ्खायन में से ही किसी ने इस ब्राह्मण का प्रवचन किया होगा।

पूर्वोद्धृत पाणिनि सूत्र ५।१।६२॥ से यह भी ज्ञात होता है कि पाणिनि को इस ब्राह्मण का भी पता था।

कौषीतकि—महाकौषीतकि——यह दोनों नाम मिलते हैं। कौषीतकि से अभिप्रेत इस ब्राह्मण के तीस अध्याय ही हैं। क्या महाकौषीतकि में आरण्यक भाग के पृथक् पन्द्रह अध्याय भी सम्मिलित समझे जाते थे ?

कौषीतकि ब्राह्मण के प्रचार के देश—ऊपर जो महार्णव का श्लोक उद्धृत किया गया है, उसके अनुसार उत्तर गुर्जर देश में ऋग्वेदियों की शाङ्खायन शाखा का यह कौषीतकी ब्राह्मण प्रचलित था। आज भी इस ब्राह्मण के पुरातन हस्तलेख इसी देश में मिलते हैं।

३. शाङ्खायन ब्राह्मण

ग्रन्थ परिमाण—पहले कौषीतकि तथा शाङ्खायन ब्राह्मण एक ही समझे जाते थे। अब शाङ्खायन ब्राह्मण भी पृथक् रूप से छप चुका है।[1] दोनों में अल्पान्तर है। इस में भी तीस ही अध्याय हैं। इसके प्रचार प्रदेशों का महार्णव में उल्लेख नहीं है। क्या इसमें भी शाङ्खायन अथवा महाशाङ्खायन का भेद रहा होगा ?

शुक्ल-यजुर्वेदीय ब्राह्मण

४. माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण[2]

ग्रन्थ-परिमाण—जैसा नाम से प्रकट है, शतपथ ब्राह्मण में अध्यायों की संख्या एक सौ है। गण-रत्न महोदधि में ऐसा ही अभिमत है—**शतं पन्थानो यत्र शतपथः तत्तुल्यः शतपथः।**[3] शतपथ ब्राह्मण का दूसरा नाम वाजसनेय ब्राह्मण भी है। इस का निर्देश गणपाठ में मिलता है।[4] इस ब्राह्मण में कुल चौदह काण्ड हैं। वेबर

---

१. शाङ्खायन ब्राह्मण, गुलाबराय वजेशंकर छाया, आनन्दाश्रम, सन् १९११।

२. (क) The Catapatha Brahmana, Weber A., Leipzig, 1924, 1964.
(ख) शतपथ ब्राह्मणम्, अजमेर, संवत् १९५९।
(ग) शतपथ ब्राह्मणम्, सायणभाष्य समेत, सत्यव्रत सामश्रमी, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, १९०३-११।
(घ) शतपथ ब्राह्मणम्, सम्पादक वंशीधर शास्त्री, काशी।
(ङ) शतपथ ब्राह्मणम्, सायणभाष्य समेत, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

३. पृ० ११७, इटावा संस्करण।

४. ४।३।१०६॥

के मतानुसार शतपथ ब्राह्मण में १०० अध्याय (अथवा ६८ प्रपाठक), ४३८ ब्राह्मण, और ७६२४ कण्डिकाएं हैं।[1] एगलिङ्ग का मत है कि कुछ काण्ड नवीन हैं।[2] प्रथम तो बारहवां काण्ड मध्यम कहाता है। इस से प्रतीत होता है कि १०-१४ काण्ड (अथवा कदाचित् ११-१३ काण्ड) ग्रन्थ रूप में कभी पृथक् विद्यमान थे। इस के अतिरिक्त पाणिनि ४।२।६०।। पर पातञ्जल महाभाष्य में एक कारिका है—

अनुसूलंक्ष्यलक्षणे सर्वसादेर्द्विगोश्च लः।
इकन्पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन्पथः ॥[3]

इस में शतपथ और षष्ठिपद का कथन मिलता है। यह आश्चर्य की बात है कि इस शतपथ के प्रथम नौ काण्डों में ६० ही अध्याय हैं। वैबर ने[4] यह सुझाया था कि 'सम्भवतः प्रथम नौ काण्ड ही कभी षष्ठिपथ माने जाते थे।'

प्राचीन प्रथानुसार नवें काण्ड में अग्निचयन का प्रकरण है और अग्निचयनान्त ग्रन्थभाग के पठन का विशेष निर्देश है। यह अष्टाध्यायी २।१।६।। सूत्रान्तर्गत वचन के साग्न्याधीते उदाहरण से प्रतीत होता है।

इस के विपरीत कालेण्ड[5] का मत है कि—'माध्यन्दिन शतपथ के प्रथम ५ काण्ड, काण्व के प्रथम सात काण्डों से मिलते हैं। इन काण्वीय सात काण्डों में ४० अध्याय हैं। अतः शेष वाजसनेय ब्राह्मण ६० अध्याय का ही होगा। यदि यह सत्य हो तो हमें मानना पड़ेगा कि पतञ्जलि के काल में काण्व ब्राह्मण के १०० अध्याय थे, १०४ नहीं। पर षष्ठिपथ शब्द का यह व्याख्यान कल्पना मात्र है।'

शतपथ ब्राह्मण का परिमाण महाभारतानुसार—महाभारत शान्तिपर्व[6] में कहा है—

ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम्।
चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण ह ॥१६॥
सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप ॥२२॥
कर्तुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतं मया।

अर्थात् याज्ञवल्क्य ने परिशेष संग्रह और रहस्ययुक्त संपूर्ण शतपथ बनाया। और यह शतपथ अपूर्व बनाया गया है। सम्भवतः याज्ञवल्क्य ने शतपथ का प्रवचन अपनी वृद्धावस्था में किया था।[7]

---

१. p. 117, Weber A, History of Indian Literature, 3rd ed., London, 1892.
२. p. 29, Introduction, Vol. I, Eggeling Julius, Satapatha Brahmana, Delhi, 1963.
३. पृ० २८४, भाग २, कीलहार्न, बम्बई १९०६।
४. पृ० ११६।
५. पृ० ५, भाग १, शतपथ ब्राह्मण, कालेण्ड, मोतीलाल बनारसी दास, १९२६।
६. अध्याय ३१८, श्लोक १६,२२ व २३, चित्रशाला प्रेस, पूना।
७. सहस्र बाहुऽन्वेक्ष्याह इमौ परितौ बाहुः क्वस्विद ब्राह्मणस्य वचो बभूवः। ३।८।२।२४। शतपथ ब्रा०, पृ० १८७, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

माध्यन्दिन शतपथ के प्रथम नौ काण्डों में ६० अध्याय हैं। दशम काण्ड अग्नि रहस्य कहाता है। ग्यारहवां काण्ड अष्टाध्यायी कहाता है। इस में आठ अध्याय हैं। इस में पहले कहे हुए विषयों का संग्रह मात्र है। माध्यन्दिन शतपथ के १२-१४ काण्ड महाभारत के श्लोक में परिशेष कहे गए हैं।

शतपथ के शाण्डिल्य काण्ड—माध्यन्दिन शतपथ के चार (६-९) काण्डों में शाण्डिल्य का नाम बहुधा आता है। इन अध्यायों में याज्ञवल्क्य का नाम उपलब्ध ही नहीं। इन से पहले और पिछले अध्यायों में याज्ञवल्क्य का मत प्रायः मिलता है। इससे वैबर,[1] एगलिङ्ग[2] आदि परिणाम निकालते हैं कि ये कांण्ड भिन्न व्यक्ति प्रोक्त हो सकते हैं।

इन काण्डों के साथ दशम काण्ड में भी यही विशेषता पायी जाती है। पुराने आचार्यों को लगभग ऐसी बात भले प्रकार विदित थी। शंकर वेदान्त सूत्र ३।३।१९॥ के भाष्यारम्भ में लिखता है—**वाजसनेयिशाखायामग्निरहस्ये शाण्डिल्यनामाङ्किता विद्या विज्ञाता।**[3] इस काण्ड के अन्त में एक वंश भी है। उसमें शाण्डिल्य का नाम मिलता है।

संकलन—पूर्वोक्त सब बातों को दृष्टि में रखकर हमारा मत है कि अन्य ब्राह्मणों के समान शतपथ का अधिक अंश बहुत पुराना है। उस के कुछ भाग शाण्डिल्य प्रोक्त माने जाते हैं। पर समग्र ब्राह्मण का अन्तिम संकलन याज्ञवल्क्य ने किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। शतपथ के अन्त में कहा है—**आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूꣳषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते।**[4] अर्थात् आदित्य सम्बन्धी ये शुक्ल यजुः वाजसनेय याज्ञवल्क्य के प्रोक्त हैं। महाभारतादि से भी यही ज्ञात होता है। वैदिक शाखाओं के आदित्यायन और आङ्गिरसायन दो सम्प्रदाय हैं। यथा—**द्वयानि द्विविधानि एव शुक्लयजूंषि आदित्यानां आदित्यसम्बन्धीनि आङ्गिरसानि आङ्गिरससम्बन्धीनि। अत्रादित्यपक्षेण याज्ञवल्क्यो ग्राह्यः।**[5]

यह सम्प्रदाय भेद यज्ञविशेष की प्रक्रिया के कारण हुआ है। इनका उल्लेख माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में भी उपलब्ध है। आदित्यानीमानि वचन से यही स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य का वचन आदित्यायन से सम्बन्ध रखता है। प्रतिज्ञा सूत्र परिशिष्ट (श्रौत परिशिष्ट) में कात्यायन अपना सम्बन्ध आङ्गिरसायन सम्प्रदाय से व्यक्त करता है।

विशेषताएं—जो विद्यार्थी ऋग्वेद पढ़ लेता है, उसके लिए अन्य वेद पढ़ने सरल हो जाते हैं। वह दूसरे वेदों को अनायास ही जान लेता है। इसी प्रकार जो अध्येता शतपथ ब्राह्मण पढ़ लेता है, वह याज्ञिक

---

१. पृ० १३१, १३२।

२. पृ० ३१, प्रथम भाग, भूमिका।

३. पृ० ३९२, ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य निर्णयसागर, बम्बई, १९१५।

४. भाख्या प्रवचनात्, अध्याय १, पाठ १, सूत्र ३०, जैमिनीय मीमांसा, संपादक सुब्बाशास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना। जैसे संहिताओं में शाकल आदि नाम कर्ता के कारण से नहीं अपितु प्रवचन के कारण से जुड़े हुए हैं, वैसे ही यहां भी है।

५. तृतीय प्रतिज्ञा परिशिष्ट सूत्रम्, अण्णाशास्त्री वारे, नासिक, १९४३।

क्रिया का सर्वश्रेष्ठ पंडित कहा जाता है। अन्य सब ब्राह्मणों को वह स्वल्प काल में स्वायत्त कर लेता है। इस शतपथ में वेदार्थ की कुंजी है, वैदिक विषयों का भरपूर ज्ञान है, वैदिक ऐतिह्य का प्रामाणिक कथन है। महाभारत के पूर्व उद्धृत प्रमाण में याज्ञवल्क्य का गर्व अनुचित नहीं। उस का बनाया हुआ ब्राह्मण वस्तुतः अपूर्व है।

प्रतिज्ञा सूत्र परिशिष्ट नाम के दो ग्रन्थ हैं। एक श्रौत सूत्र का और दूसरा शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य का परिशिष्ट है। शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य के प्रतिज्ञा सूत्र परिशिष्ट में शतपथ ब्राह्मण में प्रयुक्त उदात्त और अनुदात्त स्वरों को भाषिक स्वर कहा है। इस स्वर भेद के कारण अभिमत था कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। यथा—**ब्राह्मणे तूदात्तानुदात्तौ भाषिकस्वरौ।**[1]

शतपथ-स्मृत ऋक्-शाखा—माध्यन्दिन शतपथ ११।५।१।१० में कहा है—**तदेतदुक्तप्रत्युक्तं पञ्चदशर्च्चं बह्वृचाः प्राहुः।** अर्थात् पुरुरवा और उर्वशी के (आलंकारिक) संवाद का यह सूक्त पन्द्रह ऋचा का है, ऐसा ऋग्वेदीय कहते हैं। परन्तु ऋग्वेद १०।९५॥ में, जिस के कुछ मन्त्र यहां उद्धृत हैं, अठारह ऋचा हैं। शतपथ का संकेत किस ऋग्वेदीय शाखा की ओर है, यह ज्ञात नहीं।

पुनर्जन्म—शतपथ ११।५।६।९॥ में लिखा है—**अति ह वै पुनर्मृत्युमुच्यते।** अर्थात् वह बार-बार के मरण से मुक्त हो जाता है। और भी लिखा है—**किन्तदग्नौ क्रियते येन यजमानः पुनर्मृत्युमपजयति।**[2] अर्थात् अग्नि में वह क्या किया जाता है, जिस से यजमान बार-बार की मौत को जीत लेता है। इस से स्पष्ट है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वत्र माननीय था।

तेरहवें काण्ड में राक्षसराज कुबेर वैश्रवण का उल्लेख है।[3] जहां प्रथम नौ काण्डों में किसी विषय के पूर्व व्याख्यात होने पर या मन्त्रवत् स्पष्ट होने पर, अथवा आगे व्याख्यात किए जाने पर क्रमशः **तस्योक्तो बन्धुः**[4] **सोऽसावेव बन्धुः**,[5] **यथैव यजुस्तथा बन्धुः**,[6] **उपरि तस्य बन्धुः**[7] आदि कहा गया है,[8] वहां तेरहवें काण्ड में **तस्योक्तं ब्राह्मणम्**[9] आदि कहा गया है। इस प्रयोग भेद से पहले नौ काण्डों की प्राचीनता का कई लोग अनुमान करते हैं। पर बन्धु शब्द के ही प्रयोग से कुछ काण्डों की प्राचीनता और दूसरों की नवीनता का अनुमान नहीं किया जाना चाहिए। चौदहवें काण्ड में भी बन्धु शब्द प्रयुक्त है।[10] इन नौ काण्डों में याज्ञवल्क्य और उसके

---

१. पृ० ४१२, प्रथम कण्डिका, सूत्र ८, प्रतिज्ञा सूत्र परिशिष्ट, शुक्ल यजुर्वेद, चौ० सं० सी० मुद्रित कात्यायन प्रातिशाख्य के अन्त में संगृहीत।
२. १०।१।४।१४॥ शतपथ ब्रा०।
३. १३।४।३।१०॥ श० ब्रा०।
४. ६।४।२।७॥, ७।१।१।४३॥, ९।४।३।७॥ श० ब्रा०।
५. ४।१।२।२३॥ श० ब्रा०।
६. ६।४।२।४॥ श० ब्रा०।
७. ७।३।२।१३॥ श० ब्रा०।
८. तुलना करो एतावान् उ सामबन्धुः १।१२३॥ जैमिनीय ब्राह्मण, पृ० ५२।
९. १३।४।१।१५॥ श० ब्रा०।
१०. १४।२।२।४०,४१,४३॥ श० ब्रा०।

साथियों का उल्लेख वैसा ही मिलता है, जैसा अन्तिम चार काण्डों में। इसलिए इतना माना जा सकता है कि दूसरे ब्राह्मणों के समान शतपथ की भी कुछ सामग्री पर्याप्त पुरानी है, पर सारे ब्राह्मण का पुनः संस्कार और प्रवचन याज्ञवल्क्य ने ही किया था। शतपथ में अनेक ऋषियों और पुराने राजाओं का वर्णन है।[1] भारत के कई साम्राज्यों के नाम भी इस में पाए जाते हैं।

वाजसनेय माध्यन्दिन शतपथ के प्रचार-देश—चरणव्यूह टीका में महार्णव का निम्नलिखित श्लोक मिलता है :—

अङ्गवङ्गकलिङ्गश्च कानीनो गुर्जरस्तथा।
वाजसनेयी शाखा च माध्यन्दिनि प्रतिष्ठिता ॥[2]

अर्थात् अङ्ग, बंगाल, उड़ीसा, कानीन और गुजरात में वाजसनेय माध्यन्दिन शाखा प्रचलित थी। इसके साथ ही यह शाखा पंजाब और उत्तर प्रदेश में भी सर्वत्र पढ़ी जाती है। उज्जैन के बड़े बड़े याजुप विद्वान् हरिस्वामी, उवट, आदि की यही शाखा थी।

५. काण्व शतपथ ब्राह्मण[3]

ग्रन्थ परिमाण—कालेण्ड[4] के मतानुसार इस शतपथ में १०४ अध्याय, ४४६ ब्राह्मण, और ५८६५ कण्डिकाएं हैं। समग्र ब्राह्मण में १७ काण्ड हैं। शंकराचार्य आदि विद्वान् काण्व बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्तिम दो अध्यायों को खिल ही मानते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् के पांचवें अध्याय के भाष्य के आरम्भ में शंकर लिखता है—**पूर्णमद इत्यादि खिलकाण्डमारभ्यते**। अर्थात् अब पूर्णमदः से आरम्भ होने वाले पांचवें खिल काण्ड का आरम्भ किया जाता है। इन अन्तिम अध्यायों को खिल मानकर काण्व शतपथ ब्राह्मण में शेष १०२ अध्याय रह जाते हैं। सम्भव है, इसी प्रकार कोई दो अध्याय और भी इस में कभी जुड़ गये हों।

विशेषताएं—काण्ड विभाग या वाक्य रचना के स्वल्प भेद को छोड़ कर माध्यन्दिन व काण्व शतपथ में बहुत कम अन्तर है। अतः इस के विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है।

६. कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण[5]

ग्रन्थ परिमाण—तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन अष्टक हैं। पहले अष्टक को पारक्षुद्र, दूसरे को अग्निहोत्र और तीसरे के भिन्न भिन्न भागों को पृथक पृथक् नामों से कहा गया है। इन तीन अष्टकों में २८ प्रपाठक हैं। भट्टभास्कर भाष्य में इन्हें प्रश्न भी कहा गया है। मैसूर संस्करण के अनुसार अनुवांकों की संख्या प्रथमाष्टक में ७८, दूसरे में ९६ और तीसरे में १७९ है। कुल मिला कर तैत्तिरीय ब्राह्मण में ३५३ अनुवाक हैं।

---

१. १३।५।४॥ श० ब्रा०।
२. पृ० ३४, श्लोक ९।
३. Satapatha Brahmana in the Kanviya Recension, Caland W., Moti Lal Banarsi Das, 1926.
४. पृ० ६, वही।
५. (क) तैत्तिरीय ब्राह्मण, सायण भाष्य समेत, राजेन्द्र लाल मित्र, कलकत्ता, १८६२।
(ख) तैत्तिरीय ब्राह्मण, सायण भाष्य समेत, आनन्दाश्रम, पूना, १९३४।
(ग) तैत्तिरीय ब्राह्मण, भट्टभास्कर भाष्य समेत, महादेव शास्त्री, मैसूर।

विशेषताएं—तैत्तिरीय ब्राह्मण, तैत्तिरीय संहिता का परिशिष्ट मात्र है। जो विषय संहितास्थ ब्राह्मण में अपूर्ण छोड़े गये हैं, उन्हीं की पूर्ति करना इस का उद्देश्य है। इस में मन्त्रों की बहुलता है। ये मन्त्र सारे ब्राह्मण में मिश्रित हैं। सारे ब्राह्मण में यम और नचिकेता की कथा का सूक्ष्म रूप विद्यमान है।

संकलन—जैसा नाम से प्रकट है, इस ब्राह्मण का संकलन वैशंपायन के शिष्य तित्तिरि ने किया था। तैत्तिरीयों के ब्राह्मण में काठक भाग ३।१०-१२ ॥ खटकता है। पर है यह भाग भी अति प्राचीन काल से इसी ब्राह्मण में, क्योंकि काण्डानुक्रम में यही लिखा है।[1]

भट्टभास्कर इस काठक-भाग को तित्तिरि-प्रोक्त नहीं समझता। वह इसकी व्याख्या के आरम्भ में लिखता है—**एवमश्वमेधान्तानि तित्तिरिप्रोक्तानि काण्डानि व्याख्यातानि। अथ काठकाग्निकाण्डान्यष्टौ।**

पुरुषमेध का वर्णन यहीं पाया जाता है। पहले चार काठक सावित्र, नाचिकेत, चातुर्होत्र और वैश्वसृज ब्राह्मणान्तर्गत हैं। अगले चार आरण्यक अरुणकेतुक, पञ्चचित्यानि दिवश्श्येनोपाधाश्चेष्टयः और स्वाध्याय ब्राह्मण आरण्यक अन्तर्गत हैं। अरुण, केतुक नाम के ऋषि महाभारत शान्तिपर्व में वर्णित हैं।[2]

तैत्तिरीयों के प्रचार-देश—चरणव्यूह सूत्र टीकाकारोद्धृत महार्णव का यह श्लोक है—

आन्ध्रादि दक्षिणाग्नेयी गोदा सागर आवधि।
यजुर्वेदस्तु तैत्तिर्य आपस्तम्बी प्रतिष्ठिता ॥[3]

अर्थात् आन्ध्र आदि देश, नर्मदा की दक्षिण तथा आग्नेयी दिशा, गोदावरी के तीरवर्ती देशों में से समुद्र तक सब देशों में तैत्तिरीय शाखा का प्रचार है। यह बात अब तक भी ठीक उतरती है। बर्नेल दाक्षिणात्य जनश्रुति लिखता है कि दक्षिण की घरेलु बिल्लियां भी तैत्तिरीय शाखा जानती हैं।

सामवेदीय ब्राह्मण

७. ताण्ड्य ब्राह्मण[4]

सामवेदीय शाखा और ब्राह्मण प्रवचनकारों में भेद है। यथा—**त्रयोदशैते सामगाचार्याः स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिताः................दशैते प्रवचन कर्त्तारः स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिताः।**[5] ताण्ड्यों की एक स्वतंत्र शाखा बहुत प्राचीन काल से मानी गयी है। अपने वेदान्त भाष्य में शंकर लिखता है—**अन्येऽपि शाखिनस्ताण्डिनः**

---

१. काण्डानुक्रम, प्रथम अध्याय का अन्त।

२. (क) ६२३, भाग १३, Appendix No. 4, पूना संस्करण।
   (ख) १९।१६।। मद्रास संस्करण।

३. पृ० ३३, ३४।

४. (क) ताण्ड्य महाब्राह्मण, सायण भाष्य सहित, सम्पादक आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश, एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता, सन् १८७०।
   (ख) ताण्ड्य महाब्राह्मणम्, सायण भाष्य समेत, चौ. सं. सी, १९३६।

५. पृ० ३७४, आह्निक प्रकाश, वीरमित्रोदय कृत, चौ० सं० सी०, १९१३।

शाट्यायनिनः।[१] पुनः वह लिखता है—यथैकेषां शाखिनां ताण्डिनां पैङ्गिनां च।[२] वर्तमान् छान्दोग्योपनिषद् इन्हीं की उपनिषद् है। पहले इस उपनिषद् को ताण्ड्य-रहस्य ब्राह्मण भी कहा जाता था। शाङ्कर वेदान्त भाष्य से ऐसा ही ज्ञात होता है।[3] ताण्ड्य शाखा कौथुमों का अवान्तर विभाग समझी जाती है। अध्यापक कालेण्ड ने ताण्ड्य ब्राह्मण से दो ऐसे उदाहरण दिये हैं जहां ब्राह्मण का पाठ वर्तमान कौथुम संहिता के पाठ से भिन्न हो जाता है—

ताण्ड्य ब्राह्मण	साम संहिता
इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ११।५।४।।	इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे।
अक्रान्त्समुद्रः परमे विधर्मन् १५।१।।	अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन्।[४]

इस भेद के कारण एक सम्भावना हो सकती है कि ताण्ड्य ब्राह्मण का सम्बन्ध कदाचित् किसी अन्य साम संहिता से रहा होगा।

जैसा ऊपर लिखा गया है ताण्ड्य ब्राह्मण दो प्रकार का था। एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन।[५]

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण में २५ प्रपाठक और ३४७ खण्ड हैं। सायण अपने भाष्य में प्रपाठक के स्थान में अध्याय शब्द का प्रयोग करता है। मूल ग्रन्थ के हस्तलेखों में प्रपाठक शब्द ही सर्वत्र पाया जाता है।

विशेषताएं—ताण्ड्य का स्वर्गवास व्यास सुनाता है।[६] उसने द्वापर में शरीर त्याग किया था। इस ब्राह्मण को ही पंचविंश, प्रौढ़ अथवा महाब्राह्मण कहते हैं। महाब्राह्मण नाम आठ ब्राह्मण की तुलना के कारण पड़ा है। इस ब्राह्मण में सोमयागों का ही वर्णन है। इन यागों के साथ जिन साम मन्त्रों का सम्बन्ध है, वे सब इस में उल्लिखित हैं। इस ब्राह्मण में अनेक मन्त्रद्रष्टा व यज्ञ-क्रिया-द्रष्टा ऋषियों के नाम आते हैं।

आर्षानुक्रमणी व सर्वानुक्रमणियों के बनाने वाले आचार्यों ने इस ब्राह्मण से पर्याप्त सहायता ली है। यदि अगले स्थलों का सायण भाष्य ठीक है, तो इस ब्राह्मण में कई शाखाओं का कथन है। यथा—भाल्लवि २।२।४।, त्रिखर्व २।८।३।, करद्विष २।१५।४।, ३।६।४।। भारत देश में सौदन्तजाति का वर्णन इसी ब्राह्मण में है।[७] कौषीतकियों के यज्ञ की निन्दा भी यहां मिलती है।[८]

अनेक यज्ञ सरस्वती और दृषद्वती के तटों पर होते लिखे गए हैं।[९] इस ब्राह्मण में व्रात्यों को आर्य बनाने का विस्तृत वर्णन है। व्रात्य वे पतित थे, जो पतित सावित्रीक कहे जाते थे। वे व्रात्य निम्नलिखित प्रकार के कहे गए हैं—

'जो ब्रह्मचर्य धारण नहीं करते। कृषि अथवा वाणिज्य नहीं करते।[१०]

---

१. ३।३।२७।। २. ३।३।२४।। ३. वही।
४. ये साम संहितास्थ मन्त्र ऋग्वेद में भी मिलते हैं। उनका पाठ साम संहिता के सदृश है। परमे और प्रथमे का भेद अन्यत्र भी पाया जाता है। मनुस्मृति १।१८०।। में कोई परमे पढ़ता है और कोई प्रथमे।
५. पृ० ६, ऊपर देखें।
६. २४४।१६-२१।। शान्तिपर्व, चित्रशाला प्रेस, पूना। ७. १४।३।१३।।
८. १७।४।३।।
९. २५।१०।११-१५।।
१०. १७।१।२।।, १६।६।७।।

'ब्राह्मणों के खाने योग्य अन्न खाते हैं। अदण्ड्य को मारते हुए विचरते हैं।'
'दीक्षित न होकर दीक्षित सदृश वाणी बोलते हैं।'[१]
'वे लाल किनारे वाली पगड़ी आदि पहनते हैं।'[२]

भाषिक सूत्र से पता चलता है कि कभी ताण्ड्यादि साम ब्राह्मण सस्वर थे। उस में लिखा है—शतपथवत्ताण्डिभाल्लविनां ब्राह्मणस्वरः। ३।२५।। अर्थात् शतपथ के समान ही ताण्ड्य और भाल्लवियों का ब्राह्मण स्वर था। ऐसा ही नारद शिक्षा में लिखा है—

द्वितीयप्रथमावेतौ ताण्डिभाल्लविनां स्वरौ।
तथा शतपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम् ॥१।१३॥

इस से यही सिद्ध होता है कि कभी ताण्ड्य आदि ब्राह्मण स्वर सहित पढ़े जाते थे। कुमारिल भट्ट के काल में ताण्ड्य आदि ब्राह्मण स्वर रहित हो गये थे। वह तन्त्रवार्तिक में लिखता है—

ब्राह्मणानि हि यान्यष्टौ सरहस्यान्यधीयते।
छन्दोगास्तेषु सर्वेषु न कश्चिन्नियतस्वरः ॥[३]

ताण्ड्य २५।१०।१७।। में पर आह्णार (आट्णार)[४] कोसलराज का वर्णन है। यहीं वैदेहराज नमी साप्य का भी वर्णन है।

संकलन—सामविधान ब्राह्मण २।६३।। के अनुसार ताण्डि नाम का एक आचार्य हुआ है।[५] शतपथ ६।१।२।२५।। में अथ ह स्माह ताण्ड्यः कहा है, अर्थात् ताण्ड्य बोला। इस तण्डि आचार्य ने ताण्ड्य ब्राह्मण का प्रवचन किया था।

हापकिन्ज लिखता है—

"It (Tandya) represents a period earlier than that of the more famous Satapatha and Aitareya Brahmanas[६]...... It is rather to the early date of the Great Brahmana than to delicacy that the intrusion of the word into other tales as a sort of secondary divinity is lacking."[७]

---

१. १७।१।९।।
२. १७।१।१४-१५।।
३. १।३।१२।। पृ० २४०।
४. तुलना करो श० १३।५।४।४।। तेन ह पर आट्णार ईजे कौसल्यो राजा।
५. ३।९।८।। पृ० २१७, सामविधान ब्राह्मणम्, शर्मा, तिरुपति, १९६४।
६. p. 21, Gods and Saints of the Great Brahmana, Transactions of the Connecticut Academy of Arts and Sciences, 1909.
७. पृ० २८, वही।

यदि ताण्ड्य ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण में उद्धृत है, तब क्या हापकिन्ज का मत मान्य होगा ?

ताण्ड्य ब्राह्मण के प्रचार-देश—पूर्वोक्त महार्णव में लिखा है—

माध्यन्दिनी शांखायनी कौथुमी शौनकी तथा ।
नर्मदोत्तरभागे च यज्ञकन्या विभागिनः ॥

अर्थात् यह ब्राह्मण जिस का सम्बन्ध विशेष कौथुम शाखा से है, गुजरात में प्रचलित था । यही अभिप्राय चरणव्यूह के टीकाकार का है । वह लिखता है—**गुर्जरदेशे कौथुमी प्रसिद्धा ।** अर्थात् ताण्ड्य ब्राह्मण वालों से सम्बन्ध रखने वाली कौथुमी शाखा गुजरात में प्रसिद्ध है । यह बात अभी तक सत्य उतर रही है ।

८. षड्विंश ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण में पांच प्रपाठक हैं । सायण अपने भाष्य में प्रपाठक संख्या न लिख कर अध्याय ही लिखता है । सायण स्वीकृत मूल में एक और भी भेद है । तीसरे प्रपाठक के वह दो अध्याय बनाता है । इस प्रकार सायणानुसार इस ब्राह्मण में छः अध्याय हैं । पांचवें प्रपाठक को अद्भुत ब्राह्मण भी कहते हैं । कई विद्वानों का मत है कि यह प्रक्षिप्त है । यदि यह बात सत्य प्रमाणित हो जाय तो सायण का विभाग ही ठीक होगा । प्रपाठकों का विभाग खंडों में है । पहले प्रपाठक में ७, दूसरे में १०, तीसरे में १२, चौथे में ७, और पांचवें में १२ खण्ड हैं । इस प्रकार कुल मिला कर सारे ब्राह्मण में ४८ खण्ड हैं । पांचवें प्रपाठक के अन्तिम दो खण्डों पर सायण ने भाष्य नहीं किया । वह दशम खण्ड पर ही ब्राह्मण की समाप्ति मानता है । उसके मतानुसार सारे खण्ड ४६ हैं । इस भेद से भी ज्ञात होता है कि अन्तिम प्रपाठक में कुछ गड़बड़ अवश्य हो चुकी है ।

विशेषताएं—जैसा षड्विंश नाम से ही प्रतीत होता है, यह ब्राह्मण पंचविंश ब्राह्मण का भाग मात्र है । शतपथ ३।३।४।१७-१९॥ में एक सुब्रह्मण्या ऋचा है । इस का व्याख्यान षड्विंश १।१।८॥ से १।२॥ के अन्त तक मिलता है ।[2] यज्ञ विशेष के समय ऋत्विजों का वेश कैसा होता था,[3] इसके सम्बन्ध में इस ब्राह्मण में कहा है—**लोहितोष्णीषा लोहितवाससो निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति । ४।२।२२॥**[4]

---

१. (क) षड्विंश ब्राह्मणम्, सायणभाष्य सहित, सम्पादक जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८८१ ।
   (ख) षड्विंश ब्राह्मणम्, विज्ञापनभाष्य सहित, सम्पादक एच० एफ० ईलसिंह, लाईडन, १९०८ ।
   (ग) षड्विंश ब्राह्मणम्, सायणभाष्य सहित, प्रथम प्रपाठक, सम्पादक कुर्टक्लेम्म गटर्स्लोह, १८९४ ।
   (घ) षड्विंश ब्राह्मणम्, सायणभाष्य सहित, शर्मा, तिरुपति, १९६७।

२. इस प्रसंग में शंकर भी षड्विंश ब्राह्मण १।१।१५॥ का एक प्रमाण उद्धृत करता हुआ लिखता है—**तथा हि श्रूयते सुब्रह्मण्यार्थवादं ।**

३. शबर स्वामी मीमांसा १०।४।१॥ के भाष्य में लिखता है कि लोहितोष्णीश आदि वेश श्येन नामक अभिचार याग में होता है । मीमांसा, शाबर भाष्य सहित, सुब्बाशास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना ।

४. महाभाष्य १।१।२७, २।२।२४॥ में यह पाठ है—लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ति । यह षड्विंश के पाठ का ही संक्षेप प्रतीत होता है ।

अर्थात् लाल पगड़ियों वाले और लाल कपड़ों वाले (लाल किनारे की धोतियों वाले) निवीत ऋत्विज होते हैं।

सायं प्रातः सन्ध्या का वर्णन भी इसी ब्राह्मण में प्रथम बार मिलता है। यथा—

तस्माद्ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते ।५।५।४।।

'इसलिए ईश्वरोपासक दिन और रात की सन्धिवेला में संध्या को करता है।'

युगों के प्राचीन नाम प्रथम बार इसी ब्राह्मण में मिलते हैं। यथा—

पुष्ये चानुमतिर्ज्ञेया सिनीवाली तु द्वापरे ।
खार्वायां तु भवेद्राका कृतपूर्वे कुहूर्भवेत् ।।५।६।५ ।।

'पुष्य=कलियुग में अनुमति श्रेष्ठा होती है। द्वापर में सिनीवाली। खार्वा=त्रेता में राका होती है। और कृतयुग में कुहू होती है।'

अन्तिम प्रपाठक अर्थात् 'अद्भुत ब्राह्मण' में दुःखों, रोगों आदि की शान्ति के उपाय कहे गए हैं।

संकलन—षड्विंश तथा सामवेद की प्रधान शाखा कौथुमी से सम्बन्ध रखने वाले अगले ९-१४ तक के ब्राह्मण भी ताण्डि अथवा उसी के निकटवर्ती शिष्यों के प्रवचन किए हुए हैं।

९. मन्त्र ब्राह्मण[1]=छान्दोग्य ब्राह्मण

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण में दो प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक में आठ-आठ खण्ड हैं।

विशेषताएं—इस ब्राह्मण में भिन्न-भिन्न वेदों से लिए गए मंत्रों का संग्रहमात्र है। कुछ मंत्र अन्य ब्राह्मणों से ही लिए गए हैं। यही मंत्र गोभिल गृह्य सूत्र में भिन्न-भिन्न संस्कारों में विनियुक्त हुए हैं। यद्यपि कौथुम शाखा के सब ब्राह्मण छान्दोग्य ब्राह्मण के सामान्य नाम से पुकारे जाते हैं, पर इस ब्राह्मण को विशिष्ट रूप से छान्दोग्य ब्राह्मण कहते हैं। सत्यव्रत सामश्रमी[2] आदि पण्डितों का मत है कि—

पञ्चविंश के	२५ प्रपाठक
षड्विंश के	५ प्रपाठक
मन्त्र ब्राह्मण के	२ प्रपाठक
छान्दोग्य उपनिषद् के	८ प्रपाठक
	४० प्रपाठक

ये सब मिलाकर कभी ४० प्रपाठक का ही एक ताण्ड्य या छान्दोग्य ब्राह्मण था।

आचार्य शंकर स्वामी के वेदान्त सूत्र ३।३।२५।। ३।३।२६।। तथा ३।३।३६।। के भाष्य में क्रमशः इस

१. (क) मन्त्र ब्राह्मणम्, सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, संवत् १९४७।
(ख) मन्त्र ब्राह्मणम्, प्रथमः प्रपाठकः, सम्पादक हाईन्रिश स्टोन्नर, सन् १९०१।
(ग) छान्दोग्य ब्राह्मण, संपादक दुर्गामोहन भट्टाचार्य, कलकत्ता, १९५८।

२. मन्त्र ब्राह्मण, भूमिका।

प्रकार लिखा है—

ताण्डिनां—(मन्त्रसमाम्नायः)—देव सवितः ....।। मन्त्र बा० १।१।१।।
अस्ति ताण्डिनां श्रुतिः—अश्व इव रोमाणि......।। छा० उप० ८।१३।१।
ताण्डिनामुपनिषदि—स आत्मा तत्त्वमसि......।। छा० उप० ६।८।७।।

इस से प्रकट होता है कि शंकर स्वामी भी इन दोनों ग्रन्थों को ताण्ड्य सम्बन्धी ही समझता था।

१०. दैवत अथवा देवताध्याय ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—दैवत ब्राह्मण का ही दूसरा नाम देवताध्याय ब्राह्मण है। यह ब्राह्मण बहुत छोटा सा है। इस में तीन खण्ड हैं। पहले खण्ड में २६, दूसरे में ११, और तीसरे में २५ कण्डिकाएं हैं। कुल मिलाकर कण्डिका संख्या ६२ है। तृतीय खण्ड के बारे में श्री गुणे लिखता है—

'We have therefore, no hesitation in saying that the whole of the third Khanda of the Daivata Brahmana is an imitaion of the Nirukta and quite out of place in the Brahmana.'[2]

विशेषताएं—इस ब्राह्मण में छन्दों का वर्णन विशेष रूप से है। छन्द नामों के निर्वचन भी यहीं मिलते हैं। निरुक्त ७।१२,१३। में यास्क ने सम्भवतः यहीं से कुछ निर्वचन लिए हैं।

आक्सफोर्ड के सूचीपत्र पृ० ३८३b पर एक हस्तलिखित ग्रन्थ का वर्णन है। इसकी संख्या ४६६ है। इस का नाम सामगानां छन्दः अथवा छन्दोविजिन्ति (विजिनि ?) है। छन्दोविजिनि नाम पाणिनीय गणपाठ ४।३।७३।। में मिलता है। इस हस्तलेख के आरम्भ में यह श्लोक आया है—

ब्राह्मणात्ताण्डिनश्चैव पिङ्गलाच्च महात्मनः।
निदानादुक्थशास्त्राच्च छन्दसां ज्ञानमुद्धृतम् ।।

इस श्लोक में पंचविंश और दैवत ब्राह्मण का ही अभिप्राय ताण्डियों के ब्राह्मण से लिया गया प्रतीत होता है। यह सामग लोगों के छन्द का ग्रन्थ है। यही ग्रन्थ पीटर्सन की दूसरी रिपोर्ट[3] में भी दर्ज किया गया है। वहां इस का नाम छन्दो विचयः या उपनिदान बताया गया है।

इस से स्पष्ट है कि छन्दः शास्त्र के कर्ता इन ग्रन्थों से सहायता लेते रहे हैं।

११. आर्षेय ब्राह्मण[4]

ग्रन्थ परिमाण—सामवेद की कौथुम शाखा को मानने वालों का ही आर्षेय ब्राह्मण है। इस में

---

१. (क) दैवत ब्राह्मणम्, जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८८१।
 (ख) देवताध्याय ब्राह्मण, सायण भाष्य समेत, शर्मा, तिरुपति, १९६५।

२. p. 50, Brahmana Quotations in the Nirukta, Gune, P. D., 1917.

३. पृ० ११३, सन् १८८३-८४।

४. (क) आर्षेय ब्राह्मणम्, सम्पादक ए० सी० बर्नेल, मंगलोर, सन् १८७६।
 (ख) आर्षेय ब्राह्मण, सायणाचार्य कृत वेदार्थप्रकाश सहित, शर्मा, तिरुपति, १९६७।

सामगान के नामों का मुख्यतः वर्णन है। ये गान पूर्वाचिक सम्बन्धी ग्रामगेय तथा आरण्यक के अन्तर्गत ही हैं। कभी देवताध्याय तथा आर्षेय ब्राह्मण एक ही थे। अथवा एक ही ब्राह्मण के दो अध्याय थे। देवताध्याय ब्राह्मण में लिखा है—**स्वस्ति देवऋषिभ्यश्च।**[1] सायण अपने भाष्य में लिखता है—**अत एव देवता देवऋषिभ्यश्च इति॥ देवा ऋषयश्च ये आर्षेयदेवताध्यायाभ्यां प्रतिपादितास्तत्सकाशाच्च स्वस्ति भवति।**[2] सायण का यह भी विचार था कि ये दोनों ब्राह्मण कभी एक ही थे।

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण में तीन प्रपाठक हैं। पहले प्रपाठक में २८ खण्ड, दूसरे में २५, और तीसरे में २९ खण्ड हैं। सारे ब्राह्मण में ८२ खण्ड हैं।

विशेषताएं—यह सारा ब्राह्मण सामों की आर्षानुक्रमणी समझनी चाहिए। यद्यपि सत्यव्रत सामश्रमी प्रकाशित आर्षेय ब्राह्मण १।१॥ का पाठ कात्यायन ऋक् सर्वानुक्रमणी १।१॥ में उद्धृत एक पाठ से कुछ भिन्न है, तो भी षड्गुरुशिष्य के अनुसार यह पाठ आर्षेय ब्राह्मण का ही है। यदि षड्गुरुशिष्य की बात सत्य है, तो आर्षेय ब्राह्मण पर्याप्त पुराना है।

१२. सामविधान ब्राह्मण[3]

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण में तीन प्रपाठक हैं। पहले तथा दूसरे प्रपाठक में आठ-आठ खण्ड और तीसरे में ९ खण्ड हैं। सारे ब्राह्मण में २५ खण्ड हैं।

विशेषताएं—इस ब्राह्मण में अभिचार आदि कर्मों का बहुत वर्णन है। यदि यह ब्राह्मण वस्तुतः प्राचीन है, तो इसमें प्रक्षेप का बाहुल्य मानना पड़ेगा।

१३. संहितोपनिषद् ब्राह्मण[4]

ग्रन्थ परिमाण—यह बहुत छोटा सा ब्राह्मण है। सारा एक ही प्रपाठक होता है। इस में पांच खण्ड हैं।

विशेषताएं—इस ब्राह्मण में सामवेद के अरण्य गान और ग्रामगेय गान का नाम लिया गया है। कुछ पुराने ब्राह्मण वाक्यों और श्लोकादिकों का यह संग्रह मात्र है। निरुक्त २।४॥ के प्रसिद्ध वाक्य **'विद्या ह वै ब्राह्मणमा जगाम'** का मूल इसी ब्राह्मण के तीसरे खण्ड में है।[5] इस में सामवेद के प्रातिशाख्यरूप सूत्र, सामतन्त्र और फुल्लसूत्रादि हैं। इन का मूल इसी ब्राह्मण के दूसरे, तीसरे खण्ड में है।

---

१. ४।४॥

२. पृ० ३६।

३. (क) सामविधान ब्राह्मणम्, सायणभाष्य सहित, सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, संवत् १९५१।
 (ख) सामविधान ब्राह्मणम्, सायणभाष्य सहित, सम्पादक ए० सी० बर्नेल, लण्डन, सन् १८७३।
 (ग) सामविधान ब्राह्मण, सायण तथा भरतस्वामी विवृति सहित, शर्मा, तिरुपति, १९६४।

४. (क) संहितोपनिषद् ब्राह्मणम्, भाष्य सहित, सम्पादक ए० सी० बर्नेल, मंगलोर, सन् १८७७।
 (ख) संहितोपनिषद् ब्राह्मणम्, द्विजराजभट्ट भाष्य तथा वेदार्थप्रकाश सायण विवृत्ति सहित, शर्मा, तिरुपति, १९६५।

५. पृ० ५५।

१४. वंश ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—यह भी बहुत छोटा सा ब्राह्मण है। इस में तीन खण्ड हैं।

विशेषताएं—सामवेद के आचार्यों की वंश परम्परा ही इस में दी गयी है। जैसे वंश शतपथ और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में मिलते हैं, लगभग उसी प्रकार के वंश इस में हैं।

१५. जैमिनीय ब्राह्मण[2]

ग्रन्थ परिमाण—इसके मुख्य तीन भाग हैं। पहले में ३६०, दूसरे में ४३७, और तीसरे में ३८५ खण्ड हैं। कुल मिला कर ११८२ खण्ड हैं। यह खण्ड विभाग कुछ विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। बड़ोदा के सूचीपत्र, भाग प्रथम, पृ० १०५ पर उन के कोशानुसार एक और विभाग दिया गया है। वह निम्नलिखित है—

१. महाब्राह्मण	३६० खण्ड
२. द्वादशाह ब्रा०	३८८ खण्ड
३. महाव्रत ब्रा०	१५२ खण्ड
४. एकाह ब्रा०	१५३ खण्ड
५. अहीन ब्रा०	९९ खण्ड
६. सत्र ब्रा०	३७ खण्ड
७. आर्षेय ब्रा०	८४ खण्ड
८. उपनिषद् ब्रा०	१५४ खण्ड
	कुल १४२७ खण्ड

इस विभाग में संख्या ७,८ वाले आर्षेय और उपनिषद् ब्राह्मण भी सम्मिलित हैं। इन दोनों में २३८ खण्ड हैं। यदि इन दो ब्राह्मणों के खण्ड कम कर दिए जाएं तो दोनों संख्याओं में सात का अन्तर है। बड़ोदा के पूर्वोक्त सूचीपत्र के पृ० १३० पर सत्र ब्राह्मण के अन्त में लिखी हुई एक अन्य खण्ड संख्या दी है। तदनुसार पहले छः ब्राह्मणों में ११९० खण्ड हैं। यह कोई बड़ा अन्तर नहीं है। समुचित सम्पादन होने पर यह भेद नहीं भी रह सकता।

प्रपञ्च हृदय में भी जैमिनीय ब्राह्मण का विभाग दिया गया है। लिखा है—**तद्ब्राह्मणमुत्तरपादः खण्डसमूहः। तत्प्रमाणं सहस्रावधिकमष्टचत्वारिंशदुत्तरं शतत्रयम्। तदारण्यकं पञ्चाशदुत्तरशतं खण्डाः।** अर्थात् ब्राह्मण में १३४८ खण्ड हैं तथा आरण्यक में १५० खण्ड हैं।[3]

शंकर स्वामी ने केनोपनिषत् के पदभाष्य के आरम्भ में लिखा है—**केनेषितमित्याद्योपनिषत्परब्रह्मविषया वक्तव्येति नवमस्याध्यायस्यारम्भः। प्रागेतस्मात्कर्माण्यशेषतः परिसमापितानि। समस्त कर्माश्रयभूतस्य च प्राणस्योपासनान्युक्तानि कर्माङ्गसामविषयाणि च अनन्तरं च गायत्रसामविषयं दर्शनं वंशान्तमुक्तम्।** अर्थात् केनेषितं से आरम्भ होने वाली, परब्रह्म विषय के कहने वाली, उपनिषद् कही जानी चाहिए। यह नवम

---

१. (क) वंश ब्राह्मणम्, सायणभाष्य सहित, सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, संवत् १९४९।
(ख) वंश ब्राह्मणम्, सायणभाष्य सहित, शर्मा, तिरुपति, १९६५।

२. जैमिनीय ब्राह्मण, रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, नागपुर, १९५४।

३. पृ० २०, प्रपञ्चहृदय, टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९१५।

अध्याय का आरम्भ है। इसके पूर्व आठ अध्यायों में यज्ञकर्म पूरे कहे गए हैं। प्राणोपासना भी कही है। तत्पश्चात् गायत्र, साम और वंश कहा गया है।

प्रतीत होता है शंकर के कोशों के अनुसार उपनिषद् ब्राह्मण के वंश के अन्त तक आठ अध्याय ही थे। आठवें में उपनिषद् नहीं मिलाया जाता था। उपनिषद् का नवमाध्याय पृथक् था। अब निश्चित है कि शंकर के पास ठीक वैसा ही जैमिनीय ब्राह्मण था, जैसा हमारे पास विद्यमान है।

विशेषताएं—इसी ब्राह्मण का दूसरा नाम तलवकार ब्राह्मण है। डा० अर्टेल[1] और डा० कालेण्ड[2] ने इस के कुछ खण्ड छपवाए थे। हस्तलिखित सामग्री के अपर्याप्त होने से वे इस समग्र ग्रन्थ का सम्पादन नहीं कर सके।

इस ब्राह्मण के वाक्य, ताण्डच, षड्विंश, शतपथ और तैत्तिरीय संहिता के वाक्यों से बहुधा मिलते हैं। इस में ऐसे मंत्रों की संख्या पर्याप्त है जो पहली बार इसी में मिले हैं। मुद्रित वैदिक वाङ्मय में वे इस रूप में नहीं मिलते। इस में बहुत सा विषय ऐसा है, जो दूसरे ताण्डच आदि ब्राह्मणों में नहीं पाया जाता। सामवेद के कौथुम ब्राह्मणों के अनुसार इसके जो आठ ब्राह्मण बताए जाते हैं, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

इसी ब्राह्मण में वह उक्ति पायी जाती है, जो सारे संसार की भाषाओं में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। यथा—**मोच्चैरिति होवाच कर्णिनी वै भूमिरिति।**[3] अर्थात्—ऋषि अपनी पत्नी को कहता है कि ऊंचे मत बोलो, भूमि के भी कान होते हैं।

जैमिनीय ब्राह्मण के आरम्भ के अनेक खण्डों में अग्निहोत्र का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। इसी ब्राह्मण में बहुत सी अत्यन्त सुन्दर उपमाएं पायी जाती हैं।

संकलन—इस ब्राह्मण का संकलन कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के शिष्य सुप्रसिद्ध सामवेदाचार्य, जैमिनी और उन के शिष्य तलवकार का किया हुआ है। जैमिनीय ब्राह्मण के कोशों के आरम्भ और अन्त में प्रायः निम्नलिखित श्लोक पाए जाते हैं, इन के मानने में अणुमात्र भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए। ये परम्परागत श्लोक सत्य ऐतिह्य के दर्शक हैं:—

उज्जहारागमाम्भोधेर्यो धर्मामृतमञ्जसा।
न्यायैर्निर्मथ्य भगवान् स प्रसीदतु जैमिनिः॥
सामाखिलं सकलवेदगुरोर्मुनीन्द्राद्व्यासादवाप्य भुवि येन सहस्रशाखम्।
व्यक्तं समस्तमपि सुन्दरगीतरागं तं जैमिनिं तलवकारगुरुं नमामि॥

अर्थात्—वेद के समुद्र से धर्मरूपी अमृत जिस ने न्यायों में मन्थन करके निकाला, वह भगवान् जैमिनि प्रसन्न हों। सारे वेदों के गुरु मुनिश्रेष्ठ व्यास से समस्त साम ज्ञान प्राप्त कर के जिस ने संसार में सहस्र

---

१. JAOS, Vols. xviii, xix, xxiii, xxvi, xxviii, etc.

२. (क) Das Jaiminiya Brahmana in Auswahl, 1919.
(ख) p. 61, Vol., xxviii, WZKM.

३. १।१२६॥

शाखा का प्रकाश किया, और साम के सब गान निकाले, तलवकार के गुरु उस जैमिनि को मेरा नमस्कार हो।

जैमिनीय ब्राह्मण के प्रचार-देश—चरणव्यूह टीका की तृतीय कण्डिका में लिखा है—**कार्णाटके जैमिनि प्रसिद्धा।** अर्थात् जैमिनीय शाखा कार्णाटक देश में प्रसिद्ध है। आजकल जितने भी हस्तलेख इस शाखा के मिले हैं, वे सब मालावार, त्रिवन्दरम आदि के निकट से ही मिले हैं।

१६. जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—जैसा पहले लिखा गया है, इस ब्राह्मण में ८४ खण्ड हैं।[2]

विशेषताएं—यह छोटा सा ब्राह्मण तलवकार शाखा की ऋष्यनुक्रमणी समझनी चाहिए। आग्नेय आदि सामपर्वों और ग्रामगेय गान और अरण्य गान के ऋषि इस में दिए हैं। इस का पाठ कौथुम शाखा के आर्षेय ब्राह्मण से पर्याप्त भिन्न है। कौथुम शाखा के आर्षेय ब्राह्मण में जो एक ही मन्त्र के दो वा अधिक ऋषि लिखे हैं, उन के स्थानों में यहां प्रायः एक ही नाम मिलता है। इस से ज्ञात होता है कि सम्भवतः कौथुम आर्षेय ब्राह्मणों में बहुत प्रक्षेप अथवा पाठान्तर अथवा रूप परिवर्तन हो चुका है। पर यह कोई दृढ़ परिणाम नहीं है।

१७. जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण[3]

ग्रन्थ परिमाण—जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में अनुवाक तथा प्रत्येक अनुवाक में खण्ड हैं।

विशेषताएं—कौथुम शाखा का यह एक पुराण ब्राह्मण है। इस में अभिचार कर्म तथा तंत्र प्रक्रिया का विशेष वर्णन है। यज्ञ तथा यज्ञ प्रक्रिया के साथ साथ इस ब्राह्मण में ओ३म् तथा गायत्री का विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इस में अनेक गाथाएं है।

अथर्ववेदीय ब्राह्मण

१८. गोपथ ब्राह्मणम्[4]

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण के पूर्व और उत्तर दो भाग हैं। पूर्व भाग में ५ प्रपाठक और उत्तर भाग में ६ प्रपाठक हैं। कुल मिला कर इस ब्राह्मण में ११ प्रपाठक हैं। किसी काल में यह ब्राह्मण बड़ा विस्तृत होगा। आथर्वण परिशिष्ट ४९ उपनाम आथर्वण चरणव्यूह में लिखा है—**तत्र गोपथाः शतप्रपाठकं ब्राह्मणमासीत्। तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वमुत्तरं चेति।४।५।।** अर्थात् गोपथ कभी १०० प्रपाठक का ब्राह्मण था। अब पूर्व और उत्तर उसी के दो ब्राह्मण अवशिष्ट रह गए हैं।

---

१. (क) जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण, सम्पादक ए० सी० बर्नल, मंगलोर, सन् १८७८।
   (ख) जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण, शर्मा, तिरुपति, १९६७।
२. पृ० २६।
३. (क) गोपथ ब्राह्मण, सम्पादक हरचन्द्र विद्याभूषण, कलकत्ता, सन् १८७०।
   (ख) गोपथ ब्राह्मण, सम्पादक डा० ड्यूकगस्ट्र, लाईडन, सन् १९१९।
४. (क) Jaminiya Upanishad Brahmana, Oertel H., JAOS, Vol.,.XVI, 1894.
   (ख) जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण, रामदेव, लाहौर, १९२१।
   (ग) जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण, शर्मा, तिरुपति, १९६६।

विशेषताएं—प्रायः सब ही पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि साम के छोटे-छोटे ब्राह्मणों को छोड़ कर अन्य सब ब्राह्मणों की अपेक्षा यह ब्राह्मण ग्रन्थ बहुत नवीन है। इस के प्रमाण में वे भाषा के भेद का प्रमाण देते हैं। उन का कथन है कि इस की भाषा दूसरे ब्राह्मणों के प्रतिपक्ष में नवीन है। हम आगे चलकर बताएंगे कि भाषा भेद ही काल भेद का प्रमाण न होना चाहिए। यदि दूसरे प्रमाणों से कुछ और परिणाम निकले तो उसे भी दृष्टिगत रखना चाहिए। इस लिए इस विषय पर आगे विचार होगा।

इस ब्राह्मण के पूर्व भाग ५।७॥ में एक ही स्थान पर बहुत से यज्ञों के नाम लिखे गए हैं। पूर्व भाग के अन्त में बहुत से श्लोक एकत्र मिलते हैं। इन्हीं में २।५५॥ के अनुसार बारह वर्ष प्रतिवेद का ब्रह्मचर्य कहा है।[1] मन्त्र, कल्प और ब्राह्मण का एक ही स्थान में उल्लेख है। पूर्वभाग १।३२-३३॥ में गायत्री मन्त्र का अनेक प्रकार का व्याख्यान है। दूसरे ब्राह्मणों में अथर्ववेद का छन्द, देवता, और लोक का स्थान कहीं नहीं लिखा, परन्तु यहां पूर्व भाग १।२९॥ में अथर्वों का चन्द्रमा देवता, सारे छन्द ही छन्द और जल स्थान कहा है।

सामवेद की खिल श्रुति भी पूर्व भाग १।२९॥ में कही है।

पूर्व भाग २।८॥ में विपाट् नदी के मध्य में बड़ी बड़ी शिलाओं पर वसिष्ठ के आश्रमों का वर्णन है। यदि यह वर्णन किसी आध्यात्मिक तत्व को नहीं बताता, तो अवश्य ही यह आधुनिक व्यास कुण्ड और कुल्लु के पास के स्थानों का दर्शन कराता है। पूर्व भाग २।१०॥ में अनेक प्राचीन साम्राज्यों का कथन है।

अथर्व वेद १०।१२८।१२॥ आदि का प्रतीक यविन्द्रावो वाशराज इति रख कर इसे इन्द्रगाथा कहा है।

इसी ब्राह्मण में सबसे पहली बार ओङ्कार की तीन मात्राओं का वर्णन करते हुए लिखा है—

या सा प्रथमा मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन
या सा द्वितीया मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन
या सा तृतीया मात्रैशानदेवत्या कपिला वर्णेन

अर्थात् ओङ्कार की पहली मात्रा ब्रह्मा देवता वाली लाल वर्णा है। द्वितीय मात्रा विष्णु देवता वाली कृष्ण वर्णा है। तीसरी मात्रा ईशान देवता वाली कपिल वर्णा है।

इस से प्रकट है कि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का एक ही स्थान में उल्लेख इसी ब्राह्मण में पहली बार मिलता है।

व्याकरण महाभाष्य १।१।३८॥ में उद्धृत किया हुआ निम्न प्रसिद्ध श्लोक इसी ब्राह्मण के पूर्वभाग १।२६॥ में मिलता है—

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

---

१. पहले भी ऐसा ही कहा है—अष्टाचत्वारिंशद्वर्षं सर्ववेदब्रह्मचर्यं तच्चतुर्धा वेदेषु व्यूह्य द्वादशवर्षं ब्रह्मचर्यम्। पू० २।५॥

गोपथ ब्राह्मण के प्रचार-देश—पीछे पृ० २२ पर महार्णव का जो श्लोक उद्धृत किया गया है, तदनुसार आथर्वण शौनक शाखा के अध्येता गुजरात देश में पाए जाते थे। आज कल भी जो दो चार शेष आथर्वण घर रह गए हैं, वे गुजरात में ही मिलते हैं।

पुनर्मृत्यु और पुनर्जन्म—गोपथ ब्राह्मण में पुनर्मृत्यु और पुनर्जन्म का वर्णन है।

संकलन—ड्यूकगस्ट्र के संस्करण की भूमिका के तुलनात्मक प्रमाण देखने से प्रत्येक पाठक सहसा जान सकता है कि अन्य सब ब्राह्मणों की अपेक्षा गोपथ के पाठ दूसरे ब्राह्मणों से अत्यधिक मिलते हैं। इस से ज्ञात होता है कि यद्यपि संकलन काल में इस का संकलन सब के अन्त में ही हुआ है पर यह ब्राह्मण बहुत नवीन नहीं है।

निरुक्त ८।२२॥ में निम्नलिखित वाक्य है—**यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा ध्यायेद् वषट्करिष्यन्**। इस से मिलते जुलते वाक्य ऐतरेय ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण में क्रमशः मिलते हैं—

(क) **तां ध्यायेद् वषट्करिष्यन्**।[1]

(ख) **तं मनसा ध्यायन् वषट् कुर्यात्**।[2]

कीथ ऐतरेय आरण्यक की भूमिका पृ० २५ पर लिखता है—'यास्क के सामने गोपथ का पाठ विद्यमान था।' हमारा मत है कि यास्क ने यह वचन किसी और ही ब्राह्मण से उद्धृत किया है, जो अभी तक विलुप्त है।

---

१. ३।८।१॥

२. २।३।२॥

तीसरा अध्याय

अनुपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ

महाविद्वान्, बहुश्रुत मुनि पतञ्जलि अपने महाभाष्य में लिखता है—**ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते ।**[1] अर्थात् ग्राम-ग्राम में काठक और कालाप शाखाओं का पठन पाठन होता था। क्या सुन्दर समय था। आर्य सभ्यता के रक्षक ब्राह्मण किस प्रकार वैदिक वाङमय की रक्षा करते थे। वही वैदिक वाङमय जो इस जाति की रीति नीति का, इसके जीवन का प्राण था, इस के ऐश्वर्य का, इस की उन्नति का, इसके संगठन का आधार था, आज उस वैदिक वाङमय की दीन हीन दशा है। इसके कितने ग्रन्थ रत्न नष्ट हो गए हैं। कुछ मुसलमानों के अत्याचार ने, कुछ काल-क्रम ने, कुछ आधुनिक आर्यों के प्रमाद ने, कुछ ब्राह्मणों के अनार्ष ग्रन्थाभ्यास ने, इन सब ने मिल कर हमारे सहस्रों ग्रन्थों का लोप कर दिया है। किसी काल में ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या सैंकड़ों तक पहुंचती थी। यदि वे ब्राह्मण ग्रन्थ विद्यमान रहते तो आज वेदार्थ में इतना भ्रम न होता। वेदों के स्वच्छ गौरवयुक्त अर्थ संसार में पुनः फैल जाते। उन सैंकड़ों ब्राह्मण ग्रन्थों में से अब तो इस संस्कृत ग्रन्थ राशि में नाम भी कुछ एक के ही मिलते हैं। जिन लुप्त ब्राह्मणों के नाम अथवा जिन ब्राह्मणों से उद्धृत प्रमाण आज तक मिले हैं, वे नीचे दिए जाते हैं। पाठक इतने से ही जान लेंगे कि संख्या में कभी ये ग्रन्थ कितने अधिक थे।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण

१. पैङ्गि, पैङ्ग्य अथवा पैङ्गायनि ब्राह्मण

पैङ्ग्य शाखा ऋग्वेद की ही शाखा है। यह प्रपञ्चहृदय के निम्न प्रमाण से सुनिश्चित हो जाता है **बाह्वृचस्यैतरेय-बाष्कल-कौषीतक-आनन्ति-बाहवि-गौतम-शाकल्य-बाभ्रव्य-माण्डव्य-पैङ्ग-मुद्गल-शौनक शाखाः।**[2]

पातञ्जल निदान सूत्र का पाठ है—**यथा चैतत् पैङ्गिनोऽधीयते छन्दोगाश्चाप्येनमेकेऽधीयते।**[3] इस से स्पष्ट है कि पैङ्ग्य छन्दोग अथवा सामवेदी नहीं था। क्या बृहद्देवता में वह मधुक नाम से स्मरण किया गया है?[4] कौषीतकि, शतपथ, ऐतरेय आदि ब्राह्मणों में पैङ्ग्य का नाम अथवा मत बहुधा उद्धृत है। आयुर्वेद

---

१. ४।३।१०१॥
२. पृ० १६, प्रपञ्चहृदय, टी. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९१५।
३. ७०।१५॥
४. १।२४॥ बृहद्देवता, मैकडानल, १९०४।

की चरक संहिता के आरम्भ में पैङ्गि ऋषि का वर्णन है ।[1]

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में पैङ्गायनि ब्राह्मण दो स्थानों पर उद्धृत है । यथा—

(क) तदभावेऽनड्वान पूर्ववाडेतानि कर्माणि करोतीति पैङ्गायनि ब्राह्मणं भवति ।[2]

(ख) यदीतराणि न विंद्येरन्नप्यनड्वाहमेव दद्यात् । अनडुहि ह वा एते च कामा अतश्च भूयाँसि इति पैङ्ग्यायनि ब्राह्मणं भवति ।[3]

बौधायन श्रौत सूत्र के पाठ से एक पैङ्गलायनि ब्राह्मण का पता चलता है—अप्येकां गां दक्षिणां दद्याद् इति पैङ्गलायनि ब्राह्मणं भवति ।[4] क्या यह पैङ्गायनि ब्राह्मण नहीं है ? यही पाठ जैमिनीय श्रौत सूत्र[5] में पैङ्गकम् नाम से उद्धृत है । भवत्रात भाष्य में भी ऐसा ही प्रसङ्ग है ।[6]

आचार्य शंकर स्वामी इसे शारीरक मीमांसा भाष्य[7] में प्रायः उद्धृत करते हैं—

(क) अपर आह—'द्वा सुपर्णा' इति नेयमृगस्याधिकरणस्य सिद्धान्तं भजते, पैङ्गिरहस्यब्राह्मणेनान्यथा व्याख्यातत्वात् ॥१।२।१२॥

(ख) अस्ति ताण्डिनां पैङ्गिनां च रहस्यब्राह्मणे पुरुषविद्या ।............ यथैकेषां शाखिनां ताण्डिनां पैङ्गिनां च पुरुषविद्यायामाम्नानं नैवमितरेषां तैत्तिरीयाणामाम्नानमस्ति ॥३।३।२४॥

(ग) यथा च क्वचिद्देवासुरच्छन्दसामविशेषेण पौर्वापर्यप्रसङ्गे 'देवच्छन्दांसि पूर्वाणि' इति पैङ्ग्याम्नानात्प्रतीयन्ते ॥३।३।२६ ॥

सत्याषाढ श्रौत सूत्र मूल तथा महादेव कृत वैजयन्ती व्याख्या में भी यह ब्राह्मण उद्धृत है—

(क) पैङ्ग्यस्तु नित्यमपि दश द्रव्याणि नित्यानि काम्यानि चेत्याहुरन्ये तैलमापश्चेति अद्भिर्वृष्टि-कामस्य तैलेनाभिचरत इति पैङ्गिश्रुतेः ।[8]

(ख) ....शतमानं च हिरण्यं पुनराधेयस्य दक्षिणाऽपि वा पौनराधेयिकीरेव दद्यादिति पैङ्ग्य-ब्राह्मणम् ।[9] यह मूल तथा टीका दोनों में है ।

(ग) पैङ्ग्ये तासां याऽग्नीषोमीया तां...............॥[10]

---

१. १।११॥ सूत्रस्थान, चरकसंहिता ।

२. ५।१४।१८॥ आपस्तम्ब श्रौत सूत्र, रिचर्ड गार्बे, कलकत्ता, १९०२ अथवा पृ० ५३१, धूर्तस्वामी टीका समेत, मैसूर, १९४४.

३. ५।२९।४॥ वही अथवा पृ० ६२५, वही ।

४. २।७॥ पृ० ४५, बौधायन श्रौत सूत्र, कालेण्ड, कलकत्ता ।

५. २।५-६॥ २२, पृ०, २९ जैमिनीय श्रौत सूत्र ।

६. पृ० २७८ ।

७. पृ० १७४, ७१०, ७२३ ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, महादेव शास्त्री बार्के, संस्करण पहला, निर्णय सागर, बम्बई, १९३४ ।

८. ३।७॥ पृ० ३५९, प्रथम भाग, आनन्दाश्रम, पूना, १९०७ ।

९. ६।५॥ पृ० ५३४, द्वितीय भाग, वही ।

१०. ६।६॥ पृ० ५३८, वही ।

महाभाष्य में एक पैङ्गीकल्प का उल्लेख है—यदीनिः प्रोक्ते तद्विषयो भवतीत्युच्यते पैङ्गिकल्पः अत्रापि प्राप्नोति ।[1] काशिका में भी यह वर्णित है ।[2] स्मृति चन्द्रिका में भी यह वर्णित है—'यत्तु पैङ्गिवचनम् जात उभयोः कृतेनामनि सोदरभ्रातृणां च' इति..................।[3]

आपस्तम्ब गृह्य सूत्र में भी यह वर्णित है—'अनेक पितृकस्योह' इति पैङ्गिसूत्रम् ।[4]

आनर्त्तीय वरदत्त सुत[5] शांखायन श्रौत सूत्र के निम्न पर अपनी टीका में इस के प्रायः उद्धरण देता है—

(क) महाव्याहृतिभिः पैङ्ग्यम् ।४।२।१२॥

(ख) अग्निष्टोमा पैङ्ग्यस्य ।११।११।५॥

(ग) इति पैङ्ग्यम् ।११।१४।१६॥

(घ) तत्र पुरस्तादानोमद्रीयस्य मधुनाड्यौ विहरेदिति पैङ्ग्यम् ॥१५।३।१॥

(ङ) तस्य त्रैष्टुभं प्रातःसवनं स्यादिति पैङ्ग्य शुष्कभङ्गारीयम् ॥१७।७।१३॥

(च) शस्ते मरुत्वतीय इति पैङ्ग्यम् ।१७।१०।३ ॥

पैङ्गि गृह्य सूत्र का भी वर्णन मिलता है । यह गौतम धर्म सूत्र के मस्करी भाष्य में उद्धृत है—

(क) तथा च पैङ्गिगृह्यस्मृतिः—'अपवृद्धौ पश्चिमेन समापयेत्' इति ।१४।६॥[6]

(ख) तथा च पैङ्गिगृह्यस्मृतिः—'गर्भस्थे प्रेते मातुरेव स्यादाशौचं जात उभयोः......।'१४।१७॥[7]

गृह्यरत्न में भी पैङ्गि गृह्य उद्धृत है ।[8] पैङ्गिरहस्य का एक वचन जो मदन पारिजात में उद्धृत है, वह कल्पित प्रतीत होता है ।[9] पैङ्गि श्रुति और रहस्य के कल्पित उपनिषद् वाक्य ब्रह्मसूत्र[10] की पाराशर्य विजय व्याख्या में उद्धृत हैं । आनन्दतीर्थ कृत विष्णु तत्त्व निर्णय[11] में भी पैङ्गिश्रुति का उद्धरण है ।

२. तलवकार ब्राह्मण

क्या तलवकार नाम का कोई पृथक् ब्राह्मण भी था ? जैमिनि गुरु था और तलवकार शिष्य था । जैमिनि ब्राह्मण को बहुधा तलवकार भी कहा गया है । ब्राह्मण क्यों उन दोनों के नाम से पुकारा जाने लगा,

---

१. ४।२।६६॥

२. ४।२।६६॥, ४।३।१०५॥

३. पृ० १४, आशौच काण्ड, स्मृतिचन्द्रिका, देवणभट्ट, संपादक आर० शाम शास्त्री, मैसूर, १६२१ ।

४. पृ० २५७, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, हरदत्तमिश्र कृत अनाकुला टीका समेत, चौ० सं० सी०, वाराणसी, १६२८ ।

५. प्रथम भाग, आनर्त्तीय वरदत्तसुत कृत टीका समेत, आल्फ्रेड हिल्लब्रांट संपादित, कलकत्ता, १८८८ ।

६. पृ० २२६, गौतम धर्म सूत्र, मस्करी भाष्य समेत, श्रीनिवासाचार्य संपादित, मैसूर, १६१७ ।

७. पृ० २३४, गौतम धर्म सूत्र, मस्करी भाष्य सहित, श्रीनिवासाचार्य सम्पादित, मैसूर १६१७ ।

८. पृ० ४६, गृह्यरत्न ।

९. पृ० ३७२, मदन पारिजात ।

१०. पृ० ३४, १७४, ब्रह्मसूत्र, पाराशर्य विजय व्याख्या सहित ।

११. पत्र २ back, पत्र 4 back.

यह विचारणीय है। सम्भव है कि जैमिनीयों की अवान्तर शाखा तलवकार हो। उपलब्ध जैमिनीय ब्राह्मण से स्वतंत्र एक तलवकार ब्राह्मण के कुछ उद्धरण मिले हैं—

(क) द्राह्यायण श्रौत सूत्र पर धन्विन अपने भाष्य में लिखता है—तलवकारस्तु गायत्रसामवत्।[1] ऐसा पाठ जैमिनीय ब्राह्मण में नहीं है।

(ख) ब्रह्मसूत्र की टीका में भी एक तलवकार ब्राह्मण का वर्णन है।[2]

(ग) श्रुतप्रकाशिका टीका में तलवकार ब्राह्मण उद्धृत है।[3]

सायण ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्य में लिखता है—तथा च तलवकारा आमनन्ति—'दीर्घजिह्वी वा असुर्या सा' इति।[4] जैमिनीय ब्राह्मण का पाठ दीर्घजिह्वी ह वा असुर्य् आस......इस से मिलता जुलता है।[5] सायण अपने ताण्ड्य ब्राह्मण भाष्य में लिखता है—तथा च तलवकारब्राह्मणम्.........।[6]

३. बह्वृच ब्राह्मण

साधारणतया बह्वृच शब्द से ऋग्वेद का अभिप्राय लिया जाता है।[7] माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में बह्वृच शब्द का सामान्य प्रयोग है।[8] महाभाष्य में भी ऐसा ही लिखा है—एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। इस का अभिप्राय यह है कि अन्य वेदों की अपेक्षा ऋग्वेद में अधिक ऋचाएं हैं। परन्तु ऐसा भी प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के पांच चरणों में से जिस में सब से अधिक ऋचाएं थीं, उसे बह्वृच कहा गया है। वह चरण माण्डूकेयों के अतिरिक्त दूसरा दिखाई नहीं देता। अथवा बह्वृच माण्डूकेयों का कोई अवान्तर विभाग हो सकता है।

बह्वृच एक शाखा विशेष है। कौषीतकि ब्राह्मण में लिखा है—'.........प्रत्युवाच बह्वृचवदेवेन्द्र इति त्वेव पैङ्ग्यस्य स्थितिरासैन्द्राग्न' इति कौषीतकेः।[9]

इसी प्रकार माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में कहा है—तदेतदुक्तप्रत्युक्तं पञ्चदशर्चं बह्वृचाः प्राहुः।[10] अर्थात् पुरुरवा और उर्वशी के (आलङ्कारिक) संवाद का यह सूक्त पन्द्रह ऋचा का है, ऐसा बह्वृच कहते हैं। शतपथ का संकेत बह्वृच शाखा की ओर है, क्योंकि ऋग्वेद के इसी १०।९५॥ सूक्त में अठारह ऋचाएं हैं।

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में नौ स्थानों पर बह्वृच ब्राह्मण और तीन स्थानों पर बह्वृच उद्धृत है। पहले नौ प्रमाणों में से एक प्रमाण भी ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मणों में नहीं मिलता। अतः इन सब प्रमाणों से यही निश्चित होता है कि बह्वृच कोई शाखा विशेष थी।

---

१. ६।२।१॥

२. १।१।६॥ पृ० ७७, मैसूर संस्करण।

३. पृ० ११४०।

४. ८।२२॥ ऐतरेय ब्राह्मण, आनन्दाश्रम, पूना, १८९६।

५. १।१६१॥ जै० ब्रा०।

६. २१।११।३॥ पृ० ४६७, भाग २, ताण्ड्य महाब्राह्मणम्, चौ० सं० सी०, १९३६।

७. तत्र सामवेदः सहस्रधा, यजुर्वेदः एकोत्तरशतधा, बाह्वृच एकविंशतिधा, अथर्ववेदो नवधा। पृ० १९, प्रपञ्च हृदय।

८. १०।५।२।२०॥

९. १६।९॥

१०. ११।५।१।१०॥

कठ गृह्य सूत्र[1] के भाष्य में देवपाल एक बह्वृच ब्राह्मण का पाठ उद्धृत करता है—इति श्रुतत्वात् रोहितवर्णं बह्वृचे चोक्तं। शांखायन श्रौत भाष्य में लिखा है—बाह्वच्यम्—बह्वृचाम्नायोक्तम्।[2] पुनः यहीं लिखा है—बह्वृचशाखाविषयौ।[3]

मीमांसा दर्शन के शाबर भाष्य में बह्वृच ब्राह्मण पाठ उद्धृत है—बह्वृचब्राह्मणे श्रूयते—यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति इति।[4] बह्वृचब्राह्मणे श्रूयते—यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति, यावज्जीवं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेतेति।[5] ये पाठ ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण में नहीं मिलते हैं।

पाणिनि का एक विशेष सूत्र एतत्सम्बन्धी है—छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः।[6] पाणिनि के अनुसार बह्वृची गोत्र भी है।[7]

षड्गुरुशिष्य ने अपने ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्य में लिखा है—तस्माद्यो ब्राह्मणो बह्वृचो वीर्यवान् स्यात् सोऽस्याच्छावाकीयां कुर्यात्।[8]

स्मृति चन्द्रिका के आह्निक काण्ड में लिखा है—क्षीरहोता वा जुहुयाद्धनेन हि स परिक्रीतो भवतीति बह्वृचब्राह्मणम्।[9]

महाभाष्य में 'कठश्चायं बह्वृचश्च' लिखा है।[10] भर्तृहरि अपनी महाभाष्य टीका के आरम्भ में 'बह्वृचसूत्र भाष्ये' कह कर एक पाठ उद्धृत करता है।[11] महाभाष्य में एक अन्य पाठ भी है—अनृचो माणवो।[12] बह्वृचश्चरणाख्यायाम्।[13] अर्थात् बिना ऋक् पढ़े बालक को अनृच कहते हैं और बह्वृच चरण के अभिप्राय से कहते हैं। यहां बह्वृच एक चरण विशेष माना गया है।

कुमारिल भट्ट अपने तन्त्र वार्तिक में लिखता है—गृह्यग्रन्थानां च प्रातिशाख्यलक्षणवत् प्रतिचरणं पाठव्यवस्थोपलभ्यते। तद्यथा—......वासिष्ठं बह्वृचैरेव, शङ्खलिखितोक्तं च वाजसनेयिभिः।[14] अर्थात् बह्वृच चरण वाले वासिष्ठ सूत्र पढ़ते हैं। कुमारिल के इस लेख से बह्वृच एक चरण ही प्रतीत होता है।

---

१. ५।६।५॥ कालेण्ड, लाहौर, १९२५।
२. १।१।१५॥
३. १।१७।१८॥
४. २।४।१॥ पृ० ६२३, मीमांसादर्शन, शाबर भाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पूना १९३०।
५. ६।३।१॥ पृ० १४०६, वही।
६. ४।३।१२९॥
७. गोत्रं च चरणैः सह औपगवी। कठी। बह्वृची। ४।१।६३॥ आर्षम् पाणिनीयं व्याकरणम्, हरिशंकर पाण्डेय, प्रकाशक चन्द्रकान्त पाण्डेय, पटना, १९३८।
८. पृ० ३८१, ऐ० ब्रा०, षड्गुरुशिष्य भाष्य समेत, अनन्तकृष्ण शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९४२।
९. देवणभट्ट कृत, श्रीनिवासाचार्य संपादित, मैसूर, १९१४।
१०. २।२।२९॥, पृ० ४३०।
११. १।१।१॥
१२. तुलना करें—कात्यायन कृत कर्मप्रदीप ३।८।११॥
१३. ५।४।१५४॥ पृ० ४४४।
१४. १।३।७॥ पृ० २४४, जैमिनि प्रणीत मीमांसा दर्शन, प्रथम भाग, आनन्दाश्रम, पूना १९२९।

कठ गृह्य के भाष्य में आदित्य दर्शन बह्वृच गृह्य का एक सूत्र उद्धृत करता है।[1] यह सूत्र आश्वलायन और शांखायन गृह्यों में नहीं मिलता है। अतः बह्वृच गृह्य एक पृथक् गृह्य था।

मेधातिथि के मनुस्मृति भाष्य में एक प्रयोग विचारणीय है—कठानां गृह्यं बह्वचामाश्वलायनां च गृह्यमिति।[2]

श्रीमद्भागवत् का निम्न श्लोक ध्यान देने योग्य है—

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्।
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत्॥[3]

अर्थात्—नैमिषारण्यवासी शौनक ऋषि बह्वृच था। इस का अभिप्राय यह हो सकता है कि शौनक ऋग्वेदी था, और दूसरा यह हो सकता है कि वह ऋग्वेद की बह्वृच शाखा का अध्येता या प्रवक्ता था।

४. आश्वलायन ब्राह्मण

रघुनन्दन अपने स्मृतितत्व के मलमास प्रकरण में आश्वलायन ब्राह्मण का एक प्रमाण उद्धृत करता है। यथा—आश्वलायनब्राह्मणं 'प्राच्यां दिशि वै देवाः सोमं राजानमक्रीणन्.........सोम विक्रयीति। यह पाठ ऐतरेय ब्राह्मण ३।१।१॥ में मिलता है। प्रतीत होता है कि अर्वाचीन वङ्गीय और मैथिल विद्वान् ऐतरेय ब्राह्मण को ही सम्भवतः आश्वलायन ब्राह्मण कहते होंगे।

५. गालव ब्राह्मण

ऋग्वेद की पांच शाकल शाखाएं हैं। उनमें गालव भी एक शाखा है। इस शाखा की संहिता अभी तक अप्राप्त है। इस शाखा के ब्राह्मण तथा सूत्र अभी तक नहीं मिले हैं। यह गालव पाञ्चाल अथवा पञ्चाल देश निवासी था। इसी का दूसरा नाम बाभ्रव्य था। प्रपञ्च हृदय में बाभ्रव्य शाखा का नाम मिलता है। कामसूत्र में इसी को बाभ्रव्य पाञ्चाल कहा है। यथा......सप्तभिरधिकरणै बाभ्रव्यः पाञ्चालः संचिक्षेप।[4] इसी ने ऋग्वेद का क्रम पाठ बनाया था। इसी का उल्लेख ऋक्प्रातिशाख्य, निरुक्त, बृहद्देवता और अष्टाध्यायी आदि में मिलता है।

महाभाष्य में पतञ्जलि लिखता है—आचार्यदेशशीलनेन यदुच्यते तस्य तद्विषयता प्राप्नोति। इको ह्रस्वो ऽङ्यो गालवस्य।[5] प्राचामवृद्धात् फिन्बहुलम्[6] इति गालवा एव ह्रस्वान् प्रयुञ्जीरन् प्राक्षु चैव हि फिन् स्यात्। तद्यथा जमदग्निर्वा एतत् पञ्चममवदानमवाद्यत् तस्मान्नाजामदग्न्यः पञ्चावत्तं जुहोति।[7] पतञ्जलि ने इस लेख से गालव के एक विशेष नियम का परिचय दिया है। इस से इस ब्राह्मण के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

---

१. २५।८॥ प्रादुष्करणकाले चेद्गृह्य उपशान्तः श्रोत्रियगृहादानीय तूष्णीं गृह्यभस्मनि प्रक्षिप्याग्निहोत्रदेवताभ्यो हुत्वा गृही पत्नी वोपवसतीति भस्मन्येवाग्निप्रक्षेपस्य बह्वृचगृह्येपि दर्शनात्।
२. २।२९॥ पृ० ८७, मनुस्मृति, कलकत्ता, १९३२।
३. १।४॥
४. १।१॥ पृ० ५, यशोधर टीका समेत, बम्बई १८९१।
५. ६।३।६१॥ अष्टाध्यायी।
६. ४।१।१६०॥ अष्टाध्यायी।
७. १।१।४४॥ पृ० १०५, पंक्ति ६, भाग १।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण

६. चरक ब्राह्मण

चरक ब्राह्मण भी बहुधा उद्धृत मिलता है। याजुष चरक शाखा का यह प्रधान ब्राह्मण था। इसके आरण्यक का एक प्राचीन हस्तलेख लाहौर के दयानन्द कालेज के पुस्तकालय में संख्या १७५ में सुरक्षित था। यह अधिकतर सप्तप्रपाठकात्मक मैत्र्युपनिषद् से मिलता है। चरक शाखा के काठक, मैत्रायणी आदि अवान्तर विभागों के प्रमाण बहुधा चरक नाम से ही उद्धृत मिलते हैं। अतः मूल संहिता अथवा ब्राह्मण पाठ जानने में सावधान रहना चाहिए।

सायण अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखता है—**ऐतिहासिकपक्षे चरकब्राह्मणे इतिहास आम्नायते।**[1]

निघण्टु टीकाकार देवराज यज्वा चरक ब्राह्मण का एक प्रमाण उद्धृत करता है। यथा—**तथा च चरकाध्वर्यूणां ब्राह्मणे इतिहासः श्रूयते।**[2] यह प्रमाण काठक संहिता ३६।७॥ में भी मिलता है। सम्भव है यह प्रमाण काठक संहिता से ही लिया गया हो।

दुर्ग अपनी निरुक्त टीका में **चरकाध्वर्यवः.........गृह्णन्ति।** तथा **चारके पुनराध्वर्यवे श्रुतिः** लिख कर मैत्रायणी संहिता १।३।११॥ तथा ४।६।३॥ को क्रमशः उद्धृत करता है।[3] स्कन्द स्वामी लिखता है—**एवं चरकाध्वर्यूणां ब्राह्मणे इतिहासः श्रूयते।**[4] यह पाठ काठक संहिता में नहीं है।

उवट[5] अपने शुक्ल यजुर्वेद संहिता के भाष्य में चरकों के मन्त्र का पाठान्तर देता है—

(क) **चरकाणां मन्त्र विकल्पाः।** ७।२३॥

(ख) **चरकश्रुतौ पूष्णे ललाट इति पठ्यते तदभिप्रायमेतत्।** २५।२७॥ यह पाठ काठक तथा मैत्रायणी संहिता में नहीं है।

स्कन्द स्वामी निरुक्त भाष्य में इसी ब्राह्मण को उद्धृत करता है। यथा—**अत्र च चरकब्राह्मणे पठितमितिहासमाचक्षते।**[6]

आनर्त्तीय वरदत्तसुत शांखायन श्रौत सूत्र की व्याख्या में प्रायः इसे उद्धृत करता है। यथा—

(क) **द्वितीय इति त्रयोदशामावास्यायामाहुतयो हूयन्त इति चरकाणां श्रुतिरुपांशुयाजप्रतिषेधार्था** १।३।१५॥[7]

(ख) **आग्नेयं कृष्णग्रीवमिति चरकाणां।** १।१७।७॥[8]

---

१. मण्डल ८, सूक्त ७७, मन्त्र १०, पृ० ८७४, भाग ३, ऋ०, सायणभाष्य, वै० स० मं०, पूना, १९४१।
२. पृ० ६७, भाग १, सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता १८८२।
३. ३।१६॥ पृ० २६०, २६१, आनन्दाश्रम, पूना, १९२१।
४. पृ० ८, भाग ३, निरुक्त, सम्पादक लक्ष्मण स्वरूप, लाहौर।
५. शुक्ल यजुर्वेद संहिता, उवट भाष्य सहित, निर्णय सागर, बम्बई, १९१२।
६. पृ० ३०४, भाग २, सम्पादक लक्ष्मण स्वरूप, लाहौर।
७. पृ० २२, भाग २, शांखायन श्रौत सूत्र, हिल्लब्राण्ट, कलकत्ता, १८९१।
८. पृ० ६५, भाग २, वही।

(ग) तथा च चरकाणां । २।६।४॥[१]

(घ) ततो भूरिति पूर्वस्यां आहुतेरनुमन्त्रणं चरकश्रुतेः । २।७।७॥[२]

(ङ) याज्यापुरोनुवाक्याभ्यामृगभ्यामिति चरकाणाम् । २।१६।२॥[३]

(च) चरकाणां चानुदात्तपाठादन्वादेशो ऽस्यशब्दः । ५।१७।३॥[४]

(छ) पशुना यक्ष्यमाण आग्नावैष्णवमेकादशपालं पुरोडाशं निर्वपेदिति चरकाणां । ६।१।३७॥[५]

(ज) चरकश्रुतेः । १०।१४।१॥[६]

भाषिक सूत्र के मूल तथा अनन्तभट्ट की टीका में इस का उल्लेख है—

(क) मन्त्रस्वरवद् ब्राह्मणस्वरश्च्चरकाणाम् । ३।२५॥ मूल ।[७]

(ख) चरकाणां ब्राह्मणस्वरो मन्त्रेण तुल्यो भवति । ३।२५॥ टीका ।[८]

महास्वामी भाषिक सूत्र पर अपनी व्याख्या में भी ऐसा ही लिखता है—चरकाणां मन्त्रस्वरतुल्यो भवति ।[९]

प्रतिज्ञासूत्र की टीका में भी लिखा है—चरकाणां ब्राह्मणे......इति ।[१०]

विश्वरूपाचार्य याज्ञवल्क्य स्मृति पर अपनी बालक्रीडा टीका में लिखता है—

(क) तथा च चरकाः पठन्ति । श्वेतकेतुं हारुणेयं ब्रह्मचर्यं चरन्तं किलासो जग्राह । तमश्विनावूचतुः मधुमांसौ किल ते भैषज्यमिति । स होवाच ब्रह्मचर्यमानी कथं मध्वश्नीयामिति । तौ होचतुः यदा चात्मना पुरुषो जीवति अथान्यत् सुकृतं करोमीत्यात्मानं ह्येव सर्वतो गोपायेत् ।[११]

(ख) तथा च चरकाः—न स तस्माल्लोकात्प्रच्यवते यस्त्रिरीजानः इति ।[१२]

(ग) तथा अग्निषोमीयब्राह्मणे चरकाणाम्......।[१३]

---

१. पृ० ८६, भाग २, वही ।
२. पृ० ८८, भाग २, वही ।
३. पृ० १५३, भाग २, वही ।
४. पृ० २५२, भाग २, वही ।
५. पृ० २७२, भाग २, वही ।
६. पृ० ८७, भाग ३, वही ।
७. पृ० ४६१ ।
८. वही ।
९. कदाचित् यह किसी हस्तलिखित ग्रन्थ से है । मेरे देखने में यह भाष्य नहीं आया ।
१०. १।८॥ पृ० ४९२, प्रतिज्ञा सूत्र परिशिष्ट, अनन्त भाष्य समेत, चौ० सं० सी० ।
११. १।३२॥ पृ० ४८, भाग १, संपादक गणपति शास्त्री ।
१२. १।७७॥ पृ० ८०, भाग १, वही ।
१३. ३।२२२॥ पृ० ८७, भाग २, वही ।

७. श्वेताश्वतर ब्राह्मण

चरणव्यूह में चरकों का एक अवान्तर विभाग श्वेताश्वतर उल्लिखित है।[1] श्वेताश्वतरोपनिषद् अथवा मन्त्रोपनिषद् प्रसिद्ध है। वह इसी ब्राह्मण के आरण्यक का भाग प्रतीत होता है। इस मन्त्रोपनिषद् के अतिरिक्त इस शाखा वालों की एक दूसरी मन्त्रोपनिषद् भी थी। उस का एक मन्त्र **अस्यवामीय सूक्त** का भाष्यकार आत्मानन्द सोलहवें मन्त्र के भाष्य में उद्धृत करता है।[2] वह मन्त्र उपलब्ध उपनिषद् में नहीं मिलता है।

विश्वरूपाचार्य अपनी बालक्रीडा टीका में इस ब्राह्मण का एक पाठ उद्धृत करता है। यथा—**श्वेताश्वतराश्चः—स कृष्णमृगोऽभवत्। स कृष्णमृगो भूत्वा पृथिवीमन्वचरत्। तमनु धर्मश्चचारेत्यादि।**[3]

८. काठक ब्राह्मण

कठ शाखा यजुर्वेद की चरक शाखा के अवान्तर विभागों में से एक है। कठ उत्तरदेशीय चरक थे। यथा—**श्यामायन उदीच्येषु उक्तः कठकलापिनोः।**[4] जिस प्रकार वैशम्पायन चरक के सब शिष्य चरक कहाते हैं, उसी प्रकार कठ के भी समस्त शिष्य कठ ही कहाते हैं। अष्टाध्यायी ४।३।१०७॥ का भी यही अभिप्राय है। महाभारत शान्तिपर्व में जहां राजा उपरिचर वसु के यज्ञ का वर्णन है, वहां सोलह ऋत्विजों में से आद्य कठ भी एक था। लिखा है—**आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च वैशंपायनपूर्वजः।**[5] इससे प्रतीत होता है कि अनेक कठों में जो प्रधान कठ था, अथवा जो उन सब का मूल गुरु था, उसे ही आद्य कठ कहा है। महाभारत सभापर्व के अनुसार युधिष्ठिर की दिव्य सभा के प्रवेश संस्कार के समय कालाप और कठ वहां विद्यमान थे।[6]

कठ एक चरण है। इसकी अवान्तर शाखाएं अनेक होंगी। कशिका वृत्ति में लिखा है—**चरणशब्दाः कठकलापादयः।**[7] कम से कम दो कठ तो चरणव्यूहों में कहे गए हैं, अर्थात् प्राच्य कठ और कपिष्ठल कठ।[8] एक मर्च कठ आथर्वण चरणव्यूह में वर्णित है। व्याकरण महाभाष्य के अनुसार कठों का धर्म वा आम्नाय काठक कहाता है।[9] इस आम्नाय की महाभाष्य में बड़ी प्रशंसा है—**यथेह भवति पाणिनीयं महत् सुविहितम् इत्येवमिहापि स्यात् कठं महत् सुविहितमिति।**[10] अर्थात् पाणिनि का ग्रन्थ महान् और सुन्दर रचना वाला है। तथा कठों का ग्रन्थ भी महान् सुन्दर रचना वाला है।

---

१. पृ० ३१, यजुर्वेद खण्ड, चरणव्यूह, महिदास भाष्य सहित, चौ० सं० सी०, १९३८।
२. p. 32, Asya Vamasya Hymn, Kuhnan Raja, Madras, 1956.
३. १।२॥ पृ० ८, भाग १, याज्ञवल्क्य स्मृति, गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९२२।
४. ४।३।१०४॥ काशिका।
५. ३२३।९॥ पूना संस्करण।
६. ४।१५॥ पूना संस्करण।
७. ४।२।४६॥
८. पृ० ३१, चरणव्यूहसूत्रम्, महिदास भाष्य समेत, चौ० सं० सी०, १९५८।
९. ४।३।१२॥
१०. ४।२।६६॥

संकलन—काठक संकलन नामक पुस्तक में सूर्यकान्त ने कठ ब्राह्मण के कुछ अंश मुद्रित किए हैं।[1] इस से पहले इस ब्राह्मण के कुछ अंश यूटरेक्ट, हालेण्ड के प्रसिद्ध श्रौत शास्त्र विद्वान् डा० कालेण्ड ने मुद्रित किए थे।[2] डा० कालेण्ड के सम्पादन किए हुए काठक ब्राह्मण के अंशों में अग्न्याधेय ब्राह्मण, अमा ब्राह्मण, काठक संहिता ४०।७॥ का ब्राह्मण, ग्रहेष्टि ब्राह्मण, और ग्रहेष्टि ब्राह्मण के मन्त्र, उपनयन ब्राह्मण, श्राद्ध ब्राह्मण, मेखला ब्राह्मण, अशीतिभद्र यह आठ छोटे-छोटे खण्ड हैं। इस के आरण्यक का भी कुछ भाग हस्तलिखित रूप में योरुप के कुछ पुस्तकालयों में विद्यमान है। डाक्टर श्राडर ने इस पर लेख लिखा था और उस में इस के कुछ अंश छपवाए थे।[3] श्रीनगर काश्मीर में एक ब्राह्मण ने हम से कहा था कि इस का हस्तलेख अब भी मिल सकता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण का कुछ अन्तिम भाग अर्थात् अष्टक ३।१०-१२॥ को भी कठ वा काठक ब्राह्मण कहते हैं।

एफ० प्रो० श्राडर ने कठश्रुत्युपनिषत् छापा है।[4] वह इसी ब्राह्मण का कोई अन्तिम भाग अथवा खिल प्रतीत होता है। इस उपनिषद् के वचनों को यति धर्म संग्रह के कर्ता विश्वेश्वर सरस्वती काठक ब्राह्मण के नाम से भी उद्धृत करता है।[5]

इस ब्राह्मण का नाम शताध्ययन ब्राह्मण भी था। न्यायमञ्जरीकार भट्ट जयन्त ऐसा ही लिखता है—"तथा च काठकशताध्ययने ब्राह्मणे ब्रह्मौदने श्रूयते......॥"[6] कठगृह्य के देवपाल भाष्य में यह नाम मिलता है।[7]

काठक संहिता ४०।७॥ का ब्राह्मण बड़ा उपयोगी है।[8] इन में से एक ब्राह्मण कुछ थोड़े ही पाठान्तर से निरुक्त में मिलता है।[9] निरुक्त में ही एक अन्य स्थान पर काठक ब्राह्मण उद्धृत है।[10] इसी का लम्बा पाठ देवराज यज्वा अपनी निघण्टु की टीका में देता है।[11] दुर्गाचार्य भी अपनी निरुक्त टीका में इसका उल्लेख करता है।[12]

---

१. काठक संकलनम्, सूर्यकान्त, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर, १९४३।

२. "Brahmana-en Sutra aanwinsten" in Versl. en Meded. der Kon. Akad. V. Wet., Afd. Lett; Ve R., IVe deel, page 467.

३. "Die Tubinger Katha Hss." in Sitz. Ber der Kais. AK. der Wiss, Wien, Phil. hist. Kl., Band CXXXVII (1898).

४. पृ० ३१-४२, भाग १, Minor Upanishads, Schroeder, Adyar, Madras, 1912.

५. पृ० २२, पंक्ति २६; पृ० ७६, पंक्ति ९, आनन्दाश्रम, पूना, १९०९।

६. पृ० २५८, न्यायमञ्जरी, जयन्त भट्ट कृत, विजय नगर ग्रन्थ माला, वाराणसी।

७. पृ० २५१, भाग १।

८. पृ० २५, काठकसंकलन, सूर्यकान्त।

९. १३।७॥ १०. १०।५॥

११. पृ० ४७६, भाग १, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, १८८२।

१२. पृ० ८२६, आनन्दाश्रम, पूना, १९२१।

शुद्धि कौमुदी में काठक ब्राह्मण का एक वचन उद्धृत है। यथा—तथा **कठब्राह्मणम्—हस्ती वै भूत्वा स्वर्भानुरंशुभिरादित्यं तमसा विव्यधातीति।**[1] यह पाठ संहिता के ब्राह्मण मिश्रित भाग में नहीं मिलता है। अनुमानतः यह वचन मूल काठक ब्राह्मण का ही होगा।

अपरार्क में निम्न पाठ है—**अपि च काठके प्रवचने विज्ञायते।**[2] प्रवचन से अर्थ ब्राह्मण ही है। इसमें एक काठक श्रुति भी उद्धृत है।[3]

वासिष्ठ धर्म सूत्र में लिखा है—**अपि च काठके विज्ञायते। अपि नः श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्निति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वर इति।**[4] यही वचन थोड़े से पाठान्तर के साथ महाभाष्य में उद्धृत है।[5] मस्करी इसी वचन को थोड़े से पाठान्तर के साथ गौतम धर्म सूत्र भाष्य में उद्धृत करता हुआ लिखता है—**'अपि नार्यो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्' इति। वाजसनेय श्रुति दर्शनात्।**[6] मुद्रित काठक संहिता में यह पाठ नहीं मिलता है, अतः अवश्य ही ब्राह्मण का पाठ है। वासिष्ठ धर्म सूत्र में ही कठ ब्राह्मण की एक लम्बी श्रुति मिलती है। लिखा है—**तत्र सवो ब्राह्मणस्य शरीरं वेदिः संकल्पो यज्ञः पशुरात्मा रशना बुद्धिः सवो मुखमाहवनीयं नाभ्यामुदरोऽग्निर्गार्हपत्यः प्राणोऽध्वर्युरपानो होता व्यानो ब्रह्मा समान उद्गातात्मेन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि य एवं विद्वानिन्द्रियैरिन्द्रियार्थं जुहोतीत्यपि च काठके विज्ञायते।**[7]

वैखानस श्रौत सूत्र टीका[8] में भी एक कठ श्रुति उद्धृत है।

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में लिखा है—**अथ काठकाः।**[9] स्मृति चन्द्रिका आह्निक-काण्ड में भी एक काठक श्रुति उद्धृत है। यथा—**मैवं—शवाग्नयो वा एते पत्न्यां मृतायां धार्यन्ते इति काठकश्रुत्या तेषां पितृमेधैकार्थत्वश्रवणात्।**[10] इसी श्रुति का भ्रष्ट पाठ मनुस्मृति के मेधातिथि भाष्य में भी है। यथा—**न वाऽग्नयो ह वा ? एते पत्न्यां प्रमीतायां धार्यन्ते इति।**[11] यही पाठ याज्ञवल्क्य स्मृति की बालक्रीडा टीका में भी है।[12] यथा—**तथा च काठकेश्रुतौ 'शवाग्नयो वा एते भवन्ति, ये पत्न्यां प्रमीतायां धार्यन्त' इति।**

एक अन्य काठक श्रुति गौतम धर्म सूत्र के मस्करी भाष्य में मिलती है। लिखा है—**तथा च काठक**

---

१. पृ० २७६, गोविन्दानन्द विरचित, संपादक कमलकृष्ण स्मृतिभूषण, ए० सो० बंगाल, कलकत्ता, १६०५।
२. पृ० १०४, याज्ञवल्क्य स्मृति, अपरार्क टीका सहित, आनन्दाश्रम, पूना, १६०३।
३. पृ० ११४, वही।
४. १२।२४॥ पृ० ३५, संपादक फ्यूहरर, भ० ओ० रि० इ०, पूना, १६३०।
५. ७।१।३ तथा ६॥
६. ५।१॥ पृ० ८४, वेदमित्र, देहली, १६६६।
७. ३०।५॥ पृ० ८१।
८. पृ० ६३।
९. २१।२३।६॥ पृ० २०३, भाग ३, रिचर्ड गार्वे, कलकत्ता, १६०२।
१०. पृ० ४४४, देवणभट्ट, संपादक श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, १६१४।
११. ५।१६५॥ पृ० ४६५, भाग १, मनुस्मृति, मेधातिथि भाष्य समेत, कलकत्ता १६३२।
१२. पृ० ८७, भाग १।

श्रुतिः—अनशनेनकर्शितो अग्निमारोहेत् इति ।[१] यह श्रुति मुद्रित काठक संहिता में नहीं है। यदि मस्करी भूला नहीं तो अवश्य कठ ब्राह्मण में होगी।

काठक गृह्य सूत्र में भी कई स्थलों पर कठ ब्राह्मण के वचन मिलते हैं।[२]

आफरेख्ट बृहत् सूचीपत्र के अनुसार समय-प्रकाश में भी कठ ब्राह्मण उद्धृत है।[3]

एक ब्राह्मण, संभवतः काठक ब्राह्मण ही, विज्ञान भैरव की शिवोपाध्याय विवृति में उद्धृत है।[४] यथा—श्रुतिस्मृतिषु तु विनक्षपयोः श्वत्वेन निर्देशः कृतः मृत्युत्वत्वात् आयुर्हरणात् अर्नसिहकत्वाच्च। तथा च ब्राह्मणम्।

पूना के सूची पत्र में एक भूल—भण्डारकर इन्स्टीट्यूट पूना के वैदिक हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्र में एक हस्तलेख का विवरण है।[५] उसे तैत्तिरीय ब्राह्मण (काठकम्) कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण तो यह हो ही नहीं सकता, क्योंकि इसमें स्थानकों का विभाग है। अधिक से अधिक इसे कोई काठक ब्राह्मण कह सकता था। वस्तुतः यह काठक ब्राह्मण भी नहीं है। यह तो काठक संहिता का त्रुटित ग्रन्थ है।

८. मैत्रायणी ब्राह्मण

चरणव्यूह के एक पाठानुसार मानव, वाराह, दुन्दुभ, छागलेय, हारिद्रवीय और श्यामायनीय मैत्रायणियों के छः भेद हैं।[६] इस शाखा का प्रवचनकर्त्ता मैत्रायणी ऋषि होगा। इस ऋषि के शिष्य प्रशिष्य मैत्रायणीय कहाए। नासिक के वृद्ध से वृद्ध मैत्रायणी-शाखा-अध्येतृ ब्राह्मणों ने हम से कहा था कि उन्हें इस ब्राह्मण के अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं है। उनके कथनानुसार उनकी संहिता में ही ब्राह्मण सम्मिलित है। परन्तु बौधायन श्रौत सूत्र में मैत्रायणी ब्राह्मण का उल्लेख है। यथा—समचतुरश्राभिरग्निं चिनुते दैव्यस्य च मानुषस्य च व्यावृत्त्या इति मैत्रायणीयब्राह्मणं भवति।[७] यह प्रमाण मुद्रित मैत्रायणी संहिता में नहीं मिलता है। अतः ब्राह्मण पृथक् ही रहा होगा।

सत्याषाढ श्रौत सूत्र में भी मैत्रायणी ब्राह्मण उद्धृत है। यथा—मैत्रायणीयब्राह्मणे यन्नोपभृद्ध्याद्-बधिरः स्यादिति दोषश्रवणादिति भावः।[८]

वेङ्कट माधव भी इस ब्राह्मण को उद्धृत करता है। यथा—

न भाल्लवकम् अस्माभिस्तथा मैत्रायणीकम्।
ब्राह्मणं चरकाणां च श्रुतं मन्त्रोपबृंहणम्॥[९]

---

१. २२।१॥, पृ० ३०६, वेदमित्र, देहली, १९६१।
२. कालेण्ड, लाहौर, १९२५।
३. p. 77, Catalogus Catalogorum, An Alphabetical Register of Sanskrit Works and Authors, Theodor Aufrecht, Leipzig, 1891.
४. पृ० १३८, मुकुन्दराम शास्त्री संपादित, श्रीनगर, १९१८।
५. पृ० १५४, भाग १।
६. पृ० ३१, महिदास भाष्य सहित, चौ० सं० सी०, १९३८।
७. ३०।८॥, पृ० ४०१, भाग ३, कालेण्ड, कलकत्ता, १९१३।
८. पृ० ७९२, गोपीनाथकृत, आनन्दाश्रम, पूना, १९०७।
९. अष्टक ८, अध्याय १ के आरम्भ में श्लोक १४, ऋ०, वि० वै० शोध सं०, होशियारपुर, १९६५।

विश्वरूपाचार्य अपनी बालक्रीडा टीका में एक श्रुति लिखता है—तथा च श्रुतिः—अथान्यः परिव्राडे-कशाटीपरिहितो मुण्ड उदरपात्र्यरण्यनित्यो भिक्षार्थी इति।[1] इस श्रुति को यतिधर्म संग्रह का कर्ता विश्वेश्वर मैत्रायणी श्रुति के नाम से उद्धृत करता है।

वेदान्त देशिक शतदूषणी में इसे उद्धृत करता है।[2] बालक्रीडा टीका में यही प्रमाण श्रुति और स्मृति नाम से दिया गया है।[3]

बड़ोदा के सूचीपत्र में एक मैत्रायणी मन्त्र संहिता के हस्तलिखित ग्रन्थ का वर्णन है।[4] इसी की टिप्पणी में लिखा है कि यह मुद्रित मैत्रायणी संहिता से पर्याप्त भिन्न है।

१०. जाबाल ब्राह्मण

हमारा अनुमान है कि उपनिषद् वाङ्मय का प्रसिद्ध आचार्य महाशाल सत्यकाम जाबाल ही इस नाम की शाखा का प्रवचनकर्ता था।[5] वह वाजसनेय याज्ञवल्क्य का शिष्य और जनक आदि का समकालीन था।

जाबाल श्रुति का निम्नलिखित प्रमाण स्थपति गर्ग अपनी पारस्कर गृह्य पद्धति में देता है—दक्षिण-पूर्वद्वारे द्व्यरत्निके जाबालश्रुतेरेतदुपलब्धम्।[6]

जाबाल श्रुति का एक लम्बा उद्धरण बालक्रीडा टीका में उद्धृत है। यथा—एवं हि श्रूयते—'स यदा राजानमुन्नेतोन्नयति, अथैनस्त्विन उपतिष्ठन्तेऽस्त............यस्यैवं विदुष एवमेनस्त्विनोऽवभृथमभ्यवयन्ती'ति जाबालिश्रुतिः।[7] यह संभवतः ब्राह्मण का ही पाठ है।

बृहज्जाबालोपनिषद् नवीन है, परन्तु जाबाल उपनिषद् का कुछ अंश प्राचीन प्रतीत होता है। जाबाल उपनिषद् के उद्धरण गौतमधर्म सूत्र के मस्करी भाष्य में प्रायः उद्धृत हैं—

(क) जाबाल श्रुतावपि—'नखानि निकृत्य यज्ञोपवीतं विसृज्य' इति।[8]

(ख) यथा जाबालि श्रुतिः—'यस्संपन्नाय पुत्रीं दद्यात् सोऽग्निष्टोम फलमवाप्नोति' इति।[9]

(ग) जाबालि श्रुतिदर्शनात् एवं च श्रूयते—'ऋतुस्नाता भार्या यं पूर्वं पश्येत् तादृशं पुत्रं जनयति, तस्मात् सन्निधौ भर्तैव प्रथममात्मानं दर्शयेत्' इति।[10]

(घ) 'त्रिपक्षे सपिण्डीकरणम्' इति जाबालौ श्रूयते श्रुतिरिति।[11]

---

१. पृ० २७, भाग २, याज्ञवल्क्य स्मृति, त्रिवेन्द्रम, १९२४।

२. पृ० ३१२।

३. पृ० २७, पृ० ३०, भाग २।

४. संख्या ७९, पृ० १२, Vol. I, A Descriptive Catalogue of Manuscripts in the Central Library Baroda, Baroda, 1925.

५. महाशाल बड़ी शाल वाले को कहते हैं।

६. पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर का हस्तलेख पत्र ७ ख, पंक्ति २।

७. पृ० ९४, ९५, भाग २।

८. ३।११॥ पृ० ६५।

९. ४।३३॥ पृ० ८१।

१०. ५।१॥ पृ० ८३।

११. १५।१॥ पृ० २२६।

(ङ) 'प्रत्येकं प्रणवपूर्वा व्याहृतयः भूराद्यास्तिस्रः पुरुषमध्याः सत्यान्ताः'। एवं जाबालि श्रुतौ प्रसिद्धाः ॥[१]

(च) 'गृही वनं प्रविशेद्यदि गृहमेव कामयेत तदा यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्'। इति जाबालश्रुति वाक्ये……।[२]

जाबालोपनिषद् को शंकर भी वेदान्त सूत्र में उद्धृत करता है।[3] शंकर पुनः ब्रह्मसूत्र में जाबालाः कह कर अन्य प्रमाण भी लिखता है—

(क) तथा जाबालाः 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवतेऽहं वै त्वमसि' इति।[४]

(ख) तथा हि वैश्वानरविद्यायामेव जाबालानां श्रुतिः—'पूर्वाऽतिथिभ्योऽश्नीयात्।……[५]

जाबाल श्रुति का एक वचन मदन पारिजात में उद्धृत है।[६]

इस शाखा का एक गृह्य (जाबालि गृह्य) गौतम धर्म सूत्र के मस्करी भाष्य में उद्धृत है। यथा—

(क) 'विद्युति प्रातरहरनध्यायः' इति जाबालिगृह्यदर्शनात्।[७]

(ख) 'अशुचिदर्शने द्विजः प्रवणं जपेत्' इति जाबालिगृह्यदर्शनात्।[८]

स्मृति चन्द्रिका के संस्कार काण्ड में जाबाल धर्म सूत्र का एक उद्धरण है।[९] यथा—तथा च जाबालिः—गृही वनं प्रविशेत्। यदि गृहमेव कामयेत तदा यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्' इति।

स्पन्द कारिका में भी जाबालि धर्मसूत्र उद्धृत है।[१०]

११. खाण्डिकेय ब्राह्मण

चरणव्यूह में लिखा है—तत्र तैत्तिरीयका नाम द्विभेदा भवन्ति। औखेयाः खाण्डिकेयाश्चेति। अर्थात् औखेय और खाण्डिकेय नाम के तैत्तिरीयों के दो भेद हैं। चरणव्यूह में ही खाण्डिकेयों की पांच शाखाएं कही गयी हैं।

पाणिनीय सूत्र—तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्[११] में खण्डिक का नाम स्मरण किया गया है। उसी के शिष्य खाण्डिकीय कहाते हैं।

---

१. ११५७॥ पृ० २९।
२. ३।१॥ पृ० ६०।
३. ३।४।२०॥ पृ० ४४२, ४४३, पणसीकर, बम्बई, १९१५।
४. ३।३।३७॥ पृ० ४११, वही।
५. ३।३।४०॥ पृ० ४४२, ४४३, वही।
६. पृ० ११२।
७. १६।२५॥ पृ० २४४।
८. २३।२२॥ पृ० ३५४।
९. पृ० १७१, देवणभट्ट, सम्पादक श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, १९१४।
१०. पृ० ३९, विजयनगर सीरीज, वाराणसी।
११. ४।३।१०२॥

एक खण्डिक औद्भारि मैत्रायणी संहिता[1] तथा जैमिनीय ब्राह्मण[2] में स्मरण किया गया है।

खाण्डिकेय ब्राह्मण के विषय में अभी तक केवल भाषिक सूत्र में ही एक उद्धरण मिला है—**तेषां चरकाणां मध्ये खाण्डिकेयौखेयानां ब्राह्मणे चत्वारः स्वराः........,..।**[3]

१२. औखेय ब्राह्मण

चरणव्यूह के उपरि निर्दिष्ट प्रमाण के अनुसार औखेय शाखा भी यजुर्वेद की थी। इस ब्राह्मण के विषय में भी उपरिलिखित उद्धरण भाषिक सूत्र में मिला है।[4]

१३. हारिद्रविक ब्राह्मण

चरणव्यूह के अनुसार हारिद्रवियों की शाखा यजुर्वेदान्तर्गत है। हरिद्रु के कुल तथा जन्म के विषय में हम कुछ नहीं जान सके हैं। इस शाखा का ब्राह्मण ग्रन्थ सायण कृत ऋग्वेद भाष्य में उद्धृत है। यथा—**स्वरभानुर्मायया सूर्यस्यावृत्तिर्हारिद्रविके समाम्नाता।**[5]

निरुक्त में भी इस ब्राह्मण का एक उद्धरण मिलता है—**'यद् अरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इति हारिद्रविकम्।**[6] दुर्ग लिखता है—**हारिद्रवो नाम मैत्रायणीयानां शाखाभेदः।**[7] पतञ्जलि अपने महाभाष्य में हारिद्रविकों का उल्लेख करता है—**हारिद्रविणः तौम्बुरविणः भाल्लविनः।**[8] काशिकाकार भी लिखता है—**हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः।**[9]

१४. तुम्बुरु ब्राह्मण

तुम्बुरु शाखा का वर्णन मिलता है। एक तुम्बुरु सामवेदीय है। याजुष तुम्बुरु का वर्णन अभी अधिक नहीं मिलता है। यह ब्राह्मण महाभाष्य में वर्णित है। यथा—**हारिद्रविणः तौम्बरविणः भाल्लविनः।**[10]

१५. आह्वरक ब्राह्मण

चरणव्यूह के अनुसार आह्वरक चरकों का एक अवान्तर विभाग है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में आह्वरकों के स्वर का कथन मिलता है।[11] आह्वरक शाखा का एक मन्त्र यादव प्रकाश पिङ्गलसूत्र पर अपनी टीका में उद्धृत करता है—**देवस्त्वा सविता मधुपाङ्क्तां विश्वचर्षणीः। स्फोत्येव नश्वरः।**[12]

---

१. १।४।१२॥ पृ० ६०, मै० सं०, श्राडर, लाइपजिग, १९२३।
२. २।११२॥
३. ३।२६॥
४. वही।
५. ५।४०।८॥ पृ० ५३८, भाग २, सायण भाष्य समेत, वै० सं० मं०, पूना, १९३६।
६. १०।५॥
७. पृ० ९६०, भाग २, भडकमकर, १९४२।
८. ४।२।१०४॥ वार्तिक १९।
९. ४।३।१०४॥
१०. ४।२।१०४॥ वार्तिक १९।
११. २३।१६॥
१२. ३।१५॥

दुर्गाचार्य निरुक्तवृत्ति में इसे उद्धृत करता है। यथा—उक्तं चाह्वरकाणाम्-ब्राह्मणस्पत्याभिरग्निमुपतिष्ठेत इति।[1] ऐसा पाठ उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, लाहौर, के एक हस्तलिखित ग्रन्थ 'सम्प्रदायपद्धति' में यह उद्धृत है।[2] नारदीय शिक्षा का टीकाकार शोभाकर भी इसे उद्धृत करता है। यथा—कठकलापप्रवृत्तेषु तैत्तिरीयाह्वरकेषु च।[3] धर्मकीर्ति प्रणीत प्रमाण-वार्तिक की कर्णिक गोमी कृत टीका में लिखा है—इदानीमपि कानिचिद् आ हू र क प्रभृतीनि शाखान्तराणि विरलाध्येतृकाणि।[4] यहां आहूरक से आह्वरक का ही अभिप्राय है। सरस्वती कण्ठाभरण में लिखा है—अपहर्त्तार आह्वरकाः श्राद्धे सिद्धमन्नम्।[5] यही उदाहरण कुछ भेद से काशिका वृत्ति में भी है—अन्नमपहर्तारः आह्वरकाः भवन्ति श्राद्धे सिद्धे।[6]

१६. कंकति ब्राह्मण

महाभाष्य में काङ्कताः शब्द मिलता है। लिखा है—क्रौडाः काङ्कताः मौदाः पैप्पलादाः।[7] इस से कंकति शाखा के अस्तित्व का पता लगता है। यह शाखा किस वेद की थी, इस विषय में पूरा निर्णय नहीं किया जा सकता। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में यह ब्राह्मण उद्धृत है—'नाविह्विशाण्योः संस्रवो विद्यत' इति कङ्कति ब्राह्मणम् भवति।[8] उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐसा पाठ नहीं है।

१७. छागलेय ब्राह्मण

छगली ऋषि के शिष्य छागलेय कहाते हैं। चरणव्यूह के अनुसार छागलेय तैत्तिरीयों का भेद है। पाणिनि लिखता है—छगलिनो ढिनुक्।[9] काशिकाकार अपनी वृत्ति में लिखता है—छगलिना प्रोक्तमधीयते छागलेयिनः।[10] शाकटायन व्याकरण के अनुसार—छागल आत्रेयः। छागलिरन्यः[11] पाठ इसी सम्बन्ध में है।

बौधायन श्रौत सूत्र में लिखा है—'नाविह्विषाण्योः संस्रवो विद्यत इति छागलेयब्राह्मणं भवतीत्याश्मौगविः।[12] यही पाठ आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में कंकति ब्राह्मण कह कर उद्धृत है।

---

१. ३।३१॥ पृ० २८६, आनन्दाश्रम पूना, १९२१।
२. संख्या २६०६, पत्र १७ ख, पंक्ति ६।
३. पृ० ३९७, शिक्षा संग्रह, काशी, १८९३।
४. पृ० ५९६, संपादक राहुल सांकृत्यायन, १९४३।
५. १।४।१८९॥ पृ० १७१, भोजदेव विरचित, साम्बशिव शास्त्री संपादित, त्रिवेन्द्रम, १९३५।
६. ३।२।१३५॥
७. ४।२।६६॥
८. १४।२०।४॥
९. ४।३।१०४॥; ४।३।१०९॥
१०. वही।
११. २।४।४७॥ पृ० २०२, शम्भुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९७१।
१२. २३।५॥ पृ० १५६, भाग ३, कालेण्ड, कलकत्ता, १९१३।

स्कन्द स्वामी अपने ऋग्वेद भाष्य में छागलेय ब्राह्मण का वर्णन करता है—एवं हि छागलेयिनां श्रुतौ प्रयोगः—दक्षिणेन हस्तेन देवानसृजत् ।[1]

शाङ्खायन श्रौत सूत्र भाष्य में छागलेय श्रौत सूत्र का संकेत है। यथा—एवं छागलेयिनां सूत्र एवोह ईदृशः पठितः ।[2]

सामवेदीय ब्राह्मण

१८. भाल्लवि ब्राह्मण

भाल्लवि लाङ्गलि के छः शिष्यों में से एक शिष्य था। इस शाखा का ब्राह्मण कभी विद्यमान था। भाल्लवियों की एक गाथा का प्रमाण बौधायन धर्म सूत्र में मिलता है। यथा—अथाप्यत्र भाल्लविनो गाथामुदाहरन्ति ।[3] सुरेश्वर के बृहदारण्यक उपनिषद् भाष्य में भाल्लवि शाखा की एक श्रुति लिखी है। यथा—

अतः संन्यस्य कर्माणि सर्वाण्यात्मावबोधतः ।
हत्वाऽविद्यां धियैवेयात्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२१९॥
इति भाल्लविशाखायां श्रुतिवाक्यमधीयते ।२२०॥

अर्थात् 'हत्वाऽविद्यां......पदम्' भाल्लवि श्रुति का है। यह पाठ निदान सूत्र में भी है। भाल्लवियों के उपनिषद् ग्रन्थ भी थे।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में भाल्लवियों का मत उल्लिखित है। यथा—भूतिरिति भाल्लविनः। प्राणं वा अनुप्रजाः पशवो भवन्ति। स य एवमेतं भूतिरित्युपास्ते भवत्येव प्राणेन प्रजया पशुभिः ।[4] इससे पता लगता है कि जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण के काल से पहले या समीप ही भाल्लवि शाखा का प्रवचन हो चुका था।

जैमिनीय ब्राह्मण में अषाढ़ भाल्लवेय[5] और इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय के नाम मिलते हैं।[6]

बहद्देवता[7] के अनुसार उपरिलिखित मत ही पुष्ट होता है—

(क) एष एव परामृष्टो भाल्लविब्राह्मणेऽवृचः ।
निदानसंज्ञके ग्रन्थे छन्दोगानामितिश्रुतिः ॥५।२३॥

(ख) तस्माद्येऽद्यापि वासिष्ठाः सवस्याः स्युस्तर्हिचित् ।
अर्हयेद्दक्षिणाभिस्तान् भाल्लवेयी श्रुतिस्त्वियम् ॥५।१५९॥

---

१. १।३७।११॥ पृ० २९७, भाग १, विश्वबन्धु, वि० वै० शोध सं०, होशियारपुर, १९६५।

२. ६।१।७॥ भाग २, कलकत्ता, १८९१।

३. १।१।१२॥ बौधायन धर्म सूत्र, गोविन्दस्वामी विवरण सहित, चौ० सं० सी०, १९३४।

४. अध्याय २, खण्ड ४, कण्डिका ७, पृ ६९, भगवद्दत्त, लाहौर, १९२१।

५. ३।१५६॥

६. १।२७१॥

७. भाग १, मैकडानल, हारवर्ड १९०४।

महाभाष्य में भाल्लवि नाम का वर्णन मिलता है। यथा—हारिद्रविणः तौम्बुरविणः भाल्लविनः।[1] काशिकाकार भी भाल्लवि ब्राह्मण का उल्लेख करता है। यथा—

(क) ब्राह्मणानि खल्वपि—ताण्डिनः। भाल्लविनः।४।२।६६॥

(ख) ब्राह्मणेषु तावत्—भाल्लविनः।४।३।१०५॥

द्राह्यायण श्रौत सूत्र में भाल्लवि ब्राह्मण का उल्लेख है। यथा—तथा च भाल्लविब्राह्मणं भवति—योऽनुपनीतं समावर्त्ते ·····················तस्मादप्युपनेयम्।[2] ऐसा पाठ उपलब्ध ब्राह्मणों में नहीं मिलता है। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में भी यह ब्राह्मण उद्धृत है। लिखा है—अथ भाल्लविकम्।[3] कात्यायन कृत उपग्रन्थ सूत्र में भी इसका नाम आता है।[4]

निदान सूत्र में भाल्लवि ब्राह्मण प्रायः उद्धृत है।[5] यथा—

(क) एषा रथन्तरपृष्ठेऽप्रियवती बृहत्पृष्ठेऽप्रियवद् बार्हतं रूपमुपवद्राथन्तरमुपवती—रथन्तरेऽप्रियवतो बृहतीति च भाल्लविनाम्।

(ख) तत्र गोआयुषोऽर्द्धे चतुर्ऋचस्ये कुर्वन्ति भाल्लविनः।

(ग) ते खलु शश्वद् भाल्लविन आग्नेयीं पावमानीमुद्धरन्ति।

(घ) ते खलु शश्वद्भाल्लविनो············

(ङ) ते खलु शश्वद्भाल्लविनः स्तोत्रियात् प्रतिपदः कुर्वन्ति यथास्थानमेवानुरूपान्।

शंकर वेदान्त सूत्र भाष्य में इसे उद्धृत करता है—तद्यथा भाल्लविनाम्—'कुशा वानस्पत्याः स्थ ता मा पात ·····'।[6]

शिक्षा संग्रहान्तर्गत नारद शिक्षा में भी एक उद्धरण है। यथा—द्वितीयप्रथमावेतौ तांडिभाल्लविनां स्वरौ। तथा शतपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम्।[7]

भाषिक सूत्र में भी इसका उद्धरण मिलता है। यथा—

(क) शतपथवत्साण्डिभाल्लविनां ब्राह्मणस्वरः।[8]

बौधायन धर्मसूत्र की गाथा का उल्लेख विश्वरूपाचार्य अपने बालक्रीडा टीका में भी करता है। यथा—एवं हि भाल्लविनां गाथा—'यतः पश्चात् सिन्धुर्विहरणी सूर्यस्योदयनं पुर' इति।[9] एक अन्य उद्धरण भी बालक्रीडा में मिलता है। यथा—'नाभ्रातीमुपयच्छेत् तत्तोकं ह्यस्य भवती' ति भाल्लविनां श्रुतेः।[10]

---

१. ४।२।१०४॥ वार्तिक १६। २. ३।४।२॥

३. २१।१६।१५॥ ४. १।१०॥

५. ४६।६-१०॥; ६६।१॥; १२०।२४॥; ५१।६॥; ८०।७-८॥; निदान सूत्र, भटनागर, देहली, १६७१।

६. ३।३।२६॥ पृ० ४०१।

७. १।१३॥ पृ० ३६८, शिक्षासंग्रह, नारदशिक्षा, बनारस, १६२२। ८. ३।१५॥

६. १।२॥ पृ० ८, भाग १, त्रिवेन्द्रम्, १६२२।

१०, १।५३॥ पृ० ६१, वही।

ताण्डय ब्राह्मण में भाल्लवियों का वर्णन है। कहा है—तामेताम्भाल्लवय उपासते तस्मात्ते प्रतिगृह्णन्तः परिवर्त्तान्म च्यवन्ते।[1] रुद्रदत्त भी आपस्तम्ब श्रौत सूत्र पर अपने भाष्य में इस ब्राह्मण के विषय में लिखता है।[2]

भाल्लवेय श्रुति आनन्दतीर्थकृत विष्णुतत्त्वनिर्णय में भी उद्धृत है।[3]

वेङ्कट माधव का उद्धरण ऊपर दिया गया है।

१६. कालबवि ब्राह्मण

सामवेद की एक शाखा कालबवि है। इसके कल्प, निदान और संहिता के प्रमाण अभी नहीं मिले हैं। परन्तु इस शाखा के ब्राह्मणों के उद्धरण कुछ ग्रन्थों में मिलते हैं। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में लिखा है—एकादशैकादशिनीः प्राचीः संमिन्वन्तीति कालबविब्राह्मणं भवति।[4] यह पाठ उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

उपग्रन्थ सूत्र[5] में भी कालबवि का उल्लेख है। रुद्रदत्त आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में इस पाठ को पूर्ण रूप से उद्धृत करता है।[6] यथा—तदुक्तमुपग्रन्थकारेण—अभिव्युच्छेदित्येव शाट्यायनिब्राह्मणं भवति। तथा भाल्लविनां तथा कालविनां………। पुष्प सूत्र के अनुसार यह साम ब्राह्मण है।[7] निदान सूत्र[8] में भी यह ब्राह्मण उद्धृत है। यथा—

(क) चतुरस्तृचैकर्चान् व्यत्यासेन कालबविनः।६।१२।।

(ख) अथ कालबविनो यथासमाम्नायमेव कुर्वन्ति।१०।१४।।

(ग) अथापि कालबविनो व्यूहेनादिशन्ति।१७।१६।।

२०. रौरुकि ब्राह्मण

यह भी सामवेद का ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण के उद्धरण प्रायः मिल जाते हैं। गोभिलगृह्य सूत्र में एतत्सम्बन्धी निम्न पाठ है—अथापि रौरुकिब्राह्मणं भवति—कुमारान् ह स्म वै मातरः पाययमाना आहुः शक्वरीणाम् पुत्रका व्रतं पारयिष्णवो भवते इति।[9] ऐसा पाठ उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

ताण्डय ब्राह्मण पर अपने भाष्य में सायण लिखता है—अभ्वनमिति, सूत्रकारेण रौरुकिशाखो-

---

१. २।२।४।।

२. २१।१६।१५।।

३. पत्र ४ का पृष्ठ भाग।

४. २०।६।६।।

५. ११०।।

६. १४।२३।१४।।

७. ८।८।। पृ० १८६, सम्पादक लक्ष्मण शास्त्री, चौ० सं० सी०, १६२२।

८. भटनागर, देहली, १६७१।

९. ३।२।६।। पृ० ५२५, भट्टाचार्य, कलकत्ता, १६२६।

धतानि यजूंषि ।[१] इस से प्रतीत होता है कि यह ब्राह्मण भी अवश्य विद्यमान था ।

द्राह्यायण श्रौत सूत्र पर अपनी टीका में धन्विन लिखता है—'रौरुकिणो नाम केचिच्छाखिनः तैरधीतानि यजूंषि रौरुकीणि तानि यदि कुर्युः तथा प्रथमम् अध्वनाम्' इति आदित्योपस्थानमिति ।[२] वह पुनः लिखता है—पातमाग्नेयो रौद्रेणामिकेन इति मन्त्रशेषो अस्माकं रौरिकाणां च समान इत्यर्थः ।[३]

अग्नि स्वामी लाट्यायन श्रौत सूत्र[४] में इस के विषय में लिखता है—रौरुकीणि चेत् कुर्युरादित्यं प्रथममुपतिष्ठेरन्नध्वनामिति ।

२१. शाट्यायन ब्राह्मण

अनुपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में शाट्यायन ब्राह्मण ही सब से अधिक उद्धृत ब्राह्मण है । यह बड़ा ही उपयोगी ग्रन्थ होगा । काशिकाकार इस ब्राह्मण ग्रन्थ का उल्लेख करता है । प्रसिद्ध विद्वान् अर्टेल ने इस ब्राह्मण के विषय में एक लेख लिखा था ।[५] उस में उन्हों ने अनेक स्थलों में उद्धृत इस ब्राह्मण के प्रमाण बताए हैं । वे प्रमाण निम्न हैं—

(१) शाट्यायनिनां—'श्वेताश्वो हरितनीलोऽसीत्यादिः ।[६]

(२) तथा शाट्यायनिनः पठन्ति—'तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्' इति ।[७]

(३) शाट्यायनिनामौदुम्बराः कुशाः ।[८]

(४) त्रयोदशरात्रमहतवासा यजमानः......इति शाट्यायनिब्राह्मणं भवति ।[९]

(५) कामम् शूद्रेण सम्भाषेत यः पापेन कर्मणानभिलक्षितः स्यादिति शाट्यायनकम् ।[१०]

(६) 'अभिवदति नाभिवादयतेऽप्याचार्यं श्वशुरं राजानम्' इति शाट्यायनकम् ।[११]

(७) रुद्रदत्त आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में ही उपग्रन्थ सूत्र से निम्न पाठ उद्धृत करता है । यथा—तदुक्तं उपग्रन्थकारेण—अभिव्युच्छेदित्येव शाट्यायनिब्राह्मणं भवति ।[१२]

ऐसा ही पाठ उपग्रन्थ सूत्र में है । लिखा है—अभिव्युच्छेद् इति त्व एव शाट्यायनिब्राह्मणम् ।[१३]

---

१. १।४।१॥ २. ४।३।१॥
३. ४।३।६॥
४. २।३।१॥ पृ० १२७, सम्पादक आनन्दचन्द्र वेदान्त वागीश, कलकत्ता, १८७२ ।
५. JAOS, Vol., xviii, p, 15, 1897.
६. ३।३।२५॥ वेदान्त सूत्र, शंकर भाष्य ।
७. ३।३।२६-२७॥; ४।१।१६-१७॥ वही । ८. ३।३।२६॥ वही ।
९. प्रश्न ५ । कण्डिका २३ । सूत्र ३॥ पृ० २८६, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र, धूर्तस्वामी भाष्य सहित, बड़ोदा, १९५५ ।
१०. १०।१।२।१३॥ वही । ऐसा ही पाठ याज्ञिकदेव कात्यायन श्रौत सूत्र में ७।५।७॥ में उद्धृत करता है ।
११. १०।१२।१४॥ आपस्तम्ब श्रौ० सू० ।
१२. १४।२३।१४॥ वही ।
१३. १।१०॥ उपग्रन्थ सूत्र ।

(८) प्रत्याश्रावयेवाग्नीध्र उत्करदेशे तिष्ठन् सफ्यमिध्मसन्नहनानीत्यादाय दक्षिणामुख इति शाट्यायनकम् ।[1]

(९) उभाव् (अनड्वाहाव्) इति शाट्यायनकम् विज्ञायते ।[2]

(१०) तथा सतां शाट्यायनिनः षडहविभक्तीरनुकल्पयन्ति ।[3]

अग्नि स्वामी अपने भाष्य में लिखता है—तथा सतान्तेषामभिप्लवस्वरसाम्नाम् ज्योतिष्टोमसन्त्रे कल्पमानानाम्संयोगाय शाट्यायनकम् ब्राह्मणमधीयते ।

(११) शाट्यायनेन स्पष्टमाम्नातं, ईर्म इव वा एषा होत्राणां यदच्छावाको यदच्छावाकमनवन्तिष्ठेतेर्म इव तुष्टुवानाः स्यु रिति । तस्य त्रैककुभम् ब्रह्मसाम भवत्युद्वशीयमच्छावाकसामेति ।[4]

(१२) अतएव शाट्यायनकं यदभ्यवर्तन्त तदभीवर्तस्याभीवर्तत्वमिति ।[5]

(१३) एतदेव शाट्यायनमुनिभिर्विस्पष्टमाम्नातं, तदाहुः स्तोम इत्कर्तुमिव वा.........तत्र स्तोमा यन्ति' इति ।[6]

(१४) ननु शाट्यायनकादिषु अनुष्टुप्सु भासं कार्यमिति दृश्यते...।[7]

(१५) तथा च शाट्यायनिभिः सुब्रह्मण्यामन्त्रैकदेशव्याख्यानरूपं ब्राह्मणमेवमाम्नायते......।[8]

(१६) सायण एक शाट्यायन ब्राह्मण के पाठ का उद्धरण देता है। यथा—अत्र शाट्यायनिन इतिहासमाचक्षते.........।[9]

वेङ्कट माधव ने मूल पाठ का अक्षरशः उद्धरण दिया है। यथा—अत्र शाट्यायनकम्-दध्यङ् ह वा आथर्वणस्तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यास ।[10] यही पाठ सामवेद में भी है ।[11]

(१७) तथा च शाट्यायनकम्—एतान्येव पंच ज्योतींषि.........विषुवत्सु' इति ।[12]

---

१. १।४।३।। पृ० २०, आश्वलायन श्रौत सूत्र, आनन्दाश्रम, पूना, १९१७ ।
२. १।२।४।। लाट्यायन श्रौत सूत्र । ३. ४।५।१८।। वही ।
४. ४।२।१०।। पृ० १००, भाग १, ताण्ड्यमहाब्राह्मण, सायणभाष्य सहित, चिन्न स्वामी शास्त्री, चौ० सं० सी०, १९३५ ।
५. ४।३।२।। पृ० १०४ वही ।
६. ४।५।१४।। पृ० ११६ वही । थोड़ा पाठ भिन्न है ।
७. ४।६।२३।। पृ० १२३, वही ।
८. १।५१।१३।। पृ० ३६१, भाग १, ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित, वै० सं० मं०, पूना ।
९. १।८४।१३।। पृ० ५२३, भाग १, ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित, वै० सं० मं०, पूना ।
१०. १।८४।१४।। पृ० ४१४, भाग १, ऋग्वेद, वेङ्कट माधव भाष्य, लक्ष्मण स्वरूप, मोतीलाल बनारसी दास १९३९ ।
११. पृ० ४००, भाग १, सामवेद, बिबलिओथिका इण्डिका सीरीज ।
१२. १।१०५।१०।। पृ० ६४५, भाग १, ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित, वै० सं० मं०, पूना ।

(१८) तं पुत्रोक्तं वसिष्ठः समापयतेति शाट्यायनकं वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम् इति ।[1]

(१९) तथा च शाट्यायनकं—'त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेत इत्याग्निः पृथिव्यां रेतः कृणोति......... उषसं सचते' इति ।[2]

(२०) अपाला नामक कथा शाट्यायन ब्राह्मण सम्बन्धी है । सायण इस का उल्लेख करता है ।[3] यथा—

(क) एषोऽर्थः शाट्यायनकब्राह्मणे स्पष्टमभिहितः—'सा तीर्थमभ्यवयन्ती.........।८।९१।१॥

(ख) उक्तार्थः शाट्यायनकब्राह्मणे स्पष्टमभ्यधायि—'पुरा मां सर्वयर्चापाला.......८।९१।३॥

(ग) एषोऽर्थः शाट्यायनके प्रपञ्चेनोक्तः—'तामब्रवीदपाले किं कामयसीति......।८।९१।५॥

(घ) शाट्यायनकब्राह्मणे स्पष्टमभिहितः—'तां खे रथस्थात्यबृहत्सा.............।८।९१।७॥

(२१) एषोऽर्थः शाट्यायनकब्राह्मणे प्रतिपादितः—इन्द्रो वासुरान् हत्वा......।[4] वेङ्कटमाधव में भी ऐसा ही पाठ है । सायण कृत सामवेद भाष्य में भी इसका वर्णन है ।[5]

(२२) तथा च शाट्यायनकम्—अथ ह वै.........।[6] सायण अपने सामवेद भाष्य में ऐसा ही वर्णन करता है ।[7]

(२३) तत्र शाट्यायनकं—कुत्सश्च लुशश्चेन्द्रं व्यह्वयेताम्......।[8]

(२४) असमाती कथा का शाट्यायन ब्राह्मणान्तर्गत रूप सायण तथा वेङ्कट माधव के १०।५७।१॥ तथा १०।६०।७॥ से स्पष्ट होता है । लिखा है—

(क) अत्रोक्ताख्याने शाट्यायनकम्—असमातिम् राथप्रौष्ठम्......।१०।५७।१॥

(ख) अत्र शेषे शाट्यायनकम्—'अथाग्निं द्वैपदेन सूक्तेनास्तुवन् ।......इति ।१०।६०।७॥

(२५) अत्र शाट्यायनिन इतिहासमाचक्षते......।[9] इस में त्रित की कथा उद्धृत है ।

(२६) शाट्यायन ब्राह्मणान्तर्गत राजा त्र्यैवृष्ण और उसके पुरोहित वृषजान की कथा को सायण तथा वेङ्कट माधव उद्धृत करते हैं ।[10] यथा—शाट्यायनब्राह्मणोक्त इतिहास इहोच्यते । राजा त्र्यैवृष्ण ऐक्ष्वाकः......।

---

१. ७।३२॥ भूमिका, पृ० ३४०, भाग ३, वही ।
२. ७।३३।७॥ पृ० ३५०, वही ।
३. ८।९१।१,३,५,७॥ पृ०९०४-९०६, वही ।
४. ८।९५।७॥ पृ० ९२८, वही ।
५. पृ० ७१६, भाग १, सामवेद, बिबलिओथिका इण्डिका सीरीज ।
६. ९।५८।३॥ पृ० ७३, भाग ४ ऋग्वेद, सायण भाष्य, वै० सं० मं०, पूना ।
७. पृ० १९, भाग ४, सामवेद ।
८. १०।३८।५॥ पृ० ४०८, भाग ४, ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित ।
९. १।१०५॥ भूमिका, भाग १, पृ० ६४०, वही ।
१०. ५।२।१॥ पृ० ७२४, भाग २, वही तथा वेङ्कट भाष्य भी देखें ।

इन के अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों पर भी शाट्यायन ब्राह्मण उद्धृत है—

(१) (क) कौत्साय तु किंचित्कं देवमिति शाट्यायनिब्राह्मणम् ।[1]

(ख) अपि गिरिम् धावेयुरिति शाट्यायनिब्राह्मणम् ।[1]

(२) आग्नेयीं अग्निष्टुतो निरुक्तां अनिरुक्तेषु वैश्वदेवीं वैश्वदेवे ।[2]

(३) या एवाग्निहोत्रे देवतास्ता औपासने य एवाहिताग्नेर्धर्मः स एव धर्मो य एवाहिताग्नेर्लोकः स एवौपासनिकस्येति शाट्यायनिब्राह्मणं भवति ।[3]

(४) को नामास्य, असौ नामास्मि इति शाट्यायनकम् ।[4]

(५) नानुक्तायाम् सावित्र्याम् प्राश्नियात्......इति शाट्यायनकम् ।[5]

(६) अत्र शाट्यायनकम्—अथ मैधातिथं......इत्याह्वयन्तीति ।[6]

(७) अत्र शाट्यायनकम्—'वृषणश्वस्य मेन इति ।[7]

(८) 'पज्रो वाऽऽङ्गिरसः पशुकामस्तपोऽतप्यत्' इति च शाट्यायनकम् ।[8]

(९) अत्र शाट्यायनकम् । तस्यैव श्लोकः—

'न ता अन्यः प्रतरति नैना विष्णातुमर्हति ।
वहन्ति अस्मै सर्वतो मधु क्षीरं घृतं दधि' ॥
षट्सहस्राण्यम्बय इति ।[9]

(१०) तथा च शाट्यायनकं एकविंशो विषुवान्भवति............।[10]

(११) तत्र शाट्यायनकं 'ऋष्यास इन्द्र............।[11]

(१२) यह ब्राह्मण ग्रन्थ निदान सूत्र में उद्धृत है । यथा—अभ्यास्यायामेकर्चौ, अव एकस्यां प्रथमायाम् अवस्तिसृषु परासु, अवस्तिसृषु पूर्वासु, अवोऽभ्यास्यायामिति शाट्यायनिनः ।[12]

(१३) कात्यायन कृत ऋक्सर्वानुक्रमणी में शक्ति वसिष्ठ कथा का उद्धरण है। यथा—तं पुत्रोक्तं

---

१. २।१।। उपग्रन्थ सूत्र । २. ८।२।। वही ।
३. ३।१८।। पृ० ८६, भारद्वाज गृह्य सूत्र, Salomons, H. J. W., Leyden, 1913.
४. २।५।२५।। पृ० ४३, बौधायन गृह्य सूत्र, आर० शाम शास्त्री सम्पादित, मैसूर, १९२० ।
५. २।५।४३।। पृ० ४५, वही ।
६. १।५१।१।। पृ० २४८, भाग १, ऋग्वेद वेङ्कट माधव भाष्य सहित ।
७. १।५१।१३।। पृ० २५४, भाग १, वही तथा सायण ।
८. १।५१।१४।। पृ० २५५, वही ।
९. १।२३।१६।। पृ० ९४, वही ।
१०. ४।६।५।। पृ० ११९, ताण्ड्य ब्राह्मण, सायण भाष्य सहित, चौ० सं० सी० ।
११. ५।४।१४।। पृ० १५२, वही ।
१२. ९।३।४।।

वसिष्ठः समापयत इति शाट्यायनकम् । सायण भी इसको उद्धृत करता है ।[१] वेङ्कट-माधव इस का मूल रूप देता है ।[२]

(१४) ऋग्वेद के निम्न स्थलों में भी इस के उद्धरण हैं :—

(क) यद्वै पुरुषस्य वित्तं तद्भद्रं गृहा भद्रम् प्रजाभद्रं पशवो भद्रं इति ।[३]

(ख) तथा च शाट्यायनकम् 'अन्नादिनीं ते...... अन्नविन्दः' इति ।[४]

(ग) तथा च शाट्यायनकम् 'सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षते' इति ।[५]

(घ) वेङ्कट माधव शाट्यायनों की च्यवन कथा का वर्णन करता है—अत्र शाट्यायनकम् 'च्यवनो वै भार्गवो'......अयं मम पतिरिति ।[६]

(ङ) यही कथा सायण तथा वेङ्कट माधव द्वारा शाट्यायनकम् तथा वाजसनेयकम् कह कर क्रमशः पुनः उद्धृत है । यथा—शाट्यायनवाजसनेययो। अथच्यवनुवाच.............। वाजसनेयकशाट्यायनकयोरुक्तमिति ।[७]

(च) अत्र शाट्यायनकम् कण्वो वै नार्षदो............।[८]

(छ) अत्र शाट्यायनकम् 'कुत्सो ह वा औरव इन्द्रस्यो............।[९]

(ज) अत्र शाट्यायनकम् 'ऋषयो ह वै............।[१०]

(झ) वेङ्कट माधव छठे अष्टक के दूसरे अध्याय की भूमिका में लिखता है—अत्र शाट्यायनकम्—सा ककुबब्रवीद् बलिष्ठा वाऽहमस्मीति.........।[११]

(ञ) अत्र शाट्यायनकम्—'कतमे ते वसव इत्यग्निश्च पृथिवी च............।[१२]

(ट) अत्र शाट्यायनकम्—अथ ह वै पणयो नामासुरा देवानां...........।[१३]

---

१. ७।३२।। की भूमिका, ऋग्वेद सायण भाष्य सहित ।

२. ७।३२।२६।। पृ० २३७३, भाग ५, ऋग्वेद, होशियारपुर, वेङ्कट माधव भाष्य सहित ।

३. १।१।६।। पृ० ३८, भाग १, ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित, वै० सं० मं०, पूना ।

४. १।६२।३।। पृ० ४२४, भाग १, वही ।

५. १।१०२।६।। पृ० ६२७, वही ।

६. १।११६।१०।। पृ० ६१०, भाग १ वेङ्कट माधव ।

७. १।११६।१२।। पृ० ७२०, भाग १, सायण तथा वेङ्कट माधव, पृ० ६१२, भाग १ ।

८. १।११७।८।। पृ० ६२४, भाग १; वेंकट माधव ।

९. ४।१६।१०।। पृ० १५२१, भाग ३, ऋग्वेद, वि० वै० शोध, सं०, होशियारपुर, १९६३ ।

१०. ५।३१।२।। पृ० १७५६, भाग ४, वही ।

११. पृ० २६५८, भाग ५, वही ।

१२. १०।१९।। पृ० ३२८९, भाग ६, वही ।

१३. १०।१०८।७।। पृ० ३७५९, भाग ७, वही ।

(ठ) कर्करिः इव महाव्रत उक्तो वाद्यविशेषः शाट्यायनके ।[1]

(ड) अत्र शाट्यायनकम्—'सर्पिः क्षीरमामिक्षां दधीत्येतदेवोपनिदधुः इति ।[2]

(१५) अथैनं उदरे विदार्य निरान्त्रम्.........पूरयति इति ।[3]

(१६) अतीर्थं वै दक्षिणानां.........तदायतनम् ।[4]

(१७) यावत्स्तोमेदिति च शाट्यायनकम् ।[5]

(१८) स्वर्दृशम्प्रति निराह ।[5]

(१९) सुकृतिभिरयमलोको नृमादनमन्तरिक्ष भरेण्वसौ ।[6]

(२०) द्वादशं माध्यन्दिनं सवनं त्रिवृति अभितः ।[7]

(२१) तद्वा उद्गातुरेव................प्रतिदधाति ।[8]

(२२) हैमहा इदम्मध्विति च शाट्यायनिनाम् ।[9]

(२३) इन्द्राय शतसहस्राण्यपोन्नं प्रजापतिः प्रायच्छत् ता अम्बय इति शाट्यायनकम् ।[10]

(२४) सोमोभिदघः अन्याभिरोषधिभिरभिसंसृज्येतेति शाट्यायनिब्राह्मणम् ।[11]

(२५) कृष्णगवं स्यादिति शाट्यायनकम् ।[12]

(२६) इति द्वादश मासः इति शाट्यायनकम् ।[13]

शाट्यायन कल्प के प्रमाण निम्न स्थलों में उद्धृत हैं—

(१) तथा च शाट्यायनकः कल्पः................ ।[14] ऐसा बालक्रीडा टीकाकार विश्वरूपाचार्य लिखता है।

---

१. २।४३।३।। पृ० २७८, भाग ३, वेङ्कट ।
२. १०।१०८।९.। पृ० ३७५९, भाग ७, वि० वै० शोध सं०, होशियारपुर ।
३. १।४।। हिरण्यकेशी पितृमेध सूत्र ।
४. १।८।। अनुपद सूत्र ।
५. २।९।। वही ।
६. ३।२।। वही ।
७. ५।९।। वही ।
८. ७।८।। वही ।
९. ७।१०।। वही ।
१०. पृ. ३३, भाग १, अथर्ववेद, सायण भाष्य सहित ।
११. २।८।। उपग्रन्थ सूत्र ।
१२. १।२।। हिरण्यकेशिपितृमेध सूत्र ।
१३. २१।१६।३-४।। आपस्तम्ब श्रौ० सूत्र ।
१४. पृ० ३८, भाग १ ।

(२) सत्याषाढ श्रौत सूत्र पर महादेव कृत वैजयन्ती व्याख्या में लिखा है—शाट्यायनके द्वादशाहधारणं स्वयंहोमाज्यहोमाश्च श्रुता इति ।[१]

(३) इसी श्रौत सूत्र पर गोपीनाथ भट्ट अपनी ज्योत्स्ना व्याख्या में लिखता है—मनुष्यभूतपितृभूतदेवभूतत्वभेदेन त्रैविध्यमृत्विजां शाट्यायनिनोक्तम्-स्वेनैव कर्मणि कर्मणि वृता ये ते मनुष्यभूताः पित्रादिभिर्वृतास्त एव स्वेनैवाङ्गीकृतायेते पितृभूताः स्वेनैव यावज्जीवकर्मार्थं वृता ये ते देवभूता इति ।[२]

(४) खादिर गृह्यसूत्र में एक शाट्यायन कल्प उल्लिखित है ।[३] यथा—एवमकरणे शाट्यायनिप्रोक्तं प्रायश्चित्तं प्राजापत्यया यत्कुसीदमित्यनेन सर्वत्र विकल्पते । तथा—पुनश्च व्याहृतिभिराज्यं जुहुयात् इति शाट्यायानिविधानम् ।

(५) जैमिनीय श्रौत भाष्य में लिखा है—एवमिह शाट्यायन...पे ।[४]

(६) आश्वलायन श्रौत सूत्र में भी एतत्सम्बन्धी एक लम्बा पाठ है ।[५]

(७) द्राह्यायण श्रौत सूत्र में भी इसका वर्णन है ।[६]

अनिश्चित शाखा सम्बन्धी अनुपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ

काल चक्र में हमारा वाङमय पर्याप्त विलुप्त हो चुका है । एक अंश ही अब उपलब्ध है । प्रथानुसार प्रत्येक शाखा के ब्राह्मण होने चाहिएं । उनमें अल्प भेद ही रहता था । अब तो अधिक उद्धरण ही वाङमय में मिल रहे हैं । कहीं नाम दिया गया है, कहीं नाम भी नहीं रहा है । ऐसे भी ब्राह्मण ग्रन्थ हैं जिनका सम्बन्ध किसी शाखा से निश्चित करना सम्भव नहीं है । उनके उद्धरण स्थान स्थान पर मिलते हैं ।

१. आरुणेय ब्राह्मण

अरुण का पुत्र उद्दालक था । उद्दालक गौतम कुल का था । वह उद्दालक आरुणि कहलाता था । एक उद्दालक आरुणि पञ्चाल देश निवासी पारिक्षित जनमेजय के काल में होने वाले धौम्य आयोद का शिष्य था । महाभाष्य में आरुणेय नाम स्मृत है । यथा—आरुणिनः शाट्यायनिनः ।[७]

इस ब्राह्मण का नाम तन्त्र वार्तिक में भी आता है ।[८]

२. सौलभ ब्राह्मण

सुलभ शाखा कदाचित् ऋग्वेद सम्बन्धी थी । इसका अनुमान शाङ्खायन गृह्य सूत्र[९], आश्वलायन गृह्य

---

१. ६।५।। पृ० ५३३, सत्यषाढ श्रौ० सूत्र, आनन्दआश्रम, पूना, १९०७ ।
२. १०।१।। पृ० ९९९, वही ।
३. पृ० २५, २६, खादिर गृह्य सूत्र, रुद्रस्कन्द व्याख्या सहित, मैसूर, १९१३ ।
४. पृ० १४४ ।
५. १।४।१३।।
६. ८।१।१८।।
७. ४।२।१०४।। वार्तिक १९ ।
८. पृ० १६४ ।
९. ४।९।।

सूत्र तथा कौषीतकि ब्राह्मण[1] के ऋषि तर्पण प्रकरण से होता है। वहां सुलभा मैत्रेयी का नाम लिखा है। क्या इसी सुलभा का इस ब्राह्मण से कोई सम्बन्ध था ?

महाभाष्य में इस ब्राह्मण का उल्लेख है—

(१) याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि सौलभानि ।४।२।६६॥

(२) याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि। सौलभानीति ।४।३।१०५॥

अष्टाध्यायी की काशिका वृत्ति में याज्ञवल्क्य आदि अर्वाचीन ब्राह्मणों के साथ सौलभ ब्राह्मण का भी नाम मिलता है।[2] यह सौलभ ब्राह्मण उसी क्षत्रियकुल संभूता ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी सुलभा द्वारा प्रोक्त होगा जिसका विदेह जनक के साथ ब्रह्मविद्या विषयक संवाद हुआ था। क्या यही क्षत्रिय राजकुमारी मैत्रेयी थी। अतः क्या सौलभ ब्राह्मण ऋग्वेद का ब्राह्मण है ?

३. शैलाली ब्राह्मण

अष्टाध्यायी में शैलालक शाखा का संकेत है। लिखा है—पाराशर्येण प्रोक्तमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः। शैलालिनो नटाः। भिक्षुनटसूत्रयोः इति किम्। पाराशरम्। शैलालम्।[3] काशिकाकार अन्यत्र भी इसका वर्णन करता है।[4]

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र में यह ब्राह्मण उद्धृत है—'समुद्रो वा एष यदहोरात्रस्तस्यैते गाधे तीर्थे यत्सन्धीः तस्मात्सन्धौ होतव्यम्' इति शैलालीब्राह्मणं भवति।[5] स्मृतिचन्द्रिका के आह्निक काण्ड में देवणभट्ट आपस्तम्ब श्रौत सूत्र के उद्धरण की पुनरुक्ति करता है।[6]

सुदर्शनाचार्य श्रीभाष्य पर अपनी श्रुतप्रकाशिका टीका में इस ब्राह्मण का एक लम्बा पाठ उद्धृत करता है।[7] अन्य स्थलों में भी वह इसे स्मरण करता है।[8]

क्या यह शाखा ऋग्वेद की थी ?

४. पराशर ब्राह्मण

ऋग्वेदीय बाष्कल चरणान्तर्गत एक पराशर शाखा वर्णित है। व्याकरण महाभाष्य में एक उदाहरण है—पाराशरकल्पिकः।[9] निस्सन्देह यह ऋग्वेदीय पराशर शाखा का कल्प था।

---

१. २।५॥ २. ४।२।६६॥

३. ४।३।११०॥

४. ६।४।१४४॥

५. ६।४।७॥

६. पृ० ४२५, मैसूर, १९१४।

७. पृ० ६८१।

८. पृ० ९०९, ९१०, १३६८।

९. ४।२।६०॥

एक अरुण पराशर ब्राह्मण को कुमारिल अपने तन्त्रवार्तिक में स्मरण करता है—अरुणपराशरशाखा-ब्राह्मणस्य कल्परूपत्वात् ।[1] संभवतः यह अरुणपराशर शाखा इस पराशर शाखा की उपशाखा हो ।[2]

काशिकाकार एक अरुणपराशी कल्प का नाम लेता है ।[3] क्या यह अरुणपराशर शाखा से भिन्न कोई शाखा है ।

बौधायन श्रौत सूत्र के गोत्र प्रकरण में अरुण पराशर नामक एक गोत्र उल्लिखित है ।[4]

क्या यजुर्वेद की भी पराशर शाखा थी ?

५. माषशरावि ब्राह्मण

द्राह्यायण श्रौत सूत्र में लिखा है—'वात आ वातु' इति माषशरावयः ।[5] धन्वी अपनी टीका में लिखता है—माषशराव्यो नाम केचिच्छाखिनः ।[6] वात आ वातु इति त्रिशं स्तोत्रियामाहुरिति ।[6]

पाणिनीय गणपाठ में यह नाम मिलता है ।[7] निदान सूत्र में निम्न पाठ हैं—

(क) तस्याः शश्वन्माषशरावय उत्तरेऽवीयते ।[8]

(ख) 'वात आ वातु' इति माषशरावयः ।[9]

क्या यह सामवेद की शाखा थी ?

६. कापेय ब्राह्मण

काशिकावृत्ति में कापेय आङ्गिरस से भिन्न गोत्र के माने गये हैं ।[10] आङ्गिरस गोत्र वाले काप्य होंगे । बृहदारण्यक उपनिषद् का पतञ्जल काप्य आङ्गिरस गोत्र का होगा ।[11] एक शौनक कापेय जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में उल्लिखित है ।[12] जैमिनीय ब्राह्मण में भी इसी कापेय का गोत्र मिलता है ।[13] कठ संहिता[14] तथा पंचविंश ब्राह्मण[15] में कापेयों का उल्लेख है ।

---

१. पृ० १६४ (९६७)
२. शाबरभाष्य, मीमांसा दर्शन ७।१।८॥
३. ४।२।१०५॥ ४. पृ० ४६८ ।
५. ८।२।३०॥ ६. वही ।
७. ४।१।९॥
८. ८२।३॥
९. ८९।१७॥
१०. ४।१।१०७॥
११. ३।३।१॥
१२. ३।१।२१॥
१३. २।२६८॥
१४. १३।१२॥
१५. २०।१२।५॥

सत्याषाढ श्रौत सूत्र में कापेय शाखा व ब्राह्मण उद्धृत हैं—

(क) नासोमयाजी संनयेदथो खल्वाहुः कापेयाः संनयमेवासोमयाजिनेति ।[1]

(ख) यदि कापेयी पश्वेकादशिनी स्यादभित ....।[2]

(ग) तामेतां कापेया विदुस्तामतिरात्रचरम् प्रालभेत ।[3]

काठक संहिता २६।१०॥ में भी कापेयों का नाम मिलता है। क्या कापेयों के कुछ अत्यन्त प्राचीन ब्राह्मण थे।

क्या यह सामवेद की शाखा का ब्राह्मण है?

७. रहस्याम्नाय ब्राह्मण

यह किस शाखा का ब्राह्मण था, अभी निर्धारण करना कठिन है। इसका एक ही उद्धरण स्मृति-रत्नाकर में मिलता है।[4]

८. निरुक्त ब्राह्मण

वेदान्त देशिक कृत न्यायपरिशुद्धि में एक निरुक्त शाखा का वर्णन है।[5] तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य में अद्भ्यस्संभूत वाक्य पर निरुक्त ब्राह्मण उद्धृत है।[6]

९. अन्वाख्यान ब्राह्मण

अगस्त ११ सन् १९२५ के एक पत्र में डाक्टर कालेण्ड ने मुझे लिखा था—

I have discovered the most curious fact, that to our Vadhula sutra belongs a special Brahmana, called Anvakhyana. Not only this simple fact but the text itself is of the highest interest. The Vadhula sutra pre-supposes the Taittiriya Brahmana (or at least a text nearly identical with it) and the Anvakhyana contains secondary brahmanas.

अर्थात्—मुझे इस अत्यन्त अद्भुत बात का पता लगा है कि हमारे वाधूल सूत्र का सम्बन्ध अन्वाख्यान नाम के एक ब्राह्मण विशेष से है। यही बात नहीं, प्रत्युत यह ग्रन्थ है भी बहुत रोचक।

वाधूल सूत्र का तैत्तिरीय ब्राह्मण से तो सम्बन्ध है ही, पर अन्वाख्यान भी एक अनुब्राह्मण माना जा सकता है।

इसके पश्चात् सन् १९२६ में डाक्टर कालेण्ड ने एक्टा ओरियण्टेलिया के चतुर्थ भाग में अन्वाख्यान के ४६ लम्बे उद्धरण अपने अनुवाद सहित प्रकाशित कर दिये थे।

पीछे पृष्ठ २० के अन्त में हम लिख चुके हैं कि सायण के अनुसार ताण्ड्य ब्रा० २।८।३॥; २।१५।४॥

---

१. १।४॥ पृ० १०२, भाग १, आनन्दाश्रम, पूना, १९०७।
२. ९।८॥ पृ० ९८३, वही।
३. ९।८॥ पृ० ९८४, वही।
४. पृ० ७४।
५. पृ० २९२।
६. पृ० १२७, १७८।

और ३।६।४।। पर त्रिखर्व और करद्विष शाखाओं का वर्णन है। इन दोनों शाखाओं के भी कोई ब्राह्मण अवश्य होंगे।

कवीन्द्राचार्य सरस्वती के पुस्तकालय का जो सूचीपत्र बड़ोदा से प्रकाशित हुआ है, उसके प्रथम पृष्ठ पर बाष्कल ब्राह्मण और माण्डूकेय ब्राह्मण के नाम मिलते हैं।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यत्न करने पर इन ब्राह्मणों में से भी कुछ एक के हस्तलेख अभी प्राप्त हो सकते हैं।

कुछ और लुप्त ब्राह्मण ग्रन्थ

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र, बौधायन धर्म सूत्र, वासिष्ठ धर्म सूत्र, आपस्तम्ब धर्म सूत्र, आदि ग्रन्थों में वाजसनेय और बह्वृच आदि नाम लेकर कई ब्राह्मण वाक्य उद्धृत किये गये हैं। ये ब्राह्मण वाक्य बह्वृचों और वाजसनेयकों के ज्ञात ब्राह्मणों में नहीं मिलते। प्रतीत होता है बह्वृच और वाजसनेय संहिता वालों के भी अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ थे। दोनों शतपथों के अतिरिक्त जाबाल ब्राह्मण का उल्लेख हम पहले कर आये हैं। इन तीनों के अतिरिक्त वाजसनेयकों के अवश्य ही और भी ब्राह्मण ग्रन्थ थे। सम्भव है, उनमें से भी कई एक का नाम शतपथ हो और किसी का नाम षष्टिपथ भी हो।

बौधायन धर्मसूत्र २।६ ८।। में जो ब्राह्मण-प्रमाण दिया गया है, वह वाजसनेयकों के ही किसी लुप्त ब्राह्मण का है, कारण कि वह शतपथ ११।५।६।३।। से बहुत ही मिलता है। इस ब्राह्मण वाक्य में भी पुनर्मृत्यु शब्द से पुनर्जन्म का प्रमाण मिलता है।

इस के अतिरिक्त भी अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं, विशेष कर प्राचीन टीकायें, जिन में बहुत से अज्ञात ब्राह्मणों के वचन पाये जाते हैं। उन में से कई एक तो वैदिक विचारों पर बहुत सा प्रकाश डालते हैं।

यदि अज्ञात ब्राह्मणों के सम्प्राप्त प्रमाण एक स्थल पर एकत्र कर दिए जावें, तो वेदाभ्यासियों का बड़ा उपकार होगा।

चौथा अध्याय

ब्राह्मण-ग्रन्थों के समकालीन आचार्य व राजा

ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रवक्ता अनेकों आचार्य थे। उनमें से अधिकांश का इतिहास अनेकों ब्राह्मण ग्रन्थों के लुप्त हो जाने के कारण नष्ट हो गया है। उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित आचार्य व राजा समकालीन थे। उन सब का किंचित् इतिवृत्त जानने से ब्राह्मण ग्रन्थों के संकलन-काल का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। समकालीन से अभिप्राय प्रायः तीन पीढ़ी अथवा लगभग दो सौ वर्ष है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है—जनको ह वैदेहः ब्राह्मणैर्धावयद्भिः समाजगाम। श्वेतकेतुनारुणेयेन, सोमशुष्मेण, सात्ययज्ञिना, याज्ञवल्क्येन।[1] अर्थात् विदेह के राजा जनक का एक साथ जाते हुए श्वेतकेतु आदि ब्राह्मणों से समागम हुआ। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि—

१. जनक,

२. श्वेतकेतु आरुणेय,

३. सोमशुष्म सात्ययज्ञि, इसी का उल्लेख तदु होवाच सात्ययज्ञिः कह कर भी किया गया है।[2]

४. याज्ञवल्क्य समकालीन थे। यही परिणाम और प्रकार से भी निकलता है। शतपथ ब्राह्मण में एक गुरु शिष्य परम्परा दी है। लिखा है—तँ७ हैतमुद्दालक आरुणिः। वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिन उक्त्वोवाच·········।[3] अर्थात् उस को उद्दालक आरुणि अपने शिष्य वाजसनेय याज्ञवल्क्य के लिए बोला। इस वर्णन से निम्न परम्परा स्पष्ट होती है—

५. उद्दालक आरुणि
|
४. वाजसनेय याज्ञवल्क्य
|
६. मधुक पैङ्ग्य
|
७. चूड भागवित्ति
|
८. जानकि आयस्थूण
|
९. सत्यकाम जाबाल

---

१. ११।६।२।१॥ श० ब्रा०।
२. १३।५।३।६॥ श० ब्रा०।
३. १४।६।३।१५-२०॥; १४।६।४।३३॥ श० ब्रा०।

श्वेतकेतु आरुणेय उद्दालक आरुणि का पुत्र था। छान्दोग्य उपनिषद् में भी लिखा है—श्वेतकेतुर्हारुणेय आस। तँ ह पितोवाच……[1] तथा—उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच……।[2] उद्दालक आरुणि का शिष्य वाजसनेय याज्ञवल्क्य था। अतः गुरुपुत्र होने से श्वेतकेतु याज्ञवल्क्य का भ्राता ही था। जनक की महती सभा में गुरु उद्दालक भी शिष्य याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछता है—अथ हैनमुद्दालक आरुणिः प्रपच्छ याज्ञवल्क्यः।[3] याज्ञवल्क्य के समान यह भी संन्यासी हो गया था। जाबाल उपनिषद् में लिखा है—परमहंसनाम संवर्तकारुणिः श्वेतकेतुः।[4] ऐसा ही उल्लेख नारदपरिव्राजकोपनिषद् में भी है।[5]

मधुक पैङ्ग्य ही पैङ्ग्य नाम से शतपथ तथा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में उद्धृत है।[6] लिखा है—एतद्ध स्म तद्विद्वानाह पैङ्ग्य।[7] अर्थात् यह जानते हुए पैङ्ग्य बोला। इसी का उल्लेख सम्भवतः मधुक नाम से भी हुआ है।[8]

सत्यकाम जाबाल जनक को उपदेश दे गया था। उसी उपदेश को याज्ञवल्क्य जनक से सुन रहा था। जनक कहता है—अब्रवीन्मे सत्यकामो जाबालः।[9] इसी का कथन अन्यत्र भी किया गया है—इति ह स्माह सत्यकामो जाबालः।[10] सत्यकाम जाबाल का सतीर्थ सुदक्षिणः क्षैमि जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में वर्णित है।[11]

१०. चित्त शैलन उपरिलिखित जनक का समकालीन था। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—चित्तो ह वै शैलनो जनकं वैदेहं समूदे।[12] अर्थात् चित्त शैलन जनक वैदेह से बोला।

११. आजातशत्रु भद्रसेन उद्दालक आरुणि का समकालीन था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—भद्रसेनमाजातशत्रवमारुणिरभिचचार।[13] अर्थात् अजातशत्रु के पुत्र भद्रसेन पर आरुणि ने अभिचार कर्म किया।

१२. चित्र गार्ग्यायणि[14] ने उद्दालक को स्वयज्ञार्थ वरा था। कौषीतकि उपनिषद् में लिखा है—चित्रो ह वै गार्ग्यायणिर्यक्ष्यमाण आरुणिं वव्रे। स ह पुत्रं श्वेतकेतुं प्रजिगाय याजयेति।[15] अर्थात् यज्ञ करने की

---

१. ६।१।१॥ २. ६।८।१॥
३. १४।६।७।१॥ श० ब्रा०।
४. ६, जाबालोपनिषद्।
५. ८६, नारदपरिव्राजकोपनिषद्।
६. १२।२।२।४॥; १४।६।३।१६॥ श० ब्रा०।
७. १२।३।१।८॥ श० ब्रा०।
८. १६।९॥ कौ० ब्रा०; १।२४॥ बृहद्देवता।
९. १४।६।१०।१४॥ श० ब्रा०।
१०. १३।५।३।१॥ श० ब्रा०।
११. पृ० ९०, ९१।
१२. १।२४५॥ जै० ब्रा०।
१३. ५।५।५।१४॥ श० ब्रा०।
१४. कई सम्पादकों ने यहां गाङ्ग्यायनि पाठ शुद्ध माना है। जै० ब्राह्मण २।३॥ में गार्ग्यायणि पाठ ही मिलता है।
१५. १।१॥

इच्छा करने वाले चित्र गार्ग्यायणि ने आरुणि को वरा। वह पुत्र श्वेतकेतु को बोला, तुम यज्ञ कराओ। इसी का पिता अरुण औपवेशि था। शतपथ ब्राह्मण[1] तथा मैत्रायणी संहिता[2] से यह स्पष्ट है।

१३. कहोल कौषीतक उद्दालक आरुणि का शिष्य था। शांखायन आरण्यक में लिखा है—कहोलः कौषीतकिरुद्दालकावारुणेः.........।[3]

१४. हारिद्रुमत गौतम सत्यकाम जाबाल का एक गुरु था। लिखा है—स (सत्यकामो जाबालः) ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच।[4]

१५. वैश्वासव्य एक बार श्वेतकेतु आरुणेय का होता बना था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—श्वेतकेतुर्हारुणेयः। यक्ष्यमाण आस।.........स होवाचयान्नेव मे वैश्वासव्यो होतेति।[5]

१६. पञ्चालाधिपति प्रवाहण जैवलि के पास श्वेतकेतु आरुणेय गया था। लिखा है—श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाँ समितिमेयाय। तँह प्रवाहणो जैवलिरुवाच।[6] लगभग ऐसा ही पाठ बृहदारण्यक उपनिषद् में भी है।[7] मनुभाष्यकार मेधातिथि ३।१४०।। में किसी लुप्त ब्राह्मण से श्वेतकेतु सम्बन्धी एक पाठ उद्धृत करता है—श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः। अस्ति मे पञ्चालेषु क्षत्रियो मित्रम् इति।

१७. शातपर्णेय धीर इसी जाबाल के पास गया था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—धीरो ह शातपर्णेयः। महाशालं जाबालमुपोत्ससाद।[8]

१८. अश्विद्वय ने श्वेतकेतु की चिकित्सा की थी। उस समय श्वेतकेतु ब्रह्मचारी था। याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका में विश्वरूपाचार्य लिखता है—तथा च चरकाः पठन्ति—श्वेतकेतु हारुणेयं ब्रह्मचर्यं चरन्तं किलासो जग्राह। तमश्विनावूचतुः। 'मधुमांसौ किल ते भैषज्यम्' इति।[9] अर्थात् श्वेतकेतु आरुणेय को, जब वह ब्रह्मचारी था, किलास (एक प्रकार का कुष्ठ) रोग हुआ। उसे अश्विद्वय बोले कि मधु और मांस तेरा औषध है।

१९, २०. शिलक शालावत्य और चैकितायन दाल्भ्य से प्रवाहण जैवलि का संवाद हुआ था। छान्दोग्य उपनिषद् में निम्नलिखित वाक्य से आरम्भ करके उन का संवाद कहा है—त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः। शिलकः शालावत्यः। चैकितायनो दाल्भ्यः। प्रवाहणो जैवलिः।[10] अर्थात् तीनों ही उद्गीथ में कुशल थे। शिलक शालावत्य, चैकितायन दाल्भ्य और प्रवाहण जैवलि। चैकितायन दाल्भ्य का कथन छान्दोग्य उपनिषद्

---

१. १४।९।४३३।। श० ब्रा०।
२. १।४।१०।।; ३।६।७।। मै० सं०।
३. १५।१।। शांखायन आरण्यक।
४. ४।४।३।। छा० उप०।
५. १०।३।४।१।। श० ब्रा०।
६. ५।३।१।। छा० उपनिषद्। तुलना करें १४।९।१।१।। श० ब्रा०।
७. ६।२।१।। बृ० उप०।
८. १०।३।३।१।। श० ब्रा०।
९. १।३२।। यह उद्धरण पहले भी दिया गया है।
१०. ६।२।३।।

में भी किया गया है।[1] क्या यही दाल्भ्य भारत युद्ध के पश्चात् तथा कृष्ण परलोक गमन के पश्चात् भी जीवित था।[2]

२१. बक दाल्भ्य का भ्राता चैकितायन दाल्भ्य प्रतीत होता है।

२२. ग्लाव मैत्रेय तथा बक दाल्भ्य का उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् में है। लिखा है—अथातः शौव उद्गीथः। तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज।[3] इसी का उल्लेख षड्विंश ब्राह्मण में भी मिलता है।[4]

२३. मौद्गल्य, ग्लाव मैत्रेय का गुरु था। गोपथ ब्राह्मण के पूर्व भाग में लिखा है—एतद्ध स्मैतद्विद्वांसमेकादशाक्षं मौद्गल्यं ग्लावो मैत्रेयोऽभ्याजगाम्।१।३१॥

२४. केशी दार्भ्य, चैकितायन दाल्भ्य तथा बक दाल्भ्य का भ्राता प्रतीत होता है। लिखा है—केशी ह दार्भ्यो दीक्षितो निषसाद।[5] दाल्भ्य और दार्भ्य में कोई भेद नहीं है। प्रदेश विशेष में ग्रन्थ लिखे जाने के कारण ही ल् और र का भेद हो गया है।[6]

२५. केशी सात्यकामि ने केशी दार्भ्य को उपदेश दिया था। मैत्रायणी संहिता में लिखा है—एतद्ध स्म वा आह केशी सात्यकामिः केशिनं दार्भ्यम्।[7] तैत्तिरीय संहिता में लिखा है—केशिनँ ह दार्भ्यं केशी सात्यकामिरुवाच।[8] इसी भाव का पाठ गोपथ ब्राह्मण में भी है।[9]

२६. षण्डिक औद्भारि से केशी दार्भ्य ही कहता है—ततः केशी षण्डिकमौद्भारिमभ्यवदत्।[10]

२७. दर्भ उपर निर्दिष्ट दार्भ्यों का पिता था। इसका वर्णन जैमिनीय ब्राह्मण में मिलता है। लिखा है—दर्भमु ह वै शातानीकिं पाञ्चाला राजानं सन्तं नापचायां चक्रुः।[11]

२८. सुत्वा याज्ञसेन तथा केशी दार्भ्य समकालीन थे। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—केशी ह दार्भ्यो दर्भपर्णयोर्विदीक्षे। अथ ह सुत्वा याज्ञसेनो हंसो हिरण्मयो भूत्वा यूप उपविवेश।[12]

२९. अहीनस् आश्वत्थि केशी दार्भ्य और केशी सात्यकामि का पुरोहित था। जैमिनीय ब्राह्मण

---

१. १।८।१॥
२. पृ० १४२, मत्स्य पुराण।
३. १।१२।१॥
४. १।४।६॥
५. ७।५॥ कौषीतकि ब्राह्मण।
६. मैत्रायणी संहिता २।१।३॥ में एक रथप्रोत दार्भ्य का उल्लेख है।
७. १।६।५॥ मै० सं०।
८. २।६।२॥ तै० सं०।
९. ३।६॥ पूर्व भाग।
१०. १।४।१२॥ मै० सं०।
११. २।१००॥ जै० ब्रा०।
१२. २।५३॥ जै० ब्रा०।

में लिखा है—अथ हाहीनसमाववर्तिथ केशी दार्भ्यः केशिनः सात्यकामिनः पुरोधाया अपरुरोध। स ह स्थविरतरोऽहीना आस कुमारतरः केशी।[1]

३०. शौनक स्वैदायन का उद्दालक आरुणि से विचार हुआ था। शतपथ ब्राह्मणान्तर्गत निम्न पाठ इस को स्पष्ट करता है—उद्दालको हारुणिः.........। हन्तैनं ब्रह्मोद्यमाह्वयामहा इति केन वीरेणेति। स्वैदायनेनेति। शौनको ह स्वैदायन आस।[2] इसी भाव का पाठ गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग में भी है।[3]

३१. शौचेय प्राचीनयोग्य उद्दालक आरुणि के पास गया था। शतपथ ब्राह्मण में ही लिखा है—शौचेयो ह प्राचीनयोग्यः। उद्दालकमारुणिमाजगाम ब्रह्मोद्यमग्निहोत्रं विविदिषिष्यामीति।[4]

३२. प्रोति कौशाम्बेय कौसुरुबिन्दि ने अपना ब्रह्मचर्यवास उद्दालक के समीप ही किया था। लिखा है—प्रोतिर्ह कौशाम्बेयः। कौसुरुबिन्दिरुद्दालक आरुणौ ब्रह्मचर्यमुवास।[5] इसी का वर्णन गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग में भी है। लिखा है—प्रेदिर्ह वै कोषाम्बेयः कौसुरविन्दुरुद्दालके आरुणौ ब्रह्मचर्य्यमुवास।[6] इन दोनों में से शतपथ ब्राह्मण का पाठ शुद्ध और प्राचीन प्रतीत होता है।

३३. कुसुरुबिन्द उपरिवर्णित प्रोति कौसुरुबिन्दि का पिता तथा उद्दालक का पुत्र व शिष्य ही था। तैत्तिरीय संहिता में निम्न पाठ है—कुसुरुबिन्द औद्दालकिरकामयत।[7] इसी का नाम षड्विंश-ब्राह्मण में भी मिलता है।[8] ब्राह्मणों को वेद मानने वाला शबर स्वामी मीमांसा सूत्र १।१।२८॥ पर लिखता हुआ यही तैत्तिरीय संहिता का प्रमाण पूर्व पक्ष में रख कर लिखता है कि यह व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। ताण्ड्य ब्राह्मण में भी इसी के विषय में लिखा है—एतेन वै कुसुरुबिन्द औद्दालकिरिष्ट्वा भूमानमाश्नुत।[9] इस का नाम जैमिनीय ब्राह्मण में भी मिलता है। यथा—कुसुरुबिन्दो हौद्दालकिस्सोमानामुज्जगौ।[10]

३४. जीवल चैलकि इसी आरुणि का समकालीन था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—तदु होवाच जीवलश्चैलकिः। गर्भमेवारुणिः करोति न प्रजनयतीति।[11]

३५. प्राचीनशाल औपमन्यव

३६. सत्ययज्ञ पौलुषि

---

१. १।२८५॥ जै० ब्रा०, रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, नागपुर, १९५४।
२. ११।४।१।१-२॥ श० ब्रा०, पृ० ११५७, भाग २, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी।
३. ३।६॥ पृ० ३८, जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८९१।
४. ११।५।३।१॥ श० ब्रा०, पृ० ११७४, भाग २, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी।
५. १२।२।२।१३॥ श० ब्रा०, पृ० १२८१, वही।
६. ४।२४॥ पृ० ६१।
७. ७।२।२॥ पृ० २९९, तैत्तिरीय संहिता, सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल।
८. १।४।१६॥
९. २२।१५।१०॥
१०. १।७५॥ पृ० ३३, रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, नागपुर, १९५४।
११. २।३।१।३४॥ पृ० १८३, भाग १, श० ब्रा०, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी।

३७. इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय

३८. जनशार्कराक्ष्य तथा

३९. बुडिल आश्वतराश्वि। ये पांच महाश्रोत्रिय उद्दालक आरुणि के समीप गए थे। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विः......। ते ह संपादयां चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति।[1]

लगभग ऐसा ही पाठ शतपथ ब्राह्मण में पाया जाता है—अथ हैतेऽरुणे औपवेशो समाजग्मुः। सत्ययज्ञः पौलुषिर्महाशालो जाबालो बुडिल आश्वतराश्विरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यः.......। ते होचुः। अश्वपतिर्वा अयं कैकेयः सम्प्रति वैश्वानरं वेद।[2]

सत्ययज्ञ पौलुषि का ही पुत्र उपरिलिखित संख्या ३ का सोम शुष्म प्रतीत होता है।

बुडिल आश्वतराश्वि का ही संख्या १ के जनक से संवाद हुआ था। लिखा है— एतद्ध वै तज्जनको वैदेहः। बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच।[3]

छान्दोग्य उपनिषद् में जिसे प्राचीनशाल औपमन्यव कहा है, उसे ही शतपथ में महाशाल जाबाल कहा है। ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के प्रतीत होते हैं। शतपथ ब्राह्मण के इसी प्रमाण के आगे छठी कण्डिका में लिखा है—अथ होवाच महाशालं जाबालम्। औपमन्यव। यह औपमन्यव विशेषण दोनों स्थानों में समान है। इस से भी इस अनुमान की पुष्टि होती है कि प्राचीनशाल औपमन्यव महाशाल जाबाल ही है। कदाचित् गोपथ ब्राह्मण के पूर्व भाग ३।११॥ में प्राचीन योग्य इसी का नाम है।

४०,४१. जीवल कारीरादि तथा आषाढ सावयस[4] इन्हीं आरुणि और इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय के साथी थे। यथा— अथैतेषां महतां ब्राह्मणानां समुदितम्। आरुणेर्जीवलस्य कारीरादेराषाढस्य सावयसस्येन्द्रद्युम्नस्य भाल्लवेयस्येति। जीवलश्च ह कारीरादिरिन्द्रद्युम्नश्च भाल्लवेयस्तौ[5] हारुणेराचार्यस्य सभाग आजग्मतुः।...स होवाचाषाढ आमारुणे यत्सहैव ब्रह्मचर्यमचराव।[6]

४२. महाराज अश्वपति के पास संख्या ३५ से ४० तक के पांच जिज्ञासुओं को उद्दालक आरुणि लेकर आया था। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति।[7]

४३, ४४. बर्कु वार्ष्ण तथा प्रिय जानश्रुतेय भी आरुणि के समकालीन थे। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—आरुणिर्वाजसनेयो बर्कुर्वार्ष्णः प्रियो जानश्रुतेयो बुडिल आश्वतराश्विर्वैयाघ्रपद्य इत्येते ह पञ्च महाब्रह्मा

१. ५।११।१-२॥ पृ० १२९-३०, अष्टादश उपनिषदः, वै० सं० मं०, पूना।

२. १०।६।१।१-२॥ पृ० १११४, भाग २, श० ब्रा०।

३. १४।८।१५।११॥ पृ० १५१२, भाग २, श० ब्रा०।

४. तुलना करें जै० ब्रा० (प्रो० कालेण्ड का सार १६४)—तद्धु होवाचारुणिराषाढं सावयसमुत्सृजमानम्।

५. इसी का उल्लेख श० ब्रा० २।१।४।६॥ में है।

६. १।२७१॥ पृ० ११२-११३, जै० ब्रा०, रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, नागपुर, १९५४।

७. ५।११।४॥ पृ० १३०, अष्टादश-उपनिषदः, वै० सं० मं०, पूना।

आसुः । ते होचुर्जनको वा अयं वैदेहोऽग्निहोत्रेऽनुशिष्टः ।[1] इस प्रमाण से बहुत स्पष्ट हो जाता है कि उद्दालक आरुणि, याज्ञवल्क्य वाजसनेय, वर्कुंवार्ष्ण, प्रिय जानश्रुतेय, और बुडिल आश्वतराश्वि, जनक वैदेह के समकालीन थे।

ऐतरेय ब्राह्मण के कुछ अधिक पुराना होने में कीथ के हेतु का खण्डन करते हुए ऊपर पृष्ठ १२ पर लिखा था कि ऐतरेय ब्राह्मण[2] में बुडिल आश्वतराश्वि का उल्लेख है। पूर्वोक्त जैमिनीय ब्राह्मण के प्रमाण अनुसार यह बुडिल आश्वतराश्वि आरुणि का समकालीन है।

४५. खर्गल

४६. उद्भार

४७. गङ्गिना राहक्षित तथा

४८. लुषाकपि खार्गलि संख्या २८ के केशी सात्यकामि के समकालीन थे। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—अथैष परिक्रीः। खण्डिकश्च हौद्भारिः केशी च दार्भ्यः पञ्चालेषु पस्पृधाते। स ह खण्डिकः केशिनमभिप्रजिघाय। ...... तस्य हैते ब्राह्मणा आसुः। अहीना आश्वत्थिः केशी सात्यकामिर्गङ्गिना राहक्षितो लुषाकपिः खार्गलिरिति।[3] यह खण्डिक औद्भारि संख्या ३७ का षण्डिक औद्भारि ही है।

४९. सुदक्षिण क्षैमि संख्या एक में वर्णित जनक वैदेह का समकालीन था। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—तेन हैतेन जनको वैदेह इत्य क्षांचत्रे। तम ह ब्राह्मणा अभितो निषेदुः। स ह पप्रच्छ—क स्तोम इति। स होवाच सुदक्षिणः क्षैमिः।[4]

५०. हिरण्मय शकुन केशी दार्भ्य का साथी था। लिखा है—केशी ह दार्भ्यो दीक्षितो निषसाद। तं ह हिरण्मयः शकुन आपत्योवाच।[5]

५१. शिखण्डी याज्ञसेन सुत्वा याज्ञसेन का भ्राता प्रतीत होता है।

५२, ५३. आसोल वार्ष्णिवृद्ध तथा इटन् काव्य शिखण्डी याज्ञसेन के साथी थे। कौषीतकी ब्राह्मण में ही लिखा है—स ह स आस। उलो वा वार्ष्णवृद्ध इटन्वा काव्यः शिखण्डी वा याज्ञसेनः। यो वा स आस स स आस।[6]

५४. गौश्ल बुडिल आश्वतराश्वि का साथी था। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—स ह बुलिल आश्वतर् आश्विर्वैश्वजितो होता सन्नीक्षांचक्रे ....तद्ध तथा शस्यमाने गौश्ल आजगाम।[2] यही परिणाम और प्रकार से भी निकलता है। गौश्ल और गौश्र एक ही नाम है। उपरिलिखित मधुक पैङ्ग्य इसी गौश्र का समकालीन था। कौषीतकि ब्राह्मण में लिखा है—किं देवत्यः सोम इति मधुको गौश्रं प्रपच्छ।[7]

---

१. १।२२॥ पृ० २१।
२. ६।३०॥ पृ० १७९, ऐतरेय ब्राह्मण, आफरेक्ट, बौन, १८७९।
३. २।१२२॥ पृ० २१२, जै० ब्रा०।
४. २।११३॥ पृ० २०८, जै० ब्रा०, रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, नागपुर, १९५४।
५. ७।४॥ कौषीतकि ब्राह्मण।
६. ७।५॥ कौषीतकि ब्राह्मण।
७. १६।९॥ पृ० ७७, कौषीतकि ब्रा०।

५५. गलुना आर्क्षाकायण आरुणि का साथी था। लिखा है—ता हैता गलुना आर्क्षाकायणः शालापत्य आरुणेरधिजगे।[1]

५६. ब्रह्मदत्त चैकितानेय गलुना आर्क्षकायण का साथी तथा

५७. ब्रह्मदत्त प्रासेनजित राजा का समकालीन था। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—तद्ध तथा गायन्तं ब्रह्मदत्तं चैकितानेयं गलुना आर्क्षाकायणोऽनव्याजहार।...अथ ह ब्रह्मदत्तं चैकितानेयं ब्रह्मदत्तः प्रासेनजितः कौसल्यो राजा पुरो दधे।[2]

५८. उपकोसल कामलायन संख्या ६ के सत्यकाम जाबाल का शिष्य था। छान्दोग्य उपनिषद में लिखा है—उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास।[3]

अनेकों अन्य नाम इस सूची में जोड़े जा सकते हैं। ये महाश्रोत्रिय, सत्यवक्ता, आचार्य व राजगण लगभग समकालिक थे। इन में से पुलुष, अजातशत्रु, शतानीक पहली पीढ़ी में, उद्दालक, सत्ययज्ञ, भद्रसेन, हरिद्रुमत गौतम, जीवल, दर्भ, मौद्गल्य, यज्ञसेन, शौनक स्वैदायन तथा शौचेय प्राचीनयोग्य आदि दूसरी पीढ़ी में तथा शेष आचार्य व राजगण लगभग तीसरी पीढ़ी में होते हैं।

---

१. १।३१६॥ पृ० १३२, जै० ब्रा०, रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, नागपुर, १९५४।

२. १।३३७-३३८॥ पृ० १४०, वही।

३. ४।१०।१॥ पृ० ११५, अष्टादश-उपनिषदः, वै० सं० मं०, पूना।

पांचवां अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन काल

ब्राह्मण ग्रन्थों की मौलिक सामग्री प्राचीन काल से चली आ रही है। शतपथ ब्राह्मण[1] तथा बृहदारण्यक उपनिषद[2] में वर्णित वंश ब्राह्मणों के अनुसार ब्राह्मण वाक्यों का ज्ञात आदि-प्रवचन कर्त्ता ब्रह्मा अथवा स्वयम्भु-ब्रह्म हुआ है। प्रजापति तथा मन्वादि महर्षियों ने अनेक ब्राह्मण वाक्यों का प्रवचन किया था। चारायणीय मन्त्रार्षाध्याय में लिखा है—आधानं ब्राह्मणं प्रजापतेः। इष्टिब्राह्मणानि प्रजापतेः।[3] काठक संहिता में एतत्सम्बन्धी एक अन्य उद्धरण है—आपो वा इदं निरमृजन्। स मनुरेवोवशिष्यत। स एतामिष्टिमपश्यत्तामाहरत्तयायजत ....।[4] ऐसा ही तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख है।[5] इसी प्रकार अन्य ऋषि भी समय समय पर इन ब्राह्मणों के पाठों का प्रवचन करते आए हैं। इन सब का संकलन महाभारत काल अर्थात् द्वापर के अन्त या कलि के आरम्भ में भगवान् कृष्ण-द्वैपायन वेद-व्यास तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों ने किया था। महाभारत काल से हमारा अभिप्राय महाभारत-युद्ध के लगभग सौ वर्ष पूर्व तथा सौ वर्ष पीछे का काल है। शंकर अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में लिखता है—तथा हि-अपान्तरतमानाम वेदाचार्यः पुराणर्षिर्विष्णुनियोगात्कलिद्वापरयोः संधौ कृष्ण-द्वैपायनः संबभूवेति स्मरन्ति।[6] अर्थात् भगवान् श्री कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यास का काल द्वापर कलि की संधि है।

शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पाए जाते हैं, जो महाभारत काल से कुछ ही पहले के थे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

(क) तेन हैतेन भरतो दौःषन्तिरीजे.........। तदेतद् गाथयाभिगीतम्—
अष्टासप्ततिं भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु।[7]
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतँ हयानिति ॥११॥

---

१. १०।६।५।९॥; १४।४।३।२८॥ श० ब्रा०, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी।

२. ४।६।३॥; ६।५।४॥ बृ० उप०, अष्टादश-उपनिषदः, वै० सं० मं०, पूना।

३. ९।११॥

४. ११।२॥

५. ३।१।९।३०॥

६. ३।३।३२॥

७. वनपर्व ८८।८॥ से इसकी तुलना करें।

(ख) शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे...॥१३॥

(ग) महदद्य भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यान्नोदापुः पञ्च मानवा इति ॥१४॥

(घ) शतानीकः समन्तासु मेध्यँसात्राजितो हयम् ।]
आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिवेति ॥२१॥[1]

ऐसा ही ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है । यथा—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौःषन्तिमभिषिषेच ।
.........तदप्येते श्लोका अभिगीताः ।

हिरण्येन परीवृतान् कृष्णान् शुक्लदतो मृगान् ।
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्धानि सप्त च ॥
भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचिगुणे चितः ।
यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मणा बद्धशो गा विभेजिरे ॥
अष्टासप्ततिं भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु ।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान् ॥
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजाऽश्वान् बध्वाय मेध्यान् ।
दौःषन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायावत्तरः ॥
महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्च मानवाः इति ॥[2]

इन गाथाओं=यज्ञगाथाओं=श्लोकों[3] में वर्तमान दौष्यन्ति भरत, शतानीक और शकुन्तला नाम स्पष्ट महाभारत-काल से कुछ पहले होने वाले व्यक्तियों के हैं । अतः शतपथादि ब्राह्मण इन व्यक्तियों के पश्चात् ही संकलित हुए, ऐसा मानना युक्तियुक्त है ।

पूर्वपक्षी कहता है—(क) ये सब नाम यौगिक होने से अपने धात्वर्थ मात्र का निर्देश करते हैं ।

(ख) दुःष्यन्त, भरत, शतानीक, शकुन्तला आदि नाम व्यक्ति-वाची नहीं हैं, प्रत्युत जातिवाची हैं । जैसे गौ, अश्व, पुरुष, हस्ति आदि नाम जातिवाची हैं, ऐसे ही अनेक कल्पों में होने वाले दुःष्यन्त, भरत आदिकों के लिये, यह भी जातिवाची नाम हैं । अतएव ऐसे नामों के ब्राह्मणों में आने से ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत कालीन नहीं कहे जा सकते ।

इस पर कथन है—(क) जो यज्ञगाथायें हम ने प्रमाणार्थ उद्धृत की हैं, वे सब पौरुषेय हैं । उन के

१. १३।५।४॥ पृ० १३६३, १३६४, श० ब्रा०, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी ।

२. ८।२३॥ पृ० २३०, ऐ० ब्रा० । आफरेक्ट, बौन, १८७६ ।

३. ऐतरेय ८।२३॥ जिसे श्लोक कहता है शतपथ १३।५।४।१४॥ उसे गाथा कहता है, और जैमिनीय १।२५८॥ जिसे श्लोक कहता है, ऐतरेय ३।४३॥ उसे ही यज्ञगाथा कहता है । अतः श्लोक, गाथा और यज्ञगाथा, यह तीनों शब्द लगभग पर्याय ही हैं ।

पौरुषेय होने में जो प्रमाण हैं, वे आगे "क्या ब्राह्मण वेद हैं" इस अध्याय में दिये जायेंगे। अतः पौरुषेय वाक्यों को "श्रुतिसामान्यमात्र" मान कर अर्थ करना कल्पना मात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं। मन्त्र-संहिताओं में जो नियम चरितार्थ होते हैं वे मनुष्य रचित ग्रन्थों में नहीं हो सकते।

(ख) दुःष्यन्त भरत आदि शब्दों को हम जातिवाची भी नहीं मान सकते। क्योंकि वहां भी वही पौरुषेय की आपत्ति आयेगी। जिन नवीन मीमांसकों ने "वेदों" में विश्वामित्र आदि शब्दों को जातिवाची माना है, उन्होंने भी अपौरुषेय वेदों में ही माना है। हम तो उनकी इस कल्पना को भी निराधार ही मानते हैं।

इन के अतिरिक्त महाभारत युद्ध से कुछ ही पूर्व काल के और भी अनेक व्यक्तियों के नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में पाये जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

(क) एतेन हेन्द्रोतो दैवापः शौनकः। जनमेजयं पारिक्षितं याजयां चकार.........॥१॥

(ख) तदेतद्गाथयाभिगीतम्—

आसन्दीवति धान्यादँ रुक्मिणँ हरितस्रजम्।
अबध्नादश्वँ सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः॥ इति ॥२॥[1]

ऐसा ही ऐतरेय ब्राह्मण[2] में व्यक्त किया गया है—

(क) एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो[3] जनमेजयं[4] पारिक्षितमभिषिषेच।......
तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते—

आसंदीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्।
अश्वं बबंध सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः॥ इति॥

यद्यपि महाभारत-काल में भी पाण्डवों की सन्तति में "पारिक्षित जनमेजय" हुआ है, तथापि यह व्यक्ति उससे कुछ पूर्वकालीन है। महाभारत शान्तिपर्व में कहा है—

भीष्म उवाच—

(क) अत्र ते वर्तयिष्यामि पुराणमृषिसंस्तुतम्।
इन्द्रोतः शौनको[5] विप्रो यदाह जनमेजयम्॥[6]

(ख) आसीद्राजा महावीर्यः पारिक्षिज्जनमेजयः।[6]

(ग) एवमुक्त्वा तु राजानमिन्द्रोतो जनमेजयम्।
याजयामास विधिवद् वाजिमेधेन शौनकः॥[7]

---

१. १३।५।४।१-२॥ श० ब्रा०, पृ० १३६१, अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी।

२. ८।२१॥ पृ० २२८, ऐ० ब्रा०।

३. इसी तुरः कावषेय का उल्लेख शतपथ ९।५।२।१५॥ में है।

४. इसी जनमेजय का नाम ऐ० ब्रा०, ७।२७॥ तथा ७।३४॥ में आता है।

५. श० ब्रा० १३।५।३।५॥ में इन्द्रोत शौनक का नाम मिलता है।

६. श्लोक २-३ अध्याय १४६, शान्तिपर्व पूना संस्करण।

७. श्लोक ३४, अध्याय १४९, वही।

यहां भीष्म, महाराज युधिष्ठिर से कह रहे हैं—"महावीर्यवान् राजा पारिक्षित् जनमेजय हुआ था।" अतः ब्राह्मणान्तर्गत गाथास्थ 'पारिक्षित जनमेय'[१] महाभारत-काल से कुछ पहले हो चुका था।

प्रो० घाटे का मत पृथक् है। वह लिखते हैं कि प्रसिद्ध कौरव राजा जनमेजय का प्रथम बार शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है।[२] घाटे का अभिप्राय पाण्डवों के पौत्र जनमेजय से प्रतीत होता है। यदि उन का भाव ऐसा ही था, तो यह उन की भूल थी। शतपथ में जिस जनमेजय का उल्लेख है, वह युधिष्ठिर से भी कुछ काल पहले हो चुका था।

अथर्ववेद २०।१२७।७-१०॥ में महाराज परिक्षित् का वर्णन है। उसे कौरव्य भी कहा है। पं० भगवान दास पाठक अथर्ववेद के महाभारतोत्तर-कालीन होने में यह भी एक युक्ति देते हैं।[3]

ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता। अथर्ववेद के जिस सूक्त में परिक्षित् शब्द आया है वह कुन्ताप सूक्तों में से पहला है। कुन्ताप सूक्त अथर्वसंहितान्तर्गत नहीं हैं। इन सूक्तों का पदपाठ भी नहीं है। अनुक्रमणिका में इन्हें खिल कहा है। इन सूक्तों में परिक्षित् शब्द के आने से सारी संहिता महाभारतोत्तर-कालीन नहीं कही जा सकती। और वस्तुतः इन मन्त्रों में भी परिक्षित् आदि पदों का अर्थ संवत्सर तथा अग्नि ही है। उदाहरणतः ऐ० ब्रा० ६।३२॥ और गो० उ० ६।१२॥ में किसी राजा आदि का वर्णन नहीं है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के महाभारत-कालीन होने में और भी प्रमाण हैं।

(क) महाभारत आदिपर्व अध्याय ५७ में लिखा है—

ब्रह्मणा ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकाङ्क्षया।
विव्यास वेदान् यस्मात् स यस्माद्व्यास इति स्मृतः ॥७३॥
वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥७४॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥७५॥

अर्थात् वेदव्यास के सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल चार शिष्य थे। इन्हीं चारों को उन्हों ने मुख्यतः वेदादि पढ़ाये। वैशंपायन को ही चरक कहते हैं। काशिकावृत्ति में लिखा है—वैशंपायनान्तेवासिनः नव।...... चरकः इति वैशंपायनस्याख्या, तत्संबन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते।[४]

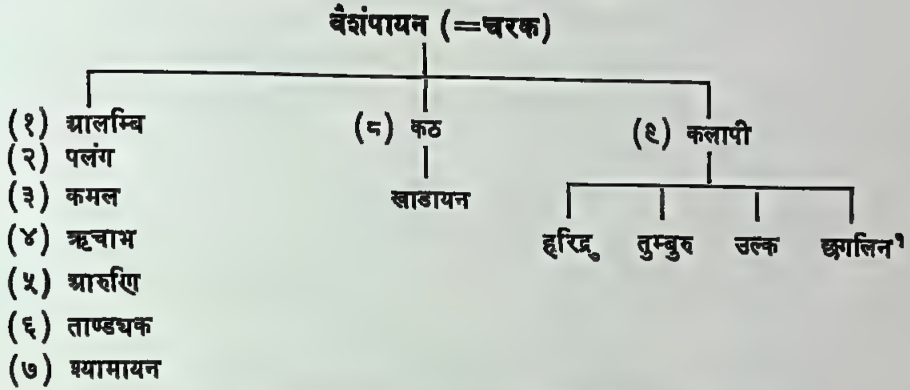
पुनः महाभाष्य में पतञ्जलि मुनि लिखता है—

वैशंपायनान्तेवासी कठः। कठान्तेवासी खाडायनः। वैशंपायनान्तेवासी कलापी।[५]

---

१. गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग २।५॥ में जिस जनमेजय पारीक्षित का नाम आया है, वह यही व्यक्ति प्रतीत होता है।
२. p. 36, Lectures on the Rigveda, Ghate.
३. p. 46, Hindu Aryan Astronomy and Antiquity of Aryan Race, Pathak, B. D., 1920.
४. ४।३।१०४॥
५. वही, वार्तिक २।

यह शिष्य-परम्परा निम्नलिखित प्रकार से सुस्पष्ट हो जायगी—



इन में से १-३ प्राच्य; ४-६ उदीच्य और ७-९ माध्यम हैं। देखें महाभाष्य ४।२।१३८॥

काशिकावृत्ति ४।३।१०४॥[2] में निम्न नाम हैं—

(१) हारिद्रविणः।[3]

(२) तौम्बुरविणः।

(३) आरुणिनः।

महाभाष्य ४।२।१०४॥ में ये ब्राह्मण-ग्रन्थ-प्रवचनकर्त्ता कहे गये हैं। अतः यह निर्विवाद है कि साम्प्रतिक सब ब्राह्मण-ग्रन्थ जिन के प्रवक्ता वेदव्यास के शिष्य प्रशिष्य आदि हैं, महाभारत-काल में ही संगृहीत हुए।

वेदसर्वस्व के कर्त्ता स्वामी हरिप्रसाद लिखते हैं—"पतञ्जलि ने......कठ ऋषि को वैशंपायन का शिष्य लिखा है।......चरणव्यूह के कर्त्ता ने कठ को चरक ऋषि का शिष्य लिखा है। उक्त दोनों मतों में अमुक ठीक और अमुक अठीक, यह सहसा कहना यद्यपि उचित प्रतीत नहीं होता, तथापि न्यायदृष्टि से देखा जाय तो चरणव्यूह के कर्त्ता का मत ही ठीक कहना पड़ता है, पतञ्जलि मुनि का नहीं।"[4] स्वामी हरिप्रसाद की भ्रान्ति का कारण यही है कि वह चरक और वैशंपायन को दो व्यक्ति मानते हैं। ऊपर लिखा ही है कि वैशंपायन का ही दूसरा नाम चरक है। अनेक लेखकों का यह भी मत है कि सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल किसी पहले युग वाले व्यास के शिष्य थे। वे पाराशर्य व्यास के शिष्य नहीं थे। अतः यही ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत से बहुत पहले काल के हैं। परन्तु यह सर्वथैव निराधार कल्पना है। यह आर्येतिहास के विरुद्ध है।

---

१. श्रीपाद कृष्ण बेल्वल्कर ने Four Unpublished Upanisadic Texts (सन् १९२५) में जो छागलेयोपनिषद् छापा है, वह इसी ऋषि का प्रवचन प्रतीत होता है। इस उपनिषद् के आर्ष होने में सन्देह नहीं है। पाणिनि सूत्र "छगलिनो ढिनुक" ४।३।१०९॥ में इसी ऋषि द्वारा प्रोक्त-ब्राह्मण का वर्णन है। शांखायन श्रौत भाष्य ६।१।७॥ में छागलेय श्रौत सूत्र का एक सूत्र लिखा है। ऊपर पृ० ४६ भी देखें।

२. वायु पुराण पू० ६०।७-९॥ में इस से स्वल्पभेद है।

३. यही हारिद्रविक है जिनकी संहिता व ब्राह्मण का प्रमाण निरुक्त १०।५॥ में ऐसे दिया है—"यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्" इति हारिद्रविकम्। ऊपर पृ० ४५ भी देखें।

४. पृ० १३४-३५।

महाभारत, शान्ति-पर्व, अध्याय ३१४ में कहा है—

> विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपः ।
> वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान् महातपाः ॥२३॥
> सुमन्तुं च महाभागं वैशंपायनमेव च ।
> जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ॥२७॥

यहां स्पष्ट ही कहा है कि ये सुमन्त्वादि पाराशर्य व्यास के शिष्य थे। ये सब ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रवचन कर्ता थे, अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ द्वापरान्त में ही एकत्र किए गए थे।

(ख) याज्ञवल्क्य भी महाभारत-कालीन ही है। महाभारत सभापर्व, अध्याय ४ में लिखा है—

> बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायनः शुकः ।
> सुमन्तुर्जैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम् ॥६॥
> तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो रोमहर्षणः ।

अर्थात् बक दाल्भ्य, स्थूलशिर, कृष्णद्वैपायन, शुक, सुमन्तु, जैमिनि, पैल, तित्तिरि, याज्ञवल्क्य, ये सब ऋषि महाराज युधिष्ठिर की सभा को सुशोभित कर रहे थे। शतपथ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य-प्रोक्त है। उसके विषय में काशिकावृत्ति ४।३।१०५॥ में लिखा है—**ब्राह्मणेषु तावत्—भाल्लविनः। शाट्यायनिनः। ऐतरेयिणः। ......पुराणप्रोक्तेष्विति किम्। याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि। ......याज्ञवल्क्यादयो ऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्ता।**

जयादित्य का यह लेख महाभाष्य के प्रतिकूल है। हम अपने "ऋग्वेद पर व्याख्यान" पृ० ५८ पर यह बता चुके हैं। जयादित्य के सन्देह का कारण कोई प्राचीन आख्यान है। परन्तु उस से जयादित्य का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता। ब्राह्मण-ग्रन्थों के अवान्तर भागों को भी ब्राह्मण कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनेक अवान्तर ब्राह्मण अत्यन्त प्राचीन हैं। वे ब्राह्मण प्रजापति आदि ऋषियों ने कहे थे। उन की अपेक्षा याज्ञवल्क्य प्रोक्त ब्राह्मण नवीन हैं। आख्यानान्तर्गत लेख का अभिप्राय समग्र शतपथ ब्राह्मण से नहीं, प्रत्युत उस के अवान्तर ब्राह्मणों से है। शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन तो तभी हुआ था जब भाल्लवि, शाट्यायन और ऐतरेय आदि ब्राह्मणों का प्रवचन हुआ था। इन में से ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकर्त्ता महिदास, सुमन्तु आदि से कुछ उत्तर-कालीन है। आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४।४॥ में ऐतरेय आदि सुमन्तु आदि से उत्तर गए वाले होने के कारण उत्तरकालीन हैं। भगवान् याज्ञवल्क्य इन्हीं का सहकारी है। अतः याज्ञवल्क्य और तत्प्रोक्त शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन ही है।

ऐतरेय ब्राह्मण ६।३०॥ में याज्ञवल्क्यादि के समकालिक **बुलिल आश्वतराश्वि** का उल्लेख है। इस लिए भी उन का नाम लेने वाला ऐतरेय ब्राह्मण महाभारत-कालीन याज्ञवल्क्य के समय में, अथवा उस से थोड़े ही वर्ष पीछे बना।

जो पक्ष अभी कहा गया है, उसके स्वीकार करने में कई लोग एक भारी आपत्ति मानते हैं। उस आपत्ति की उपेक्षा भी नहीं हो सकती। तदनुसार शतपथ ब्राह्मण महाभारत-काल का तो क्या, उस से लाखों वर्ष पुराना अर्थात् अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होता है।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २९८ में कहा है—भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
याज्ञवल्क्यस्य संवादं जनकस्य च भारत ॥३॥
याज्ञवल्क्यमृषिश्रेष्ठं दैवरातिर्महायशाः ।
पप्रच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदांवरः ॥४॥

तथा अध्याय ३०६ में लिखा है—याज्ञवल्क्य उवाच—

यथार्षेणेह विधिना चरताऽवमतेन ह ।
मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप ॥२॥
....
सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप ॥२२॥
कर्तुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतं मया ।
यथाभिलषितं मार्गं तथा तच्चोपपादितम् ॥२३॥

अर्थात् शतपथ ब्राह्मण के प्रवचनकर्त्ता भगवान् याज्ञवल्क्य का संवाद दैवराति जनक से हुआ था। वाल्मीकीय-रामायण बाल काण्ड[1] में लिखा है—

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।
देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः ॥६॥

अर्थात् दैवराति बृहद्रथ जनक था। यह जनक सीता के पिता महाराज सीरध्वज जनक से भी बहुत प्राचीन हुआ है। इसी के साथ शतपथ के प्रवचन-कर्त्ता याज्ञवल्क्य का संवाद हुआ था। अतः शतपथ ब्राह्मण अति प्राचीन-काल का ग्रन्थ है।

यह बात भ्रम मात्र है। दैवराति जनक अनेक हो सकते हैं। महाभारत-काल में भी तो एक प्रसिद्ध जनक था। उसी से वैयासकि शुक का संवाद हुआ। दैवराति जनक वही या उस से कुछ ही पूर्वकालीन हो सकता है। महाभारत में इसी प्रकरण की समाप्ति पर भीष्म जी कहते हैं कि याज्ञवल्क्य और दैवराति जनक के संवाद का तथ्य उन्हों ने स्वयं दैवराति जनक से प्राप्त किया था। लिखा है—

भीष्म उवाच—एतन्मयाऽऽप्तं जनकात् पुरस्तात् तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात् ।
ज्ञातं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः ॥[2]

अर्थात् भीष्म जी कहते हैं, यह ज्ञान मैंने पहले जनक से प्राप्त किया था। और हे राजन् जनक जी ने याज्ञवल्क्य से कहा था। ज्ञान यज्ञों से बढ़ कर है। ज्ञान से कठिन मार्ग तय कर लेता है, यज्ञों से नहीं। शान्तिपर्व के उपदेश के समय भीष्म जी की आयु २०० वर्ष से कुछ कम ही थी। इस गणनानुसार दैवराति जनक महाभारत-युद्ध से १५० वर्ष के अन्दर अन्दर ही हो सकता है। अतः शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत काल में ही 'प्रोक्त' हुआ था, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

१, सर्ग ७१, दूसरा संस्करण, मद्रास, १९५८।

२. श्लोक १०५, अध्याय ३०६, शान्तिपर्व, पूना संस्करण।

(ग) शतपथ ब्राह्मण और उस का प्रवचन-कर्त्ता याज्ञवल्क्य महाभारत-कालीन ही है, और किसी पहले युग के नहीं, इस में शतपथान्तर्गत एक और भी साक्ष्य है। लिखा है—

(क) अथ पृषदाज्यं तदु ह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रे ऽभिधारयन्ति प्राणः पृषदाज्यमिति वदन्तस्तदु ह याज्ञवल्क्यं चरकाध्वर्युरनुव्याजहार।[1]

(ख) ता ऽउ ह चरकाः। नानैव मन्त्राभ्यां जुह्वति प्राणोदानौ वा ऽस्यैतौ नानावीर्यौ प्राणोदानौ कुर्म इति वदन्तस्तदु तथा न कुर्यात्।[2]

(ग) यदि तं चरकेभ्यो वा यतो वानुब्रुवीत।[3]

(घ) तदु ह चरकाध्वर्यवो विगृह्णन्ति।[4]

(ङ) प्राजापत्यं चरका आलभन्ते।[5]

(च) इति ह स्माऽऽह माहित्थियं चरकाः प्राजापत्ये पशावाहुरिति।[6]

(छ) तदु ह चरकाध्वर्यवः।[7]

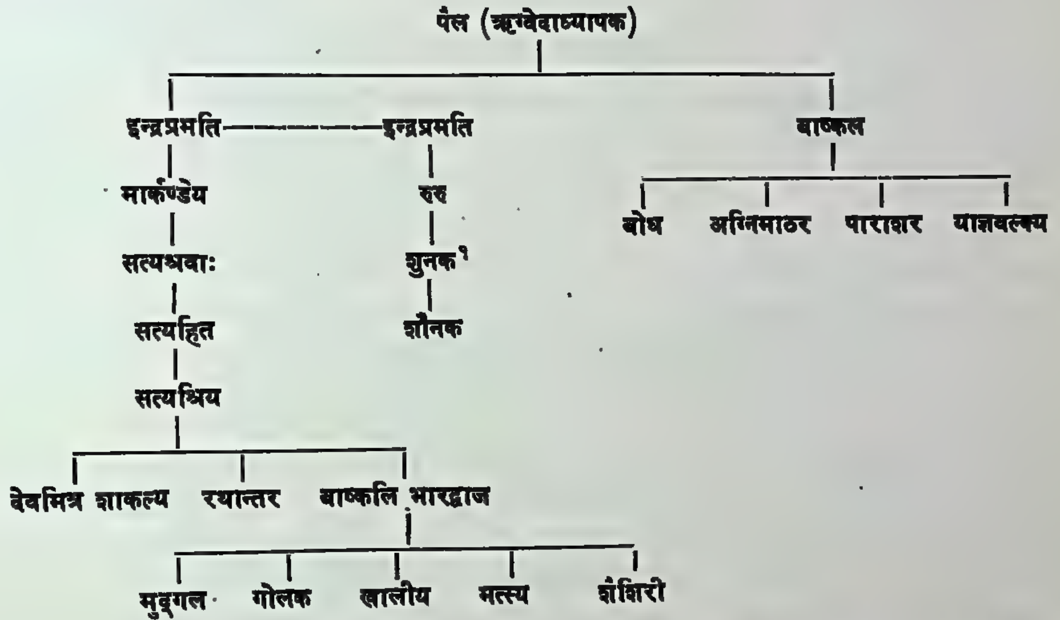
इत्यादि स्थलों में जो "चरक" अथवा "चरकाध्वर्यु" कहे गये हैं, वे सब वैशंपायन-शिष्य हैं।[8] यह चरकाध्वर्युओं के वाक्य किस याजुष ग्रन्थ से सम्बन्ध रखते हैं, इस के विषय में काण्व शतपथ की भूमिका पर डाक्टर कालेण्ड का लेख देखें।[8] वायु पुराण में लिखा है—ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरकाः स्मृताः। वैशंपायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः॥[9] हम पूर्व प्रदर्शित कर चुके हैं कि चरक-वैशंपायन महाभारत-कालीन था, अतः उसका वा उसके शिष्यों का उल्लेख करने वाला ग्रन्थ महाभारत काल से पहले का नहीं हो सकता। वह महाभारत-काल का ही है।

(घ) याज्ञवल्क्य और शतपथ ब्राह्मण के महाभारत-कालीन होने में एक और प्रमाण भी है। महाराज जनक की सभा में याज्ञवल्क्य का ऋषियों के साथ जो महान् संवाद हुआ था, उसका वर्णन शतपथ काण्ड ११-१४ में है। ऋषियों में एक विदग्ध शाकल्य था।[10] याज्ञवल्क्य के एक प्रश्न का उत्तर न देने से उसकी मूर्धा गिर गई।[11] यह शाकल्य ऋग्वेद का प्रसिद्ध आचार्य हुआ है। यही पदकारों में सर्वश्रेष्ठ था।[12] इसका पूरा नाम देवमित्र शाकल्य था। ब्रह्मवाहसुत याज्ञवल्क्य[13] के साथ इस का जो वाद हुआ

---

१. ३।८।२।२४॥ पृ० ३८२, श० ब्रा०।
२. ४।१।२।१९॥ पृ० ४२७, श० ब्रा०।
३. ४।२।४।१॥ पृ० ४५२, श० ब्रा०।
४. ४।२।३।१५॥ पृ० ४५१, श० ब्रा०।
५. ६।२।२।१॥ पृ० ६६७, श० ब्रा०।
६. ६।२।२।१०॥ पृ० ६६८, श० ब्रा०।
७. ८।१।३।७॥ पृ० ८६२, श० ब्रा० तथा देखें काण्व शतपथ की भूमिका पृ० ९२।
८. पृ० ९९।
९. पूर्व अध्याय ६२।२३॥
१०. ११।४।६।३॥ श० ब्रा०।
११. १४।५।७।२८॥ श० ब्रा०।
१२. पूर्व ६०।६३॥ "पदवित्तमः", वायु पुराण, आनन्दाश्रम, पूना।
१३. पूर्वार्ध ६०।४१॥ वायु पुराण, आनन्दाश्रम, पूना।

था, उसका उल्लेख वायु पुराण पूर्वार्ध अध्याय ६० श्लोक ३२-६० में भी है। वायु पुराण के पूर्वार्ध अध्याय ६० के अनुसार इस देवमित्र शाकल्य (विदग्ध) के पूर्वोत्तर कुछ ऋग्वेदीय आचार्यों की गुरुपरम्परा का चित्र निम्नलिखित है—



पैल के शिष्य प्रशिष्य होने से ये शाकल्य आदि आचार्य महाभारत-कालिक ही हैं। इन में से शाकल्य का विस्तृत वर्णन शतपथ में मिलता है। शतपथ के प्रवचन-कर्त्ता याज्ञवल्क्य के साथ इसका संवाद भी हुआ था। अतः याज्ञवल्क्य और शतपथ दोनों महाभारत-काल के हैं।

इस विषय में और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, पर विद्वानों के लिये इतने ही पर्याप्त होंगे।

(ङ) ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन महाभारत काल में हुआ, इस में एक और प्रमाण है। काठक संहिता[2] में यह वचन है—नैमिष्या वै सत्रमासत त उत्थाय सप्तविंशति कुरुपञ्चालेषु वत्सतरानवन्वत तान्बको दाल्भिरब्रवीद्यूयमेवैतान् विभजध्वमिममहं धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि।

इसी कथा का उल्लेख महाभारत[3] में है—

> ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात्।
> यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥३२॥

अर्थात् हे राजन्, तब बलराम बक के आश्रम के समीप गये। जहां दाल्भ्य बक ने तीव्र तप किया,

१. ८।६४॥ अनुशासन पर्व, पूना संस्करण।
२. १०।६॥, सातवलेकर, औन्ध।
३. अध्याय ३९, शल्य पर्व, पूना संस्करण।

ऐसी श्रुति है। तथा अध्याय ४० में लिखा है—

यत्र दाल्भ्यो बको राजन्यश्वर्थं सुमहातपाः ।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं कोपसमन्वितः ॥१॥
....
तानब्रवीद्बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति ॥५॥

इस से निश्चय होता है कि काठक संहिता में विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र का वर्णन है। वह भी लगभग महाभारत-कालीन ही था। उसका उल्लेख करने वाली संहिता और तदुपरान्त प्रवचन होने वाला ब्राह्मण अवश्य महाभारत काल के हैं। धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य कोई पुराकाल का राजा हो सकता है। उसी का यहां वर्णन है। कुछ लेखक ऐसी कल्पना कर सकते हैं। पर यह कल्पना असत्य है। काठक संहिता में धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य के साथ जिस ऋषि "बक दाल्भ्य"[1] का कथन है, वह महाराज युधिष्ठिर के समय में विद्यमान था। महाभारत वनपर्व, अध्याय २७ में लिखा है—

अथाब्रवीद्बको दाल्भ्यो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
सन्ध्यां कौन्तेयमासीनमृषिभिः परिवारितम् ॥५॥

मनुस्मृति में भी लिखा है—ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वात् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।[2] इस वचन के अनुसार यद्यपि ऋषि दीर्घजीवी थे, तथापि उनकी आयु १०० वर्ष से लेकर ३०० या ४०० वर्ष तक ही होती थी।[3] पतञ्जलि के काल में आयु का परिमाण १०० वर्ष ही रह गया था। यदि इस से अधिक आयु होती तो भगवान् पतञ्जलि यह क्यों लिखता—किं पुनरद्यत्वे यः सर्वथा चिरं जीवति स वर्षशतं जीवति।[4] अर्थात् फिर आजकल की बात का क्या कहना, जो बहुत चिर जीता है, वह सौ वर्ष तक जीता है। भगवान् कात्यायन यह क्यों लिखता—सहस्रसंवत्सरममनुष्याणामसम्भवात् ॥१३८॥[5] नादर्शनात् ॥१४३॥[6] अर्थात् मनुष्य की सामान्य आयु १०० वर्ष ही श्रुति आदि में दिखाई देती है। इसलिए जब बक दाल्भ्य युधिष्ठिर कालीन है, तो इसी बक दाल्भ्य का युधिष्ठिर के पूर्वज धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य से वार्तालाप हुआ था। अतः उसकी कथा का प्रसंग कठ संहिता में आ जाने से कठ ब्राह्मण धृतराष्ट्र के कुछ पीछे अर्थात् महाभारत-काल में संकलित हुआ। सब ब्राह्मण ग्रन्थों का सङ्कलन लगभग एक ही समय में हुआ था। अतः यदि कठ ब्राह्मण महाभारत कालीन है, तो दूसरे ब्राह्मण भी उसी काल में संगृहीत हुए होंगे।

---

१. सम्भवतः यही बक दाल्भ्य छान्दोग्य उपनिषद् १।१२।१॥ में स्मरण किया गया है। इसी बक दाल्भ्य का वर्णन जै० उपनिषद् ब्राह्मण १।३।१॥; ४।७।२॥ में भी है।

२. ४।९४॥

३. अपि हि भूयांऽसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति। १।९।३।१९॥ श० ब्रा०।

४. पृ० ५, भाग १, महाभाष्य, कीलहार्न।

५. अध्याय १, पृ० ५२, कर्क भाष्य सहित। यहां मनुष्य शब्द का प्रयोग देव के मुकाबले में है। दैवी सृष्टि में तो कल्प पर्यन्त ही यज्ञ हो रहा है। मनुष्य में ऋषियों की गणना भी है। मीमांसा सूत्र ६।७।३१-४०॥ का भी यही अभिप्राय है।

६. अध्याय १, षष्ठी कण्डिका, पृ० ५४, कर्क भाष्य सहित। श्रौत सूत्र।

हम पूर्व पृ० ७४ पर लिख चुके हैं कि बक दाल्भ्य याज्ञवल्क्य आदि का समकालिक है। उस से भी पूर्वोक्त परिणाम ही पुष्ट होता है।

(च) काठक संहिता में लिखा है—दिवोदासो भैमसेनिरारुणिमुवाच।[1] अर्थात्—भीमसेन का पुत्र दिवोदास (उद्दालक) आरुणि को बोला। पिछले अध्याय से स्पष्ट हो चुका है कि उद्दालक याज्ञवल्क्यादि का सहवर्ती है। यह दिवोदास उसी भीमसेन का पुत्र है, जो पारिक्षित् था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—एतेऽएव पूर्वे ऽग्रहनो।······तेन भीमसेनं······तेनोग्रसेनं······तेन श्रुतसेनमित्येते पारिक्षितीयाः।[2] अर्थात् भीमसेन, उग्रसेन और श्रुतसेन, ये पारिक्षितीय थे। ये महाभारत काल से एक पीढ़ी पहले के थे। इस लिए इन का उल्लेख करने वाले ग्रन्थ काठक संहिता और शतपथ ब्राह्मण महाभारत काल, अथवा उस के कुछ पीछे सङ्कलित हुए होंगे।

(छ) आरण्यक ग्रन्थ या तो ब्राह्मणों के विभाग हैं, या उन के साथ के ही ग्रन्थ हैं। तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय ब्राह्मण का साथी ग्रन्थ है। इस में १।९।२॥ पर पाराशर्य व्यास का एक मत उद्धृत किया है। तैत्तिरीय आरण्यक का प्रवक्ता तित्तिरि[3] भी महाभारत कालीन था[4]। अतः तित्तिरि का प्रवचन होने वा पाराशर्य व्यास का कथन करने से तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण वा आरण्यक महाभारत कालीन ही हैं।

(ज) भगवान् जैमिनि सामवेद की जैमिनीय संहिता का प्रवक्ता है। यही जैमिनि पाराशर्य व्यास का प्रिय शिष्य था। सामविधान ब्राह्मण में लिखा है—व्यासः पाराशर्यो जैमिनिये।[5] इसे ही वेदव्यास ने साम शाखाओं का सब से पहले पाठ पढ़ाया था। इसी ने तलवकार-जैमिनीय ब्राह्मण का प्रवचन किया था। पाराशर्य व्यास शिष्य होने से यह महाभारत-कालीन है और इसका प्रवचन किया हुआ ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन ही है। जैमिनीय ब्राह्मण में भी अनेक नाम ऐसे हैं जो केवल महाभारत कालीन ही हैं। उन में से कुछ एक का वर्णन गत अध्याय में हो चुका है।

इन्हीं भगवान् जैमिनि ने मीमांसा शास्त्र भी बनाया था। इसी कारण जैमिनीय ब्राह्मण के कई हस्तलेखों के प्रारम्भ में प्राचीन परम्परागत ऐतिह्य का द्योतक यह श्लोक विद्यमान है—

उज्जहारागमाम्भोधेयो धर्मामृतमञ्जसा।
न्यायैर्निर्मथ्य भगवान् स प्रसीदतु जैमिनिः॥

इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ आर्थर बैरीडेल कीथ लिखते हैं—

A Jaimini is credited with the authorship of a Srauta and Grhya Sutra, and the

---

१. ७।८॥
२. १३।५।४३॥ श० ब्रा०।
३. इसी तित्तिरि का उल्लेख अष्टाध्यायी तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् ४।३।१०२॥ में है। इसी के कहे हुए किन्हीं श्लोक-विशेषों के सम्बन्ध में पतञ्जलि ४।२।६६॥ पर कहता है—तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोका इति।
४. पृ० ७४ ऊपर देखें।
५. ३।९।३॥

name occurs in lists of doubtful authenticity in Asvalayana and Sankhayana Grhya Sutras; a Jaiminiya Samhita and a Jaiminiya Brahmana of the Sama Veda are extant.

It is, then, a plausible conclusion that the Mimansa Sutra does not date after 200 A. D; but that it is probably not much earlier.........[1]

उनके इस लेख के भावानुसार—

(१) जैमिनीय ब्राह्मण का प्रवक्ता जैमिनि, मीमांसा सूत्रों का प्रणेता नहीं है।

(२) मीमांसा सूत्र ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में ही बने थे।

ये विचार जैमिनि की कृति के विषय में भ्रमोत्पादक हैं। कीथ का यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि—

(१) जैमिनीय ब्राह्मण के अनेक हस्तलेखों के आरम्भ में आने वाला जो श्लोक हम पूर्व उद्धृत कर चुके हैं, यह परम्परागत ऐतिह्य का स्पष्ट द्योतक है। आर्यावर्त्त के पण्डित आज तक अविच्छिन्न रूप से इसे मानते आये हैं कि तलवकार ब्राह्मण का प्रवक्ता, भगवान् वेदव्यास का शिष्य जैमिनि ही मीमांसा सूत्रों का प्रणेता था। कीथ के भ्रम का कारण यह है कि वे मीमांसा सूत्रों को ईसा की पहली वा दूसरी शताब्दी में रचा गया मानते हैं।

(२) मीमांसा सूत्र ईसा से सैंकड़ों वर्ष पहले विद्यमान थे। वेदान्तसूत्र[२] पर शंकरभाष्य के प्रमाण से कीथ स्वयं मानता है कि भगवान् उपवर्ष ने मीमांसा सूत्रों पर भाष्य लिखा। शंकर ही नहीं कौशिक सूत्र पद्धतिकार आथर्वणिक केशव भी मीमांसा भाष्यकार उपवर्ष का स्मरण करता है। यथा—**उपवर्षाचार्येणोक्तं। मीमांसायां स्मृतिपादे कल्पसूत्राधिकरणे............इति भगवानुपवर्षाचार्येण प्रतिपादितम्।**[3]

भास्कर, वेदान्त सूत्र १।१।१।। के भाष्य में, इसी उपवर्ष को उद्धृत करता है। सायण भी ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात (पृ० ६) पर उपवर्ष के मीमांसा भाष्य का नाम लेता है।

उपवर्ष पाणिनि से पहले हो चुका है। कथासरित्सागर आदि के अनुसार तो यह पाणिनि का गुरु भ्राता था। उपवर्ष पाणिनि से पूर्व हो चुका था इस में एक और भी प्रमाण है। राजशेखर (नवमं शताब्दी) अपनी काव्य मीमांसा में लिखता है—

श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकार परीक्षा—
अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडिः।
वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः ॥[४]

इस श्लोक में सारे शास्त्रकारों के नाम काल-क्रम से ही आए हैं। पतञ्जलि से पहले वररुचि, और उस से कुछ पहले होने वाले व साथी पाणिनि और पिङ्गल थे। आचार्य पिङ्गल पाणिनि का कनिष्ठ भ्राता

१. p. 4-5, The Karma Mimansa, Keith, A.B., 1921.
२. ३।३।५३।।
३. पृ० ३०७, कौशिक सूत्र।
४. पृ० ५५, राजशेखरकृत, दलाल तथा शास्त्री द्वारा संपादित, बड़ोदा, १९३४।

था ।[1] इन से कुछ वर्ष पहले वर्ष और उपवर्ष थे । यही उपवर्ष शास्त्रकार है । इसी ने मीमांसा सूत्रों पर आदि भाष्य लिखा था ।

वैयाकरण सिद्धान्त लघुमञ्जूषा में नागेशभट्ट सांख्य सूत्र के प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्द इति का प्रमाण लिख कर अन्त में लिखता है—इति सांख्योक्तं तदनुसार्युपवर्षोक्तं च स्फोटखण्डनमपास्तम् ।[2]

उपवर्ष का मत न्यायमञ्जरी में उद्धृत है । यथा—तत्र प्रत्यक्षमात्मानमौपवर्षाः प्रपेदिरे ।[3]

वीरमित्रोदय कृत संस्कार प्रकाश में लिखा है—

द्विविधानपि गर्गांस्तान् उपवर्षो महामुनिः ।
अनुक्रम्य त्व वै बाह्यान् भरद्वाजतया जगौ ॥[4]

गोत्र प्रवर मञ्जरी में भी इस का उल्लेख है ।

अस्यवामीय सूक्त पर आत्मानन्द के भाष्य में उपवर्ष का श्लोक है ।[5] यथा—आह चोपवर्षः—

बोध्यान्तरात्ये वाचां महातात्पर्यमुच्यते ।
अन्यार्थमुच्यतेऽन्यच्चेत् तदवान्तरशाब्दितम् ॥

प्रश्न—यह उपवर्ष कोई और शास्त्रकार होगा ।

उत्तर—यदि यह कोई और शास्त्रकार है, तो इस के शास्त्र का कोई उद्धरण, कोई पता, कोई चिह्न चक्र तो बताएं । जब यह बता ही नहीं सकते, तो ऐसी कल्पनाएं न करें ।

प्रश्न—राजशेखर प्रदर्शित श्लोक में आने वाले नाम काल-क्रमानुसार नहीं हैं ।

उत्तर—ऐसे ही पूर्वपक्ष से हठ और दुराग्रह सिद्ध होता है । जब शेष सब नाम कालक्रमानुसार हैं, तो पहले दो नामों के ऐसा होने में क्यों सन्देह है ? आद्यन्त आर्य ऐतिह्य भी यही मानता है, तो आप के ऐसा कहने से क्या ? काव्य मीमांसाकार राजशेखर का इतिहास-ज्ञान पूर्ण था । भूल होना असम्भव है ।

इस प्रकार जब मीमांसा सूत्रों का भाष्यकार ही इतना पुराना है, तो मूल सूत्र क्यों नवीन होंगे ?

हम पाणिनि को कलियुग की लगभग दूसरी शताब्दी में मानते हैं । कई एतद्देशीय और पाश्चात्य लेखक विक्रम से चार शताब्दी पहले पाणिनि का काल मानते हैं ।[6] अतः पाश्चात्यों के अनुसार भी मीमांसा सूत्र विक्रम की पांचवीं शताब्दी से पहले होना चाहिए । इस से यह स्पष्ट हो गया है कि कीथ का लेख भ्रमपूर्ण है ।

---

१. पृ० २६-२९, आषाढ़ १९२२, आर्य्य (मासिक पत्र), भगवद्दत्त, लाहौर ।
२. पृ० २१०-२११, चौ० सं० सी०, वाराणसी संवत् १९८५ ।
३. पृ० ३, भाग २, न्यायमञ्जरी, जयन्तभट्ट कृत, संपादक श्री सूर्यनारायण शुक्ल, चौ० सं० सी०, १९३४ ।
४. पृ० ६१४, उत्तरार्ध, संस्कार प्रकाश, वीरमित्रोदयकृत, चौ० सं० सी०, १९१३ ।
५. पृ० ८२, Asya Vamasya Kuhnan, Hymn Raja, C., Madras, 1956.
६. परलोकगत डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल कृत 'पाणिनिकालीन भारत' एक उपयोगी पुस्तक देखें ।

व्यास शिष्य जैमिनि ही मीमांसा सूत्र का कर्ता व तलवकार ब्राह्मण का प्रवक्ता है। इसलिए भी तलवकारादि ब्राह्मण महाभारत कालीन हैं।

(ऋ) छान्दोग्य उपनिषद्, छान्दोग्यों के ताण्ड्य ब्राह्मण का अन्तिम भाग ही है। छान्दोग्य-उपनिषद् में कहा है—**एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः।...............। स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्।**[1]

यही महिदास ऐतरेय, ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता है। आश्वलायन गृह्य सूत्र ३।४।४॥ तथा जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४।२।११॥ में भी इसी का उल्लेख है।[2] महिदास ऐतरेय व्यास और शौनक तथा आश्वलायन के बीच में आता है। पाणिनीय सूत्र **शौनकादिभ्यश्छन्दसि**[3] से हम जानते हैं कि शौनक किसी शाखा वा ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता है। सम्भवतः यह शाखा आथर्वणों की थी। शौनक का शिष्य आश्वलायन, प्रधानतया ऋग्वेदी है। शौनक ने स्वयं अनेक ऋग्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे थे। इस से यह सन्देह न होना चाहिए कि उसने आथर्वण शाखा का प्रवचन कैसे किया। महाभारत-काल के आचार्य किसी शाखा विशेष से ही सम्बन्ध न रखते थे। शौनक-शिष्य कात्यायन ने चारों ही वेदों पर अपने ग्रन्थ लिखे हैं। आश्वलायन इसी शौनक का शिष्य था। षड्गुरुशिष्य कृत सर्वानुक्रमणीवृत्ति की भूमिका में लिखा है—**शौनकस्य तु शिष्योऽभूत भगवानाश्वलायनः।** शौनक-शिष्य होने से ही आश्वलायन अपने श्रौतसूत्र वा गृह्यसूत्र के अन्त में—**नमः शौनकाय। नमः शौनकाय** लिखता है। शाखा प्रवर्तक होने से भगवान् शौनक व्यास का समीपवर्ती ही है।

महिदास ऐतरेय भी कृष्ण-द्वैपायन व्यास से अनतिदूर है। इस महिदास ऐतरेय का प्रवचन होने से ऐतरेय ब्राह्मण महाभारत-कालीन है। इसी महिदास का उल्लेख करने से छान्दोग्य उपनिषद् व ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन हैं। हां उपनिषद् भाग कुछ पीछे का भी हो सकता है। याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने एक दिन में ही तो सारा ब्राह्मण नहीं कह दिया था। इन के प्रवचन में कई कई वर्ष लगे होंगे। इस से प्रतीत होता है कि ताण्ड्य आदि ऋषि जब छान्दोग्यादि उपनिषदों का प्रवचन अभी कर रहे थे, तो महिदास ऐतरेय का देहान्त हो चुका था। महिदास इन दूसरे ऋषियों की अपेक्षा कुछ कम ही जीवित रहा। अथवा छान्दोग्य उपनिषद् और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण के महिदास की आयु से सम्बन्ध रखने वाले वाक्य प्रक्षिप्त हो सकते हैं। इस प्रक्षेप के विषय में आगे इसी (ऋ) प्रमाण के अन्त में कुछ लिखा जायगा।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४।२।११॥ के निम्नलिखित वाक्य की भी यही संगति है—**एतद्ध तद्विद्वान् ब्राह्मण उवाच महिदास ऐतरेयः।...............। स ह षोडशशतं वर्षाणि जिजीव।** ऐतरेय आरण्यक ऐतरेय ब्राह्मण का ही अन्तिम भाग है। उस में भी महिदास ऐतरेय का नाम आया है—**एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः।**[4] इस से हमारा पूर्वोक्त कथन ही सिद्ध होता है।

---

१. ३।१६।६॥ छा० उप०। ऊपर पृ० १० भी देखें।

२. पूर्वोद्धृत (पृ० ८०) वाक्य में कीथ आश्वलायन गृह्यसूत्र की इन सूचियों को प्रक्षिप्त सा मानते हैं। ऐतरेय आरण्यक पृ० १७ (सन् १९०९) के प्रथम टिप्पण में भी वे इन सूचियों को "सम्भवतः नया" मानते हैं। स्वप्रयोजन सिद्ध होता देख कर ही, वे ऐसा मानने पर बाधित हुए हैं, अन्यथा इन वाक्यों के ग्रन्थान्तर्गत होने में कोई सन्देह नहीं।

३. ४।३।१०६॥

४. २।१।८॥

इसी आरण्यकस्थ वाक्य के अनुवाद के एक नोट में कीथ लिखते हैं—

"This mention is enough to prove that Mahidasa did not write the Aranyaka. But it is quite probable that he was the redactor of the Brahmana, in its form of forty chapters,"[१]

अर्थात् आरण्यक में महिदास का नाम आने से यह निश्चित होता है कि उस ने आरण्यक नहीं लिखा। कीथ का अभिप्राय विश्वसनीय नहीं है क्योंकि इस विषय में सब विद्वान् सहमत हैं कि शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन याज्ञवल्क्य ने ही किया था। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है—

(१) तदु होवाच याज्ञवल्क्यः।[२]
(२) इति ह स्माह याज्ञवल्क्यः।[३]
(३) स होवाच याज्ञवल्क्यः।[४]

इन लेखों के आने से किसी विद्वान् को शतपथ ब्राह्मण के याज्ञवल्क्य प्रोक्त होने में सन्देह नहीं हुआ, तो ऐतरेय आरण्यक में महिदास का नाम आ जाने से कीथ को सन्देह न होना चाहिये था। यदि यह कहें कि ग्रन्थ-कर्ता स्वयं अपने को "विद्वान्" अर्थात् "जानते हुए" कैसे कह सकता है, तो इस में कोई हानि नहीं। एक सत्यवक्ता ग्रन्थकार अपने विषय में कह सकता है कि अमुक समय पर सब कुछ "जानते हुए" ही वह अमुक बात बोला था।

प्रश्न—छान्दोग्य उपनिषद् के वाक्य का अर्थ ११६ वर्ष नहीं, प्रत्युत १६०० वर्ष है। तदनुसार महिदास ऐतरेय १६०० वर्ष जीवित रहा। न जाने उसने ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन इतने लम्बे जीवन के किस भाग में किया। अतः उस के प्रवचन किये हुए ब्राह्मण को महाभारत-कालीन मानना उचित नहीं। मनु १।८३॥ पर भाष्य करते हुए मेधातिथि लिखता है—ननु "स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्" इति परममायुर्वेदे श्रूयते। इस का अभिप्राय १६०० वर्ष प्रतीत होता है। महामहोपाध्याय पं० गङ्गानाथ झा मेधातिथिभाष्य के अङ्गरेजी अनुवाद में लिखते हैं—

"But we find the highest age described as 1600 years, in the Chhandogya Upanisad (3. 16. 7) where it is said he lived for Sixteen hundred years."

राजेन्द्रलाल मित्र भी ऐतरेय आरण्यक की भूमिका के नोट में छान्दोग्य के वाक्य का अर्थ 'For Sixteen hundred years' करते हैं।[५]

इतने बड़े बड़े विद्वानों का अर्थ कैसे अशुद्ध हो सकता है?

उत्तर—'षोडशं वर्षशतं' का अर्थ ११६ वर्ष ही है। पं० गङ्गानाथ झा ने अनुवाद में भूल की है।

---

१. Note. 2, p. 210.
२. १।३।४।२१॥ २।३।१।२१॥ २।४।३।२॥ १२।४।१।१०॥
३. ३।१।३।१०॥
४. १२।६।३।२॥
५. p. ३

यही भूल राजेन्द्रलाल मित्र ने दिखाई है। मेधातिथि का अभिप्राय भी पं० गङ्गानाथ झा वाला नहीं है। वहां अर्थ तो लिया ही नहीं। यह कल्पना झा महाशय की अपनी ही है। छान्दोग्य के उपस्थित वाक्य का अर्थ सब प्राचीन आर्यों ने ११६ वर्ष ही किया है। यथा—

(१) **षोडशोत्तरवर्षशतम्—शङ्कर।**
(२) **षोडशाधिकं वर्षशतम्—रामानुज।**
(३) **षोडशोत्तरं शतम्—मध्व।**

मैक्समूलर का भी यही अर्थ है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में Hanns Oertel ने भी ११६ वर्ष किया है। खेंच तान करके १६०० वर्ष अर्थ यदि कर लें तो एक और आपत्ति आ पड़ती है। छान्दोग्य के इस प्रकरण में पुरुष को यज्ञरूप मान कर उसे सवनों से तुलना दी है। तीनों सवनों के कुल वर्ष भी २४+४४+४८=११६ ही बनते हैं। अतः १६०० वर्ष अर्थ प्रकरणानुकूल भी नहीं। झा महाशय यहीं नहीं, अन्यत्र भी ऐसे ही अर्थ करते हैं। मेधातिथि के शाखाभेदनिरूपक **एक शतमध्वर्युणाम्** वाक्य का अर्थ "a hundred Recensions" करते हैं। परन्तु समस्त आर्य वाङ्मय में ऐसे वाक्य का अर्थ १०१ ही लिया गया है। अतः ऐसे अनुवादों के लिए झा महाशय को ही साधुवाद। उन की भूल से हम ११६ से १६०० का असम्भव अर्थ नहीं मान सकते।

ब्राह्मणों के सङ्कलन सम्बन्ध में एक विशेष ध्यान देने योग्य बात

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि प्रायः सारे ही ब्राह्मणों का सङ्कलन महाभारत काल में हुआ था। हां, इस के साथ एक और बात ध्यान देने योग्य है। माध्यन्दिन शतपथ के अन्त में जो वंश सूची दी गई है, उस में याज्ञवल्क्य के उत्तरवर्ती ४५ आचार्यों के नाम मिलते हैं। उन सब के अन्त में पैंतालीसवें नाम के स्थान में **वयं** लिखा है। क्या इस का यह अभिप्राय है कि परम्परा में आने वाले अनेक शिष्यों ने याज्ञवल्क्य के पाठ में परिवर्तन किया था।

यहां **वयं** पद एक का ही वाची है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है—**सबन्धुः शुनासीर्यस्य यं पूर्वमवोचाम्।** २।६।३।५॥ अर्थात् शुनासीर्य का वही ब्राह्मण है, जिसे हम पहले कह चुके हैं। यहां भी **अवोचाम्** पद का अर्थ विचारणीय है। हां, यह देखा गया है कि एक भी व्यक्ति अपने लिए बहुवचन का प्रयोग करता है। जनक कहता है—**सहस्रं भो याज्ञवल्क्य दद्मो यस्मिन्वयं त्वयि मित्रविन्दामवविदामेति।**[1] यहां जनक अपने लिए बहुवचन का प्रयोग कर रहा है।

वयं पद से निर्दिष्ट वे अन्तिम लोग थे, जिन्होंने शतपथ के साथ खिल भाग जोड़ा, या सारे ही याज्ञवल्क्य-प्रोक्त ब्राह्मण में प्रक्षेप किया। हमारा अपना विचार है कि उन्होंने प्रक्षेप थोड़ा ही किया होगा। खिल तो अवश्य उन्हीं के हैं। ये लोग महाभारत काल से दो तीन सौ वर्ष पीछे के हो सकते हैं। ब्राह्मणों का काल निर्णय करने में जो कहीं २ ऐतिहासिक अड़चन आ पड़ती है, वह इन्हीं के प्रक्षिप्त भागों से सम्बन्ध रखने वाली मानी जा सकती है। छान्दोग्य उपनिषद् और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण के महिदास की आयु से सम्बन्ध रखने वाले वाक्य ऐसे ही प्रक्षेपों में से हो सकते हैं।

इस वंश के सम्बन्ध में शंकर बृहदारण्यक उपनिषद् भाष्य के अन्त में लिखता है—**अथेदानीं समस्त-प्रवचनवंशः॥**

---

१. ११।४।३।२॥ श० ब्रा०, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, काशी।

द्विवेदगङ्ग माध्यन्दिनारण्यक की व्याख्या के अन्त में लिखता है—**अयं वंशः समस्तस्यैव प्रवचनस्य भवति न व्यवहितखिलकाण्डस्य।** अर्थात्—यह वंश समस्त ब्राह्मण के प्रवचन-कर्ताओं का है, खिलकाण्ड वालों का ही नहीं।

दोनों टीकाकारों की यह खेंच तान है। सारा इतिहास उच्च स्वर से कहता है कि शतपथ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य-प्रोक्त है। उस के प्रवक्ता "वयं" पद से अभिप्रेत अनेक आचार्य कैसे हो सकते हैं। अवश्य इन आचार्यों ने समय समय पर इस ब्राह्मण में प्रक्षेप किए होंगे, चाहे ये प्रक्षेप थोड़े ही हों। हो सकता है, इस विचार को कई लोग स्वीकार न करें। पर यह वंश तो उन को भी प्रक्षिप्त मानना ही पड़ेगा।

(ञ) सामविधान ब्राह्मण ३।९।३।। में एक वंश कहा है। वह निम्नलिखित प्रकार से है—

(१) प्रजापति
|
(२) बृहस्पति
|
(३) नारद
|
(४) विष्वक्सेन
|
(५) व्यास पाराशर्य
|
(६) जैमिनि
|
(७) पौष्पिञ्जय
|
(८) पाराशर्यायण
|
(९) बादरायण
|
(१०) ताण्डि
|
(११) शाट्यायनि

इन्हीं अन्तिम दो व्यक्तियों ने ताण्ड्य और शाट्यायन ब्राह्मणों का प्रवचन किया था। ये आचार्य पाराशर्य व्यास से कुछ ही पीछे के हैं। अतः इनके कहे हुए ब्राह्मण ग्रन्थ भी महाभारत-कालीन ही हैं। सम्भवतः शतपथ ६।१।२।२५।। में **अथ ह स्माह ताण्ड्यः** जिस ताण्ड्य का कथन है, वह इसी का सम्बन्धी है।

(ट) पं० अभयकुमार गुहा ने एक ग्रन्थ लिखा था।[1] इस ग्रन्थ में एक विषय का बड़ा अच्छा प्रतिपादन है। गुहा ने यह सिद्ध कर दिया है कि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे। हम इस विषय में गुहा की युक्तियों से पूरे सहमत हैं।

वेदान्तसूत्र, वेदव्यास का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है। वेदान्त सूत्रों में उपनिषदों, आरण्यकों, ब्राह्मणों और मन्त्र-संहिताओं का स्पष्ट कथन किया गया है। यथा—

---

१. Jivatman in the Brahma Sutras, 1921

(१) ईक्षतेर्नाशब्दम् ।१।१।५॥
(२) श्रुतत्वाच्च ।१।१।११॥
(३) मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते ।१।१।१५॥
(४) अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ।१।२।१८॥
(५) शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ।१।२।२०॥
(६) आमनन्ति चैनमस्मिन् ।१।२।३२॥
(७) परात्तु तत्श्रुतेः ।२।३।४१॥
(८) अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ।३।१।४॥
(९) पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात् ।३।३।२४॥
(१०) शब्दश्चातोऽकामकारे ।३।४।३१॥

इन सूत्रों में छान्दोग्य उपनिषद्, श्वेताश्वतर उपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद्, काण्व और माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण, जाबाल उपनिषद्, कौषीतकि उपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद्, ताण्डी और पैङ्गी के रहस्य-ब्राह्मण, तथा काठक संहिता की श्रुतियों का क्रमशः वर्णन है।

व्यास और उन के शिष्य प्रशिष्यों ने ही ब्राह्मणों का संकलन आरम्भ किया था। वेदान्त सूत्रों में इन सब के प्रमाण आ जाने से यह निश्चय होता है कि व्यास जी के जीवन काल में ही यह संकलन समाप्त हो चुका था। इस प्रकार भी यही निश्चय होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ महाभारत काल में ही संकलित हुए।

प्रश्न—वेदान्त सूत्र[1] में मनुस्मृति का उल्लेख है। मनुस्मृति तो बहुत नया ग्रन्थ है। पाश्चात्य लेखक इसे ईसा की प्रथम शताब्दी के समीप का मानते हैं। मनु का उल्लेख करने से वेदान्तसूत्र भी बहुत नवीन ठहरते हैं। ऐसे सूत्रों के साक्ष्य के आधार पर ब्राह्मण-ग्रन्थों का काल निश्चय करना क्या भूल नहीं है।

उत्तर—मनुस्मृति के कुछ श्लोक अवश्य नवीन हैं, परन्तु मूल ग्रन्थ महाभारत से पर्याप्त पहले का है। इस लिए ऐसी कल्पनाएं निरर्थक हैं। इस विषय पर अधिक विचार इस ग्रन्थ के किसी अगले भाग में होगा।

(ठ) महाभारत आदि पर्व अध्याय ६३ में कहा है—

प्रतीपस्तु खलु शैब्यामुपयेमे सुनन्दां नाम।
तस्यां त्रीन् पुत्रानुत्पादयामास।
देवापिं शन्तनुं बाह्लीकं चेति ।४७॥[2]

अर्थात्—प्रतीप ने शिवि देश की सुनन्दी से विवाह किया। उस में से उस ने तीन पुत्र देवापि, शन्तनु और बाह्लीक उत्पन्न किए।

प्रतीप के इस तीसरे पुत्र बाह्लीक का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है—तदु ह बल्हिकः प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा।[3]

---

१. ३।४।३०॥; ३।४।३८॥ इत्यादि।
२. देखें ८९।५२॥ पूना संस्करण।
३. १२।९।३।३॥ श० ब्रा०।

उद्योग पर्व में लिखा है।

(क) महाराजो वाह्लिकः प्रातिपेयः[1]

(ख) प्रातीपः शन्तनुः[2]

यह व्यक्ति महाभारत कालीन ही है, और इसका उल्लेख करने से शतपथ भी लगभग उसी काल का ठहरता है।

प्रश्न—रामायण में एक ऐसा स्थल है जो ब्राह्मण ग्रन्थों को महाभारत-कालीन नहीं मानने देता। दाशरथि राम का काल महाभारत से सैंकड़ों वर्ष पहले का है। कठ, कालाप और तैत्तिरीय आदि लोग जब राम के काल में थे, तो ये ब्राह्मण-ग्रन्थ जो इन्हीं ऋषियों का प्रवचन हैं, महाभारत काल के कैसे हो सकते हैं। लिखा है—

कौसल्यां च य आशीभिर्भक्तः पर्युपतिष्ठति।
आर्चायस्तैत्तिरीयाणामभिरूपश्च वेदवित् ॥१५॥
पशुकाभिश्च सर्वाभिर्गवां दशशतेन च।
ये च मे कठकालापा बहवो दण्डमाणवाः ॥१८॥[3]

उत्तर—ये श्लोक अवश्यमेव प्रक्षिप्त हैं। वङ्गीय वाल्मीकीय रामायण सर्ग ३२ में ये ऐसे हैं—

सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते तु केवलः।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम् ॥१७॥
ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चापि परिचारकाः।
सर्वास्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥२०॥

पश्चिमोत्तरीय वाल्मीकीय रामायण सर्ग ३५ में यही श्लोक ऐसे हैं—

सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते सदैव सः।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम् ॥१७॥
ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चान्ये परिचारिकाः।
सर्वांस्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥२०॥

इन दो श्लोकों में से पहला श्लोक तीनों पाठों में कुछ-कुछ मिलता है। लाहौर संस्करण के सर्वोत्तम कोष में यह नहीं है। दूसरा श्लोक केवल दाक्षिणात्य पाठ में ही है। उसके स्थान में दूसरे दोनों पाठ कुछ पृथक् ही लिखते हैं। इस का प्रक्षिप्त होना निर्विवाद है। पहला श्लोक और उस में तैत्तिरीयाणां पाठ किसी कृष्ण-यजुर्वेद-भक्त दाक्षिणात्य का मिलाया हुआ प्रतीत होता है। महाभारत और महाभाष्य के प्रमाण से हम बता चुके हैं कि ब्राह्मणकार तित्तिरि और कठ आदि आचार्य महाभारत काल में ही थे, अतः उन को राम के काल में कहने वाला श्लोक किसी इतिहासानभिज्ञ व्यक्ति का मिलाया हुआ है। जब तित्तिरि ही वैशंपायन का

---

१. २३।९॥, पूना संस्करण।
२. १४६।२॥ वही।
३. सर्ग ३२, अयोध्याकाण्ड, रामायण, सातवलेकर।

प्रशिष्य है तो तैत्तिरीय लोग राम-काल में कैसे हो सकते हैं। काण्डानुक्रमणिका में लिखा है—वैशम्पायनो यास्कायैतां प्राह पैङ्ग्ये। यास्कस्तित्तिरये प्राह उखाय प्राह तित्तिरिः ॥१५॥

प्रश्न—हम तो ब्राह्मण-ग्रन्थों को बहुत पुराना समझते थे, पुराना ही नहीं, काल की दृष्टि से वेदों के समीपतम समझते थे। आर्यों का इतिहास महाभारत-काल से भी लाखों वर्ष पहले का है। वेद भी तभी से चले आये हैं। यदि ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत काल के हैं, तो इन लाखों वर्षों में अग्रा-बुद्धि रखने वाले ब्रह्मवर्चस्वी, सर्वविद्यावित् ऋषियों ने क्या कोई भी ग्रन्थ न बनाये थे।

उत्तर—हम ने कब कहा है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों की सब सामग्री महाभारत काल में ही बनी। इस के विपरीत हम इस अध्याय के आरम्भ में कह चुके हैं कि ब्रह्मा के काल से ही ब्राह्मण वाक्यों का प्रवचन आरम्भ हो गया था। यह प्रवचन निरन्तर होता रहा। तदनन्तर महाभारत काल में कुछ नया प्रवचन हुआ। सम्पूर्ण प्रवचन का आद्यन्त संग्रह करके महाभारत कालीन ऋषियों ने ये साम्प्रतिक ब्राह्मण-ग्रन्थ बनाये।

शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने ज्योतिष शास्त्र का इतिहास मराठी भाषा में लिखा है। उस में उन्होंने ब्राह्मण-ग्रन्थों के काल निरूपण का भी यत्न किया है। शतपथ ब्राह्मण २।१।२।३॥ में ऐसा पाठ है—

एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते।
सर्वाणि ह वाऽअन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते ॥

इस पाठ में कहा है कि नक्षत्र संसार में कभी ऐसी अवस्था थी, जब कि कृत्तिका नक्षत्र को छोड़कर शेष सब नक्षत्र प्राची दिशा में जाते थे। दीक्षित महाशय ने ज्योतिष के अनुसार गणना करके यह दिखाया है कि ऐसी अवस्था अनेक बार हो चुकी होगी। परन्तु अन्तिम दशा जो इस समय से पहले हो चुकी है, वह विक्रम से लगभग ३००० वर्ष पहले हुई थी। शतपथ आदि ब्राह्मणों में इसी का उल्लेख है। अतः शतपथादि ब्राह्मण अवश्य ही इतने पुराने हैं। जो परिणाम हमने ऐतिहासिक दृष्टि से निकाला है, वही परिणाम दीक्षित महाशय ने ज्योतिष की गणनाओं से निकाला है। ब्राह्मण ग्रन्थों में और भी ऐसे अनेक पाठ हैं, जिन्हें यदि ज्योतिष की दृष्टि से देखा जाए, तो यही परिणाम निकलता है। अतः ब्राह्मण-ग्रन्थों का संकलन महाभारत-काल में हुआ, ऐसा कहना निर्विवाद है।

श्रीयुत बी० वी० कामेश्वर अय्यर एम० ए० ने The age of the Brahmanas नाम का लेख लिखा था।[1] उस में ब्राह्मणान्तर्गत ज्योतिष-विषयक सामग्री का अच्छा संग्रह है। यद्यपि हम उस से पूरे सहमत नहीं हैं, तथापि लेख को विचारणीय समझते हैं।

पाश्चात्य लेखकों में से रोथ, वैबर, मैक्समूलर, मैकडानल, ब्लूमफील्ड, कीथ आदि सज्जनों ने भी ब्राह्मणों के काल पर लेख लिखे हैं। उन सब लेखों का आधार उन की निज की कल्पनाएं हैं। कल्पनाएं प्रमाण नहीं हुआ करतीं। इस लिये हम ने उन सब को उपेक्षा-दृष्टि से देखा है। हमारा सारा कथन आर्य ऐतिह्य के अनुकूल है। ऐतिह्य को त्याग कर कल्पना का आधार लेना पाश्चात्यों को ही प्रिय है। विद्वान् इस की अवहेलना करते हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थ ब्रह्मा के काल से बनने आरम्भ हुए और उन का अन्तिम संग्रह महाभारत-काल में

---

१. पृ० १७१-१९३, २२३-२४१, ३५९-३६६, भाग १२, Journal of the Mythic Society

हुआ, इस विषय में भगवान् दयानन्द सरस्वती स्वामी की भी यही सम्मति है। वे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के भाष्यकरणशङ्कासमाधानादिविषय के आरम्भ में लिखते हैं—यानि पूर्वैर्देवैर्विद्वद्भिर्ब्रह्मारभ्य याज्ञवल्क्य-वात्स्यायन जैमिन्यन्तैर्ऋषिभिश्चैतरेय-शतपथादीनि भाष्याणि रचितान्यासन् ।[1]

अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन ब्रह्मा से लेकर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन और जैमिनि तक होता रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के दूसरे लेखों से यही निश्चित होता है कि उनके अनुसार यह जैमिनि, भगवान् व्यास का शिष्य था। पूर्वोक्त वाक्य में याज्ञवल्क्य और वात्स्यायन, जैमिनि के साथी ही समझे गये हैं। अतएव स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार भी ब्राह्मणों के अन्तिम प्रवक्ता महाभारत-काल में विद्यमान थे।

---

१. पृ० ३२०, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, दयानन्द सरस्वती, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, देहली, १९६९।

छठा अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्ववर्ती वाङ्मय

आर्ष वाङमय तथा संस्कृति का दिग्दर्शन उपलब्ध ग्रन्थों से ही होता है। पिछली दो शताब्दियों का निरन्तर प्रयत्न उपलब्ध वाङमय को सुरक्षित कर सका है। यदि मूल ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं तो उनके उद्धरण कहीं न कहीं मिल जाते हैं। सम्पूर्ण वाङमय का ज्ञान तो असम्भव है, परन्तु एक विहंगम अवलोकन अब भी हो जाता है।

महाभारत से पूर्व ब्राह्मण-ग्रन्थों की मौलिक सामग्री का ही केवल प्रवचन नहीं हुआ, प्रत्युत आर्य ऋषि मुनि सब ही विद्याओं के ग्रन्थ बनाते रहे हैं। इस में भी प्रमाण हैं। न्याय भाष्यकार महामुनि वात्स्यायन न्याय सूत्र ४।१।६२॥ पर भाष्य करते हुए किसी ब्राह्मण-ग्रन्थ का यह प्रमाण देते हैं—

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते। ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहास-पुराणमभ्यवदन्.........य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।

अर्थात्—प्रमाणरूप ब्राह्मण से इतिहास और पुराण की प्रामाणिकता जानी जाती है। वे यह अथर्वाङ्गिरस थे, जिन्होंने इतिहास और पुराण कहा था। जो मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् मन्त्रार्थ के द्रष्टा हैं, वही इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र के प्रवक्ता हैं। पुनः सूत्र २।२।६७॥ पर लिखते हैं—**य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामिति।**

किसी विलुप्त ब्राह्मण तथा वात्स्यायन के इस लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाभारत-काल से बहुत पहले, आदि सृष्टि अर्थात् अथर्वाङ्गिरस ऋषियों के काल में ही तथा मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों के काल में भी निम्न ग्रन्थ विद्यमान थे—

(१) इतिहास।

(२) पुराण—सृष्ट्युत्पत्ति आदि विषयक वर्णन करने वाले ग्रन्थ।

(३) धर्मशास्त्र—मानवादि।

(४) आयुर्वेद।

शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।८ में निम्नलिखित वाक्य है। उसके अनुसार इन ब्राह्मण-ग्रन्थों के संकलन से पहले ये ग्रन्थ भी विद्यमान थे। लिखा है—**यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा**

नाराशंस्यः ।[1] अर्थात्—

(५) अनुशासन ग्रन्थ ।

(६) वाकोवाक्य ग्रन्थ ।

(७) गाथा ग्रन्थ ।

(८) नाराशंसी ग्रन्थ ।

शतपथ १४।६।१०।६।। के अनुसार—इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि ।

(९) उपनिषद् (मौलिक उपनिषद्)

(१०) श्लोक ग्रन्थ ।

(११) सूत्र ग्रन्थ ।[2]

(१२) अनुव्याख्यान ग्रन्थ ।

(१३) व्याख्यान ग्रन्थ ।

ऐतरेय ब्रा० ३।२५।। के अनुसार—इत्याख्यानविद आचक्षते । अर्थात्—

(१४) आख्यान ग्रन्थ ।

छान्दोग्य उपनिषद् ७।२।२।। के अनुसार—इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।

(१५) भूत विद्या ।

(१६) क्षत्र विद्या ।[3]

(१७) नक्षत्र विद्या ।

(१८) सर्पदेवजनादि विद्या ।

मुण्डकोपनिषद् १।१।५।। के प्रमाण के अनुसार—शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इति ।

(१९) शिक्षा ।

(२०) कल्प ।

(२१) व्याकरण ।

(२२) निरुक्त ।

(२३) छन्दः शास्त्र ।

(२४) ज्योतिष ।

तैत्तिरीयारण्यक २।९।। के अनुसार—ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ।

(२५) ब्राह्मण ग्रन्थ (मौलिक ब्राह्मण) ।

---

१. तुलना करें महाभारत आश्वमेधिक पर्व, पृष्ठ ४४०, पूना संस्करण ।
इतिहासपुराणं च गाथाश्चोपनिषत्तथा । आथर्वणानि कर्माणि चाग्निहोत्रकृते कृतम् ॥

२. इन सूत्रों में व्याकरण, श्रौत, गृह्य, धर्म आदि सब ही विषयों के सूत्र हो सकते हैं ।

३. इस से धनुर्विद्या के ग्रन्थ धनुर्वेद अभिप्रेत हो सकते हैं ।

एक बात निश्चित है। विद्वान् भास जैसा एक कवि अपने पात्र के मुख से असमयोचित शब्द नहीं निकलवा सकता। प्रतिमा नाटक में जो वाक्य उस ने रावण के मुख से कहाया है, वह महाभारत काल से पहले का इतिहास बताता है। तदनुसार—रावणः—"···काश्यपगोत्रोऽस्मि साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।[1]

(२६) उपाङ्ग ग्रन्थ।[2]

(२७) माहेश्वर योगशास्त्र।

(२८) बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र।

(२९) न्याय शास्त्र मेधातिथि= गौतम[3] विरचित।

(३०) प्राचेतस श्राद्धकल्प।

शतपथ ब्राह्मण ११।४।३।२०॥ में अंगजिद् ब्राह्मणों का कथन किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि शिक्षा आदि अङ्गों की विद्या भी पुरानी है।

वाल्मीकि रचित वाल्मीकीय रामायण निश्चय ही महाभारत से बहुत पहले काल का ग्रन्थ है। अतः—

(३१) वाल्मीकीय रामायण[4] इत्यादि।

कहां तक लिखें महाभारत काल से पहले आर्यों के वाङ्मय में प्रायः सब ही विद्याओं के ग्रन्थ थे। आर्यों में जब कोई नाविद्वान्,[5] अविद्वान् ही न था, तो पुनः विद्या सम्बन्धी ग्रन्थों का क्या कहना। ऐसे अनेक ग्रन्थ थे।

---

१. पृ० ४८ (२९६), प्रतिमा नाटक, भास नाटक चक्रम्, पूना।

२. किसी काल में चार उपवेदों को भी उपाङ्ग कहते होंगे। सुश्रुत के आरम्भ में लिखा है—**इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।** अर्थात् यह आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है।

३. मेधातिथि=गौतम था। देखें शान्तिपर्व २५८।४२॥

४. हेमचन्द्र राय चौधरी अपने ग्रन्थ Political History of Ancient India (सन् १९२३) में लिखते हैं—but large portions of which (Ramayana etc.), in the opinions of competent critics, belong to the post—Bimbisarian period. The present Ramayana not only mentions Buddha Tathagata (II. 109. 34) etc. p. iii. चौधरी जैसे विद्वानों को इतनी शीघ्रता से सम्मति न देनी चाहिए थी।

रामायण के कुछ श्लोक प्रक्षिप्त तो अवश्य हैं, पर रामायण का अधिकांश भाग ऐसा नहीं। न ही रामायण महाभारत-काल से पीछे का ग्रन्थ है। यह श्लोक—**यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धः तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि** जिसे उन्होंने प्रमाणरूपेण उद्धृत किया है, वह वङ्गशाखीय वा पश्चिमोत्तर रामायण में नहीं है। देखें रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग ११८ और १२२ क्रमशः।

ऐसे ही चौधरी पृ० ११ पर रामायण अयोध्याकाण्ड (II. 64. 42) का प्रमाण "जनमेजय" के विषय में देते हैं। **यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः।**

यह श्लोक भी दोनों अन्य शाखाओं में नहीं मिलता। देखें क्रमशः सर्ग ६६ और ७०।

५. वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड ६।८॥ छान्दोग्य उपनिषद् ५।११।५॥ महाभारत शान्तिपर्व १७।२३॥

प्रश्न—ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा वेदों की भाषा के बहुत समीप है। अतः ब्राह्मणों से पहले लौकिक भाषा में ग्रन्थों का होना एक असम्भव बात है।

उत्तर—यह भी तुम्हारे मिथ्या भ्रम का ही परिणाम है। पश्चिम के कुछ विद्वानों के दर्शाये हुए असत्य-भाषा-विज्ञान (Philology) को सत्य मानकर पढ़ने से ही ऐसे सारहीन प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। विन्टरनिट्ज को भी यह बात उचित नहीं प्रतीत हुई। परन्तु उन्होंने विश्लेषणात्मक उत्तर नहीं दिया। ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेकों ऐसी गाथायें और श्लोक हैं, जो सर्वथा लोकभाषा में हैं। उन के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

तदेष श्लोकोऽभ्युक्तः—तद्ध स प्राणोऽभवन् महाभूत्वा प्रजापतिः।
भुजो भुजिष्या वित्वैतद् यत् प्राणान् प्राणयत् पुरि ॥[1]

तदेष श्लोको भवति—अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्।
मृत्युर्विवस्वन्तं वस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति ॥[2]

तथा अन्य श्लोकों के लिए देखें शतपथ १०।५।२।१८॥ १०।५।४।१६॥ ११।३।१।५, ६॥ ११।५।४।१२॥ ११।५।५।१२॥ १२।३।२।७, ८॥ इत्यादि। शतपथ ब्राह्मण के तेरहवें और चौदहवें काण्ड में भी बहुत से श्लोक हैं। गाथाओं के कुछ उदाहरण हम पृष्ठ ६९-७१ पर दे चुके हैं। ऐसे ही अन्य ब्राह्मणों में भी श्लोक आदि पाये जाते हैं। ये सब श्लोक वा गाथाएं भाषा अर्थात् लोकभाषा में ही हैं। ऊपर भी बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र[3] आदि नाम के जो ग्रन्थ लिखे हैं, वे भी सब लोकभाषा में ही हैं। इस से ज्ञात होता है कि प्रवचन की भाषा के साथ ही साथ, लोकभाषा भी सदा से विद्यमान रही है। अधिक विचार करने से विद्वान् स्वयं इसी विचार पर पहुँच जाएंगे।

---

१. ७।५।१।२१॥ श० ब्रा०।

२. १०।५।२।४॥ श० ब्रा०।

३. इस अर्थशास्त्र के कई उद्धरण विश्वरूपाचार्य प्रणीत याज्ञवल्क्यस्मृति की बालक्रीडा टीका में पाये जाते हैं।

सातवां अध्याय

क्या ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं

शबर[1], पितृभूति, शंकर,[2] कुमारिल,[3] भवस्वामी, देवस्वामी,[4] विश्वरूप,[5] मेधातिथि,[6] कर्क, धूर्तस्वामी, देवत्रात, वाचस्पतिमिश्र, राजशेखर,[7] रामानुज, उवट, मस्करी,[8] सायण[9] प्रभृति सब ही बड़े बड़े आचार्य मन्त्र ब्राह्मण दोनों को वेद मानते आए हैं। गत तीन हजार वर्ष में आर्यावर्त के किसी विद्वान् को इस बात का सन्देह नहीं हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। इतने काल से आर्यों के हृदय में ब्राह्मणों की श्रुतियों का उतना ही मान रहा है, जितना संहिताओं के मन्त्रों का रहता था। आर्यों के श्रौत कार्य इन दोनों को तुल्य मान कर ही होते रहे हैं।

यह सब कुछ ही था, पर इस बीसवीं शताब्दी विक्रम में दयानन्द सरस्वती ने इन सब के विरुद्ध इस बात का प्रकाश किया कि ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं हैं। वे ऋषिप्रोक्त हैं, ईश्वरोक्त नहीं। इत्यादि। दयानन्द सरस्वती ने स्वपक्ष पोषणार्थ अनेक युक्तियां दीं। वे युक्तियां इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त ही हैं। उन के विरुद्ध जो उचित पूर्वपक्ष उठाया गया है, हम उसका उत्तर तो देंगे ही, पर कुछ एक सर्वथैव नये प्रमाण

---

१. मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदः ।२।१।३३॥

२. वेदानुवचनेन=मन्त्रब्राह्मणाध्ययने । बृहदारण्यक उपनिषद् भाष्य, ४।४।२२॥ पृ० ६८८, आनन्दाश्रम ।

३. मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद इति नामधेयं षडङ्गमेक इति । कुमारिल किसी धर्मशास्त्र का यह वचन तन्त्रवार्तिक १।३।१०॥ पर लिखता है ।

४. विष्णुगूढ़ भट्टोपाध्यायकृत सिद्धान्ति विवृत्ति । देखें संख्या ३९३९, मद्रास कैटलाग, भाग ४ तथा १६९५ a, b, मद्रास कैटालाग । ऐशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता पृ० ३४७ भी देखें ।

५. वेदसंहिता मन्त्रब्राह्मणमित्यर्थः । श्लोक २४२ पर भाष्य, पृ० १०३, भाग २, याज्ञवल्क्य स्मृति, बालक्रीडा टीका ।

६. वेदशब्देनर्ग्यजुःसामानि ब्राह्मणसंहितान्युच्यन्ते । मनुस्मृति २।६॥ पृ० ५८ ।

७. श्रुतीनां साङ्गशाखानामितिहासपुराणयोः । पृ० ३६, काव्यमीमांसा, राजशेखर कृत, दलाल तथा शास्त्री द्वारा संपादित, बड़ोदा, १९३४ ।

८. वेदो मन्त्रब्राह्मणाख्यो ग्रन्थराशिः ।१।१॥

९. मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः । तैत्तिरीय संहिता भाष्य का आरम्भ ।

भी प्रस्तुत करते हैं। इन प्रमाणों से ब्राह्मणों का अनीश्वरोक्त होना सिद्ध हो जायगा। अन्त में यह भी बताएंगे कि इतने बड़े-बड़े पुराने आचार्यों को इस बात में क्यों भ्रम हो गया।

(क) गोपथ ब्राह्मण पूर्व २।१०॥ में कहा है—**एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः[1] सब्राह्मणाः[1] सोपनिषत्काः[1] सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्याः।**[2]

यहां ब्राह्मणकार स्वयं कह रहे हैं कि (१) कल्प (२) रहस्य (३) ब्राह्मण (४) उपनिषद् (५) इतिहास (६) अन्वाख्यान (७) पुराण (८) स्वर[3] [ग्रन्थ] (९) संस्कार[4] [ग्रन्थ] (१०) निरुक्त (११) अनुशासन (१२) अनुमार्जन और (१३) वाकोवाक्य आदि ग्रन्थ वेद नहीं हैं। वे वेदार्थ की सहायता के लिए उन के साथ निर्मित हुए थे। जब ब्राह्मणकार स्वयं इन्हें वेद नहीं मानते, तो फिर हम क्यों इन्हें वेद मानें।

(ख) परम विद्वान् वेदविद् भगवान् मनु अपने धर्मशास्त्र में कहते हैं—

(१) **उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।**
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥२॥१४०॥

(२) **रहस्यानि सामान्यारण्यकाधीतानि।** मेधातिथि भाष्य। ११।२६१॥

यहां रहस्य शब्द आया है। रहस्य शब्द आरण्यक अथवा उपनिषद् का द्योतक है। बौधायन धर्म सूत्र पर मस्करी भाष्य में लिखा है—**रहस्यं आरण्ये पठितव्यो ग्रन्थो यः तं।**[5] दुर्गाचार्य निरुक्त टीका में लिखता है—**विज्ञायते ही रहस्यब्राह्मणे—य एव सूर्यः।**[6] यह पाठ ऐतरेय आरण्यक २।२।४॥ का है। यहां रहस्य ब्राह्मण से आरण्यक का अभिप्राय लिया गया है। यह दुर्गाचार्य के इस कथन से और स्पष्ट हो जाता है—**ऐतरेयकं रहस्यब्राह्मणे।**[7] उपलब्ध धर्मसूत्रों के काल में भी आरण्यक ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तर्गत ही माने जाते थे। बौधायन धर्म सूत्र ३।७।७।१६॥ में तैत्तिरीय आरण्यक २।७।५॥ के प्रमाण को **इति ब्राह्मणम्** कहा है। भट्टभास्कर भी **ब्राह्मणं च भवति**[8] ऐसा कहकर तैत्तिरीय आरण्यक १।३२॥ को उद्धृत करता है।

काठक गृह्य सूत्र के देवपाल भाष्य में लिखा है—**उपनिषदं रहस्यशास्त्रम्।**[9]

उपनिषद् और आरण्यक ग्रन्थ आजकल ब्राह्मणों का भागमात्र हैं। मनु इनका वेद से पृथक् निर्देश करते हैं। अतः उनकी दृष्टि में ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं है।

---

१. प्रतीत होता है, इन साम्प्रतिक ब्राह्मणों से पहले, रहस्य अर्थात् आरण्यकादि और उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग नहीं थे।
२. पं० राजाराम कृत निरुक्त भाषानुवाद की भूमिका, पृ० ४, देखें।
३. प्रातिशाख्यादि।
४. देखें बोधायन धर्मसूत्र २।८।३॥ मस्करीभाष्य।
५. २।८।३॥ वही, देखें गोविन्द स्वामी विवरण, पृ० २७०, चौ० सं० सी०।
६. १२।१६॥ निरुक्त, दुर्ग टीका सहित।
७. १।४॥ पृ० ३८, निरुक्त, दुर्ग टीका सहित।
८. पृ० २, तैत्तिरीय आरण्य।
९. १०।१॥ कालेण्ड, लाहौर, १९२५।

मेधातिथि प्रभृति मनु के टीकाकार स्वपक्ष में इस आपत्ति को देख कर अनेक कल्पनाएं उठाते हैं। यह सब कल्पनाएं ऐसी ही हैं जो किसी असत्य पक्ष को छिपा तो सकती हैं, पर हटा नहीं सकतीं।

(३) मनुस्मृति में ही पंक्ति पावनों के ही उल्लेख में लिखा है—

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च।
श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥३।१८४॥

अर्थात् वेद तथा प्रवचन में जो अग्रणी हैं वे पंक्तिपावन हैं। प्रवचन शब्द से अभिप्राय ब्राह्मण ग्रन्थ का ही है, ऐसा ऊपर पृ० ५ पर लिखा गया है।

ब्राह्मणों के प्रवक्ता ऋषि, ब्राह्मणों को वेद नहीं मानते थे, यह गोपथ ब्राह्मण के पूर्वोद्धृत प्रमाण से प्रकट हो चुका है। मन्वादि महर्षि आरण्यकों को वेद से पृथक् मानते हैं, ऐसा इस पूर्व लिखित श्लोक से स्पष्ट है। उन के उत्तरवर्ती और भी आचार्य आरण्यकों को वेद नहीं मानते हैं। एक आरण्यक तो स्पष्ट ही एक ऋषि का बनाया हुआ माना गया है। सायण ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात में लिखता है—**उक्तं च शौनकेन। सुरूपकृत्नुमूतय इति.........।१।४।१॥**

यह वाक्य ऐतरेय आरण्यक ५।२।५॥ में मिलता है। इस से पता चलता है कि बहुत पुराने काल में ही नहीं प्रत्युत सायण तक भी आरण्यक ग्रन्थ बड़ी साधारण दृष्टि से देखे जाते थे। शतपथादि ब्राह्मणों के वचनों के लिए कभी यह प्रयोग नहीं मिलता। यथा—**उक्तं च याज्ञवल्क्येन।**

प्रश्न—महामोहविद्रावण के लिखाने वाले राममिश्र शास्त्री आदि[1] तथा प्रकाशित करने वाला मोहनलाल स्वग्रन्थ के प्रथम प्रबोध में कहता है—**तथा हि षष्ठेऽध्याये मनुः—**

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥२९॥

अत्र "औपनिषदीः श्रुतीः" इत्युक्त्वा उपनिषदां श्रुतिशब्दवाच्यत्वं श्रुतिशब्दस्य च वेदाम्नायपदपर्य्यायत्वम्। यथाह मनुरेव—श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।२।१०॥

अतएव—दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन् समाहितः।
वेदान्तं विधिवत् श्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥६।९४॥

इत्यादि मानवशास्त्रे वेदान्तपदेनोपनिषदां परिग्रहः।" इति

उत्तर—जिस ब्राह्मण को पूर्वपक्षी वेद मानता है, जब वही ब्राह्मण रहस्य, उपनिषद् और ब्राह्मण को वेद नहीं मानता, तो मनु उसके विरुद्ध कैसे कह सकते हैं। मनु के अपने लेख में भी परस्पर विरोध नहीं होना चाहिए। मनु अध्याय २ के श्लोक ८–१५ तक का यही समन्वय है कि स्मृति के प्रतिपक्ष में श्रुति और वेद शब्द यहां प्रयुक्त हुए हैं। स्मृति वेद के उतनी समीप नहीं जितने कि ब्राह्मण, उपनिषद् आदि ग्रंथ हैं। वेद-व्याख्यान होने से, ये वेद के बहुत समीप हैं। इसी लिए इन्हें वेद वा श्रुति कहा गया है। फिर भी उपनिषद् को उतना ऊंचा पद नहीं दिया। स्पष्ट मनु कह रहा है कि **औपनिषदीः श्रुतीः**। श्रुति शब्द का अर्थ सर्वत्र वेद है

---

१. महामोहविद्रावण के कर्ता वेदान्ताचार्य मोहनलाल के मित्र वा अध्यापक श्री पूज्य स्वा० अच्युतानन्द जी ने यह बात हम से कही थी।

भी नहीं। महाभारत आदि ग्रन्थों में लौकिक ऐतिह्य को भी जो ब्राह्मणों आदि पर आश्रित है, श्रुति कहा है। यथा—यत्र तेपे तपस्तीव्रं वाल्म्यो बक इति श्रुतिः ।। शल्यपर्व ३९।३२।।

मनु स्वयं औपनिषदी श्रुति को वैदिकी श्रुति से भिन्न मानता है। इसी लिए मनु ७।९७।। में ऐसा प्रयोग है—राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।

वासिष्ठ धर्मसूत्र में भी इसी भाव से निम्नलिखित प्रयोग है—

(१) गुरुवद्गुरुपुत्रस्य वर्तितव्यमिति श्रुतिः ।१३।५४।।
(२) बह्वीनामेकपत्नीनामेका पुत्रवती यदि ।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रवत्य इति श्रुतिः ।।१७।११।।

बुद्धचरित ४।७३।। में भी श्रुति शब्द का प्रयोग है।

दाक्षिणात्य वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड ६।५।। में भी ऐसा ही भाव है—अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतीमिव।

इस प्रकरण में यहां वेदश्रुति शब्द का प्रयोग करने से ज्ञात होता है कि और प्रकार की भी श्रुतियां हो सकती हैं जैसे कि औपनिषदी श्रुति अथवा तान्त्रिकी श्रुति।

इसी प्रकार उपनिषद् में होने वाली अथवा उपनिषदों के भावों से सम्बन्ध रखने वाली भी परम्परा से सुनी हुई सच्चाई को औपनिषदीः श्रुतीः कहा है। ऐसा न मानने से मनु में परस्पर विरोध आने से मनु का ही प्रमाण न रहेगा। मनु ६।९४।। में जो वेदान्त शब्द आया है, वहां "अन्त" का अर्थ समीप ही है। अतः हमारे सिद्धान्त में कोई आपत्ति नहीं आती।

(ग) महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि भी कहते हैं—सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाः। चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः[1] यहां पर पतञ्जलि भी रहस्य अर्थात् उपनिषद् वेदों से पृथक् मानता है। जब उपनिषद् आदि ब्राह्मण भाग वेदों से पृथक् हैं और वेद नहीं हैं, तो ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानना अज्ञान ही है।

प्रश्न—महाभाष्य में तो लिखा है—

(१) वेदे खल्वपि—"पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः" इत्युच्यते ।१।१।१।।[2]
(२) तथा—"बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्" इत्युच्यते १।१।१।।[3]
(३) वेदशब्दा अप्येवमभिवदन्ति—

योऽग्निष्टोमेन यजते य उ चैनमेवं वेद।
योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते य उ चैनमेवं वेद।[4]

---

१. १।१।१।। पृ० ९, भाग १, कीलहार्न।

२. पृ० ८, वही।

३. वही। काठक गृह्यसूत्र ४।१८।। के देवपाल भाष्य के पाठ से अनुमान होता है कि यह प्रमाण कठ ब्राह्मण का है। यहां लिखा है—ब्राह्मणं च। बैल्वो वा खादिरो वा..........यूपः स्यात्......इति श्रुतेः।

४. पृ० १०, वही। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।११।८।५।। इत्यादि।

(४) वेदेऽपि—य एवं विश्वसृजः सत्त्राण्यध्यास्त इति तेषामनुकुर्वंस्तद्वत् सत्त्राण्यध्यासीत सोऽप्यभ्यु-दयेन युज्यते ॥[1]

ये पाठ ब्राह्मणों में ही मिलते हैं। इन से स्पष्ट हो जाता है कि महाभाष्य में पतञ्जलि मुनि और महाभाष्यस्थ वार्तिक में कात्यायन ब्राह्मणों को वेद मानते थे।

उत्तर—ब्राह्मणों की भाषा वह नहीं जो मन्त्रों की भाषा है। न ही ब्राह्मणों की भाषा सर्वथा लौकिक है। ब्राह्मणों की भाषा प्रवचन की भाषा है। ब्राह्मण वेदव्याख्यान हैं। भट्ट भास्कर और सायण आदि पूर्वपक्षी लोग भी ऐसा ही मानते हैं—ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः।[2]

सायण काण्व संहिता के भाष्य में लिखता है—तत्र शतपथब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वाद् व्याख्येय-मन्त्रप्रतिपादकः संहिताग्रन्थः पूर्वभावित्वात् प्रथमो भवति।[3]

अपने तैत्तिरीय संहिता भाष्य में वह पुनः लिखता है—यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वान्मन्त्रा एवादौ समाम्नाताः।[4] वेद-व्याख्यान होने से तथा प्रवचन की भाषा में होने से ही इन्हें वेद के अत्यन्त समीप माना जाता है। जिस प्रकार इस समय भी हम कल्प सूत्रों को वैदिक तो मानते हैं पर साक्षात् ईश्वरप्रोक्त वेद नहीं, वैसे ही प्राचीन लोग भी ब्राह्मणों को वैदिक तथा औपचारिक दृष्टि से वेद कह देते थे।

महाभाष्य के प्रस्तुत वाक्य में भी पतञ्जलि का यही अभिप्राय है। पतञ्जलि इस से पूर्व कात्यायन का वाक्य पढ़ता है—यथा लौकिकवैदिकेषु। इसी पर चलते-चलते वह लोक के प्रतिपक्ष में ब्राह्मणों को वेदवत् मानकर उन का प्रमाण उद्धृत करता है। इस में और कोई बात नहीं। महाभाष्य में अन्यत्र भी ऐसा ही स्पष्ट है।

(घ) ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः। ओमिति वै दैवं, तथेति मानुषम्। ७।१८॥

श्रौतसूत्रों में भी यही बात कही गयी है।

(१) आश्वलायन श्रौतसूत्र ६।३॥ में कहा है—

ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः। ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम् ॥

(२) शाङ्खायन श्रौतसूत्र में अनेक गाथाएं उद्धृत करके १५।२७॥ में कहा है—

तदेतच्छौनःशेपमाख्यानं परः शतगाथमपरिमितम्। ....हिरण्यकशिपावासीनः प्रतिगृणाति ओमित्यृचः प्रतिगरः। एवं तथेति गाथायाः। ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम् ॥

(३) कात्यायन श्रौतसूत्र के अध्याय १५ में कहा है—

शौनःशेपञ्च प्रेष्यति तथा ओ३मित्यृचां प्रतिगरस्तथेति गाथानाम् ॥[5]

---

१. १।१।२॥, पृ० २०, कीलहार्न, बम्बई। २. १।५।१॥ तैत्तिरीय संहिता, भट्ट भास्कर भाष्य सहित।

३. पृ० ८, काण्व संहिता, सायण भाष्य सहित। ४. पृ० ७, तैत्तिरीय संहिता, वही, आनन्दाश्रम, पूना।

५. १ तथा ३, षष्ठी कण्डिका, अध्याय १५, पृ० ५८, भाग २।

(४) आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १८।१६॥ में लिखा है—

(१) शौनःशेपमाख्यापयते। ऋचो गाथमिश्राः परःशताः परःसहस्रा वा ॥१०॥

(२) हिरण्यकूर्चयोस्तिष्ठन्नध्वर्युः प्रतिगृणाति ॥१२॥

(३) ओमित्यृचः प्रतिगरः। तथेति गाथायाः ॥१३॥

पुनः काठक संहिता १४।५॥ में कहा—अनृतं हि गाथानृतं नाराशंसीः। शतपथ ब्राह्मण १।१।१।४॥ में कहा है—अनृतं मनुष्याः।

इस से निश्चय होता है कि जो बात पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण से स्पष्ट होती है, वही सिद्धान्त काठक संहिता से प्रकाशित किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि अमुक यज्ञ में बैठकर गाथा के उत्तर में तथा कहे। यहां तथा मानुष है, यह स्वयं ब्राह्मण में स्वीकार किया गया है। ऋचा के प्रतिपक्ष में गाथा का उल्लेख स्पष्ट करता है कि जहां ऋचा दैवी=ईश्वरीय है, वहां गाथा मनुष्योक्त है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि मनुष्य अनृतरूप हैं, और काठक संहिता ने कहा है कि गाथा और नाराशंसी भी अनृत हैं, अर्थात् मानवीय हैं।

मैत्रायणी संहिता १।११।५॥ में भी गाथा और नाराशंसी का बहुत आदर नहीं है। लिखा है—**यो गाथा नाराशंसीभ्यां सनोति न तस्य प्रतिगृह्यम्। अनृतेन हि स तत्सनोति।** अर्थात् जो गाथा और नाराशंसी से पूजा करता है, उससे कुछ लेना नहीं चाहिये। वह तो अनृत से ही उसकी पूजा करता है।

ऊपर हम ने जो प्रतिज्ञा की थी, पूर्वोक्त प्रमाणों से वह सिद्ध हो गई, अर्थात् गाथाएं पौरुषेय हैं। यही पौरुषेय गाथाएं ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उद्धृत की गई हैं।[1] ये गाथाएं सर्वथैव लौकिक भाषा में ही हैं। जिन ग्रन्थों में लौकिक भाषा वाली पौरुषेय गाथाएं पायी जाएं और पायी ही न जाएं किन्तु उद्धृत की गई हों, वे ग्रन्थ वेद अर्थात् ईश्वरीय नहीं हो सकते। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यह पायी जाती हैं, अतएव ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं हैं। यदि ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद मानेंगे, तो ब्राह्मणोद्धृत अनृत गाथाएं ईश्वरकृत माननी पड़ेंगी। यह ब्राह्मण ग्रन्थों के ही विरुद्ध है। ब्राह्मण ग्रन्थ तो गाथाओं को मनुष्यकृत कह रहा है, फिर ब्राह्मण को वेद मानना अपने ही अज्ञान का प्रकाश करना है।

(ङ) तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा है—**यद् ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशꣳस्यभवत्।**[2] अर्थात् जो वेद का मल था वह गाथा, नाराशंसी बन गया। इस हीनोपमा से भी गाथा, नाराशंसी आदि को ब्रह्म अर्थात् वेद के तुल्य नहीं माना गया।

(च) तैत्तिरीयारण्यक और आश्वलायन गृह्यसूत्र में क्रमशः कहा है—

(१) ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीः ।२।९॥

(२) यद् ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति ॥३।३।१-३॥

यहां इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी को ब्राह्मणों का विशेषण माना है। गाथा, इतिहास पुराकल्प आदि ब्राह्मण ही हैं, यह भट्ट भास्कर मिश्र की भी सम्मति है। तैत्तिरीय संहिता भाष्य १।७।१॥ में

---

१. १३।५।४।२, ३, ६, ७, ९, ११॥ श० ब्रा०।

२. १।३।२।६॥ तैत्तिरीय ब्राह्मण, आनन्दाश्रम, पूना।

लिखा है—गाथा इतिहासाः पुराकल्पश्च ब्राह्मणान्येव ।......। सर्वाण्येतानि ब्राह्मणान्युच्यन्ते । ब्राह्मणपद संज्ञी और इतिहासादि उसकी संज्ञा हैं । इस वाक्य से यही प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राचीन इतिहास, पुराण (जगदुत्पत्ति सम्बन्धी बातें), कल्प, गाथा और नाराशंसी आदि का ही संग्रह है । ये कल्प आदि भी मनुष्य प्रणीत ही थे, अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ जो उनका संग्रहमात्र हैं, ईश्वरोक्त नहीं हो सकते ।

प्रश्न—निरुक्त में कहा है—तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति ।[1] यहां कहा है कि वेद में इतिहास और गाथा आदि मिश्रित हैं । इस से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि वेद भी मनुष्य-रचित हैं, तथा वेद और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं है ।

उत्तर—नहीं, इस से यह सिद्ध नहीं होता । यहां तत्र पद के साथ निरुक्तस्थ पूर्व वाक्य से सूक्त पद की अनुवृत्ति आती है । इसका अभिप्राय यह है कि ऋग्वेद के "उस सूक्त (१।१०५।८॥) में" ब्रह्म अर्थात् वेद में ही कुछ मन्त्र ऐसे हैं, जो नित्य इतिहास को कहते हैं, और कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिन की पारिभाषिकी संज्ञा गाथा है । गाथा उन्हें इस लिए कहते हैं कि गाथारूप में आलङ्कारिक तौर पर उन में कुछ तथ्यों का वर्णन है ।

प्रश्न—गाथाएं या तो लौकिक हो सकती हैं, या वेद की ऋचाओं को ही गाथा कहा जा सकता है । हम गाथा को दोनों प्रकार का कैसे मान सकते हैं ।

उत्तर—श्लोक शब्द साधारण श्लोक के लिए भी प्रयुक्त होता है, और वेदमन्त्रों के लिए भी प्रयुक्त हो जाता है । वैसे ही गाथा शब्द का भी द्व्यर्थक प्रयोग है । शतपथ ब्राह्मण[2] में निम्नलिखित याजुष मन्त्र को श्लोक कहा गया है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः ॥४०।९॥

साधारण श्लोकों को भी शतपथ में ही श्लोक कहा गया है, ऐसा हम...पर लिख चुके हैं ।

गाथाएं लौकिक हैं, इसका ब्राह्मणान्तर्गत प्रमाण हम पहले कह आए हैं । दूसरे आचार्यों के भी निम्न प्रमाण हैं—

(१) याज्ञवल्क्यस्मृति का टीकाकार आचार्य विश्वरूप १।४५॥ श्लोक पर लिखता है—'नाराशंस्यः पौरुषेय्यो यज्ञगाथाः । गाथा आत्मवादश्लोकाः । पुरुषकृता एव यज्ञगाथा इत्यन्ये ।'

(२) मेधातिथि मनुस्मृति ६ । ४२ ॥ पर लिखता है—गाथाशब्दो वृत्तविशेषवचनः ।......परम्परागता श्लोकाः ॥

(३) वाल्मीकीय रामायण पश्चिमोत्तर शाखा अयोध्याकाण्ड अध्याय २५ में कहा है—

(क) अपि चेयं पुरागीता गाथा सर्वत्र विश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण तां श्रुत्वा मे वचः कुरु ॥११॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
कामचारप्रवृत्तस्य न कार्यं ब्रुवतो वचः ॥१२॥

---

१. ४।६॥ २. १४।७।२।१३॥ श० ब्रा०, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, काशी ।

(ख) पूर्णभद्रकृत पञ्चतन्त्र, के पाठ में यह श्लोक ऐसे है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शासनम् ॥१।१६९॥

(ग) यही श्लोक महाभारत आदिपर्व पृ० ९३२ में कुछ पाठान्तर से आया है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम् ॥६४॥

(घ) मेधातिथि मनुभाष्य ८।६४॥ में किसी ग्रन्थ से इस श्लोक का यह पाठ उद्धृत करता है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

(ङ) लक्ष्मीधर श्राद्धकाण्ड पृ० २२३ पर हारीत के श्लोकों में इसे उद्धृत करता है ।[1]

(च) तन्त्राख्यायिका पृ० ३५ का श्लोक १।१३१॥ देखने योग्य है ।[2]

(छ) महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ५७।५-६॥ में कहा है कि मरुत राजा ने यह पुराण श्लोक गाया है ।

(४) महाभारत आश्वमेधिक पर्व अध्याय ३१ में भी कुछ गाथाएं मिलती हैं—

अत्र गाथाः कीर्तयन्ति पुराकल्पविदो जनाः ।
अंबरीषेण या गीता राज्ञा राज्यं प्रशासता ॥४॥
समुदीर्णेषु दोषेषु बध्यमानेषु साधुषु ।
जग्राह तरसा राज्यमम्बरीष इति श्रुतिः ॥५॥[3]

इस से स्पष्ट होता है कि पुरुषकृत श्लोकों को भी गाथा कहते हैं । काठक गृह्यसूत्र २५।२३॥ तथा पारस्कर गृह्यसूत्र १।७।२॥ से स्पष्ट होता है कि मन्त्रों को भी गाथा कहा गया है । ऐतरेय ब्राह्मण ६।३२॥ में आथर्वण २०।१२८।१२०॥ आदि कुन्ताप ऋचाओं को गाथा कहा है ।

अतः हमारा कथन सब प्रमाणों से परिपुष्ट ही है ।

प्रश्न—आश्वलायन श्रौत सूत्र का टीकाकार नारायण तो सब गाथाओं को ऋचा ही मानता है । आश्वलायन श्रौतसूत्र ५।६॥ में वर्णित एक यज्ञगाथा का वह इस प्रकार अर्थ करता है—**गाथाशब्देन ब्राह्मणगता ऋच उच्यन्ते । यज्ञार्था गाथा यज्ञगाथाः ।**

आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।१॥ पर वृत्ति लिखते समय वह फिर कहता है—**गाथा नाम ऋग्विशेषः ।** क्या इन प्रकरणों में उसका ऐसा कथन सत्य है ।

उत्तर—जब नारायण टीका लिख रहा था, तो उस के हृदय में हमारे वाला सत्य पक्ष अवश्य उपस्थित हुआ होगा । उसी से भयभीत हो कर ही उसने यह लिख दिया । जब ब्राह्मण स्वयं ऐसी गाथाओं को मानवी कहता है, तो नारायण के कहने को कौन प्रमाण मानेगा । नारायण वाली भूल ही सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक २।९॥ के भाष्य में की है । यहां वह "गाथाः मन्त्रविशेषाः" कहता है । यहां तो यह ब्राह्मणानि कह कर शेष इतिहास, गाथा आदि को उनका विशेषण माना है । अतः मानवी गाथा ही अभिप्रेत हैं ।

---

१. पृ० २२३ । २. १।१३॥ पृ० ३५ ।
३. नीलकण्ठ का पाठ ऐसे है—जग्राह तरसा राज्यमंबरीषो महायशाः ॥

प्रश्न—इस पूर्वोक्त यद् ब्राह्मणानि वाक्य के संज्ञासंज्ञिभाव-युक्त अर्थ करने में क्या प्रमाण है।

उत्तर—आश्वलायन गृह्यसूत्र में इससे पूर्व ऋगादि चारों वेदों के साथ यद् शब्द पढ़ा है। वैसे ही यद् शब्द ब्राह्मणानि पद के साथ भी पढ़ा है। अन्य इतिहास आदि के साथ यद् शब्द नहीं पढ़ा। इससे ज्ञात होता है कि सूत्रकार की दृष्टि में इतिहासादि ब्राह्मणान्तर्गत बातों का नाम भी माना जाता था। इसलिए इस स्थान में इतिहासादि को स्वतन्त्र न मानकर उन्हें ब्राह्मणों की संज्ञा बना दिया है।

प्रश्न—ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा में क्या कोई और भी प्रमाण है।

उत्तर—हम इस से पहले अध्याय में लिख चुके हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषियों वा अन्य जनों के नाम लेख पूर्वक उन के इतिहासादि कहे हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में उतने ही नहीं, और भी सहस्रों ऐसे ही स्थल हैं। यथा—

(१) अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुः। मैत्रेयी च कात्यायनी च ।१४।७।३।१॥ श० ब्रा०।

(२) तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ।३।११।८।१४॥ तैत्तिरीय ब्राह्मण।

इन वाक्यों का इतिहास से भिन्न अर्थ हो भी नहीं सकता। निश्चय ही इन लोगों से पहले ये ग्रन्थ भी नहीं थे। अतएव इतिहासादि युक्त होने से ही इन ब्राह्मणों की भी इतिहासादि संज्ञा अवश्य है।

प्रश्न—अनेक मन्त्रों में भी तो ऐसा ही इतिहास है। पुनः मन्त्रसंहिताओं की इतिहास संज्ञा क्यों नहीं मानते।

उत्तर—मन्त्रों में सामान्य इतिहास है। निरुक्तादि आर्ष शास्त्रों में बहुधा तत्रेतिहासमाचक्षते। २।१०॥ इत्यैतिहासिकाः। २।१६॥ ऐसा कहा गया है। इसका अभिप्राय भी नित्य सामान्य इतिहास है। हां, कहीं २ मन्त्रार्थ में तो नहीं, पर मन्त्र के तत्त्व को स्पष्ट करने के लिए लौकिक इतिहास भी कहा गया है। मध्य-कालीन साधारण भाष्यकारों ने इन लेखों का अभिप्राय न समझ कर वेदार्थ को दूषित किया है। मन्त्रों के पद यौगिक वा योगरूढ हैं। ऐसा ही सब वेदवित् मानते आये हैं। भगवान् जैमिनि कहते हैं—परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम् ।१।३१॥ अर्थात्—मन्त्रान्तर्गत सब नाम सामान्य हैं। परन्तु ब्राह्मणादिकों में ऐसी बात नहीं है। ब्राह्मणों में तो ऋषियों की वंशावलियां दी हैं। उन में पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि का इतिहास है। वंश आदि वर्णन पुराण का एक अंग है। यह ब्राह्मणों में प्रायः मिलता है। इसी लिए पुराण शब्द कहीं २ ब्राह्मणों का विशेषण है।

अतएव ब्राह्मणों की इतिहासादि भी संज्ञा है, और ब्राह्मण वेद नहीं हैं।

(छ) ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा में और भी प्रमाण हैं। महर्षि गौतम एक साधारण ग्रन्थकार नहीं, प्रत्युत ऋषि हैं। वह महाभारत-काल अथवा उससे भी बहुत पहले के हैं। वे कहते हैं—स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः २।१।६४॥

पुराकल्प शब्द पर भाष्यकर्ता वात्स्यायन लिखता है—

ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकल्प[1] इति। तस्माद्वा एतेन पुरा ब्राह्मणा बहिष्पवमानं सामस्तोममस्तौषन्। यज्ञं प्रतनवामह इत्यादि। (देखें ताण्ड्य ब्रा० ८।६।४॥)

---

१. तुलना करें महाभाष्य (कील० सं० भाग १ पृ० ५) पुराकल्प एतदासीत्-संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते। तथा तुलना करें वाक्यपदीय टीका—१।१५५॥ श्रूयते हि पुराकल्पे॥

अर्थात्—ऐतिह्य इतिहासयुक्त कथन पुराकल्प कहाता है। वात्स्यायन पुराकल्प के उदाहरण में ताण्ड्य ब्राह्मण के पाठ को ही उद्धृत करता है। यहां प्रकृत विषय भी शब्द विषय परीक्षा प्रकरण में ब्राह्मण-वाक्य-विभाग का चल रहा है। अतएव जब वात्स्यायन आदि मुनि ब्राह्मणों में स्वयं इतिहास को मानते हैं तो यदि हम उनकी एक संज्ञा इतिहास भी मान लें, तो इस में क्या दोष है।

वात्स्यायन २।१।५७॥ सूत्र पर स्वयं कहता है—**तस्येति शब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवानृषिः**। पाश्चात्य लेखक वा उन के कतिपय एतद्देशीय शिष्य गौतम-सूत्रों को ईसा की प्रथम शताब्दी के समीप का मानते हैं। यह उनकी सरासर भूल है। ईसा से सैंकड़ों वर्ष पहले तो न्याय भाष्यकार वात्स्यायन ही हो चुका था।

प्रश्न—जब अनेक ऋषि मुनि मन्त्र ब्राह्मणों को वेद मानते आए हैं, तो फिर तुम ऐसी आपत्तियां उठा के क्या सिद्ध करना चाहते हो। यथा—

(१) **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**। आपस्तम्बश्रौत सूत्र २४।१।३१॥ सत्याषाढ श्रौतसूत्र १।१।७॥ कात्यायन परिशिष्टप्रतिज्ञासूत्र। बोधायन गृह्यसूत्र २।६।३॥

(२) **मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते**। बोधायन गृह्यसूत्र २।६।३॥

(३) बौधायनधर्मसूत्र २।९।७॥ में तै० सं० ६।३।१०।५॥ के **जायमानो वै ब्राह्मणः**, इत्यादि ब्राह्मण वाक्य को उद्धृत कर के लिखा है—**एवमृणसंयोगं वेदो दर्शयति**॥ अर्थात् इस प्रमाण को वेद शब्द से व्यवहृत किया है।

(४) **आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च**। कौशिक सूत्र १।३॥

इत्यादि आर्ष प्रमाणों के होते हुए कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं।

उत्तर—श्रौतसूत्रों का जन्मदाता जब ब्राह्मण स्वयं कह चुका है कि वह वेद नहीं, तो कल्पसूत्रों के इन स्मार्त्त प्रमाणों का क्या मूल्य हो सकता है। जैमिनि मुनि मीमांसा दर्शन के स्मृतिपाद में बलपूर्वक कहते हैं कि कल्पसूत्र स्मार्त्त हैं। उनका उतना ही प्रमाण है, जितना स्मृति का। स्मृति परतः प्रमाण है। उसकी अपेक्षा परतः प्रमाण होते हुए भी ब्राह्मण सहस्रों गुणा अधिक प्रमाण है। नहीं नहीं, वेद-व्याख्यान होने से अत्यन्त पूज्य हैं। वे ऋषि जो इन ब्राह्मणों का प्रवचन कर चुके थे, कदापि इनके विरुद्ध प्रतिज्ञा नहीं कर सकते। इस लिए जब कुछ एक आचार्यों ने मन्त्र ब्राह्मण को वेद कहा है, तो वह औपचारिक भाव से ही है। जैसे आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि वेद कहाते हैं, और जैसे तन्त्रों की उक्तियों को भी मन्त्र और श्रुति कहा गया है।

(१) माधव सर्वदर्शन संग्रह के योगशास्त्र प्रकरण में लिखता है कि मन्त्र दो प्रकार के होते हैं वैदिक और तान्त्रिक। कुल्लूक मनु स्मृति पर अपनी व्याख्या में लिखता है—**श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च**। २।१॥ अर्थात्—वैदिकी और तान्त्रिकी, दो प्रकार की श्रुति होती है।

श्रौतसूत्रों में प्रयुक्त अनेक वाक्य भी मन्त्र कहाते हैं। सत्याषाढ श्रौतसूत्र ७।१॥ की व्याख्या में भट्ट गोपीनाथ लिखता है—**सौत्रेषु वैदिकेषु च मन्त्रेषु**। अर्थात् सूत्रस्थ और वैदिक मन्त्रों में।

उत्पलाचार्य अपनी स्पन्द कारिका के पृ० २ पर पञ्चरात्रश्रुति को उद्धृत करता है।

अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में दयानन्द सरस्वती ने मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयं को एक प्रक्षिप्त वाक्य माना है।[1]

पुनः शतपथ ब्राह्मण१३।४।३।१२, १३॥ में—इतिहासो वेदः। पुराणं वेदः। इत्यादि, इन सबको औपचारिक भाव से वेद कहा गया है, वैसे ही आपस्तम्बादि श्रौतसूत्रों में यह औपचारिक लक्षण है। यह भी तो अभी निश्चय नहीं कि बौधायनादि सूत्रों में यह वाक्य उन्हीं ऋषियों का है अथवा परम्परा में आने वाले उन के शिष्य प्रशिष्यों का।[2]

प्रश्न—ब्राह्मण तो स्वयं इतिहास और पुराण को अपने से पृथक् मानता है। फिर इतिहास और पुराण ब्राह्मणों की संज्ञा कैसे हो सकती है। वात्स्यायन न्यायभाष्य में क्या कहता है—प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते।[3] अर्थात् प्रमाणरूप ब्राह्मण से इतिहास और पुराण की प्रामाणिकता ज्ञात होती है।

फिर शतपथ ब्राह्मण में कहा है—अथाष्टमेऽहन्।............कञ्चिदितिहासमाचक्षीत।............ अथ नवमेऽहन्।...............तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किंचित् पुराणमाचक्षीत।[4]

उत्तर—हम ने कब कहा है कि इन ब्राह्मणों से पूर्व कोई इतिहास और पुराण न थे। प्रत्युत हम तो पृष्ठ ६०-६३ पर स्वयं अनेक प्रमाणों से इन का अस्तित्व स्वीकार कर चुके हैं। इन्हीं की बहुत सी सामग्री का, प्रवचन शब्द की भाषा में, इन ब्राह्मणों में समावेश किया गया है। इन ब्राह्मणों की इतिहासादि भी संज्ञा है। इसी कारण पुराण शब्द अनेक स्थलों में विशेषण रूप से ब्राह्मणों का द्योतक बना है।

यास्काचार्य ने निरुक्त ३।१९॥ में—पुराणं कस्मात्। पुरा नवं भवति। पुराने अथवा पुराण का यह निर्वचन किया है कि–प्रथम होते समय नया हो। ऐसी वार्ताएं ब्राह्मणों में सर्वत्र पायी जाती हैं। इस लिए भी पुराण का लक्षण ब्राह्मण में चरितार्थ हो जाता है। मन्त्रों में सब सामान्य वर्णन है। अतः ब्राह्मण आदि वेद नहीं हो सकते, मन्त्रसंहिताएं ही वेद हैं।

---

१. इस के सम्बन्ध में राजा शिवप्रसाद के "दूसरा निवेदन" में G. Thibaut लिखता है—

Dayanand Sarasvati has certainly no right to declare the passage from Katyayana-according to which the Veda consists of Mantra and Brahmana an interpolation. Acting in this way any body might declare any passage contarry to his preconceived opinions an interpolation.

अर्थात्—कात्यायन से दिये गये प्रमाण को प्रक्षिप्त मानने का दयानन्द सरस्वती को कोई अधिकार नहीं। आज यदि थीबो महाशय जीवित होते, तो उन्हें गोविन्द स्वामी भाष्य के वक्ष्यमाण प्रमाण पर अवश्य विचार करना पड़ता।

२. बौ० धर्मसूत्र ३।५।८॥ में आये हुए इति बोधायनः पदों की टीका करते हुए गोविन्द स्वामी लिखता है— बौधायनसंशब्दनादन्यस्तच्छिष्योऽस्य ग्रन्थस्य कर्तेति गम्यते।

३. ४।१।६२॥ न्यायभाष्य, गौतम मुनि प्रणीत न्यायसूत्र, वात्स्यायनकृत भाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पूना।

४. १३।४।३।१२,१३॥ श० ब्रा०।

(ज) भगवान् पाणिनि ने अपने अष्टक में ये सूत्र कहे हैं—

(१) दृष्टं साम । ४।२।७॥
(२) तेन प्रोक्तम् । ४।३।१०१॥
(३) पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु । ४।३।१०५॥
(४) उपज्ञाते । ४।३।११५॥
(५) कृते ग्रन्थे । ४।३।११६॥

इनका अभिप्राय यह है कि—

१. मन्त्र दृष्ट हैं।
२. शाखाएं (मूल वेदों को छोड़ कर), ब्राह्मण और कल्प प्रोक्त हैं।
३. पाणिनि आदि के ग्रन्थ स्फूर्ति से प्रकट हुए हैं।
४. साधारण ग्रन्थ कांट छांट के बनाये जाते हैं।

यहां भी ब्राह्मणों को मन्त्रों जैसा ऊंचा पद नहीं दिया गया। मन्त्र दृष्ट हैं और ब्राह्मण प्रोक्त हैं। आज तक किसी विद्वान् ने ब्राह्मणों की ऋषि आदि अनुक्रमणी भी नहीं सुनी। हां, संहिताओं की ऋषि अनुक्रमणी तो होती है। जो संहिताएं शाखा नाम से व्यवहृत होती हैं, तथा जिन में ब्राह्मण भाग सम्मिलित हैं, उन की अनुक्रमणिकाओं में भी ब्राह्मण भागों के ऋषि नहीं दिये हैं। प्रजापति को सब ब्राह्मणों का ऋषि तो सामान्यतया कहा है, अर्थात् प्रजापति परमात्मा ने ही वेदार्थ सुझाया। चारायणीय संहिता के आर्षाध्याय को मन्त्रार्षाध्याय कहते हैं। उस में ब्राह्मण भाग के एक दो सामान्य ऋषि तो कहे गए हैं, पर वैसे ब्राह्मण भाग के ऋषि नहीं दिए गए। मन्त्रार्षाध्याय, यह नाम ही प्रकट करता है कि मन्त्रों के ही ऋषि हैं ब्राह्मणों के नहीं।[1] स्थानक १८ से आगे उस में ऐसा पाठ है—**ब्राह्मणानि प्रजापतेः। ब्राह्मणपठितान् मन्त्रानथोवाहरिष्यामः।**

यहां सामान्य रूप से ब्राह्मणों का प्रजापति ऋषि कह कर ब्राह्मणान्तर्गत मन्त्रों के तो ऋषि दिए हैं, पर ब्राह्मणों का कोई ऋषि नहीं दिया। प्रजापति नाम परमात्मा के अतिरिक्त ऋषि विशेष का भी है। वह ब्रह्मा का समीपवर्ती ही था। कहीं कहीं ब्रह्मा का नाम ही प्रजापति है। वही ब्राह्मणों का आदि प्रवचनकर्ता है। ब्राह्मण रूप में वेद व्याख्यान करने से ही उसे कहीं कहीं ब्राह्मणों का ऋषि कहा गया है। जहां और दो चार स्थलों में ब्राह्मणों के ऋषि कहे गए हैं, वे भी इसी गौण भाव से कहे गए हैं।

प्रश्न—वात्स्यायन मुनि तो स्पष्ट ही ब्राह्मणों के भी ऋषि मानते हैं। वहां उन्हों ने गौण मुख्य भाव भी नहीं कहा। फिर अन्य पक्ष कैसे माना जावे। वात्स्यायन ने लिखा है—**य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।** ४।१।६२॥

---

१. आश्चर्य की बात है कि शङ्कर जैसा विद्वान् वेदान्त सूत्र १।३।३३॥ के भाष्य में लिखता है—**ऋषिणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनां।** अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण के द्रष्टा ऋषियों की भी। यदि आचार्य शंकर का भाव ब्राह्मण के सामान्य द्रष्टाओं से है, तो कोई हानि नहीं। यदि उनका भाव मन्त्रों के समान ब्राह्मणों के भी द्रष्टाओं से है, तो यह वैदिक ऐतिह्य के विरुद्ध है।

उत्तर—यदि वात्स्यायन भाष्य आर्ष रीति से पढ़ा जाय तो कभी ऐसा प्रश्न नहीं उठता। वात्स्यायन स्पष्ट ही हमारा पक्ष कह रहा है। सूत्र २।२।६७॥ पर वह लिखता है—य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः।

दोनों वाक्यों की तुलना से "ब्राह्मणस्य द्रष्टारः" का अर्थ "वेदार्थानां द्रष्टारः" ही है। हम ब्राह्मणों को वेद व्याख्यान कह ही चुके हैं। हां, उस व्याख्यान के साथ साथ ऋषियों ने इतिहास, पुराणादि का भी प्रवचन कर दिया है। निरुक्त में भी कहा है—

(क) ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता।[1]

(ख) इत्याख्यानम्।[2]

इस का भी यही अभिप्राय है कि जब वेदार्थ इतिहासादि से संयुक्त कहा जाता है, तो वह प्रिय और रुचिकर लगता है। अस्तु, यदि ब्राह्मणों को भी वेद माना जाय तो उन का अर्थ किन ग्रन्थों में मिलेगा। मन्त्रार्थ तो ब्राह्मण में विद्यमान है, पर ब्राह्मणार्थ कहीं नहीं। अतः मन्त्र ही वेद है और ब्राह्मण उन का व्याख्यान-मात्र हैं।

ऋषियों को वेदार्थ का ज्ञान तो परमात्मा ने ही कराया। तब ऋषियों ने उस अर्थ को आख्यानादि के साथ प्रवचन की भाषा में कहा। वही वेदार्थ ब्राह्मण हुआ। इसीलिये वात्स्यायन ने वेदार्थद्रष्टा कह कर सारी बात को स्पष्ट कर दिया है।

जहां कहीं आर्ष ग्रन्थों में ब्राह्मण वाक्यों के साथ "अपश्यत्" आदि क्रिया पद लगा कर उन का देखना कहा है, वहां भी पूर्वोक्त भाव से ही कहा है। वेदार्थ रूप ब्राह्मण ग्रन्थों के उन भावों को ही ऋषियों ने मन्त्रों में देखा था। तब प्रवचन की भाषा में ऋषियों ने उन तथ्यों को कहा। ब्राह्मण वाक्य जैसे के तैसे देखे नहीं गये। मूल मन्त्र ही नित्य-आनुपूर्वी के साथ देखे गये हैं। इसी अभिप्राय से निरुक्त २।११॥ में निम्नलिखित ब्राह्मण वाक्य उद्धृत है—तद् यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् ऋषयोऽभवन् तदृषीणामृषित्वम्। इति विज्ञायते।

यह मीमांसादि सर्व शास्त्रकारों का मत है। ब्राह्मण तो क्या साधारण शाखाओं में भी नित्य आनुपूर्वी नहीं है। इसलिये ये वेद कैसे हो सकते हैं। शाखा आदि में आनुपूर्वी अनित्य है। इस का प्रमाण महाभाष्य ४।३।१०१॥ पर देखें—

यद्यप्यर्थो नित्यो या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या।
तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति॥[3]

शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

सप्ताक्षरं वै ब्रह्मर्गित्येकाक्षरं यजुरिति द्वे।
सामेति द्वेऽअथ यदतोऽन्यद् ब्रह्मैव तद्।
द्व्यक्षरं वै ब्रह्म। तदेतत्सर्वं सप्ताक्षरं ब्रह्म।[4]

---

१. ६।१०॥; १०।४६॥
२. ११।१६॥; ११।२५॥; ११।३४॥
३. तुलना करें तैत्तिरीयारण्यक २।६॥ से।
४. १०।२।४।६॥ श० ब्रा०।

अर्थात्—सात अक्षरों वाला ब्रह्म=वेद है।

ऋक्	...	...	१ अक्षर
यजुः	...	...	२ ,,
साम	...	...	२ ,,
ब्रह्म=अथर्व	...	...	२ ,,
सारा ब्रह्म			७ अक्षर

तो यह सारा ब्रह्म सात अक्षर का है। यहां सर्व ब्रह्म का प्रयोग बता रहा है कि वेद इतना ही है। और ऋक्, यजुः आदि कहने से मन्त्र ही अभिप्रेत हैं ऐसा पूर्व पक्षी को भी स्वीकृत है। इस लिये यह निश्चय है कि ब्राह्मणों के प्रवक्ता मन्त्र मात्र को ही ब्रह्म=वेद मानते थे, मन्त्रब्राह्मण समुदाय को नहीं।

ब्रह्म नाम वेद अर्थात् मन्त्रों का ही है। इसी ब्रह्म का ब्रह्मा आदि द्वारा व्याख्यान होने से ब्राह्मण नाम पड़ा। ब्रह्म को तो ऋषियों ने स्पष्ट देखा, ब्राह्मणों को वैसे नहीं। जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, ब्राह्मणों का भाव मात्र देखा गया था। इस में प्रमाण भी है। गोपथ ब्राह्मण पू० १।१२॥ में कहा है—**स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत्।**

यहां यज्ञ का देखना कहा है। यज्ञ क्रिया है। इस क्रिया का भाव ऋषियों ने मन्त्रों में देखा। वैसे ही ब्राह्मण वाक्यों का भाव भी उन्हों ने जाना था। पुनः जैसे महाभाष्य आदि में कहा है—**पश्यति त्वाचार्यः।**[1]

अनेक बार ऐसा पाठ श्रद्धा से कहा गया है, वैसे ही कहीं कहीं अर्थवाद रूप से ब्राह्मणों के लिये "दृश" धातु का प्रयोग हुआ है।

प्रश्न—महामोहविद्रावण का कर्त्ता कहता है—किञ्च परमर्षिर्गोतमो वेदप्रामाण्यनिरूपणावसरे स्थूणानि खननन्यायेन वेदप्रामाण्यं द्रढयितुमेवाऽऽशशङ्के "तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।" तस्य वेदस्याप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः तत्रानृतं यथा "पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत्" अनुष्ठितायामपि चेष्टौ न युज्यन्ते पुरुषाः पुत्रै रिति द्रष्टार्थस्यास्य वाक्यस्याऽप्रामाण्ये "ऽग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इत्यदृष्टार्थकस्य वाक्यस्य प्रामाण्ये कथमाश्वासः। अत्र हि सूत्रस्थतत्पदेन पराभ्रष्टुमिष्टस्य वेदस्याऽप्रामाण्यमाशङ्कमानः "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इति ब्राह्मणस्याप्रामाण्यं दर्शयामास गोतमः। यदि नाम ब्राह्मणं न वेदस्तर्हि वेदाप्रामाण्यसाधनावसरे ब्राह्मणस्याप्रामाण्यप्रदर्शनं कर्णस्पर्शे कटिचालनायितं स्यात्। न हि प्रेक्षावान "मैत्रवाक्यं न विश्वसिही" ति कञ्चन बोधयश्चैत्रवाक्यस्य मिथ्यात्वं प्रसाधयेत् तदवश्यं ब्राह्मणं वेद इति परमर्षिरनुमन्यत इति। न च सूत्रस्थतत्पदेन परमर्षिर्नाभिप्रति निर्देष्टुम् "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इति ब्राह्मणवाक्यम्। अपि तु यत्किञ्चिदन्यदेव संहितावाक्यमिति सर्वं सिकताकूपायितमिति वाच्यम्।[2]

---

१. पृ० २४ भाग १, कीलहार्न संस्करण।

२. ऋषि दयानन्द सरस्वती ने गोतम के प्रमाण से ब्राह्मणों का वेद न होना सिद्ध किया था। उस का यह उत्तर मोहनलाल ने लिखा। इस का उचित पर पुनरुक्त-दोषपूर्ण उत्तर भीमसेन ने आर्यसिद्धान्त चैत्र संवत् १९४५ भाग १, अंक ११, पृ० १६६, १६७ पर दिया। उसी उत्तर को कुछ काट कर, हम ने यहां लिखा है।

भीमसेन का उत्तर—"तदप्रामाण्यम्० इस न्यायसूत्र से वेद का प्रमाण सिद्ध करने के लिये पूर्वपक्ष किया है। उस पर भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन ने ब्राह्मण पुस्तकों के उदाहरण दिए हैं। इस से न्यायकर्ता महर्षि का अभिप्राय प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण पुस्तक भी वेद ही हैं क्योंकि वेद का प्रमाण सिद्ध करने में अन्य का उदाहरण देना नहीं बन सकता। इस पर हम पूछते हैं कि महामोहविषार्णव कर्त्ता जी ! कहिये तो सही न्याय-दर्शन में यह कौन प्रकरण है ? क्या आप ने इसको वेदप्रामाण्यपरीक्षा प्रकरण समझा है ? वा अन्य कोई। यदि वेद परीक्षा प्रकरण समझा है तो कहिये कि वेद परीक्षा प्रकरण के होने में क्या नियम है ? तत् शब्द से पूर्व प्रतिपादित विषय लेना, यह तो सब आर्य्यों का सिद्धान्त ही है, पर आप कहिए कि तद् प्रामाण्यम्० इस सूत्र से पहले वेदशब्द किस सूत्र में पढ़ा है ? जो तत् शब्द से लेना चाहिए।

"....इन लोगों ने विश्वनाथ भट्टाचार्य्यकृत न्यायसूत्र की वृत्ति भी नहीं देखी ? जो प्रकरण का नाम तो मालूम हो जाता। विश्वनाथ ने इस प्रकरण का नाम "शब्दविशेष परीक्षा" प्रकरण रक्खा है। सो न्याय-भाष्य के अनुकूल है।[1] भाष्यकार वात्स्यायन ऋषि ने भी लिखा है कि **तस्य शब्दस्य प्रमाणत्वं न सम्भवति** उस पूर्वोक्त शब्द का प्रमाण मानना ठीक नहीं है। अर्थात् उक्त सूत्र में तत् शब्द करके शब्दप्रमाण का आकर्षण करना चाहिए, और पूर्व से शब्द परीक्षा का प्रसङ्ग भी चला ही आता है। यद्यपि शब्दप्रमाणान्तर्गत वेद भी आता है, इसी लिए हम यह प्रतिज्ञा नहीं करते कि शब्द विशेष परीक्षा कहने में वेद की परीक्षा न आवेगी, परन्तु यह प्रतिज्ञा अवश्य करते हैं कि शब्द विशेष परीक्षा में केवल मूलवेद ही लिए जावें और ब्रह्मणादि न लिए जावें, यह कोई सिद्ध नहीं कर सकता। क्योंकि शब्द सामान्य में हम लोगों के विश्वास योग्य व्यवहार के शब्द भी आ सकते हैं और शब्द विशेष कहने से श्रुति स्मृति ही ली जावेंगी।

"इसमें भी मूल वेद सूर्य के समान स्वतः प्रकाशस्वरूप है। उसकी परीक्षा करना सर्वांश में ठीक नहीं। जैसे सूर्य को देखने के लिए द्वितीय सूर्य्य वा दीपकादि की अपेक्षा नहीं होती, वैसे किसी अन्य प्रमाण से वेद की परीक्षा करना नहीं बनता। इसी कारण शब्दविशेषपरीक्षा में महर्षि वात्स्यायन जी ने विशेष कर ब्राह्मण भागों के उदाहरण दिए हैं। जो कुछ वेद परीक्षा हो सकती है तो वेद से ही हो सकती है। और बड़ा भारी आश्चर्य यह है कि महामोहविषार्णवकर्त्ता जिन न्यायकर्त्ता महर्षि के प्रमाण से अपने पक्ष को सिद्ध करना चाहते हैं, उन्हीं ऋषि के उसी प्रमाण से इनका पक्ष खण्डित होता है, किन्तु सिद्ध कुछ भी नहीं होता। सूत्रकार और भाष्यकार ऋषियों ने **तद् प्रामाण्यम्** इस सूत्र से पूर्व कहीं भी वेदशब्द का नाम नहीं लिया। इसी से इस सूत्र में तत् शब्द से वेद का परामर्श नहीं किया, किन्तु शब्द का परामर्श किया। और ऋषि लोग ऐसा अप्रसङ्ग वर्णन इन लोगों के तुल्य क्यों करें ? क्योंकि ऋषियों में पक्षपातादि दोष नहीं होते हैं। ऋषि लोगों ने कहीं २ वेदविचार प्रकरण में ब्राह्मण पुस्तकों के वाक्य भी रक्खे हैं, सो व्याख्यान व्याख्येय का तादात्म्य सम्बन्ध मान के। **तदेव सूत्रं विगृहीतं व्याख्यानं भवति** कहा है अर्थात् व्याख्येय मूल पुस्तक में जो पद हैं उन्हीं को लौट पौट कर वा उप-योगी अन्य पद लगा कर अन्वित कर देना व्याख्यान कहाता है। इस कारण ब्राह्मण वाक्य वेद विचार प्रकरण में लेना अनुचित नहीं, अथवा ब्राह्मण वाक्यों को वेद के तुल्य मानकर उदाहरण देना बन सकता है। **छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति** इसके अनुसार जब व्याकरणादि के सूत्रों में वेद के तुल्य कार्य होते हैं तो वेद के अति निकटवर्त्ती ब्राह्मणों में वेद तुल्य कार्य होवें तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। यदि वेद में जैसे कार्य होते हैं वैसे ब्राह्मणों

१. वात्स्यायन भाष्य के अनेक छपे ग्रन्थों में भी इस प्रकरण को "शब्दविशेषपरीक्षा प्रकरण" ही लिखा है।

में होने से उनको मूल वेद मान लिया जावे और मनुष्यबुद्धिरचित न माना जावे तो सूत्रादि को भी ऋषि रचित न मानना चाहिए, क्योंकि वहां भी छन्दोवत् कार्य होते हैं तो उनको भी वेद मान लिया जावे ? जब ऐसा नहीं होता तो ब्राह्मण भी वेद मूल नहीं हो सकते और ब्राह्मण का मनुष्यबुद्धिरचित होना उन्हीं के पद वाक्यों की रचना से सिद्ध हो जाता है, किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं" । इति ।

इस के आगे सूत्र २।१।६१॥ में जो वात्स्यायन का लेख है, उस से भी ब्राह्मण-ग्रन्थों का वेद न होना ही सिद्ध होता है । वात्स्यायन कहता है—प्रमाणं शब्दः । यथा लोके । विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः । अर्थात् शब्द-प्रमाण मानना ही पड़ेगा । जैसे व्यवहार में शब्द प्रमाण माने बिना काम नहीं चलता, वैसे ही आप्तों के उपदेश को भी प्रमाण मानना चाहिए । जैसे व्यवहार में त्रिविध वाक्य विभाग है, वैसे ही ब्राह्मणों में भी है । परन्तु श्रुति सामान्य है । इस के विपरीत ब्राह्मण में इतिहास है । अतएव इतिहासादि होने से ब्राह्मणों के शब्द मन्त्रों की अपेक्षा लौकिक ही हैं । इसलिए ब्राह्मण वेद नहीं हैं ।

प्रश्न—मोहनलाल कहता है, पूर्वोक्त वाक्य का भाव ऐसे कहना चाहिए—"प्रमाणं शब्दो यथा लोके" इति सादृश्यार्थकं यथापदघटितं, ब्रूते च तथेति । लोके यथा शब्दप्रमाणं तथा वेदेपीत्यध्याहार्यम् । वेदे ब्राह्मणरूपे ब्राह्मणसंज्ञकानां वाक्यानां विभागस्त्रिविधः इत्यर्थस्य तात्पर्यविषयत्वात् ।"

उत्तर—यह भी मोहनलाल की भूल ही है । यहां लोके शब्द लौकिक ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ । प्रत्युत व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के लिए हुआ है । अतः तथा के साथ वेद पद का अध्याहार निरर्थक ही है । वात्स्यायन पुनः लिखता है—यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वमेवं वेदवाक्यानामपि विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमर्हतीति ।[1]

इस का यही अभिप्राय है कि यद्यपि वात्स्यायन ने वेदवाक्यानाम् पद के आगे ब्राह्मण पद नहीं पढ़ा, तथापि यहां औपचारिक भाव से ही वेद शब्द का प्रयोग हुआ है । औपचारिक भाव से इतना कह देने से ही ब्राह्मण वेद नहीं माने जा सकते ।

प्रश्न—क्या प्रमाण है कि यहां वेद शब्द का प्रयोग औपचारिक भाव से है ?

उत्तर—वात्स्यायन आदि मुनि जो वेद, ब्राह्मण को जानते थे वे उन के विरुद्ध नहीं कह सकते थे । हम सिद्ध कर चुके हैं कि ब्राह्मण अपने को वेद से भिन्न व मनुष्य कृत बताता है । पुनः वात्स्यायन इन के विरुद्ध कैसे समझ सकते थे । अतः उन का प्रयोग औपचारिक ही है । ब्राह्मण-ग्रन्थों के वेद न होने में और भी निम्नलिखित प्रमाण देखने योग्य हैं ।

(झ) शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि वाचैव सम्राट् प्रजायन्ते ।[2]

लगभग ऐसा ही पाठ शतपथ १४।५।४।१०॥ में भी आता है । यहां सूत्रादिवत् उपनिषदों को स्पष्ट वेदों से पृथक् माना है । जब ब्राह्मणकार स्वयं ब्राह्मण विभागों अर्थात् उपनिषदों को वेद नहीं मानते, तो फिर ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे हो सकते हैं ।

---

१. २।१।६५॥ सूत्र

२. १४।६।१०।६॥ श० ब्रा० ।

आर्षग्रन्थों का तो क्या कहना, याज्ञवल्क्यस्मृति में भी इसी विचार के चिह्न पाये जाते हैं। यथा—

यतो वेदाः पुराणं च विद्योपनिषदस्तथा।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यत्किञ्चिद्वाङ्मयं क्वचित् ॥[1]

विश्वरूप इस आपत्ति को देख कर कहता है—उपनिषदां पृथग्वचनं वेदभागान्तरस्य तादर्थ्य-प्रदर्शनार्थम्।

महाभारत के निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं—

(१) आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधीभ्योऽमृतं यथा ॥३॥ महाभारत शान्तिपर्व अ० ३३१।

(२) ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु।
पुराणे सोपनिषदे तथैव ज्योतिषेऽर्जुन ॥८॥ महाभारत शान्तिपर्व, अ० ३२८।

प्रश्न—सनातनधर्मोद्धार का कर्त्ता नकछेदराम खण्ड २ पृ० ५३० पर लिखता है—

"जहां केवल मन्त्रों को कहना होता है वहां केवल ऋक् आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है जैसे अहे बुध्निय इत्यादि मन्त्रों में। और जहां मन्त्र और ब्राह्मण के समुदाय को कहना होता है वहां केवल ऋक् आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता किन्तु ऋग्वेद आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है, जैसे एवं वा अरे० इत्यादि पूर्वोक्त ब्राह्मण वाक्यों में।"

क्या यह लेख उचित है।

उत्तर—ऐसे लेख प्रकट करते हैं कि लेखक वैदिक वाङ्मय से अपरिचित ही है। मध्य-कालीन मीमांसकों के कुछ भ्रमोत्पादक लेख पढ़ कर ही उस ने ऐसा लिख दिया है। नकछेदराम ने जो प्रमाण 'एवं वा अरे' शतपथ से उद्धृत किया है, उसे ही नहीं देखा। वहां भी तो ऋग्वेदादि से उपनिषदों को पृथक् कहा है। काशी के पण्डित ने अपने दिये प्रमाण को ही जब पूरा नहीं विचारा, तो वह क्या लिखेगा।

ऋक् पद मन्त्रों के लिये प्रयुक्त होता है और ऋग्वेदादि मन्त्र ब्राह्मण के समुदाय के लिये प्रयोग किए जाएं ऐसा कोई नियम नहीं। ये दोनों शब्द मन्त्रसंहिता के लिये ही प्रयुक्त होते रहे हैं। इस में प्राचीन ब्राह्मणों के प्रमाण भी हैं। शतपथ ब्राह्मण १३।४।३॥ की अनेकों कण्डिकाओं में क्रमशः कहा है—

तानुपदिशति ऋचो वेदः......ऋचाँ सूक्तं व्याचक्षाण ॥३॥
तानुपदिशति-यजूँषि वेदः......यजुषामनुवाकं व्याचक्षाण ॥६॥
तानुपदिशति-आथर्वणो वेदः......अथर्वणामेकं पर्व व्याचक्षाण ॥७॥
तानुपदिशति-सामानि वेदः......साम्नां दशतं ब्रूयात् ॥१४॥

जैमिनीय श्रौत सूत्र की व्याख्या की भूमिका में भवत्रात लिखता है—यदृचा होतृत्वं......। अत्रर्गादिभिः शब्दैर्वेदा एवाभिधीयन्ते। अर्थात् यहां ऋक् आदि शब्दों से वेद ही कहे गए हैं।

अब विचारने की वार्ता है कि यहां वेद शब्द केवल ऋगादि के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। ऋगादि मन्त्र हैं, और ऋग्वेदीय आदि ब्राह्मणों में सूक्त आदि अवान्तर विभाग है भी नहीं। इसलिये ऋग्वेदादि शब्द भी मन्त्र संहिताओं के लिये ही प्रयुक्त हैं, ब्राह्मणों के लिये नहीं, ऐसा मानना ही युक्तियुक्त है।

---

१. ३।१८१॥

शतपथ के इसी प्रकरण की ८, ९, १० कण्डिकाओं में जो अङ्गिरसो वेद, सर्पविद्या वेद, देवजनविद्या वेद संज्ञाएं हैं, तो यह अथर्ववेद के अवान्तर विभागों के ही नाम हैं। इन सब में पर्व विद्यमान हैं। शेष माया-वेद, इतिहास-वेद, पुराण वेद, परम्परा से आने वाले संग्रह मात्र हैं। ये पूरे ग्रन्थ रूप में नहीं हैं। अथवा इन का अवान्तर विभाग नहीं है। इसी लिए इन के साथ कहा है—

(१) कांचिन्मायां कुर्यात् ।११॥
(२) कंचिदितिहासमाचक्षीत ।१२॥
(३) किञ्चित् पुराणमाचक्षीत ।१३॥

इन तीनों के साथ, जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, वेद पद का औपचारिक प्रयोग है। इस से आगे १५वीं कण्डिका में कहा है—आचष्टे......सर्वान् वेदान्......। अर्थात् सब वेद कहे। यहां ब्राह्मणों का स्वरूप भी कथन नहीं किया गया, और वास्तविक तथा औपचारिक भाव से वेद भी कह दिये हैं। इसलिए ज्ञात होता है कि याज्ञवल्क्य आदि ऋषि स्वप्न में भी ब्राह्मणों को वेद न मानते थे।

(ञ) प्रस्तुत विषय में, हमारे सिद्धान्त को पुष्ट करने वाले और भी प्रमाण हैं। प्रायः सारे ही ब्राह्मणों में प्रजापति अर्थात् परमात्मा से वेद के प्रकाशित होने के सम्बन्ध में कुछ वाक्य आये हैं। कतिपय ब्राह्मणों के वे वाक्य नीचे दिये जाते हैं—

(१)......स एतानि त्रीणि ज्योतींष्यभ्यतप्यत सो ऽग्नेरेवर्चो ऽसृजत वायोर्यजूंष्यादित्यात् सामानि। स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतप्यत ।......। अथैतस्या एव त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहत्। एतेषामेव वेदानां भिषज्यायै स भूरित्यृचां प्रावृहत्......।[1]

(२) स इमानि त्रीणि ज्योतीᳪंष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥३॥ स इमांस्त्रीन् वेदानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदात्......।[2]

(३) स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्। तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहत्। अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूᳪंषि सामान्यादित्यात् ॥२॥ स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्। तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्रावृहत्। भूरित्यृग्भ्यः ॥३॥[3]

इस विषय के और भी ब्राह्मण वाक्य दिये जा सकते हैं, परन्तु इन से ही यथेष्ट अभिप्राय निकल आता है। यहां ऋक् और ऋग्वेद शब्द पर्यायवाची ही हैं। भूः व्याहृति ऋचाओं से उत्पन्न हुई अथवा ऋग्वेद से, इस कहने में कोई भेद नहीं। ऋक्, यजु, और साम इन तीनों का समूह त्रयी विद्या है। इन्हीं को शतपथ के प्रमाण में ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद कहा है। इसी से स्पष्ट है कि ऋक् आदि शब्द ऋग्वेदादि के पर्यायवाची हैं।

प्रश्न—तीनों प्रमाणों को समता में रखना उचित नहीं। शतपथ में मन्त्र ब्राह्मण समुदाय का कथन है और कौषीतकि आदि में मन्त्रमात्र का।

उत्तर—ऐसी निर्मूल कल्पना निरर्थक है। जब इस प्रकरण में एक सामान्य विषय का कथन है और पूर्व प्रदर्शित संगति भी एक ही है, तो आपकी बात को कोई विद्वान् न मानेगा। ब्राह्मण-ग्रन्थ तो आदि सृष्टि में प्रकट भी नहीं हुए। वे काल, काल पर बनते चले आये हैं। उनका संकलन महाभारत-काल में हुआ

१. ६।१०॥ कौ० सूत्र। २. ११।५।८।४॥ श० ब्रा०। ३. ४।१७॥ छान्दोग्य उपनिषद्।

है। यह ब्राह्मण-ग्रन्थ समग्ररूप से बहुत पुराने नहीं हैं। अतः आदि सृष्टि के काल के कथन में वेद शब्द से ब्राह्मण का भी अभिप्राय लेना अनुचित ही नहीं, सरासर खेंचतान है। जब इन प्रकरणों में वेद शब्द से ब्राह्मण नहीं लिया गया, तो अन्यत्र भी आर्ष वाङ्मय में ऐसा ही समझना चाहिए।

प्रश्न—कठ आदि ब्राह्मणों को नवीन नहीं समझना चाहिए। मीमांसा सूत्र १।१।२८॥ पर शबर ने ब्राह्मणों के प्रमाण देकर, आगे सूत्र ३०-३२ तक यही सिद्ध किया है कि ब्राह्मणादि भी अपौरुषेय हैं। सूत्र ३० पर वह किसी पुराने शास्त्र का प्रमाण ऐसे देता है—**स्मर्यते च—वैशम्पायनः सर्वशाखाध्यायी। कठः पुनरिमां केवलां शाखामध्यापयां बभूव, इति।** अर्थात् कठादि शाखा व ब्राह्मण कठादि ऋषियों से पहले भी विद्यमान थे।

उत्तर—शबरस्वामी ने मीमांसा, तर्कपाद के इस वेद-अपौरुषेयता अधिकरण में जो अनेक उदाहरण दिये हैं, वे उचित नहीं हैं। शबर तो ब्राह्मणों को वेद मानता था।[1] यथा—**मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदः।** अतः उस ने ऐसे उदाहरण दे दिये। अन्यथा ऐसे सब उदाहरण मन्त्रों से देने चाहिएं थे।

कठशाखा व ब्राह्मण, वैशम्पायन के समीप भले ही हों, पर व्यास से पहले नहीं थे। आदि सृष्टि में ब्राह्मण तो क्या, शाखाएं व उनकी सामग्री भी नहीं थी। तब तो मूल मन्त्र संहिताएं ही थीं। इस विषय का प्रमाण आगे दिया जाता है। उस से यह भी सिद्ध होगा कि मन्त्र समूह ही वेद हैं, ब्राह्मण आदि नहीं।

यद्यपि बौद्ध ग्रन्थों का हम सर्वांग प्रमाण नहीं मानते, तो भी महावस्तु में **ब्राह्मणवेदेषु** पद बहुत स्पष्ट है। इस से ज्ञात होता है कि बौद्ध विद्वानों को जो परम्परा विदित थी, तदनुसार ब्राह्मण वेद नहीं थे। यथा—

तस्य राज्ञो पुरोहितो ब्रह्मायुः नाम त्रयाणां वेदानां पारगो सनिर्घण्ठकैटभानां इतिहासपंचमानां अक्षरपदव्याकरणे अनल्पको सोऽयमाचार्यः कुशलो ब्राह्मणवेदेषुऽपि शास्त्रेषु दानसंविभागशीलो दशकुशलकर्मपथां समादाय वर्तति।[2]

पूर्वोक्त तीनों प्रमाणों की जो सङ्गति हम ने लगायी है, वह अत्यन्त उचित है। इस का निश्चय षड्विंश ब्राह्मण १।५।७॥ के प्रमाण से पूर्ण हो जाएगा। यथा—

प्रजापतिर्वा इमाँस्त्रीन्वेदानसृजत।......तेभ्यो भूर्भुवः स्वरित्यक्षरद् भूरित्यृग्भ्योऽक्षरत्।...... भुवरिति यजुर्भ्योऽक्षरत्।......स्वरिति सामभ्योऽक्षरत्। १।५।७॥

इस स्थान में तीन वेदों के ही तीन पर्याय ऋक्, यजुः और साम कहे हैं। इस लिए ऋक् पद से मन्त्रों का और ऋग्वेद पद से ऋग्वेदीयों के मन्त्रों और ब्राह्मणों का अभिप्राय लेना कल्पनामात्र है। यह कल्पना भी निराधार और प्रमाणशून्या है।

(ट) गोपथ ब्राह्मण में कहा है—**यान् मन्त्रानपश्यत् स आथर्वणो वेदोऽभवत्।** पू० १।५॥

क्या इस से बढ़ के और स्पष्ट प्रमाण की भी आवश्यकता है। यहां सारा सिद्धान्त विवाद से ऊपर कर दिया गया है। मन्त्र समूह का ही नाम वेद है, और वही आदि सृष्टि में प्रकाशित हुआ। वही अपौरुषेय है। उसकी आनुपूर्वी नित्य है। शेष शाखायें कृत तो नहीं, पर आनुपूर्वी अनित्य होने से प्रोक्त हैं।

---

१. २।१।३३॥ शाबर मीमांसा भाष्य।

२. भाग २, पृ० ७७, पंक्ति ८-११। महावस्तु में ऐसा ही प्रयोग कई स्थलों पर आया है।

(ठ) पुनः गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्ध १।१॥ में लिखा है—

तस्य [ओमित्येतदक्षरस्य] प्रथमया स्वरमात्रया ऋग्वेदं अन्वभवत् ।१७।

"	"	द्वितीयया	" ···यजुर्वेदं	"	॥१८॥
"	"	तृतीयया	" सामवेदं	"	॥१९॥
"	"	वकारमात्रया	अथर्ववेदं	"	॥२०॥
"	"	मकारश्रुत्या	उपनिषदः	"	॥२१॥

अब विचारने का स्थान है कि ओम् की प्रथम मात्रा से ऋग्वेद, दूसरी से यजुर्वेद, तीसरी से सामवेद वकारमात्रा से अथर्ववेद, इतना कह कर, मकारश्रुति से उपनिषदों आदि का बनाना कहा है। अतः यदि उपनिषद् वेदान्तर्गत होते, तो ब्राह्मण वाले ऐसा प्रयोग न करते। प्रत्युत ऐसे प्रयोग से उन का स्पष्ट अभिप्राय यही है कि उपनिषदादि वेद नहीं हैं।

(ड) कात्यायन का गुरु शौनक आर्षानुक्रमणी के आरम्भ में ही लिखता है—**ऋग्वेदमखिलं द्रष्टारो ये हि मुनिपुंगवाः।**[1] अर्थात् अखिल ऋग्वेद के जो मुनिश्रेष्ठ द्रष्टा थे। ऐसा कह कर, शौनक केवल मन्त्रों के ही द्रष्टा देता है। इस से प्रतीत होता है कि शौनक के अनुसार मन्त्रसमूह ही अखिल ऋग्वेद था। उस ऋग्वेद में ब्राह्मण की एक पंक्ति भी नहीं थी। जब गुरु ऐसा मानता है, तो उस के शिष्य भी सम्भवतः वैसा ही मानते होंगे। अतएव कात्यायन आदि के ग्रन्थों में **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्** वाक्य बहुत पीछे मिलाया गया होगा।

(ढ) ब्राह्मण ग्रन्थ दृष्ट नहीं हैं और इस लिये वेद भी नहीं हैं, तथा मनुष्यों के बनाये हुए हैं। इस विषय में एक और प्रबल प्रमाण देखें। सामब्राह्मणों में एक सुब्रह्मण्या[1] आती है। उस के एक भाग में निम्नलिखित पद हैं—**कौशिक ब्राह्मण गौतम ब्रुवाणेति।** इन के विषय में शतपथ ३।३।४।१९ में लिखा है—

शश्वद्धैतदारुणिनाधुनोपज्ञातं यद्गौतम ब्रुवाणेति। अर्थात् ठीक इस प्रकार यह सुब्रह्मण्या का भाग अभी-अभी आरुणि ने निज स्फूर्ति से बनाया है।

जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—**अथ ह वा एके कौशिक ब्राह्मण गौतम ब्रुवाणेति आह्वयन्ति। तदु ह वा आरुणिनैव यशस्विनोपज्ञातम्।**[2] अर्थात् कुछ विद्वान् कौशिक ब्राह्मण आदि कह कर पुकारते हैं। तो यह यशस्वी आरुणि को स्फूर्ति से ज्ञात हुआ था।

ऊपर पृ० १०५ पर पाणिनीय सूत्रों के प्रमाण से बता चुके हैं कि उपज्ञात ग्रन्थ मनुष्यप्रणीत हैं, अस्तु।

कौशिक ब्राह्मण आदि पद सुब्रह्मण्या का एक भाग है।

इस के विषय में जैमिनीय और शतपथ दोनों ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं कि इसे आरुणि ने बनाया है। शतपथ तो कहता है कि **अधुनैव** अर्थात् अभी अभी बनाया है। इस से जहां यह ज्ञात होता है कि जैमिनीय और दूसरे सामब्राह्मण शतपथ के ही काल में बने, वहां यह भी प्रकट होता है कि शतपथादि ब्राह्मणों के प्रवक्ता याज्ञवल्क्यादि ऋषि ब्राह्मण वाक्यों को मन्त्रवत् दृष्ट नहीं मानते थे, प्रत्युत प्रणीत ही मानते हैं। इसलिये यह

---

१. १।१॥ यह अनुक्रमणी शौनक की नहीं है।

२. २।७९-८०॥ देखें काण्व शतपथ की कालेण्ड रचित भूमिका पृ० १०१, धारा ७।

ही वैदिक सिद्धान्त ठहरता है कि ब्राह्मण भागों के उपज्ञात होने से ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं।

प्रश्न—चरणव्यूह कण्डिका द्वितीय में यह क्या लिखा है कि मन्त्र ब्राह्मण वेद हैं। यथा—

त्रिगुणं पठ्यते यत्र मन्त्रब्राह्मणयोः सह।
यजुर्वेदः स विज्ञेयः शेषाः शाखान्तराः स्मृताः ॥

उत्तर—साम्प्रतिक दशा में चरणव्यूह कोई विश्वसनीय ग्रन्थ नहीं है। इस के आठ नौ भेद तो हम ने ही देखे हैं। वेबर का चरणव्यूह तथा काशी का छपा भिन्न हैं। हस्तलिखित प्रति में भेद का तो कहना ही क्या। ऐसी अवस्था में कौन कह सकता है कि मूल ग्रन्थ कितना था। यह श्लोक तो किसी तैत्तिरीय शाखा-भक्त का मिलाया हुआ प्रतीत होता है।

चरणव्यूह का टीकाकार महिदास इस श्लोक को ऐसे पढ़ता है—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदः त्रिगुणं यत्र पठ्यते।
यजुर्वेदः स विज्ञेय अन्ये शाखान्तराः स्मृताः ॥

जहां मूल में पूर्वोद्धृत श्लोक छपा है वहां उस ने उस की व्याख्या भी नहीं की। उस से बहुत आगे यह श्लोक स्वयं लिख कर टीका करता है। इस से भी मूल पाठ में श्लोक का प्रक्षिप्त होना पाया जाता है। श्लोक का अर्थ कर अन्त में महिदास लिखता है—एतादृशपठनं शाखाया अध्ययनं (यत्र) स यजुर्वेदः। तच्च तैत्तिरीयशाखायामेवास्ति। इसी लिए हम ने कहा था कि यह श्लोक किसी तैत्तिरीय-शाखा-भक्त का मिलाया हुआ प्रतीत होता है।

(ण) ब्राह्मण ग्रन्थों के ऋषिप्रोक्त होने में और भी प्रमाण हैं। मीमांसा सूत्र १२।३।१७॥ ऐसे पढ़ा गया है—मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिकश्रुतिः।

इसी के भाष्य में शबर कहता है—भाषास्वरो ब्राह्मणे प्रवृत्तः। अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थों में वही स्वर प्रवृत्त हुआ है जो साधारण भाषा में है।

जब ब्राह्मण का स्वर ही भाषा स्वर अर्थात् लौकिक स्वर है तो वह ईश्वरप्रोक्त कैसे हो सकता है। यह बात शिक्षा ग्रन्थों वा भाषिकसूत्र से सिद्ध होती है। विस्तार भय से अधिक नहीं लिखा गया। सत्यव्रत सामश्रमी जी ने त्रयीपरिचय में इसे ठीक प्रकार लिखा है।

(त) ब्राह्मणादि ग्रन्थां में मन्त्रों की प्रतीकें लिखकर इति कह कर न केवल मन्त्रों का व्याख्यान ही किया है, प्रत्युत उन के ऋषि देवता आदि भी दिए हैं। ब्राह्मणों के प्रमाणों से हम वेदों का आदि सृष्टि में होना कह चुके हैं। मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि उस से बहुत पीछे हुए हैं। उन का उल्लेख करने वाले ग्रन्थ उस से पीछे के होंगे। इन मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि विशेषों के नाम का सामान्यार्थ हो ही नहीं सकता। अतः ब्राह्मणादि ग्रन्थ बहुत नये और ऋषि-प्रोक्त ही हैं। इस के कतिपय उदाहरण काठक संहिता में निम्न हैं—

(१) महि त्रीणामवो ऽस्तु। ७।२॥
(२) इत्येष प्राजापत्यस्त्रिचः। ७।६॥
(३) स वामदेव उख्यमग्निमबिभस्तमवैक्षत स एतत् सूक्तमपश्यत् कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्,[1] इति। १०।५॥

---

१. ऋग्वेद ४।४॥

ऐसे ही अष्टाध्यायी आदि अन्य ग्रन्थों में भी ब्राह्मणों को वेद नहीं माना है। इस के उदाहरण हम ने पाणिनीय सूत्रों से पहले ऊपर दे दिये हैं। पूर्वपक्षी के अष्टाध्यायीस्थ प्रमाण इतने निर्बल हैं कि विद्वान् स्वयं उन का उत्तर दे सकते हैं।

इस सारे लेख से यह ज्ञात हो चुका है कि मन्त्रसंहिताएं ही वेद हैं। वही अपौरुषेय हैं। अत्यन्त प्राचीन आचार्य ऐसा ही मानते थे। आपस्तम्ब परिभाषा सूत्र—मन्त्रब्राह्मण्योर्वेदनामधेयम्। ३४॥ की व्याख्या में धूर्तस्वामी लिखता है—कैश्चित् मन्त्राणामेव वेदत्वमाश्रितम्।३४॥

इस सूत्र की व्याख्या में हरदत्त मिश्र भी यही कहता है कि—कैश्चिन्मन्त्राणामेव वेदत्वमाख्यातम्। ३३॥ अर्थात् कुछ आचार्य मन्त्रों को ही वेद मानते हैं।

इस लेख से प्रकट है कि धूर्तस्वामी और हरदत्त की दृष्टि में आपस्तम्ब के काल से पहले के कुछ आचार्य मन्त्रमात्र को ही वेद मानते थे। हमारा विचार है कि यह मूल सूत्र चाहे औपचारिक भाव से ही लिखा गया हो पर आपस्तम्ब के काल से बहुत अर्वाचीन है। इसलिए सम्भवतः आपस्तम्बादि भी मन्त्रमात्र को ही वेद मानते थे। जब आपस्तम्बादि के ग्रन्थों में इस सूत्र का प्रक्षेप किया गया, तब उस से उत्तर काल में लोगों ने ब्राह्मणों को भी वेद मानना आरम्भ कर दिया। अस्तु, हो सकता है हमारे इस विचार से कई विद्वान् सहमत न हों, पर इतना तो उन्हें भी मानना ही पड़ेगा कि धूर्तस्वामी और हरदत्त की दृष्टि में आपस्तम्बादि के काल से पहले के अनेक आचार्य अवश्य ही केवल मन्त्रसमुदाय को वेद मानते थे।

महाभारत-काल के कुछ पश्चात् एक याज्ञिक काल आया। उस में ब्राह्मणों का अत्यन्त उपयोग होने तथा अति मान होने से, ब्राह्मणों को औपचारिक दृष्टि से वेद कहा गया। ब्राह्मणों को ही क्या, धर्मशास्त्रों को भी कभी-कभी औपचारिक दृष्टि से आम्नाय कहा गया है।

वीरमित्रोदय अपने संस्कार प्रकाश में लिखता है—मन्त्रब्राह्मण्योर्वेदः षडङ्गमेक इति गौतमः।[1]

गौतमधर्मसूत्र का टीकाकार मस्करी एक सूत्र यत्र चाम्नायो विदध्यात्।१।५१॥ पर टीका करते हुए कहता है—अथवा-आम्नायशब्देन मनुरुच्यते। अर्थात् आम्नाय शब्द में मनुस्मृति का भी ग्रहण हो सकता है। जब आम्नाय पद किसी धर्मशास्त्री की दृष्टि में अपने मूल=मनुस्मृति के लिए उपचार से प्रयुक्त हो सकता है, तो याज्ञिकों की दृष्टि में यज्ञक्रिया प्रधान ग्रन्थों के लिए उपचार से वेद शब्द प्रयुक्त हो गया, इस में अणुमात्र भी आश्चर्य नहीं।

तन्त्रवार्तिक में भट्ट कुमारिल लिखता है—स्मृतिग्रन्थे ऽप्याम्नायशब्दप्रयोगात्। स्मार्तधर्म्माधिकारे हि शङ्खलिखिताभ्यामुक्तम्-आम्नायः स्मृतिधारक इति। ग्रन्थकारगतायाः स्मृतेस्तत्कृतग्रन्थाम्नायः स्मृति-ग्रन्थाध्यायिनां स्मृतिधारणार्थत्वेनोक्तः।[2]

अर्थात्—स्मृति ग्रन्थों के लिए भी आम्नाय शब्द का प्रयोग हुआ है। शङ्खलिखित भी ऐसा ही कहते हैं। स्मृति ग्रन्थों के पढ़ने वाले अपने मूल को आम्नाय कह सकते हैं।

समय के व्यतीत होने पर शबर आदि नवीन आचार्यों ने उस औपचारिक भाव को भुला कर इन्हें वेद ही कहना आरम्भ कर दिया। इसलिए जन साधारण भी इन्हें वेद समझते रहे। बस यही सारी भूल का

---

१. पृ० ५०७।

२. १।३।७॥

कारण था। फिर भी मध्यकाल में अनेक ऐसे मीमांसक हो चुके हैं जो ब्राह्मण का परम आदर करते हुए भी मन्त्रमात्र से ही सारे विधिवाद का काम चलाते रहे हैं। उन का कथन है कि मन्त्रों में भी किसी न किसी प्रकार से सारी विधि कही गई है। उन्हों ने ब्राह्मण का साक्षात् शब्दों में वेद होने से इन्कार तो नहीं किया, पर उन का लेख इस बात को प्रकट करता है कि वे मन्त्र और ब्राह्मण को एक सा स्थान नहीं देते थे। सम्भव है इस औपचारिक परम्परा के बहुत बलवती होने के कारण ही कई विद्वानों ने ब्राह्मणों के वेद मानने के विरुद्ध आवाज न उठायी हो।

विक्रम की इस शताब्दी में ऋषि दयानन्द सरस्वती ने यह भूल देखी और इसी लिए अनेक युक्ति प्रमाणों के अनन्तर अपनी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के "वेदसंज्ञाविचारविषय" में यह लिखा—

इत्यादि बहुभिः प्रमाणैर्मन्त्राणामेव वेदसंज्ञा न ब्राह्मणग्रन्थानामिति सिद्धम्।[1]

अर्थात् मन्त्रों की ही वेदसंज्ञा है, ब्राह्मण ग्रन्थों की नहीं।

दयानन्द सरस्वती के प्रमाणों के विरुद्ध भी अनेक लोगों ने लेख लिखे हैं। उन सब से हमारा निवेदन है कि हमारे पूर्वोक्त लेख को ध्यान से पढ़ें, और निष्पक्ष हो कर सत्यासत्य का निर्णय करें।

---

१. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, देहली, १९६९।

आठवां अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थ और वेदार्थ

निरुक्त और निघण्टु का आधार ब्राह्मण ग्रन्थ हैं

निरुक्त सब से पुराना ग्रन्थ है। यह इस समय मिलता है। इस में वेदार्थ का विस्तृत निदर्शन है। 'यह ऋग्वेदीय लोगों के पठितव्य दश ग्रन्थों में से एक है।' दाक्षिणात्य ऋग्वेदाध्यायी इस समय भी इस का पाठ करते हैं। इस निरुक्त से पहले भी ऐसे ही अनेक निरुक्त ग्रन्थ थे, पर वे अब लुप्त प्रायः हैं।[1] निरुक्त का मूल निघण्टु है। निरुक्त और निघण्टु दोनों यास्क-प्रणीत हैं।[2] निघण्टु प्राचीन वैदिक कोषों का एक नमूना है। इस निघण्टु से पहले और भी अनेकों निघण्टु थे। निरुक्त ७।१३॥ में यास्क स्वयं उनका स्वरूप कथन करता है—

अथोताभिधानैः संयुज्य हविश्चोदयति—इन्द्राय वृत्रघ्ने। इन्द्राय वृत्रतुरे। इन्द्रायांहोमुचे,[3] इति। तान्यप्येके समामनन्ति। भूयांसि तु समाम्नानात्। यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात् प्राधान्यस्तुति तत् समामने।

अर्थात्—'कई एक आचार्य ऐसा समाम्नाय करते हैं जिस में देवता के विशेषण एकत्र किए जाएं। परन्तु जो प्रधान स्तुति वाला (अग्नि आदि) देवता-नाम है, उस का मैं समाम्नाय करता हूँ।'

कौत्सव्य प्रणीत निरुक्त-निघण्टु भी जो आथर्वण परिशिष्टों में से एक है, पुराने निघण्टु ग्रन्थों का ही नमूना मात्र है।[4]

यास्कीय निघण्टु और इस आथर्वण निघण्टु के देखने से निश्चय हो जाता है कि प्राचीन निघण्टु ग्रन्थों का आधार प्रधानतया ब्राह्मण ही थे। निघण्टु-पठित अर्थों और ब्राह्मणान्तर्गत अर्थों की निम्नलिखित तुलनात्मक सूची से यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जायगी।

---

१. G. Oppert के सूची पत्र II. 510 पर दक्षिण में किसी घर में उपमन्युकृत निरुक्त का अस्तित्व बताया गया है।

२. देखें मेरा लेख, मासिक पत्र ज्योति, वैशाख सं० १९७७, लाहौर।

३. मैं० सं० २।६।६॥

४. इस का देवनागरी संस्करण आर्ष-ग्रन्थावली, लाहौर में छप चुका है।

	निघण्टु	ब्राह्मण	
१।१४।।	अत्यः अश्व	अत्योऽसि (अश्व)	तै ३।८।९।१।।
३।१७।।	अध्वरः यज्ञ	अध्वरो वै यज्ञः	श० १४।१।३८।।
१।१२।।	अन्नम् उदक	अन्नं वा ऽआपः	श० १३।८।१।९।।
१।१०।।	अभ्रम् मेघ	अभ्राद् वृष्टिः	श० ५।३।५।१७।।
२।७।।	अर्कः अन्न	अन्नमर्कः	श० ९।१।१।४।।
३।४।।	अस्तम् गृह	गृहा वाऽस्तम्	श० २।५।२।२९।।
१।१४।।	अर्वा अश्व	(अश्व त्वं) अर्वाऽसि	ता० १।७।१।।
२।११।।	अदितिः गौ	अदितिर्हि गौः	श० २।३।४।३४।।
१।१।।	अदिति पृथिवी	इयं वै पृथिव्यदितिः	श० १।१।४।५।।
१।११।।	अदिति वाक्	वाग्वा अदितिः	श० ६।५।२।२०।।
१।१०।।	अद्रिः मेघ	गिरिर्वाऽअद्रिः	श० ७।५।२।१८।।
१।५।।	अभीशवः रश्मि	अभीशवो वै रश्मयः	श० ५।४।३।१४।।
१।११।।	अनुष्टुप् वाक्	वाग्वा अनुष्टुप्	श० १।३।२।१६।।
१।३।।	अमृतम् हिरण्य	अमृतं वै हिरण्यम्	श० ९।४।४।५।।
२।७।।	आयुः अन्न	अन्नमु वाऽआयुः	श० ९।२।३।१६।।
२।७।।	इषम् अन्न	अन्नं वा इषम्	कौ० २८।५।।
१।१।।	इडा पृथिवी	इयं (पृथिवी) वा इडा	कौ० ९।२।।
२।७।।	इडा अन्न	अन्नं वा इला	ऐ० ८।२६।।
२।११।।	इडा गौ	गौर्वाऽइडा	श० ३।३।१।४।।
३।३०।।	उर्वी पृथिवी	यथेयं पृथिव्युर्वी	श० २।१।४।२८।।
२।७।।	ऊर्क् अन्न	अन्नं वा ऊर्गुदुम्बरः	श० ३।२।१।३३।।
१।११।।	ऋक् वाक्	वागेवऽर्चः	श० ४।६।७।१।।
३।१०।।	ऋतम् सत्य	सत्यं वाऽऋतम्	श० ७।३।१।२३।।
२।९।।	ओजः बल	ओजः सहः	कौ० ३।५।।
३।६।।	कम् सुख	सुखं वै कम्	गो० उ० ६।३।।
१।७।।	क्षपा रात्रि	रात्रयः क्षपाः	ऐ० १।१३।।
१।१।।	क्षामा पृथिवी	इमे वै द्यावापृथिवी द्यावाक्षामा	श० ६।७।२।३।।
३।३।।	गभीरः महान्	गभीरमिमं महान्तमिमं	श० ३।९।४।५।।
१।११।।	गीः वाक्	वाग्वै गीः	श० ७।२।२।५।।
१।२।।	चन्द्रम् हिरण्य	चन्द्रं हिरण्यम्	तै० १।७।६।३।।
२।३।।	जन्तवः मनुष्य	मनुष्या वै जन्तवः	श० ७।३।१।३२।।
३।४।।	दुर्याः गृह	गृहा वै दुर्याः	श० १।१।२।२२।।
१।११।।	धिषणा वाक्	वाग्वै धिषणा	श० ६।५।४।५।।

	निघण्टु	ब्राह्मण	
१।११।।	धेनुः वाक्	वाग्वै धेनुः	तां० १८।९।२१।।
२।७।।	नमः अन्न	अन्नं नमः	श० ६।३।१।१७।।
२।३।।	नरः मनुष्य	मनुष्या वै नरः	श० ७।५।२।३९।।
१।१।।	निर्ऋतिः पृथिवी	इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः	श० ५।२।३।३।।
२।१०।।	नृम्णम् धन	नृम्णानि......धनानि	श० १४।२।२।३०।।
१।१२।।	पयः उदक	आपो हि पयः	कौ० ५।४।।
२।७।।	पयः अन्न	पय एवान्नम्	श० २।५।१।६।।
१।१२।।	पवित्रम् उदक	पवित्रं वा ऽआपः	श० १।१।१।१।।
२।७।।	पितुः अन्न	अन्नं वै पितुः	श० १।९।२।२०।।
३।१।।	पुरु बहु	पुरुदस्मः बहुदानः	श० ४।५।२।१२।।
१।१।।	पूषा पृथिवी	इयं वै पृथिवी पूषा	श० २।५।४।७।।
२।१७।।	पृतना संग्राम	युधो वै पृतना	श० ५।२।४।१६।।
१।३।।	पृथिवी अन्तरिक्ष	इयं (पृथिवी) अन्तरिक्षम्	ऐ० ३।३१।।
२।२।।	प्रजा अपत्य	प्रजा वै तोकम्	श० ७।५।२।३९।।
		प्रजा वै सूनुः	श० ७।१।१।२७।।
३।१७।।	प्रजापतिः यज्ञ	यज्ञः प्रजापतिः	श० ११।६।३।९।।
३।२७।।	प्रत्नम् पुराण	प्रत्नं......सनातनं	श० ६।४।४।१७।।
२।२०।।	परशुः वज्र	वज्रो वै परशुः	श० ३।६।४।१०।।
३।१७।।	मखः यज्ञ	यज्ञो वै मखः	तै० ३।२।८।३।।
३।६।।	मयः सुख	यद्वै शिवं तन्मयः	तै० २।२।५।५।।
१।५।।	मरीचिपाः रश्मि	ये रश्मयस्ते देवा मरीचिपाः	श० ४।१।१।२५।।
१।१।।	मही पृथिवी	इयं (पृथिवी) एव मही	जै० उ० ३।४।७।।
२।७।।	रसः अन्न	रसेनान्नेन	श० ७।२।२।१०।।
१।१२।।	रसः उदक	रसो वाऽआपः	श० ३।३।३।१८।।
१।१२।।	रेतः उदक	आपो हि रेतः	तां० ८।७।९।।
३।३०।।	रोदसी द्यावापृथिवी	द्यावापृथिवी वै रोदसी	ऐ० २।४१।।
२।७।।	वाजः अन्न	अन्नं वै वाजः	श० ५।१।४।३।।
२।९।।	वाजः बल	वीर्यं वै वाजः	श० ३।३।४।७।।
१।१४।।	वाजी अश्व	वाजिनो ह्यश्वाः	श० ५।१।४।१५।।
३।१७।।	विष्णु यज्ञ	विष्णुर्वै यज्ञः	ऐ० १।१५।।
२।९।।	शवः बल	बलं वै शवः	श० ७।३।१।२९।।
१।१२।।	शुक्रम् उदक	शुक्रा ह्यापः	तै० १।७।६।३।।
१।१२।।	सत्यम् उदक	आपो हि वै सत्यम्	श० ७।४।१।६।।
१।१४।।	सप्तिः अश्व	(अश्व त्वं) सप्तिरसि	तां० १।७।१।।

	निघण्टु	ब्राह्मण	
१।११।।	सरस्वती वाक्	वाग्वै सरस्वती	श० २।५।४।६।।
१।१२।।	सर्वम् उदक	आप एव सर्वम्	गो० पू० ५।१५।।
२।६।।	सहः बल	बलं वै सहः	श० ६।६।२।१४।।
१।६।।	हरितः दिशा	दिशो वै हरितः	श० २।५।१।५।।

इस छोटी सी सूची में विस्तरभय से अधिक शब्दों के अर्थों की तुलना नहीं की जा सकती। हमारे वैदिक कोष को ध्यान पूर्वक देखने से विद्वज्जन स्वयं सारी तुलना कर सकेंगे। हम ने इस सूची में अधिकांश प्रमाण शतपथ से ही दिए हैं। कोष की सहायता से शेष ब्राह्मणों में से भी बहुत से ऐसे वाक्य मिल जायेंगे। यदि सैंकड़ों ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त न हो जाते तो आज भी निघण्टु के प्रायः सारे ही नाम उन में से निकाले जा सकते थे। यही अवस्था निरुक्त की है। निरुक्त में तो यास्क स्वयं इति ब्राह्मणम्। इति ह विज्ञायते कह कर अपने अर्थ की पुष्टि ब्राह्मण वाक्यों से करता है। इसलिए हम निश्चयात्मक रूप से कह सकते हैं कि यास्कीय निरुक्त, निघण्टु का मूल प्रधानतया ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं।

हमारे प्रकाशित कोष में अनेक पदों के वे अर्थ भी हैं, जो इस निघण्टु या निरुक्त में नहीं मिलते। हो सकता है उन्हें और निघण्टुकारों ने एकत्र किया हो। ऐसा ही यास्क ने कहा है—भूयांसि तु समाम्नानात् ।।७।१३।।

उन प्राचीन ग्रन्थकारों से भी कुछ रह गये हों। पर ब्राह्मणों में अब भी पर्याप्त शब्द ऐसे मिलेंगे, जो इस निघण्टु की बड़ी सहायता कर सकते हैं।

ब्राह्मण-प्रदर्शित इन वैदिक शब्दों के अर्थों का क्या आधार है

ब्राह्मण ग्रन्थों ने इन में से बहुत से अर्थ साक्षात् मन्त्रों से लिये हैं। समाधिस्थ ऋषियों के निष्कलंक मन में बहुत सा अर्थ परमात्मा की कृपा से भी प्राप्त हुआ है। वह भी इन्हीं ब्राह्मणों में सुरक्षित है। ऋषि-प्रोक्त व परतः प्रमाण होते हुए भी वेदार्थ का परम तत्त्व इन्हीं ब्राह्मणों से जाना जा सकता है। ऐसा ही आर्यावर्त के सब विद्वान् मानते आये हैं। हां, नवीन पाश्चात्य लेखक इस के विपरीत कहते हैं। हम पहले उन्हीं की प्रतिज्ञा का निराकरण करेंगे। बोडन का वयोवृद्ध संस्कृताध्यापक आर्थर एनथनि मैकडानल लिखता है—

The investigation of the Brahmanas has shown that being mainly concerned with speculation on the nature of sacrifice, they were already far removed from the spirit of the composers of the Vedic hymns, and contain very little capable of throwing light on the original sense of those hymns. They only give occasional explanations of the sense of the Mantras and these explanations are often very fanciful. How completely they can misunderstand the meaning intended by the seers appears sufficiently from the following two examples. The Satapatha Brahmana (7. 4, I, 9) in referring to the refrain of Rv. X. 121.

कस्मै देवाय हविषा विधेम

'to what god should we offer worship with oblation,' says 'Ka is Prajapati : to him let us offer oblation.' Another Brahmana passage, in explaining the epithet 'golden-handed'

(हिरण्य-पाणि) as applied to the sun, remarks that the sun had lost his hand and had got instead one of gold.[1] Quite apart from the linguistic evidence, such interpretations show that there was already, a considerable gap between the period of the Brahmanas and that of the Mantras.[2]

इस लेख में निम्न प्रतिज्ञाएं हैं—

(१) पाश्चात्य लेखकों ने ब्राह्मणों में अन्वेषण किया है।

(२) ब्राह्मणों का प्रधान विषय यज्ञ के स्वरूप की कल्पना करना है।

(३) वैदिक-सूक्तों के कर्त्ताओं के भाव से ब्राह्मण बहुत दूर हैं।

(४) वेदों के मूलार्थ पर प्रकाश डालने योग्य सामग्री का ब्राह्मणों में अभाव ही है।

(५) ब्राह्मणों में कहीं कहीं ही मन्त्रों के भाव का व्याख्यान है।

(६) यह व्याख्यान प्रायः अत्यन्त काल्पनिक होते हैं।

(७) ऋषियों को जो अर्थ अभिप्रेत था, ब्राह्मण उन से सर्वथैव उलटा अर्थ समझते हैं। इसे स्पष्ट करने वाले दो उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(क) कस्मै देवाय हविषा विधेम। यह ऋचा का भाग ऋग्वेद १०।१२१॥ में बार बार आता है। उसका अर्थ है 'हम किस देव की हवि से पूजा करें।' इस का शतपथ ७।४।१।१९॥ में विचित्र व्याख्यान है। क ही प्रजापति है, उसे हम अपनी हवि दें।

(ख) एक अन्य ब्राह्मण में हिरण्यपाणि अर्थात् स्वर्ण हाथ वाला शब्द आया है। वहां उसे सूर्य पर लगाया गया है, तथा कहा है कि सूर्य का हाथ नष्ट हो गया था। उस के स्थान में उसे एक सोने का हाथ मिल गया।

(८) भाषा सम्बन्धी साक्ष्य को पृथक् रख कर भी ऐसे व्याख्यान बताते हैं कि ब्राह्मण-काल से मन्त्र-काल का बड़ा अन्तर हो चुका था।

अध्यापक मैकडानल के कथन की परीक्षा निम्न है—

(१) मार्टिन हॉग, आफरेख़ट, लिण्डनर, बैबर, बर्नल, अर्टल, ड्यूक गस्टर आदि ने ऐतरेय आदि ब्राह्मणों के कुछ कुछ अच्छे संस्करण निकाले हैं, इस में कोई सन्देह नहीं। इन के लिये हम उन का धन्यवाद करते हैं। परन्तु उन्होंने या शतपथानुवादक एगलिङ्ग व तैत्तिरीय संहिता अनुवादक कीथ ने ब्राह्मणों में कोई सन्तोषजनक अन्वेषण किया है, ऐसा मानना उपहास्यास्पद बनना है। आधुनिक कैमिस्टरी का विज्ञान नष्ट होने पर यदि कोई थोड़ी सी आङ्गल भाषा जानने वाला किसी बृहत् कैमिस्टरी के ग्रन्थ में सीसा-कोष्ठ-विधि (Lead-chamber-method) से गन्धक के तेजाब के तैय्यार होने का वर्णन पढ़े और उस विधि को उस ने

---

१. अथ यत्र ह तद्देवा यज्ञमतन्वत तत्सवित्रे प्राशित्रं (यज्ञ मे ब्रह्महवि का भाग) परिजह्रुस्तस्य पाणी प्रचिच्छेद तस्मै हिरण्मयौ प्रतिदधुः। कौ० ६।१३॥ उवट अपने मन्त्रभाष्य १।१६॥ में इस प्रमाण को उद्धृत करता है। तथा देखें भट्ट भास्कर १।४।२६॥ पृ० ७०।

२. Bhandarkar Commemoration Volume, Poona, 1917.

कभी देखा सुना न हो। न ही उस ने कभी गन्धक वा गन्धकाम्ल देखा हो, तो निःसन्देह वह उस सारे वर्णन को मूर्खों का कथन समझेगा। स्वाभिमान में वह अपनी भूल कदापि स्वीकार न करेगा। ऐसे ही बिना यज्ञादि क्रिया के सीखे, और बिना भूमण्डलस्थ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रगण, विद्युत्, आकाश, मेघ, वायु, अग्नि, जल आदि सब स्थूल पदार्थों का ज्ञान किये, जो भी अनधिकारी ब्राह्मणों का पाठ करेगा वह इन्हें मूर्ख लीला समझेगा, प्रमत्तगीत कहेगा। जैसा कि मैक्समूलर अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास पृ० ३८९ पर लिखता है—

The Brahmanas represent no doubt a most interesting phase in the history of Indian mind, but judged by themselves, as literary productions, they are most disappointing. No one would have supposed that at so early a period, and in so primitive a state of society, there could have risen up a literature which for pedantry and downright absurdity can hardly be matched anywhere. There is no lack of striking thoughts, of bold expressions, of sound reasoning, and curious traditions in these collections. But these are only like the fragments of a 'torso' like precious gems set in brass and lead. The general character of these works is marked by shallow and insipid grandiloquence, by priestly conceit, and antiquarian pedantry. It is most important to the historian that he should know how soon the fresh and healthy growth of a nation can be blighted by priestcraft and superstition. It is most important that we should know that nations are liable to these epidemics in youth as well as in their dotage. These works deserve to be studied as the physician studied the twaddle of idiots, and the raving of mad men:[1]

हम यह नहीं कहते कि हम ब्राह्मणों के समस्त अर्थों को समझ गये हैं, परन्तु हम यह जानते हैं कि जब आर्यावर्त्तीय सायण प्रभृति भी इन के अर्थ को पूरा नहीं समझे, तो पाश्चात्य लोग भला क्या समझे होंगे। ब्राह्मणों में स्थल स्थल पर रूपकालंकार की कथायें भरी पड़ी हैं। शतपथ ब्राह्मण १।७।४॥ में कहा है—

(१) प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषसं वा मिथुन्येनयास्यामिति ताᳬसम्बभूव ॥१॥...

(२) स वै यज्ञ एव प्रजापतिः ॥४॥[2]

इस प्रकरण में प्रजापति नाम सूर्य का है। ब्राह्मणग्रन्थ स्वयं कहते हैं—

(१) यो ह्येव सविता स प्रजापतिः। श० ब्रा० १२।३।५।१॥

(२) प्रजापतिर्वै सविता। तां० ब्रा० १६।५।१७॥

(३) प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता। श० ब्रा० १०।२।७।४॥

---

१. मैक्समूलर यहां वैसी भाषा का ही प्रयोग करता है, जैसी मतान्ध व्यक्ति वर्ता करते हैं।

२. तुलना करें ऐ० ब्रा० ३।३॥ तां० ब्रा० ८।२।१०॥ देखें मै० सं० ३।६।५॥—प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यैध्युषसम्। तथा ४।२।१२॥ और देखें मेधातिथि का मनुस्मृति भाष्य १।३२॥

अर्थात् सविता=सूर्य=आदित्य ही प्रजापति है।

यह प्रजापति ही यज्ञ है। यह बात पूर्वोक्त चतुर्थ कण्डिका में कही है। अन्यत्र भी ब्राह्मण ग्रन्थ ऐसा ही कहते हैं। यथा—

(१) यज्ञ उ वै प्रजापतिः। कौ० १०।१॥

(२) प्रजापतिर्वै यज्ञः। तै० ब्रा० १।३।१०।१०॥

अर्थात् यज्ञ प्रजापति है। यह यज्ञ ही सूर्य है—

(१) यज्ञ एव सविता। गो० पू० १।३३॥

(२) स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः। श० ब्रा० १४।१।१।६॥

सविता को यज्ञ इसलिए कहा है कि इसी विष्णु सूर्य में हमारे सौर जगत् के सारे अग्निहोत्रादि महाकार्य हो रहे हैं। इसी सविता=प्रजापति की दिव्=प्रकाश और उषा कन्या समान हैं। यही सविता प्रजापति अन्य देवों का जनक है। लिखा है—सविता वै देवानां प्रसविता।[1]

कहा है कि सविता परमात्मा और यह सूर्य देवों का उत्पादक है।[1] ऐसा ही तैत्तिरीय ब्राह्मण २।२।६।५-८॥ में कहा है—सः (प्रजापतिः) मुखाद्देवानसृजत।

अर्थात् उस प्रजापति=परमात्मा ने मुख=मुख्य आग्नेय परमाणुओं से देवों को उत्पन्न किया।

शतपथ ११।१।६।७॥ में कहा है—सः (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत। यहां आस्येन तृतीयान्त प्रयोग है। एगलिङ्ग इस का अनुवाद करता है—By (the breath of) his mouth he created the gods.

यह अनुवाद ठीक नहीं। प्राणों से वेदों की उत्पत्ति हमारे देखने में कहीं नहीं आई। प्रत्युत दो चार स्थलों में प्राण स्वयं देव तो कहे गये हैं—तस्मात् प्राणा देवाः॥श० ब्रा० ७।५।१।२१॥

अन्यत्र प्राण असुर ही हैं। प्राणों की उत्पत्ति प्रायः तम के परमाणुओं से कही गयी है। यहां हेत्वर्थ में तृतीय का यही अभिप्राय है कि प्रकरणाभिप्रेत देवों की उत्पत्ति में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु ही मुख्य कारण हैं। तृतीया के अर्थ के साथ-साथ पञ्चमी का अर्थ भी लेना चाहिए, क्योंकि—स (प्रजापतिः) अग्निमेव मुखाज्जनयां चक्रे। श० ब्रा० २।२।४।१॥ ऐसे सब स्थलों में पञ्चमी से भी अभिप्राय स्पष्ट होता है। अतः उस प्रजापति=परमात्मा ने इस भौतिक अग्नि को मुख्य=प्रकाशमय परमाणुओं से बनाया।

आधिदैविक प्रकरण में इसी का यह अर्थ है कि सूर्य के ही प्रभाव से सब आग्नेय परमाणु एकत्र हुए और भिन्न-भिन्न देवों के रूप में प्रकट हुए।

निरुक्त ३।८॥ में भी किसी प्राचीन ब्राह्मण का पाठ इसी अभिप्राय से लिखा गया है—'सोर्देवान-सृजत तत् सुराणां सुरत्वम्। असोरसुरानसृजत तदसुराणामसुरत्वम्' इति विज्ञायते। अर्थात् प्रकाशमय परमाणुओं से देवों को रचा और अन्धकारयुक्त परमाणुओं से असुरों को रचा। काठक संहिता ६।११॥ में भी ऐसा ही कहा है—अह्ना देवानसृजत ते शुक्लं वर्णमपुष्यन्। रात्र्याऽसुरांस्ते कृष्णा अभवन्।

---

१. १।१।३।६॥ श० ब्रा०। एगलिङ्ग इसका अर्थ Impeller था करता है। यह युक्त अर्थ नहीं।

समान पिता होने से ये दिव् और उषा इन देवों की बहन-समान हैं। इसी सारे रहस्य का अन्य गम्भीर आशयों के साथ इन शातपथी कण्डिकाओं में रूपकालंकार के रूप में वर्णन है।

रूपकालंकार से जड़ जगत् की जो कथाएं वेद और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में वर्णन की गयी हैं, उन के सब अंश आर्यजनों में अनुकरणीय नहीं हैं। ये रूपकालंकार तो प्रायः आधिदैविक तथ्यों को बताने के लिए ही कहे गये हैं। शतपथ में कहा है—**इयं वै पृथिव्यदितिः सेयं देवानां पत्नी।**[1] अर्थात् यह पृथिवी देवों की पत्नी है।

क्या अनेक मनुष्यों की एक पत्नी हो सकती है। नहीं, नहीं। ब्राह्मणों में स्वयं कहा है—

(१) **नैकस्यै बहवः सहपतयः।** ऐ० ब्रा० ३।२३॥
(२) **न हैकस्या बहवः सहपतयः।** गो० ब्रा० उ० ३।२०॥

एक स्त्री के एक काल में अनेक पति नहीं होते। भिन्न कालों में नियोग के रूप से हो सकते हैं। ऐसे ही प्रजापति का अपनी कन्या के साथ सम्बन्ध जड़ जगत् की वार्ता है, आर्यों की सभ्यता का चिह्न नहीं है।

उपरिवर्णित सारी कथा का विशेष वर्णन ऋषि दयानन्द स्वामी प्रणीत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय में है।

भट्ट कुमारिल स्वामी कृत तन्त्रवार्तिक १।३।७॥ में भी ऐसा ही भाव लिखा है—

प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनाधिकारादादित्य एवोच्यते। स चारुणोदयवेलायामुषसमुद्यन्नभ्यैत्। सा तदागमनादेवोपजायत इति तद्दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते। तस्यां चारुणकिरणाख्यबीजनिक्षेपात् स्त्रीपुरुषयोगवदुपचारः।[2]

अब इस प्रकरण के सायणादि एतद्देशीय तथा एगलिङ्गादि विदेशियों के भाष्य व अनुवाद देखें। किसी स्थान में भी इस रूपकालंकार को यज्ञ=सविता के अर्थ में स्पष्ट नहीं किया गया। बिना मर्म अथवा भाव को समझे समझाये अनुवाद मात्र कर देना पर्याप्त नहीं। जिस अनुवाद से समझ कुछ न आये, उस में अशुद्धियां भी तो कम नहीं हो सकतीं। अतः हमारा यही कहना है कि ब्राह्मणों का अन्वेषण तो अभी आरम्भ

---

१. १।३।१।१५॥

२. १।३।७॥ भट्ट कुमारिल स्वामी के ऐसे यथार्थ अर्थ पर मैक्समूलर विस्मित होता है। वह अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास पृ० ५२९ पर कहता है—

Sometimes, however, we feel surprised at the precision with which even such modern writers as Kumarila are able to read the true meaning of their mythology.

मैक्समूलर को यह ज्ञात नहीं कि इस कथा का वास्तविक अर्थ शतपत ब्राह्मण में ही अन्यत्र स्पष्ट किया गया है—**स (प्रजापतिः=संवत्सरः=वायुः) आदित्येन दिवं मिथुनँ समभवत्।** श० ब्रा० ।६।१।२।४॥

ग्रिफिथ का हठ है कि वह अपने ऋग्वेदानुवाद में इस कथा सम्बन्धी मन्त्रों का व्याख्यान उचित स्थल में न कर के, उन्हें अश्लील समझ परिशिष्ट में लैटिन भाषा में उन का अनुवाद करता है। ग्रिफिथ का कथन निरर्थक ही है कि—the whole passage is difficult and obscure.

भी नहीं हुआ। पाश्चात्य यह समझते हैं कि वे इन में अन्वेषण कर चुके हैं, वे भूल से ही ऐसा कहते हैं। यदि सब विद्वान् निष्पक्ष होकर हमारे लेख पर ध्यान देंगे, तो वे स्वयं ही ऐसा मान जायेंगे।

जिस प्रकार पूर्वोक्त शतपथ ब्राह्मण की चतुर्थ कण्डिका में प्रजापति का अर्थ स्पष्ट किया गया है, वैसे ही अन्यत्र भी भिन्न भिन्न प्रकरणों के अन्त में कुछ संकेत आते हैं। जब तक उन संकेतों का पूर्व स्थल सहित अर्थ न स्पष्ट होगा, तब तक अर्थ समझना असम्भव होगा। इसलिए सब पक्षपात छोड़ कर पहले इन ग्रन्थों का अर्थ समझना चाहिए। तदनन्तर कोई सम्मति निर्धारित हो सकती है।

२—आर्य लोग यज्ञ को sacrifice नहीं समझते।[1]

यह तो यज्ञ शब्द का पौराणिक काल का अत्यन्त संकुचित और भ्रान्तिपद अर्थ है। इसे ही पाश्चात्यों ने स्वीकार किया है। अतः इन शब्दों के ऐसे पूर्वकल्पित (preconceived) अर्थों को लेकर जब वे ब्राह्मणों का पाठ करते है, तो उन्हें ब्राह्मण समझ ही नहीं आ सकते। किसी ग्रन्थ का क्षुद्रशब्दार्थ वे भले ही कर लें, पर समझना उन से बहुत दूर है। आङ्गलभाषा में एक प्रसिद्ध वाक्य है—"I want to answer the call of nature."

इस का शब्दार्थ होगा—"मैं प्रकृति के बुलावे का उत्तर देना चाहता हूं।" परन्तु सब जानते हैं कि शब्दार्थ होते हुए भी यह अनुवाद भाव से बहुत दूर है। ऐसे ही अनुवाद इन पाश्चात्यों ने वेद, ब्राह्मणादि ग्रन्थों के किये हैं। तदनुसार ही ये यज्ञ को sacrifice समझ बैठे हैं।

यज्ञ शब्द के अर्थ बड़े विस्तृत हैं। वैदिक कोष में यज्ञ शब्द देखें। उन विस्तृत अर्थों में जो यज्ञ का स्वरूप है, उस का वर्णन करते हुए ही ब्राह्मणों में अद्भुत विज्ञान और सृष्टि-चक्र का वर्णन किया है। उस को न समझ कर ही पाश्चात्य लोग ब्राह्मणों में अपनी पूर्व कल्पित (preconceived) sacrifice ढूंढते रहते हैं।

३—प्रथम तो हम यह कहेंगे कि वैदिक सूक्तों के कर्त्ता नहीं हैं। जो भी इन के कर्त्ता मानते हैं, उन की युक्तियों का खण्डन हम अपने ऋग्वेद पर व्याख्यान पृ० ४१-७६ पर कर चुके हैं। पूर्वपक्षियों ने हमारे लेख-पर कोई आपत्ति नहीं उठायी। इसलिये अभी इस पर और न लिखेंगे। हां, दूसरे पक्ष का उत्तर अवश्य देंगे। ब्राह्मणों का भाव मन्त्रों से बहुत दूर नहीं है, प्रत्युत ब्राह्मण तो मन्त्रों के साक्षात् अर्थ का दर्शन कराते हैं।

कल्पविद्या और नित्य शब्दार्थ सम्बन्ध विद्या से अपरिचित होने के कारण पाश्चात्यों के मन में भय पड़ गया है कि एक शब्द का एक ही अर्थ सर्वत्र लेना चाहिए। अर्थ बने या न बने, वे उसी एक अर्थ से सर्वत्र काम चलाना चाहते हैं। ब्राह्मणों में एक एक शब्द के अनेक अर्थ देखकर वे घबरा जाते हैं। यह सत्य है कि—

बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि।[2]

'ब्राह्मणग्रन्थ गुणों की सदृशता का बहुविभाग करके अनेक शब्दों को पर्याय बनाते हैं पर इन गुणो की सदृशता का विभाग किए बिना काम चल ही नहीं सकता। वेद भाषा तो क्या संसारस्थ लौकिक भाषाओं में भी बहुधा गुणों की सदृशता का विभाग करने से ही पर्याय बने हैं। वेद में स्वयं विशेष्य विशेषण की रीति से इस गुण विभाग के करने का प्रकार आरम्भ किया है। यथा—

---

१. देखें गुरुदत्त लेखावली, पृ० ८८। (Works of Pt. Guru Datta.)

२. ७।२।। निरुक्त।

त्वं महीमवनिम् ।	ऋ० ४।१६।६।।
उर्वी पृथ्वी ।	ऋ० १।१८५।७।।
उर्वी पृथ्वी ।	ऋ० ६।१।७।।
उर्वी...भूमिः ।	ऋ० ६।४७।२०।।
मही गौः ।	ऋ० १०।१३३।७।।
उर्वी पृथ्वीम् ।	ऋ० ७।३८।२।।
क्षां......उर्वीम् ।	ऋ० ६।१७।७।।
पृथिवि भूतमुर्वी ।	ऋ० ६।६८।४।।
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां ।	ऋ० ५।८५।४।।
भूमिं पृथिवीम् ।	ऋ० १२।१।७।।
ययेयं पृथिवी मही दाधार ।	ऋ० १०।६०।६।।
पृथिवीं मातरं महीम् ।	तै० ब्रा० २।४।६।८।।
क्षामत्येति पृथ्वीम् ।	ऋ० १०।३१।६।।
क्षमां भूमिम् ।	ऋ० १२।१।२६।।
उर्वी अन्तर्मही ।	ऋ० ३।३८।३।।
भूमिं महीमपाराम् ।	ऋ० ३।३०।६।।
अदितिं धारयत क्षितिम् ।	ऋ० १।१३६।३।।
क्षितिर्न पृथ्वी ।	ऋ० ६।१५।३।।

यह प्रमाण स्पष्ट करते हैं कि 'मही । अवनि । उर्वी । पृथ्वी । पृथिवी । गौ । भूमि । अदिति । क्षिति । क्षमा । क्षा' इन ग्यारह शब्दों में से एक शब्द भी मूलार्थ में पृथिवी का बोधक नहीं है । मंत्रों के इन पदों से विस्तार, महत्ता, निवास, अविनाश, रक्षा आदि का भाव पाया जाता है । ये सारे ही शब्द कहीं न कहीं विशेषण रूप से प्रयुक्त हो चुके हैं । विशेषण सब यौगिक हैं । अतएव ये सारे शब्द भी यौगिक ही सिद्ध होते हैं । योगरूढ़ बनते समय इन्हीं शब्दों का अर्थ विशेषण और प्रकरण बल से पृथिवी हो गया है । वेदाभ्यासी इन में से एक भी शब्द को रूढ़ि नहीं कह सकता । इन्हीं मन्त्रों के आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थों ने इन शब्दों को पर्यायवाची माना और यास्क ने ब्राह्मण और मन्त्र को देखकर ही निघण्टु के प्रथमाध्याय के प्रथम खण्ड में इन शब्दों को पृथिवी के नामों में पढ़ा है ।

वेद में इस विषय के पोषक और भी अनेक प्रमाण हैं । वे आगे दिए जाते हैं—

शुक्राय भानवे ।	ऋ० ७।४।१।।
भानुना सं सूर्येण रोचसे ।	ऋ० ८।६।१८।।
सूर्यो नः शुक्रः ।	ऋ० ६।४।३।।
सूर्यस्य हरितः ।	ऋ० ५।२६।५।।
इन्द्र मघवानमेनम् ।	ऋ० ७।२८।५।।
इन्द्र शक्र ।	ऋ० १।६२।४।।
इन्द्र वज्रिन् ।	ऋ० ४।१६।१।।

पुरुहूत इन्द्रः ।	ऋ० ४।१७।५॥
तोकाय तनयाय ।	ऋ० ६।१।१२॥
येन तोकं च तनयं च ।	ऋ० १।९२।१३॥
अद्भिरर्कैः ।	ऋ० ६।४।६॥
आ मही रोदसी पृण ।	ऋ० ९।४।५॥
मही अपारे रजसी ।	ऋ० ९।६८।३॥
रोदसी मही ।	ऋ० ९।१८।५॥
बृहती मही ।	ऋ० ९।५।६॥
द्यावाभूमि शृणुतं रोदसी मे ।	ऋ० १०।१२।४॥
आ रोदसी बृहती ।	ऋ० १।७२।४॥
रोदसी बृहती ।	ऋ० १९।१०।३॥
रोदसी चिदुर्वी ।	ऋ० ३।५६।७॥
वाजी अरुषः ।	ऋ० ५।५६।७॥
वाजिनो अर्वतः ।	ऋ० ९।६।२॥
आशुमश्वम् ।	ऋ० ७।७१।५॥
सप्ती हरी ।	ऋ० ३।३५।२॥
वाज्यर्वा ।	ऋ० १।१६३।१२॥
पैद्वो वाजी ।	ऋ० १।११६।६॥
अत्यं न वाजिनम् ।	ऋ० १।१३५।५॥
अत्यो न वाजी ।	ऋ० ९।९६।१५॥
अश्वं न वाजिनम् ।	ऋ० ७।७।१॥
अश्वं न त्वा वाजिनम् ।	ऋ० ९।८७।१॥
अत्यं न सप्तिम् ।	ऋ० ३।२२।१॥
तरसे बलाय ।	ऋ० ३।१८।३॥
सहः ओजः ।	ऋ० ५।५७।६॥
अघ्न्याया···धेनोः ।	ऋ० ४।१।६॥
बृबूकं वहतः पुरीषम् ।	ऋ० १०।२७।२३॥
वाजिनीवती···चित्रामघा ।	ऋ० ७।७५।५॥
गल्दया···गिरा ।	ऋ० ८।१।२०॥
विश्वा भुवनानि सर्वा ।	मै० सं० ४।१४।१४॥
घृतेन त्वा···आज्येन वर्धयत् ।	ऋ० १९।२७।५॥
अध्वनः पथश्च । बड़े मार्ग छोटे मार्ग—सायण ।	ऋ० ६।१६।३॥
स्तोमेभिरुक्थैश्च ।	ऋ० ६।२४।७॥
वत्सं गावो न धेनवः ।	ऋ० ६।४५।२८॥

राधसा श्रवसा च । ऋ० ६।१०।५॥
नरः मर्याः । ऋ० ५।५३।३॥
वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् । ऋ० १।१३५।५॥

यहां सूर्य, इन्द्र, द्यावापृथिवी, अश्वादि के पर्यायवाची शब्द दिखाये गये हैं। इन शब्दों को देख कर कौन विद्वान् कह सकता है कि इन्द्र किसी व्यक्तिविशेष का नाम है अथवा रूढ़ि शब्द है। वैदिक वाक्य रचना सहज स्वभाव से प्रकट कर देती है कि कोई भी ऐश्वर्यशाली पदार्थ इन्द्र नाम से पुकारा जा सकता है। इसी प्रकार पूर्व प्रदर्शित और पदों के विषय में भी जानना चाहिए।

निघण्टु १।११॥ में वाक् के ५७ नाम आए हैं। उन में धारा, मन्द्रा, सरस्वती, जिह्वा, ऋक्, अनुष्टुप् आदि नाम पढ़े गए हैं। इन में से कुछ नाम ब्राह्मणों में भी इसी अर्थ में मिलते हैं। पहले चार नाम तो विशेषण भाव से स्पष्ट ही वेद में इन अर्थों में मिल जाते हैं।[1] यथा—

मन्द्रया सोम धारया । ऋ० ९।६।१॥
अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थुः । ऋ० ७।१८।३॥
मन्द्रया च जिह्वया । ऋ० ७।१६।९॥
मन्द्रया देव जिह्वया । ऋ० ५।२६।१॥
मन्द्राः गिरः । ऋ० ७।१८।३॥
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या । ऋ० ५।७।५॥

अब रहे ऋक् और श्लोकादि शब्द। इनके विषय में मैकडानल ने भी स्वयं संदेह प्रकट किया है। वे लिखते हैं—"Thus among the synonyms of vac 'speech' appear such words as sloka, nivid, rc, gatha, anustubh which denote different kinds of verses or compositions and can never have been employed to express the simple meaning of "speech."[2]

अर्थात् यह शब्द रचना विशेष के लिए आ सकते हैं, साधारण वाक् के लिए नहीं। अब हम देखेंगे कि वेद वा शाखाग्रन्थों में, निघण्टु वा ब्राह्मणों में आये हुए ये शब्द इन अर्थों में मिलते हैं या नहीं।

ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते । ऋ० ८।२७।५॥
ऋचं वाचं प्रपद्ये । य० ३६।१॥
वाचो...ऋचो गिरः सुष्टुतयः । ऋ० १०।९१।१२॥
ऋचं गाथां ब्रह्म परं जिगांसन् कौ० सू० ।१३५।७९॥

इन प्रमाणों में ऋक् शब्द वाक् के विशेषणों में आया है। इसका अर्थ वाक् होना निश्चित है।

श्लोक शब्द रचना-विशेष के लिए तो आता ही है, पर वाणी के लिए भी ऋग्वेद में प्रयुक्त है। इस में कोई सन्देह नहीं। यजुर्वेद में एक मन्त्र है—चक्षुर्मे······विभाहि। श्रोत्रम्मे श्लोकय ।१४।८॥

---

१. ब्राह्मण ग्रन्थों में विशेष्य की रीति से मन्त्रों के पदों को पर्याय बना कर अर्थ करने की विधि लिखी है। ऐतरेय ब्राह्मण ४।२६॥ में लिखा है—वायुर्हीव प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा—पवमानः प्रजापतिरिति। अर्थात् वायु ही प्रजापति है। ऋग्वेद मन्त्र ९।५।९॥ ने ऐसा कहा है। बहने वाला वायु प्रजापति विशेष्य और विशेषण की रीति से ही हैं।

२. Bhandarkar Commemoration Volume.

अर्थात् मेरे नेत्रों को प्रकाशित और कर्ण को श्रवणयुक्त कर।

यहां श्लोकय क्रियापद स्पष्ट करता है कि श्लोक शब्द रचना विशेष के लिए ही नहीं आता, प्रत्युत साधारण वाणी=शब्द=श्रवण के सम्बन्ध में भी आता है।

पुनः ऋग्वेदीय मन्त्र भी यही स्पष्ट करते हैं—

(१) **ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णाः।४।२३।८॥**

अर्थात्—सत्य की वाणी बधिर कानों का नाश करती है।

(२) **मिमीहि श्लोकमास्ये।१।३८।१४॥**

अर्थात्—मुख में वेदरूपी वाणी को रखो।

(३) **प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः।**
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः॥ १०।९४।१॥

इस अन्तिम मन्त्र में तो श्लोक और घोष को विशेष्य विशेषण बना कर सारा विवाद मिटा दिया है। अर्थात् श्लोक, घोष अथवा वाणी का पर्याय है। शेष शब्द भी वेद में ही वाणी के अर्थों में मिल जाते हैं।

हमारे इस लेख से यह न समझना चाहिए कि मन्द्रा, धारा, जिह्वा, सरस्वती, और ऋगादि शब्द और अर्थों में नहीं आ सकते। वेदों में शब्दों के यौगिक होने से प्रकरणानुकूल ही अर्थ होता है। वह अर्थ मूलतः धातु सम्बन्ध से एक वा अनेक प्रकार का है। पर उन सब में वह योगरूढ़ बनते समय प्रकरण-वश कुछ ही अर्थों में रह गया है। वे सब अर्थ भाष्यकर्त्ता के ध्यान में रहने चाहिएं। जो जहां संगत हो उसे ही प्रयोग करें।

हमारे पूर्वोक्त कथन पर पाश्चात्य तर्कों के उत्तर के लिए हम एक ऐसे शब्द पर विचार करना चाहते हैं जिस से सारे ऐसे तर्कों का अन्त हो जाए। यह विचार यह भी सिद्ध कर दे कि ब्राह्मण में किया गया अर्थ वेद का यथार्थ अर्थ है। वह वेद से बहुत दूर नहीं। ऐसा शब्द अध्वर है।

निघण्टु ३।१७॥ में अध्वर को यज्ञ का पर्याय कहा गया है। शतपथादि ब्राह्मणों में भी बहुधा ऐसा कथन मिलता है।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों में क्यों यह पर्याय है, इस का उत्तर वेद में ही मिलता है। ऋग्वेद में लिखा है—**अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।१।१।४॥**

अर्थात् हे प्रकाश-स्वरूप परमात्मन् जिस हिंसादि दोष रहित यज्ञ को आप सर्वत्र सर्वोपरि होकर विराजते हो।

स्कन्दस्वामी अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखता है—**अध्वरशब्दोऽयं यज्ञमित्यनेन पौनरुक्त्यान्न यज्ञनाम किं तर्हि। तद्विशेषणम्।**

यहां अध्वर शब्द यज्ञ का विशेषण है। विशेषण होने से यही शब्द अन्यत्र यज्ञवाची बन गया है।

प्रश्न—क्या सारे ही विशेषण पर्याय बन जाते हैं।

उत्तर—नहीं। जिन विशेष्य, विशेषणों के गुण की विशेष समानता हो जावे, वे ही पर्याय बनते हैं। पाश्चात्य लोग इसी बात से भयभीत होकर इस मन्त्र के अर्थ में यह कल्पना करते हैं।

---

१. देखें हंसराज कृत वैदिक कोष में अध्वर शब्द।

(१) हर्मन ओल्डनबर्ग लिखता है—

Agni, whatever sacrifice and worship thou encompassest on every side.[1]

Note 1. 'worship' is a very inadequate translation of अध्वर, which is nearly a synonym of यज्ञ.........Prof. Max Muller writes: 'I accept the native explanation अध्वर without a flaw, perfect whole, holy.'

(२) ग्रिफिथ अपने वेदानुवाद में लिखता है—

Agni the perfect sacrifice which thou encompassest about.

(३) आर्थर एनथनि मैकडानल लिखता है—

O Agni, the worship and sacrifice that thou encompassest on every side, यज्ञं अध्वरं —again coordination with च; the former has a wider sense—worship (prayer and offering); the latter—sacrificial act.[2]

यहां ओल्डनबर्ग और प्राय: उसी की प्रतिध्वनि करने वाला मैकडानल च का अध्याहार करते हैं। वे दोनों इस स्थान में अध्वर और यज्ञ को विशेष्य विशेषण नहीं मानते।

ग्रिफिथ महाशय भारत में रहे हैं। वे काशीस्थ पण्डितों से सहायता भी लेते थे। इसी लिए उन्हें पाश्चात्य पद्धति सर्वत्र रुचिकर नहीं लगी। वे अध्वर को यहां विशेषण ही मानते हैं। मैक्समूलरवत् वे इस का अर्थ perfect=पूर्ण करते हैं।

ग्रिफिथ महाशय के सम्बन्ध में हम इतना ही कहेंगे कि इस अध्वर विशेषण को अन्य स्थलों[3] में वे यज्ञवाची ही मानकर अर्थ करते हैं। वैसे यदि अन्य विशेष्य विशेषणों में से प्रकरणानुकूल कुछ विशेषणों को उन के विशेष्यों का पर्याय ही मान लेते, तो इस में क्या आपत्ति थी। यदि हमारी बात जो सर्वथैव युक्तियुक्त है स्वीकार की जाए, तो ब्राह्मणान्तर्गत वेदार्थ की कितनी सत्यता प्रकाशित होती है। देखें निम्नलिखित स्थल—

(१) अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिम्। ऋ० ५।५६।४॥

मैक्समूलर[4]—the rocky mountain (cloud).

ग्रिफिथ—the rocky mountain,

(२) पर्वतो गिरिः। ऋ० १।३७।७॥

मैक्समूलर—the gnarled cloud,

(३) यवद्रयः पर्वताः। ऋ० १०।९४।१॥

(४) शतपथ में कहा है—गिरिर्वा अद्रिः। ७।५।२।१८॥

---

१. p. 1, Hymns to Agni, S. B. E., Vol. XLVI.

२. p. 6, Vedic Reader.

३. ऋ० १।१।८॥ १।१४।११॥ इत्यादि।

४. p. 337, Vedic Hymns, S. B. E.

(५) तथा ऋग्वेद में कहा है—वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ १।६१।७॥
ग्रिफिथ—......the wild boar, shooting through the mountain.

(६) अतः निघण्टु १।१०॥ में भी कहा है। अद्रिः...पर्वतः।[1] गिरिः।...वराहः।...इति मेघनामानि। इस लिये इन को पर्याय मानने में ग्रिफिथ को आपत्ति न माननी चाहिये थी।

(७) यदि ऋग्वेद में—

(क) इन्द्रेण वायुना । १।१४।१०॥

(ख) एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परिषिच्यते । ९।२७।२॥

ऐसे मन्त्र आ जाएं, जिन में निश्चय ही इन्द्र को वायु का विशेषण बनाया गया है, तो कई स्थलों में इन्द्र का अर्थ वायु भी हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण में भी यही कहा है—

(१) यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः । श० ब्रा० ४।१।३।१९॥

(२) अयं वा इन्द्रो योऽयं पवते । श० ब्रा० १४।२।२।६॥

ओल्डनबर्ग और मैकडानल परस्पर पूर्ण सहमत नहीं हैं। ओल्डनबर्ग यज्ञ का sacrifice और अध्वर का worship अर्थ करता है। इस के विपरीत मैकडानल यज्ञ का worship और अध्वर का sacrifice अर्थ करता है। खिन्नमना ओल्डनबर्ग धीमे स्वर से इन दोनों को पर्याय भी मानता है। यदि वह पर्याय न मानता, तो भारी आपत्ति से बच भी न सकता। इसी लिए आगे चल कर वह अर्थ पलटता है।

(१) सत्यधर्माणमध्वरे । ऋ० १।१२।७॥—whose ordinances for the sacrifice are true.

(२) अग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति । ऋ० १।१२८।४॥—Agni watches sacrifice and service.[2]

(३) यज्ञानामध्वरश्रियम् । ऋ० १।४४।३॥ the beautifier[3] of sacrifices.

मैकडानल यज्ञ का worship और अध्वर का sacrifice अर्थ मानते हैं। पर इन का भी इस से काम नहीं चला। यथा—

(१) यज्ञस्य देवमृत्विजम् । ऋ० १।१।१॥—the divine ministrant of the sacrifice.

(२) यज्ञैः विधेम । ऋ० २।३५।१२॥—we offer worship with sacrifices.

(३) यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा । ऋ० ८।३८।१॥—ye two (Indra-Agni) are ministrants of the sacrifice.[4] इन मन्त्रों में इन्हें यज्ञ का sacrifice ही अर्थ मानना पड़ेगा।

अब यदि शतपथ ब्राह्मण में अध्वरो वै यज्ञः[5] कहा है, तो ब्राह्मण तो स्वयं वेद के अनुकूल और समीप हैं, न कि दूर।

---

१. यदि मैकडानल अपनी Vedic Reader में पर्वतम् का मूल में ही mountain की अपेक्षा cloud—मेघ अर्थ करता और टिप्पण में cloud mountain लिखने का कष्ट न उठाता, तो उस का अनुवाद, इस अंश में युक्त हो जाता।

२. यह अनुवाद भावशून्य है।

३. अध्वरश्रियम्, द्वितीयान्तपद है। क्या इस का यह अर्थ पाश्चात्यों की शोभा बढ़ाता है।

४. यह मन्त्रभाग मैकडानल ने ऋ० १।१।१॥ के टिप्पण में उद्धृत किया है।

५. १।२।४।५॥ श० ब्रा०।

बात वस्तुतः यह है कि वेदों के शब्द यौगिक वा योगरूढ़ हैं। इसी लिए विशेष्य, विशेषण की रीति से विशेषण धात्वर्थ मात्र ही देता है। वही विशेषण दूसरे स्थान पर स्वयं नाम अर्थात् योगरूढ़ बन जाता है। ब्राह्मणों में इसी अभिप्राय से वैदिक शब्दों के अर्थ कहे हैं। अनित्येतिहासप्रिय पाश्चात्यों को यह अच्छा नहीं लगता। अतः उन्होंने बिना ब्राह्मण ग्रन्थों के समझे उन्हें वेदार्थ से दूर कहा है। मुण्डक उपनिषद् में यथार्थ कहा है—यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।[1]

पहले पाश्चात्यों ने दो, अढ़ाई सहस्र वर्ष पुरातन भाषाओं के अधूरे भाषाविज्ञान को बना लिया। फिर उसे लाखों वर्ष पुरानी ब्राह्मण-भाषा वा नित्य वेदभाषा से समता में रख कर सब को एक संग तोला। जब उन का स्वप्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ, तो स्वयं ही ब्राह्मणादि ग्रन्थों को स्वल्प मूल्यवान् कह दिया। अहो ! आश्चर्य इस निराधार कल्पना पर। आप ही एक सिद्धान्त बनाया और स्वयं उसे सत्य मान लिया। फिर और सब कुछ तो अशुद्ध होना ही था।

(४) पश्चिम में रोथ, वैबर, मैक्समूलर, ओल्डनबर्ग, गैलनर, ह्विटने, मैकडानल प्रभृति ने जो अनुवाद वेदार्थ के नाम से छापे हैं वे वेदार्थ तो हैं नहीं उन के अपने मन की कल्पनाएं अवश्य हैं। जब उन को वेदार्थ का पता ही नहीं लगा, तो वे उस की तुलना ब्राह्मणान्तर्गत वेदार्थ से कैसे कर सकते हैं।

अपने 'ऋग्वेद पर व्याख्यान' पृ० ६३ पर हम ने सर्वानुक्रमणी के आधार पर तो ऋषि-कुलों के पांच पांच नाम वंश-क्रम से लिखे थे। उन में से एक वंशावली यह है—

ब्रह्मा
|
वसिष्ठ
|
शक्ति
|
पराशर
|
व्यास

इन पांचों में से पहले चार तो अनेक ऋग्वेदीय सूक्तों के द्रष्टा हैं और अन्तिम व्यास जी सब शाखाओं (चारों वेदों को छोड़कर) और ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रधान प्रवक्ता हैं। इन्हीं व्यास जी के समकालीन याज्ञवल्क्य आदि हैं। ये भी ब्राह्मणों के प्रवक्ता हैं। ऐसा हम "ब्राह्मण ग्रन्थों का सङ्कलन काल" अध्याय में स्पष्ट कर चुके हैं। इन्हीं से दो, चार, छः पीढ़ी पहले अनेक वैदिक ऋषि हो चुके थे। इन ऋषियों द्वारा वेदार्थ का प्रचार निरन्तर होता रहता था। दो चार पीढ़ियों में वह अर्थ भूल भी नहीं सकता था। विशेषतः जब परम्परा अविच्छिन्न थी। ऐसी अवस्था में जो पाश्चात्य घर बैठे ही मन्त्रों का अनृत अर्थ कर के अपने को वेदज्ञ मानते हैं और ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अर्थ को अनर्थ समझते हैं, वे भ्रम से ही अपने बहुमूल्य जीवन को यथार्थ वेदार्थ से वञ्चित कर रहे हैं।

(५) हम पहले ही पृ० ९० से ९३ पर कह चुके हैं कि मौलिक ब्राह्मणों के प्रवक्ता ही वेदार्थ के द्रष्टा

---

१. १।७॥

रहे हैं। यही मौलिक ब्राह्मण इन ब्राह्मणों में महाभारत-काल[1] में समाविष्ट किए गये। अतः इन्हीं ब्राह्मणों के अन्दर वेदों के मूलार्थ को प्रकाश करने वाली सामग्री विद्यमान है। इन में कहीं कहीं ही मन्त्रों के भावों का व्याख्यान नहीं, प्रत्युत सारा ब्राह्मण-वाङ्मय ही मन्त्रार्थ प्रकाशक है। ब्राह्मणों में अल्पाभ्यास के कारण ही पाश्चात्यों ने इन के ठीक अभिप्राय को नहीं समझा। इतने लेख से ही मैकडानल की तीसरी, चौथी और पांचवीं प्रतिज्ञा का उत्तर दिया गया है।

(६) ब्राह्मणों के व्याख्यान यथार्थ हैं यह तो ब्राह्मण और वेद के गम्भीर पाठ से ही ज्ञात हो सकता है। हां, उदाहरण मात्र हम अश्विन् शब्द को लेते हैं।

पूर्वपक्ष

(क) मैकडानल लिखता है—"As to the physical basis of the Acvins, the language of the Rishis is so vague that they themselves do not seem to have understood what phenomenon these deities represented."[2]

(ख) मैकडानल ने पुनः ऐसा ही लिखा है —

"The physical basis of the Asvins has been a puzzle from the time of the earliest interpreters before Yaska, who offered various explanations, while modern scholars also have suggested several theories. The two most probable are that the Asvins represented either the morning twilight, as half light and half dark, or the morning and the evening star."[3]

(ग) घाटे ने भी लिखा है—

"But these theories (dawn and the spring) cannot fully explain all the details connected with these legends."[4]

(घ) वेद में अश्विन् और नासत्य पद विशेष्य विशेषण भाव से प्रायः एकार्थवाची आते हैं। यथा— ऋ० १।३४।७॥ में नासत्या'''अश्विना। इसी भाव से जब वेद-मन्त्रों पर देवता लिखे जाते हैं तो कई आचार्य नासत्यौ लिख देते हैं और कुछ अश्विनौ देवते। उदाहरणार्थ ऋ० १।१५।११॥ के देवते बृहद्देवता में नासत्यौ हैं और ऋषि दयानन्द सरस्वती के भाष्य में अश्विनौ।

इसी नासत्य शब्द पर लिखते हुए श्री अरविन्द लिखते हैं—

"Nasatya is supposed by some to be a patronymic, the old grammarians ingeniously fabricated for it the sense of "true not false" but I take it from 'nas' to

---

१. एफ० इ० पारजिटर अपने ग्रन्थ Ancient Indian Historical Tradition (सन् १९२२) में महाभारत-काल को ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व ही मानते हैं। यह उन की सरासर खेंचतान है।

२. p. 53, Vedic Mythology, 1898.

३. p. 128, 129, Vedic Reader.

४. p. 173-174, Lectures on the Rigveda, Ghate.

move.......They show that the Acvins are twin divine powers whose special function is to perfect the nervous or vital being in man in the sense of action and enjoyment. But they are also powers of truth, of intelligent action, of right enjoyment."[१]

बार्थ आदि फ्रैंच लेखकों ने भी अन्य पश्चिमीय विद्वानों के समान ही लिखा है।

उत्तर पक्ष

मैकडानल ने अपने अज्ञान के छिपाने की अच्छी विधि निकाली है। वह कहता है कि वैदिक ऋषि अश्विद्वय के आधिदैविक अर्थों को स्वयं ही न समझे हुए प्रतीत होते हैं। वैदिक ऋषि तो क्या, यास्क प्रभृति शास्त्रकार और उन की कृपा से हम भी अश्विद्वय के वास्तविक आधिदैविक अर्थों को जानते हैं। ऋग्वेद में स्वयं अश्विन् शब्द के धातु का निर्देश है—**पूर्वीरश्नन्तावश्विना**।[२] अर्थात् अश्नन्तौ अश्विनौ व्यापनशील अश्विद्वय।

इसी व्युत्पत्ति को ध्यान में रख कर शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है—**अश्विनाविमे हीद१७ सर्वमाश्नुवाताम्**।[३]

इस व्युत्पत्ति को बताने के अनन्तर हम कहना चाहते हैं कि अश्विद्वय का जो अर्थ निरुक्त और बृहद्देवता में कहा गया है, वही ब्राह्मणों और शाखाओं में भी मिलता है। निरुक्त में व्युत्पत्ति भी वेद और ब्राह्मण वाली ही कही गयी है। यथा—

(१) **अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं। रसेनान्यौ ज्योतिषान्यः। तत्कावश्विनौ। द्यावापृथिव्यावित्येके। अहोरात्रौ, इत्येके। सूर्याचन्द्रमसौ, इत्येके। राजानौ पुण्यकृतौ, इत्यैतिहासिकाः**।[४]

(२) **नासत्यौ चाश्विनौ। सत्यावेव नासत्यौ,[५] इत्यौर्णवाभः। सत्यस्य प्रणेतारौ, इत्याग्रायणः। नासिकाप्रभवौ बभूवतुरिति वा॥ ६।१३॥**

बृहद्देवता के सातवें अध्याय में भी ऐसा ही अभिप्राय व्यक्त है—

(१) **और्णवाभो बुवुचे स्वस्मिन् अश्विनौ मन्यते स्तुतौ॥१२५॥**

(२) **सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि प्राणापानौ च तौ स्मृतौ।**
अहोरात्रौ च तावेव स्यातां तावेव रोदसी॥१२६॥

(३) **अश्नुवाते हि तौ लोकान् ज्योतिषा च रसेन च।**
पृथक्पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च॥१२७॥

यही पूर्वोक्त भाव ब्राह्मणों और शाखाओं में मिलते हैं।

(१) **द्यावापृथिवी वा अश्विनौ। काठक सं० १३।५॥**

---

१. p. 531, Vol. I, आर्य।

२. ८।५।३१॥

३. ४।१।१६॥ श० ब्रा०।

४. १२।१॥

५. यह निर्वचन पाणिनि को अभिप्रेत था। देखें ६।३।७५॥ अष्टाध्यायी।

(२) इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ। श० ब्रा० ४।१।५।१६॥
(३) अहोरात्रे वा अश्विनौ। मैं० सं० ३।४।४॥
(४) तथा ऋग्वेद में कहा है—

(क) ऋता ।१।४६।१४॥
(ख) ऋतावृधा ।१।४७।१॥

अर्थात् अश्विद्वय=नासत्य, सत्य स्वरूप हैं। वे ही सत्य से बढ़ने वा बढ़ाने वाले भी हैं।

यास्क ने नासत्यों को नासिकाप्रभव इस लिए लिखा है कि उस का अभिप्राय प्राणापान से है। ये प्राणापान नासिका से ही उत्पन्न होते हैं।

ब्राह्मणों में अश्विद्वय को अध्वर्यू भी कहा है—अश्विनावध्वर्यू।[1]

क्योंकि राष्ट्ररूप महायज्ञ के अध्वर्यू सभाध्यक्ष वा सेनाध्यक्ष भी होते हैं, अतः निरुक्त में अश्विद्वय का अर्थ पुण्यशील दो राजा भी कहा है। ऋग्वेद १०।३९।११॥ में तो स्पष्ट ही राजानौ अश्विद्वय का विशेषण है। ऋग्वेद ७।७१।४॥ में नृपति पद अश्विद्वय के लिए प्रयुक्त है।

ये सारे अर्थ एक ही भाव को कह रहे हैं। वह भाव है, व्यापनशीलता का। यदि ये सारे अर्थ न माने जाएं, तो अनेक मन्त्रों का अर्थ स्पष्ट ही नहीं होता।

इस से भले प्रकार ज्ञात होता है कि ब्राह्मणान्तर्गत मन्त्र और उन के पदों का व्याख्यान अत्यन्त युक्त है। यास्क ने भी वही व्याख्यान स्वीकार कर लिया है। जो पाश्चात्य यास्क के और ब्राह्मण के व्याख्यानों को काल्पनिक कहते हैं, उन्हें वेद समझ ही नहीं आया।

(७) ऋषियों को जो अर्थ अभिप्रेत था, ब्राह्मण उन से सर्वथैव उलटा अर्थ समझते हैं। जैसे—

(क) कस्मै देवाय हविषा विधेम। (ख) हिरण्यपाणि का अर्थ ब्राह्मणों में विचित्र है।

(७) अब मैकडानल महाशय उदाहरण-विशेषों से ब्राह्मणों के विचित्र अर्थ का प्रदर्शन कराते हैं। अतः हम उन के इस कथन की परीक्षा करते हैं।

कः का प्रजापति अर्थ ब्राह्मणों में ही नहीं किया गया, प्रत्युत मैत्रायणी आदि शाखाओं के ब्राह्मण पाठों में भी किया गया है। जैसे—

कन्त्वाय कायो यद्वै तद्वरुणगृहीताभ्यः कमभवत्तस्मात्कायः। प्रजापतिर्वै कः। प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयद्यत्काय आत्मन एवैना वरुणान्मुञ्चति। मै० सं० १।१०।१०॥

कन्त्वाय कायो यद्वा आभ्यस्तद्वरुणगृहीताभ्यः। कमभवत्तस्मात्कायः। प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयत्प्रजापतिः कः। आत्मनैवैना वरुणान्मुञ्चति। काठक सं० ३६।५॥

पूर्वोद्धृत वाक्यों में प्रजापति का नाम क इसलिए कहा गया है कि यह सुखस्वरूप है। क का अर्थ सुख है, ऐसा मानने में किसी पाश्चात्य को भी सन्देह नहीं होना चाहिए। ऋग्वेद में जो नाकः पद आता है,

---

१. १।१।२।१७॥ श० ब्रा०।   २. १०।१२१।५॥

उस के स्वरूप पर विचार करने से निश्चय होता है कि क का अर्थ सुख है।

ऐसा मत भी है कि यदि कस्मै का अर्थ सुखस्वरूपाय प्रजापतये किया जाय तो व्याकरण बाधा डालता है। अष्टाध्यायी ७।१।१७।। में लिखा है—सर्वनाम्नः स्मै। स्मै प्रत्यय सर्वनामों के साथ ही लगता है, अतः कस्मै पद सर्वनाम है, नाम नहीं।[1]

ये लेखक कदाचित् नहीं जानते कि वेद में लौकिक व्याकरण के नियम काम नहीं देते। जैसे विश्व पद सर्वनाम है, परन्तु ऋग्वेद में—

(१) विश्वाय।१।५०।१।।
(२) विश्वात्।१।१८६।६।।
(३) विश्वे।४।५६।४।।

इसी शब्द के तीन रूप नाम-प्रत्ययान्त आये हैं।[2]

इतना ही नही, ऋग्वेद में नाम भी सर्वनाम प्रत्ययान्त आये हैं। यथा—

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः। ऋ० १।१०८।१०।।

इस मन्त्र में—परमस्याम्। मध्यमस्याम्। अवमस्याम् इन नामवाची पदों के साथ सर्वनाम प्रत्यय हैं। अतः प्रजापति वाचक क के साथ यदि स्मै प्रत्यय आ जाय और ब्राह्मणादि उस को नाम मान कर अर्थ करें, तो अनुचित नहीं, प्रत्युत उचिततम है। पाश्चात्य वेदार्थ को भ्रष्ट करना चाहते हैं। उन का अभिप्राय यही है कि संसार वेद का गौरवयुक्त अर्थ जान ही न सके। अतः वे वेद का यथा सम्भव ऐसा अर्थ चाहते हैं, जिस से यही ज्ञात हो कि आर्यों को वेदमन्त्रों से परब्रह्म का भी ज्ञान नहीं हो सका। वे सदा प्रश्न ही करते रहे कि "हम किस देव की हवि से पूजा करें।" दो चार अल्प पठित भारतीय उन की बातें सुन कर भले ही यह कह दें कि ब्राह्मणों में कस्मै का अशुद्ध अर्थ किया गया है वरन् आर्य विद्वान् ऐसे आक्षेपों पर हंसने की अपेक्षा और क्या कह सकते हैं।[3]

भाष्यकार पतञ्जलि मुनि कस्येत सूत्र पर व्याख्या करते हुए इस आक्षेप का और ही समाधान करते हैं।[4] लिखा है—सर्वस्य हि सर्वनाम संज्ञा क्रियते। सर्वश्च प्रजापतिः। प्रजापतिश्च कः।

---

१. मैक्समूलर इस विषय में एक लम्बा लेख लिखता है। देखें—Vedic Hymns, Part I, 1891, pp. 11-13.

२. मैकडानल A Vedic Grammar for Students, 120b में यही स्वीकार करता है। यदि उसे हमारे इस सारे कथन का ध्यान आ गया होता तो वह अवश्य कोई और कल्पना उपस्थित करता।

अन्य शब्दों के लिये देखें अष्टाध्यायी भाष्य, रघुवीर की टिप्पणी, सू० १।१।२६।। पृ० ४२।

३. विष्णुसहस्रनाम का जो भाष्य शंकर के नाम से प्रसिद्ध है, उस के दशम श्लोक की व्याख्या में देवों के एक ही परमदेव का कथन करते हुए लिखा है—हिरण्यगर्भ इत्यष्टौ मन्त्राः। कस्मै देवायेत्यत्र एकारलोपेनैकदैवत-प्रतिपादकाः। अर्थात् हिरण्यगर्भ आदि मन्त्रों के कस्मै पद में एकार का लोप है। वस्तुतः अर्थ एकस्मै का ही हुआ है।

भट्ट भास्कर भी कस्मै का एक अर्थ एकस्मै करता है। देखें तै० सं० २।२।१२।।, पृ० ४४, भाग ३।

४. ४।२।२५।।

लिखा तो बहुत कुछ जा सकता है, परन्तु विद्वान् इतने से ही जान सकते हैं कि ब्राह्मणार्थ को दूषित कहने वाले पाश्चात्य जन स्वयमेव वेद विद्या में अल्पश्रुत हैं।

(ख) इसके अनन्तर मैकडानल महाशय हिरण्यपाणि शब्द और उस के ब्राह्मणान्तर्गत अर्थ पर विचार करते हैं।

हम कहते हैं कि उन्हों ने हिरण्यपाणि शब्द ही क्यों लिखा। वे त्रिशीर्ष त्वाष्ट्र, दध्यङ्ङ आथर्वण, रुद्र आदि कोई शब्द भी ले लेते। इन में से प्रत्येक शब्द के साथ ब्राह्मण में कोई न कोई कथा अलंकाररूप से कही गई है।

हम भी इन सारी कथाओं का समुचित अर्थ अभी तक नहीं समझ सके। परन्तु हम यह नहीं कहते कि यत्न करने पर भी इन में कोई गम्भीर आधिदैविक तत्त्व न निकलेगा।

अतः हम पूर्ववत् अपने पाश्चात्य मित्रों से यही प्रार्थना करेंगे कि वे इन ग्रन्थों का अर्थ समझने में हमारा साथ दें, न कि समझने के स्थान में इन की ओर उपेक्षा दृष्टि करें।

(८) चारों वेदों का प्रकाश आदि सृष्टि में ऋषि-जनों के हृदय में हुआ। उन्हीं दिनों से ब्रह्मा आदि महर्षियों ने ब्राह्मणों का प्रवचन आरम्भ कर दिया। वही प्रवचन कुल परम्परा वा गुरु परम्परा में सुरक्षित रहा। उस के साथ नवीन प्रवचन भी समय-समय पर होता रहा। यह सारा प्रवचन महाभारत काल में इन ब्राह्मणों के रूप में संकलित हुआ। यह सारी परम्परा अनवच्छिन्न थी। अतः काल की दृष्टि से, ब्राह्मणों का कुछ अंश तो मन्त्रों की अपेक्षा नवीन हो सकता है, सारा नहीं।

विद्वान् भाषा के साक्ष्य पर बहुत बल देते रहते हैं। उन्होंने ब्राह्मणान्तर्गत यज्ञगाथायें नहीं देखीं। यदि देखी भी हैं, तो उन पर ध्यान नहीं दिया। ये सब गाथाएं सर्वथैव लौकिक भाषा में हैं। ऐसा हम पूर्व लिख चुके हैं। वही ऋषि ब्राह्मणों का प्रवचन करते थे और वही धर्मशास्त्रादि का भी।[1] अतः भाषा के साक्ष्य पर कोई बात सिद्ध नहीं की जा सकती। जिन पाश्चात्यों ने सुविस्तृत आर्ष वाङ्मय का दीर्घ अभ्यास नहीं किया, वे अपने कल्पित-भाषा-विज्ञान पर निरर्थक बहुत बल देते रहते हैं। इस से वे कुछ निर्णय नहीं कर सकते। भाषा तो विषयानुसार भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है।[2]

अतः मैकडानल की आठवीं प्रतिज्ञा भी निर्मूल है। अधिक लिखने से क्या। हमारे पूर्व लेख में भी इस का अच्छा खण्डन हो चुका है। फलतः हम सुदृढ़ रूप से कह सकते हैं कि ब्राह्मण प्रदर्शित वेदार्थ ही हमें वेद के यथार्थ तत्त्व तक पहुँचा सकता है।

शतपथ ब्राह्मण कहता है—(क) यथर्क्तथा ब्राह्मणम्। १२।४।२।४॥ अर्थात् जैसा ऋचा कहती है, वही उस के ब्राह्मण में है।

---

१. विस्तारार्थ D. A. V. College Union Magazine, Feb. 1925 में देखें हमारा लेख—"Classical Sanskrit is as old as the Brahmanas."

२. भाषा सम्बन्धी साक्ष्य पर Dr. R. Zimmermann का लेख A Second Selection of Hymns from the Rigveda, 1922, pp. CXXXII-CXXXVIII में देखने योग्य है।

(ख) यथैव यजुस्तथा बन्धुः । श० ब्रा० ६।४।२।४।। अर्थात् जिस भाव का यह याजुष मन्त्र है, वैसा ही भाव ब्राह्मण में भी है ।

एतदर्थ ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्य के विज्ञापन में कहा था—

"इदं वेदभाष्यमपूर्वं भवति । महाविदुषामार्य्याणां पूर्वजानां यथावद्वेदार्थविदामाप्तानामात्मकामानां धर्म्मात्मनां सर्वलोकोपकारबुद्धीनां श्रोत्रियाणां ब्रह्मनिष्ठानां परमयोगिनां ब्रह्मादिव्यासपर्य्यन्तानां मुन्यृषीणामेषां कृतीनां सनातनानां वेदाङ्गानामैतरेयशतपथसामगोपथ-ब्राह्मणपूर्वमीमांसादिशास्त्रोपवेदोपनिषच्छाखान्तरमूलवेदादि-सत्यशास्त्राणां वचनप्रमाणसंग्रहलेखयोजनेन प्रत्यक्षादिप्रमाणयुक्तया च सहैव रच्यते ह्यतः ।"

मुद्रित ब्राह्मणों में भ्रष्टपाठ

मुद्रित ब्राह्मणों में भ्रष्टपाठ पर्याप्त हैं। गोपथ ब्राह्मण के योरुपीय संस्कर्ता ने यद्यपि बहुत परिश्रम से लाईडन संस्करण छापा है तो भी उस में अशुद्धियों की कमी नहीं है । तुलना करें गोपथ उ० ३।३।। से ऐतरेय ब्राह्मण ३।७।। इत्यादि।

ऐतरेय ब्राह्मण ३।११।। में एक पाठ है—सौर्या वा एता देवता यन्निविदः ।

यहां देवता के स्थान में देवतया पाठ ब्राह्मण शैली के अधिक समीप है । कीथ ने भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया । देखें निम्नलिखित ब्राह्मण पाठ—

(१) ऐन्द्रो वै देवतया क्षत्रियो भवति । ऐतरेय ब्राह्मण ।७।१३।।
(२) आग्नेयो वै देवतया क्षत्रियो दीक्षितो भवति । ऐ० ७।२४।।
(३) प्राजापत्यो ह्येष देवतया यद् द्रोणकलशः । तां० ६।५।६।।

पुनः ऐतरेय ब्राह्मण ७।११।। में एक अन्य पाठ है—यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः ।

इसी का दूसरा रूपान्तर कौषीतकि ब्राह्मण ३।१।। में ऐसे है—यां पर्यस्तमयमुत्सर्पेदिति सा स्थितिः ।

इस सम्बन्ध में ऋग्वेदीय ब्राह्मणों के अनुवाद में कीथ का टिप्पण २, पृ० २९७ पर देखने योग्य है । हम अपनी सम्मति अभी नहीं दे सकते ।

गोपथ और कौषीतकि में समान प्रकरण में क्रमशः एक पाठ है—

(१) अमृतं वै प्रणवः । उ० ३।११।।
(२) अमृतं वै प्राणः । ११।४।।

यहां कौषीतकि का पाठ ठीक प्रतीत होता है । ऐसे ही इन दोनों ब्राह्मणों में एक अन्य पाठ है—

(१) अप्सु वै मरुतः शिताः । कौ० ५।४।।
(२) अप्सु वै मरुतः श्रिताः । गो० उ० १।२२।।

यहां दोनों स्थलों में श्रिताः पाठ युक्त प्रतीत होता है । कीथ महाशय ने यहां कोई टिप्पणी नहीं दी । पुनरपि—

(१) अयस्मयेन चरुणा तृतीयामाहुतिं जुहोति । आयस्यो वै प्रजाः । श० ब्रा० १३।३।४।५।।
(२) अयस्मयेन कमण्डलुना तृतीयाम् । आहुतिं जुहोति । आयास्यो वै प्रजाः।तै० ब्रा० ३।६।१।४१।।

यहां तैत्तिरीय ब्राह्मण के पाठ में आयास्यः पाठ निश्चय ही चिरकाल से अशुद्ध हो गया है। भट्ट भास्कर और सायण दोनों ही अशुद्ध पाठ को मान कर अर्थ में एक क्लिष्ट कल्पना करते हैं। अर्थात् अयास्य ऋषि से उत्पन्न की गयी प्रजाएं हैं। यहां अयास्य ऋषि का कोई प्रकरण ही नहीं। शतपथ ब्राह्मण स्पष्ट करता है कि प्रजाएं (आयस्यः) अर्थात् आयसी=लोह सम्बन्धी हैं। प्रकरण भी दोनों स्थलों में पूर्व पठित अयस्मय पद से लोह विषयक ही है।

शतपथ ब्राह्मण में विश एतद्रूपं यवयः[1] से पहले यह कह ही दिया गया है कि विश्=प्रजा लोहरूप है। भास्कर, सायण आदिकों ने तुलनात्मक विधि से क्यों लाभ नहीं उठाया, और भ्रष्ट पाठ को ही क्यों स्वीकार कर लिया।

वैदिक कोष से ऐसे और भी स्थल स्पष्ट होंगे। विज्ञ पाठक उन सब से लाभ उठाएं।

ब्राह्मणों में प्रक्षेप

ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं, ऐसा हम पूर्व सिद्ध कर चुके हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रक्षेप का मानना भयावह नहीं है। कात्यायन श्रौत सूत्र ७।५३॥ पर टीका लिखता हुआ याज्ञिक देव शतपथ ब्राह्मण ३।१।२।२१॥ के विषय में लिखता है—इदं ब्राह्मणवाक्यं धर्मविरुद्धम्। अथवा केनचिदत्र प्रक्षिप्तं स्यात्। अर्थात् याज्ञवल्क्य का बछड़े के मांस को खाने की इच्छा के कहने वाला वाक्य धर्म विरुद्ध है अथवा यह किसी का मिलाया हुआ है। जिस प्रकार ब्राह्मणों के अनेक पाठ भ्रष्ट हो गये हैं, वैसे ही कुछ पाठ नष्ट गए हों, अथवा नये मिल गए हों इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रक्षेपों के जानने के लिए अभी अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है।

---

१. १३।२।२।१९॥

नवम अध्याय

सर्वानुक्रमणियों का आधार ब्राह्मण ग्रन्थ

गत पृष्ठों में इस बात की पुष्टि की गयी है कि वेदार्थ का आधार ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। अब हम यह बात सिद्ध करेंगे कि वेदार्थ में सहायक मन्त्रों के जो ऋषि, देवता, छन्दादि हैं, वह ब्राह्मण ग्रन्थों में ही विद्यमान हैं। इन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थों में से उन को एकत्र कर के ऋषि मुनियों ने सर्वानुक्रमणियां बनायी हैं।

इस विषय का थोड़ा सा संकेत हम अपने "ऋग्वेद पर व्याख्यान" पृष्ठ ६१ पर कर चुके हैं। अब इस पर कुछ अधिक लिखा जाता है।

ताण्डियों के आर्षेय ब्राह्मण १। १॥ का प्रसिद्ध पाठ है—

अथापि ब्राह्मणं भवति—यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्त्तं वा पद्यति......।

अर्थात्—इस विषय में ब्राह्मण का भी प्रमाण है—"जो ऋषि, छन्द, देवता और ब्राह्मण (विनियोग) को जाने बिना मन्त्र से यज्ञ वा अध्यापन कर्म करता है, वह स्थाणु (सूखे वृक्ष) से टक्कर मारता है, अथवा गढ़े में गिरता है।" इस ब्राह्मण प्रमाण से निश्चित होता है कि वैदिक ऋषि, देवता आदि का ज्ञान मन्त्र पाठ आदि के लिए अनिवार्य समझते थे।

वेंकट माधव पंचम अष्टक के प्रथमाध्याय की अनुक्रमणी में लिखता है—

ननु च ब्राह्मणे साम्नां ऋषयश्चापि दर्शिताः।
अर्थवादे च सर्वेषां यत्शाटचायनकं विदुः॥

शतपथ ब्राह्मण का भी पाठ है—

प्रजापतिः प्रथमां चितिमपश्यत्। प्रजापतिरेव तस्या आर्षेयं......स यो हैतदेवं चितिनामार्षेयं वेदार्षेयवत्यो हास्य बन्धुमत्यश्चितयो भवन्ति॥[1]

अर्थात्—प्रजापति ने पहली चिति को देखा। प्रजापति ही उस का ऋषि है। तो वह जो इस प्रकार चितियों के ऋषि जानता है, उस की चितियां आर्षेयवती और बन्धुमती[2] (ब्राह्मण आदि विनियोग युक्त) हो जाती हैं।

---

१. ६।२।३।१०॥

२. एगलिङ्ग का बन्धु शब्द का अर्थ अशुद्ध है।

शतपथ के इस प्रमाण में प्रजापति को प्रथमा चिति का ऋषि कहा है। ये चितियां ब्राह्मणस्य हैं। यहां भी सामान्य रूप से चितियों का प्रजापति ऋषि कहा है। इस में हमें कुछ नहीं कहना। यहां तो इतना ही भाव बताने का अभिप्राय है कि ऋषि को जानने का फल शातपथी श्रुति ने कहा है।

ऋग्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद की सर्वानुक्रमणियां तो प्राचीन हैं। याजुष-सर्वानुक्रमणी के प्राचीन होने में कुछ सन्देह है। यजुर्वेदीय सम्प्रदाय का मध्य कालीन आचार्य उवट अपने मन्त्रभाष्य के आरम्भ में लिखता है—

गुरुतस्तर्कतश्चैव तथा शातपथश्रुतेः।
ऋषीन् वक्ष्यामि मन्त्राणां देवताश्छन्दसं च यत्॥

अर्थात्—गुरु से, तर्क से, तथा शतपथ की श्रुतियों से मन्त्रों से ऋषि, देवता और छन्द कहूँगा।

यह विचारने का स्थान है कि यदि उवट के समीप याजुष सर्वानुक्रमणी होती, तो वह यह न लिखता कि 'ऋषि आदि शतपथ से कहूँगा।' कोई कह सकता है कि उवट को सर्वानुक्रमणी मिली ही न होगी। पर यह कल्पना श्रद्धेय नहीं। सर्वानुक्रमणी के विषय में यह सब कुछ प्रसङ्ग वश कहा गया है। हमारा मुख्य अभिप्राय तो यह दिखाना है कि उवट भी याजुष मन्त्रों के ऋषि आदि शतपथ की श्रुतियों से लेता है।

निम्नलिखित वे कतिपय स्थल हैं, जहां से सर्वानुक्रमणी-कारों ने अपनी सामग्री प्राप्त की है—

(१) काठक संहिता १९। ११॥ में लिखा है—उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत् इति शुनश्शेपो वा एतामाजीगर्तिर्वरुणगृहीतोऽपश्यत्।

कात्यायनकृत ऋक् सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद १। २४॥ का ऋषि आजीगर्ति शुनःशेप लिखा है। यह मन्त्र उसी सूक्त का १५वां है।

(२) काठक संहिता १०।११॥ में लिखा है—अगस्त्यस्यैतत्सूक्तं कयाशुभीयम्। अर्थात् १५ ऋचा वाले काठक संहितास्थ ९।१८॥ कयाशुभीय सूक्त का अगस्त्य ऋषि है।

यही १५ ऋचा वाला सूक्त ऋ० १।१६५॥ है। सर्वानुक्रमणी में इस का ऋषि अगस्त्य है।

(३) काठक संहिता २०।१॥ में लिखा है—अयं सो अग्निः इत्येतद्विश्वामित्रस्य सूक्तम्। अर्थात् ऋ० ३।२२॥ सूक्त का ऋषि विश्वामित्र है। ऐसा ही ऋक् सर्वानुक्रमणी में लिखा है।

(४) काठक संहिता १०। ५॥ में लिखा है—स वामदेव उख्यमग्निमबिभस्तमवैक्षत स एतत्सूक्तमपश्यत्—कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम् इति।

यह सूक्त ऋग्वेद ४। ४॥ है। ऋक् सर्वानुक्रमणी में इस का ऋषि वामदेव ही लिखा है।

(५) कौषीतकि ब्राह्मण १२। १॥ में लिखा है—एतत्कवषः सूक्तमपश्यत्पञ्चदशर्चं—प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु, इति।

ऋक् सर्वानुक्रमणी में भी इस १५ ऋचा वाले ऋ० १०। ३०॥ सूक्त का ऋषि कवष ऐलूष ही लिखा है।

(६) ऐतरेय ब्राह्मण ३। १९॥ में लिखा है—अनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय, इति......गौरिवीतिर्ह वै शाक्त्यो...एतत्सूक्तमपश्यत्।

ऋक् सर्वानुक्रमणी में भी इस ऋ० १० । ७३ ॥ का ऋषि शाक्तय गौरिवीति ही लिखा है।

(७) शतपथ २।१।४।२६॥ में लिखा है—अथ सर्पराज्या[1] ऋग्भिरुपतिष्ठते । आयं गौः पृश्निरक्रमीत्.........।

इसी के भाष्य में आचार्य हरिस्वामी लिखता है—...सर्पाणां राज्ञी सर्पराज्ञी। सर्पाणां माता कद्रूः । तस्या एता ऋचः । अर्थात् सर्पों की माता कद्रू की ये ऋचाएं हैं।

ऋक् सर्वानुक्रमणी में ऋ० १०।१८९॥ के इस सूक्त को सार्पराज्ञी का सूक्त कहा है।

(८) ताण्ड्य ब्राह्मण ४।७।३॥ में लिखा है—इन्द्र क्रतुन्न आ भर, इति......वसिष्ठो वा एतं पुत्रहतोऽपश्यत् । अर्थात् इस ऋग्वेद ७।३२।२६॥ का ऋषि हतपुत्र वसिष्ठ है।

यही बात ऋक् सर्वानुक्रमणी में लिखी है। इस के अतिरिक्त वहां स्पष्ट लिखा है कि यह ताण्ड्य कहने से—वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम् ।

(९) शतपथ ६।५।२।५॥ में लिखा है—वि न इन्द्र मृधो जहि । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः, इति वैमृधीभ्यां......। अर्थात् ये दोनों ऋचाएं विमृध=इन्द्र देवता वाली हैं। पहली ऋचा ऋ० १०।१५२।४॥ है और दूसरी ऋ० १०।१८०।२॥ है। ऋक् सर्वानुक्रमणी में इन दोनों का देवता इन्द्र है।

(१०) शतपथ ६।५।२।६॥ में लिखा है—वैश्वानरो न ऊतये । पृष्ठो दिवि पृष्ठोऽग्निः पृथिव्याम् । इति वैश्वानराभ्यां.........। अर्थात् ये दोनों ऋचाएं वैश्वानर देवता वाली हैं। इन में से दूसरी ऋचा ऋ० १।९८।२॥ है।

ऋक् सर्वानुक्रमणी में भी इस का देवता वैश्वानर लिखा है।

ये थोड़े से प्रमाण ऋषि और देवता सम्बन्धी यहां दिए गए हैं। इसी प्रकार से मन्त्रों के छन्द भी अनुक्रमणीकारों ने ब्राह्मणों से ही लिए हैं। इस से ज्ञात हो जाएगा कि वेदार्थ की सहायक सामग्री का ब्राह्मणों में कितना बाहुल्य है।

---

१. तुलना करें काठक संहिता ३४।२॥ सर्पराराज्या ऋग्भिरस्तुयुः ।

दसवां अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपादित विषय

ब्राह्मणग्रन्थों का प्रधान विषय आधिदैविक तत्त्वों का वर्णन करना है। इन आधिदैविक तत्त्वों का वर्णन करते हुए कहीं कहीं प्रसङ्गतः आध्यात्मिक तत्त्व भी कहे गए हैं।[1] हां, जहां जहां ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है, जिस के दो-दो अर्थ होते हैं, आधिदैविक अर्थ के साथ ही साथ ईश्वर आदि का अर्थ भी सङ्गत होता जाता है। इस ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय से यह बात प्रकट हो चुकी है कि जो आचार्य उपनिषद् के प्रवक्ता थे, उन्हीं में से अनेक आचार्य ब्राह्मण ग्रन्थों के भी प्रवक्ता थे। इस विषय का अधिक प्रमाण यहां दिया जाता है।

कतिपय विशेष प्रमाण निम्नलिखित हैं—

(१) याज्ञवल्क्य। देखें शतपथ ब्राह्मण १।३।४।२१॥ ; १।६।३।१६ ; २।३।१।२१॥ आदि;
(२) अरुण औपवेशि। देखें शतपथ ब्राह्मण २।२।२।२०॥ ; मैत्रायणी संहिता १।४।१०॥
(३) आरुणि। देखें शतपथ ब्राह्मण ३।३।४।१६॥ ; ४।५।७।६॥;
(४) श्वेतकेतु औद्दालकि। देखें शतपथ ब्राह्मण ३।४।३।१३॥;
(५) (इन्द्रद्युम्न) भाल्लवेय। देखें शतपथ ब्राह्मण २।८।२।६॥;
(६) कहोड कौषीतकि। देखें शतपथ ब्राह्मण २।४।३।१॥;
(७) सात्ययज्ञ। देखें शतपथ ब्राह्मण ३।१।१।४॥;
(८) बुडिल आश्वतराश्वि। देखें शतपथ ब्राह्मण ४।६।१।६॥

ये ही ऋषि उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा का निरूपण करते हैं। इसलिए यह मानना अनिवार्य हो जाता है कि ब्राह्मणों के आधिदैविक सिद्धान्तों के प्रतिपादन करने वाले आचार्य परम आध्यात्मिक तत्त्वों को भी पूरा पूरा जानते थे। पाश्चात्य और एतद्देशीय लोग यह कहते हैं कि ब्राह्मणों के आचार्यों को ब्रह्म और आत्मा का ज्ञान न था। ब्रह्म का विचार उपनिषदों के काल में आरम्भ हुआ ब्राह्मणों के काल में लोग यज्ञ को ही सब कुछ समझते थे। यह सब बातें उन की भूल को ही दिखाती हैं। ऐसे लेखकों ने इन ग्रन्थों का ऐतिहासिक दृष्टि से पाठ नहीं किया। यदि किया होता तो यह बात कोई न लिखता कि ब्राह्मण-काल और था, और उपनिषद्-काल पृथक् था।

---

१. ६।५।३।४॥ ६।७।१।२०॥ १०।१।२।३॥ १०।३।३।६॥ १०।५।२।७॥ श० ब्रा०।

जिस प्रकार आज भी अनेक विषयों का ज्ञाता एक ही ग्रन्थकार भिन्न भिन्न विषयों पर लिखता हुआ भिन्न २ परिभाषाओं से अलंकृत भाषा में पृथक् पृथक् सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, वैसे ही प्राचीन आचार्यों ने भी किया था। आधिदैविक विषयों पर लिखते हुए उन्हों ने अपना ध्यान अधिकांश में उन्हीं विषयों पर रखा है। आध्यात्मिकतत्त्वों का प्रकाश करते समय वे प्रायः उसी आध्यात्मवाद में ही रत रहे हैं। यह है भी उचित ही। एक अनन्य ईश्वरभक्त भी गणितशास्त्र का ग्रन्थ लिखते समय गणितविद्या का ही प्रतिपादन करेगा, न कि ईश्वरभक्ति का। ऐसी अवस्था में समान-कर्ताओं के होते हुए ब्राह्मण-काल, उपनिषद्-काल आदि की सीमा बांधना, अपने नितान्त अज्ञ होने का प्रमाण देना है। ऐतिहासिक सच्चाइयों से आँखें बन्द करने वाले, केवल भाषा-विज्ञान (philology) के ही प्रेमियों को अपने कल्पित "महा-भाषा-भेद" का कारण कहीं अन्यत्र ढूंढना चाहिए। हम तो समझते हैं कि विषय-भेद और देश-भेद से भी भाषा भेद उत्पन्न हो जाता है।

यह परम सन्तोषजनक है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के उपनिषद् और आरण्यक भागों को भी जो कि ब्राह्मणों का निज अंश हैं यदि सर्वथा पृथक् रख दिया जाए, तो भी ब्राह्मणों में ऐसी पर्याप्त सामग्री है जिस से परम अध्यात्मवाद का स्वच्छ दर्शन हो जाता है।

(क) आत्मा का अस्तित्व और पुनर्जन्म

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

अथ यत्र सुप्त्वा पुनर्नावद्रास्यन्भवति। तद्वाचयति-पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्निति। [यजुः ४।१५।।] सर्वे ह वा ऽएते स्वपतो ऽपक्रामन्ति प्राण एव न। तैरेवैतत्सुप्त्वा पुनः संगच्छते। तस्मादाह—पुनर्मनः......।३।२।२।२३।।

अर्थात्—अब जब (यजमान) सो कर पुनः सोने की इच्छा नहीं करता, तब (अध्वर्यु) उस से अगला मन्त्र बुलवाता है—फिर, मन, फिर आयु मुझे प्राप्त हो। फिर प्राण, फिर आत्मा मुझे प्राप्त हो। फिर चक्षु, फिर श्रोत्र मुझे प्राप्त हो। ये सब ही सोते हुए से परे चले जाते हैं, प्राण ही नहीं जाता। उन सब के साथ सोने के पश्चात् फिर युक्त हो जाता है।

यह मन्त्र वस्तुतः पुनर्जन्म का प्रतिपादन करता है। ब्राह्मणों के प्रवक्ता यह आवश्यक समझते थे कि उन के प्रत्येक कर्म के साथ यथाशक्य कोई मन्त्र विनियुक्त हो जावे, तो अच्छा है। इसी लिए उन्हों ने यजमान के सो कर उठने के पश्चात् की क्रिया में इस मन्त्र का भी विनियोग कर दिया। ब्राह्मण मन्त्र समाप्ति के आगे स्वयं कहता है कि—"ये सब ही सोते हुए से परे चले जाते हैं, प्राण ही नहीं जाता।" परन्तु मन्त्र में तो यह भी प्रार्थना है कि—"फिर प्राण मुझे प्राप्त हो। यदि यह प्राण निरन्तर काम कर रहा था, तो इस के पुनः प्राप्त करने की इच्छा निरर्थक है।

यह सत्य है कि सोते समय प्राणों के सिवा सब इन्द्रियगण सो जाते हैं। आत्मा भी आवरणयुक्त हो जाता है। यजुर्वेद ४।५५।। में कहा है—तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ। अर्थात् सब इन्द्रियों के सोने पर प्राण और अपान रूपी दो देव न सोने वाले जागते हैं।

इसलिए मूल मन्त्र का अभिप्राय ऐसी अवस्था से है, जब कि प्राण भी फिर प्राप्त हो। यह अवस्था तो पुनर्जन्म की है। उसी अवस्था में आत्मा पुनः अहंभाव को प्राप्त होता है। इस मन्त्र का विनियोग करने से प्रकट है कि शतपथ में आत्मा का अस्तित्व और उस का पुनर्जन्म में आना माना है।

पुनः शतपथ-ब्राह्मण में कहा है—

(क) आत्मा वै मनो हृदयं प्राणः।[1] अर्थात् आत्मा (जीवात्मा ही) मन है और हृदय प्राण है।

(ख) दश वाऽइमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशो यस्मिन्नेते प्राणाः प्रतिष्ठिता एतावान्वै पुरुषः।[2] अर्थात् मनुष्य में ये दस प्राण हैं, आत्मा ग्यारहवां है। इसी आत्मा में, अर्थात् आत्मा के आश्रय से प्राण ठहरते हैं। इतना ही मनुष्य है।

एगलिङ्ग यहां आत्मा पद का body अर्थात् शरीर अर्थ करता है। यह उस की भूल है।

शतपथ ब्राह्मण में ही कहा है—

(ग) कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति।[3] अर्थात् रुद्र कौन हैं। दस ये मनुष्य में प्राण हैं, आत्मा ग्यारहवां है। वे जब इस मर्त्य शरीर से निकलते हैं, तब रुलाते हैं।

यहां स्पष्ट ही कहा गया है कि दस प्राण और ग्यारहवां आत्मा इस मर्त्य शरीर से निकलते हैं। ईश्वर का धन्यवाद है कि यहां पर एगलिङ्ग आत्मा पद का शरीर अर्थ नहीं करता, प्रत्युत self (spirit) आत्मा ही अर्थ करता है। इसी प्रकार यदि पूर्व भी वह पक्षपात न करता, तो क्या ही अच्छा होता। इन प्रमाणों से आत्मा का अस्तित्व भले प्रकार प्रकट हो जाता है।

हम पहले पृ० १७ पर पुनर्जन्म के विषय में संक्षेप रूप से शतपथ ब्राह्मण से दो प्रमाण लिख चुके हैं। वे दोनों तथा अन्य प्रमाण यहां विस्तार से दिए जाते हैं—

(१) स यत्सायमस्तमिते द्वे ऽआहुती जुहोति। तदेताभ्यां पूर्वाभ्यां पद्भ्यामेतस्मिन्मृत्यौ प्रतितिष्ठत्यथ यत्प्रातरनुदिते द्वे ऽआहुती जुहोति तदेताभ्यामपराभ्यां पद्भ्यामेतस्मिन्मृत्यौ प्रतितिष्ठति स एनमेष उद्यन्नेवादायोदेति तदेतं मृत्युमतिमुच्यते सैषाग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिरति ह वै पुनर्मृत्युमुच्यते य एवमेतामग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिं वेद॥ २।३।३।९॥ श० ब्रा०।

अर्थात्—वह जब सायं को सूर्यास्त होने पर दो आहुति देता है, तो इन अगले पाद से उस मृत्यु पर ठहरता है। जब प्रातः सूर्योदय से पूर्व दो आहुति देता है, तो इन पिछले पाद से उस मृत्यु पर ठहरता है। वह (सूर्य) इस (अग्निहोत्री) को ऊपर लेता हुआ चढ़ता है। ऐसे वह मौत से छूट जाता है। यही अग्निहोत्र में मृत्यु से अतिमुक्ति है। वह बार-बार की मौत से छूटता है, जो इस अग्निहोत्र में मृत्यु से अतिमुक्ति को जानता है।

(२) तदाहुः। किं तदग्नौ क्रियते येन यजमानः पुनर्मृत्युमपजयतीत्यग्निर्वा ऽएष देवता भवति यो ऽग्निं चिनुते ऽमृतमु वा ऽअग्निः। श्रीर्देवाः। श्रियं गच्छति यशो देवा यशो ह भवति य एवं वेद॥[4]

अर्थात्—तब कहते हैं, अग्निचयन में कौन सी ऐसी बात की जाती है, जिस से यजमान बार बार

---

१. ३।८।३।८॥ श० ब्रा०।
२. ११।२।१।२॥ श० ब्रा०।
३. ११।६।३।७॥ श० ब्रा०।
४. १०।१।४।१४॥ श० ब्रा०।

की मौत को जीत लेता है। अग्नि रूप देवता ही (तेजोमय दिव्यगुणयुक्त) वह हो जाता है, जो अग्नि का चयन करता है। अग्नि (ब्रह्म और उस की विभूति कारण अग्नि) ही अमृत है। दिव्य गुण वाले पदार्थ इस की विभूतियां हैं। वह विभूति वाला हो जाता है। दिव्यगुण वाले पदार्थ यश रूप हैं। वह यशस्वी हो जाता है, जो ऐसा जानता है।

(३) ताँ हैतां गोतमो राहूगणः। विदां चकार सा ह जनकं वैदेहं प्रत्युत्ससाद। ताँ हाङ्गविद्ब्राह्मणेष्वन्विियेष। तामु ह याज्ञवल्क्ये विवेद। स होवाच सहस्रं भो याज्ञवल्क्य दद्मो यस्मिन्वयं त्वयि मित्रविन्दामन्वविदामेति। विन्दते मित्रँ राष्ट्रमस्य भवत्यप पुनर्मृत्युं जयति सर्वमायुरेति य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजते यो वै तदेवं वेद॥ ११।४।३।२०॥ श० ब्रा०।

अर्थात्—उसे निश्चय ही (मित्रविन्दा यज्ञ को) गोतम राहूगण ने जाना था। वह (मित्रविन्दा) विदेह के राजा जनक के पास चली गई। उस ने इसे अङ्ग=वेदाङ्ग के जानने वाले ब्राह्मणों में ढूंढा। उसे याज्ञवल्क्य में पाया। वह (राजा) बोला—हे याज्ञवल्क्य सहस्र (सुवर्ण मुद्रा) हम तुम्हें देते हैं, जिस तुझ में मित्रविन्दा को हम ने पाया। प्राप्त करता है मित्र को, साम्राज्य उसी का होता है, बार बार की मौत को जीत लेता है। सारी आयु अर्थात् सौ वर्ष प्राप्त करता है, जो ऐसा जानता हुआ, इस इष्टि से यज्ञ करता है, अथवा जो ऐसा जानता है।

(४) तस्य वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य। चत्वारो वषट्कारा यद्वातो वाति यद्विद्योतते यत्स्तनयति यदवस्फूर्जति तस्मादेवंविद्वाते वाति विद्योतमाने स्तनयत्यवस्फूर्जत्यधीयीतैव वषट्काराणामच्छम्बट्कारायाति ह वै पुनर्मृत्युमुच्यते गच्छति ब्रह्मणः सात्मताँ। श० ब्रा० ११।५।६।९॥

अर्थात्—वह जो ब्रह्मयज्ञ (वेद का स्वाध्याय) है, उस के चार वषट्कार हैं। जो वायु चलता है, जो बिजली चमकती है, जो गर्जता है, जो कड़कता है। इसलिये, जो यह जानता है (कि वायु का चलना आदि स्वाध्याय के वषट्कार हैं) वह वायु के चलने पर, बिजली चमकने पर, गर्जने पर, स्वाध्याय अवश्य करे, ताकि उसके वषट्कार नष्ट न हो जावें। वह बार बार की मौत से छूट जाता है, परमात्मा के समीप जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

(५) स षण्मासानुदङ्ङेति षडावृत्तांस्तस्मात्सत्रिणः षडेवोर्ध्वान्मासो यन्ति षडावृत्तानन्तरेणो ह वा एतमशनाया च पुनर्मृत्युश्च याशनायां च पुनर्मृत्युं च जयन्ति ये वैषुवमहरुपयन्ति। कौ० सूत्र २५।१॥

वह (सूर्य) छः मास उत्तर को जाता है, और छः मास उलटा। इसलिए यज्ञ करने वाले छः मास आगे जाते हैं और छः उलटे। इस के बिना भूख और पुनः मृत्यु है। भूख और बार बार की मौत को जीतते हैं, जो विषुवन्त दिन की इष्टि करते हैं।

कीथ का कथन—इन प्रमाणों के सम्बन्ध में कीथ कहता है कि "नचिकेता इस वर की प्रार्थना करता है कि उस के पुण्यकर्म नष्ट हो जावें। (तै० ब्रा० ३।११।८।५॥)। क्योंकि कहा गया है कि दिन और रात अगले लोक में उस पुरुष के पुण्यकर्मों को समाप्त कर देते हैं, जो इष्टिविशेषों को नहीं जानता (तै० ब्रा० ३।१०।११।२॥)। इसी लिए यह भय बन जाता है कि अगले लोक में इष्ट अमृतत्व के स्थान बार बार मृत्यु होगा। इसलिए अनेक कर्म इस से बचाने वाले कहे गये हैं।"[1]

1. The Philosophy of the Veda, pp 572-573.

कीथ का यह अभिप्राय है कि पूर्वोक्त प्रमाणों में जो बार बार की मौत का जीतना लिखा है, वह अगले लोक की बार बार मृत्यु का ही जीतना है इस लोक की पुनर्जन्म के पश्चात् बार बार की मौत का नहीं।

कीथ ने शतपथ १२।६।३।१२।। का प्रमाण भी दिया है—**पितॄनेव तन्मर्त्यान्त्सतो ऽमृतयोनौ दधाति मर्त्यान्त्सतो ऽमृतयोनेः प्रजनयत्यप ह वै पितॄणां पुनर्मृत्युं जयति ।।.........**

कीथ का सम्भावित अर्थ—मरणधर्मा होते हुए पितरों को अमृतरूप गर्भ में रखता है और उन मरणधर्मा को अमृतरूप गर्भ से उत्पन्न कराता है। पितरों की बार बार की मौत को जीत लेता है, जो ऐसा जानता है।

यदि स्थूल दृष्टि से देखा जावे, तो कीथ का पूर्वोक्त कथन कुछ ठीक प्रतीत होता है। परन्तु थोड़ा सा भी सूक्ष्म विचार करने पर कीथ की भारी भूल तत्काल सामने आ जाती है।

कीथ का दिया हुआ प्रमाण श० ब्रा० १२।९।३।। की १२वीं कण्डिका है। इस से पहले ११वीं कण्डिका भी कीथ को देखनी चाहिए थी। वह इस प्रकार है—**पशूनेव तन्मर्त्यान्त्सतो ऽमृतयोनौ दधाति मर्त्यान्त्सतो ऽमृतयोनेः प्रजनयत्यप ह वै पशूनां पुनर्मृत्युं जयति।**

कीथ के ढंग का अर्थ—मरणधर्मा होते हुए पशुओं को अमृतरूपगर्भ में रखता है। और उन मरण-धर्मा को अमृतरूप गर्भ से उत्पन्न कराता है। पशुओं की बार बार की मौत को जीत लेता है, जो ऐसा जानता है।

यदि १२वीं कण्डिका से यह अभिप्राय लिया गया था कि ब्राह्मणों में जहां जहां पर पुनर्मृत्यु का जीतना वा उस से छूटना लिखा है, तो वह पितरों का अगले लोक में पुनर्मृत्यु से बचना है। इस ११वीं कण्डिका से उन्हें यही अभिप्राय लेना चाहिए था कि पुनर्मृत्यु सम्बन्धी प्रकरणों में पशुओं की पुनर्मृत्यु का वर्णन है। ऐसा उन्हों ने नहीं किया। इस से प्रतीत होता है कि या तो उन्हों ने इन सारी कण्डिकाओं को देखा नहीं, और यदि देखा है, तो इस ११वीं कण्डिका को अपने पक्ष में आपत्तिजनक जान उसे जानते बूझते छोड़ दिया है।

हमारे विचार में इन दोनों कण्डिकाओं में पशु और पितर शब्द अपने साधारण अर्थों को नहीं लेते। हां, यदि कीथ ऐसा मानता है, तो उसे पशुओं का भी पुनर्मृत्यु मानना पड़ेगा। सम्भव है, यहां पशु का अर्थ प्राण तथा पितर का अर्थ ऋतु हो।

ब्राह्मण ग्रन्थ क्यों पुनर्जन्म को न मानें, जब कि वेद स्वयं इस सिद्धान्त का पोषक है। इस ग्रन्थ में हम वेदों से पुनर्जन्म के अनेक प्रमाण नहीं देंगे। यह विषय अन्य भाग में ही लिखा जाएगा। यहां तो यजुर्वेद से केवल एक प्रसिद्ध मन्त्र देकर ही हम सन्तुष्ट रहेंगे—

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।। यजु० ४०।३।।

मैत्रायणी संहिता में लिखा है—**असुर्यो वा एता यदोषधयः ।।१।६।३।।**

इस प्रमाण से मन्त्र का यह अर्थ बनता है—अन्धकार और तमोगुण से आवृत्त ओषधि समूह में वह मर कर जन्म लेते हैं, जो आत्मघाती होते हैं।

इस से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि वेद में भी पुनर्जन्म को वैसे ही माना है, जैसा कि ब्राह्मणों और उपनिषदों में, और जैसा आज तक आर्य लोग मानते चले आ रहे हैं।

(६) स मृत्युर्देवानब्रवीत्। इत्थमेव सर्वे मनुष्या अमृता भविष्यन्त्यथ को मह्यं भागो भविष्यतीति ते होचुर्नातो परः कश्चन सह शरीरेणामृतोऽसद्यदैव त्वमेतं भागꣳ हरासा ऽअथ व्यावृत्य शरीरेणामृतो ऽसद्यो ऽमृतो ऽसद्विद्यया वा कर्मणा वेति यद्वै तदब्रुवन्विद्यया वा कमर्णा वेत्येषा हैव सा विद्या यदग्निरेतदु हैव तत्कर्म यदग्निः।[1]

जब सृष्टि बन रही थी, तब परमाणुओं के यथार्थ योग के कारण अग्नि आदि दिव्य पदार्थ अमर हो गए। अर्थात् प्रलय काल तक ऐसे ही रहेंगे। यह जो अग्निचयन है, इस के द्वारा यज्ञकर्त्ता सृष्टि बनते समय में उस वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करता है और अब भी सृष्टि स्थिर रहने के जो नियम हैं, उन्हें जानता है। आकाश मण्डल में जो कोई त्रुटि वायु आदि में हो जाती है, उसे दूर करता है। उस के फलस्वरूप वह अमरत्व को प्राप्त करता है। इस भाव को अलंकार रूप से ब्राह्मण कहता है—

अर्थात्—मृत्यु देवों को बोला। इसी प्रकार (अग्नि चयन करके) मनुष्य अमृत हो जाएंगे। (मृत्यु ने पूछा) और मेरा क्या भाग होगा। वे (देवगण) बोले, (अब क्योंकि सृष्टि बन गई है और हमारा अमर होना हमारे शरीर का धारण करना, अर्थात् परमाणुओं का यथार्थ योग ही था, परन्तु) अब से लेकर कोई शरीर सहित अमर न होगा। (अब सब शरीर कार्य-शरीर होंगे, इसलिये उन शरीरों का नाश अवश्य होगा) जब तू उस अपने भाग (शरीर) को हर लेगा, तब उस शरीर से पृथक् होकर अमर होगा। जो अमर होगा वह विद्या से व कर्म से (अमर होगा)। जो वे (देवगण) बोले कि विद्या से व कर्म से, तो वह यही विद्या है जो अग्नि (चयन) है, और वह यही (श्रेष्ठतम) कर्म है, जो अग्नि (चयन) है।

(७) ते य ऽएवमेतद्विदुः। ये वैतत्कर्म कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति ते सम्भवन्त एवामृतत्वमभिसम्भवन्त्यथ य ऽएवं न विदुर्ये वैतत्कर्म न कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति त ऽएतस्यैवान्नं पुनः पुनर्भवन्ति॥[2]

अर्थात्—वे जो इस को ऐसा जानते हैं, अथवा वे जो यह कर्म करते हैं, मर कर फिर उत्पन्न होते हैं। वे उत्पन्न होते हुए ही जीवन मुक्तों के रूप में उत्पन्न होते हैं, (जहां से सीधे मुक्त हो जाते हैं।) जो ऐसा नहीं जानते और जो यह काम नहीं करते, मर कर फिर साधारण रूप में ही उत्पन्न होते हैं। वे इसी (मृत्यु) का अन्न बार बार बनते हैं, अर्थात् पुनर्जन्म के चक्कर में पड़े रहते हैं।

(ख) अमर आत्मा

पूर्वोक्त कण्डिकाओं में यह भाव स्पष्ट पाया जाता है कि शरीर से भिन्न कोई पदार्थ है, जो शरीर छोड़ कर अमरत्व को प्राप्त होता है। वही पदार्थ दूसरी अवस्थाओं में बार बार जन्म मरण के बन्धन में फंसता है। यह पदार्थ जीवात्मा है। यह जीवात्मा अमर है।

कीथ ने इन कण्डिकाओं का भी दूसरा ही भाव जाना है।[3] वह भाव असंगत सा है। इसलिये इस पर विचार नहीं किया गया।

---

१. १०।४।३।६॥ श० ब्रा०। २. १०।४।३।१०॥ श० ब्रा०।

३. The Philosophy of the Veda, p. 573.

इतना तो सत्य है कि ब्राह्मणों में कई स्थानों पर यज्ञ के फल स्वरूप अगले लोक में शुभ शरीर का मिलना लिखा है। जैसे—स ह सर्वतनूरेव यजमानो ऽमुष्मिंल्लोके सम्भवति।[1]

अर्थात् निश्चय ही वह यजमान सम्पूर्ण शुभ शरीर सहित उस अगले लोक में उत्पन्न होता है।

परन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं है कि सब प्राणी मर कर उसी लोक को जाते हैं। अनेक प्राणी पुनः इसी लोक में भी उत्पन्न होते हैं और उन में से कई एक के सम्बन्ध में पूर्वोक्त प्रमाण हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों से आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म के विषय के पर्याप्त प्रमाण दे चुके हैं। ये प्रमाण अधिकांश में शतपथ से ही दिए गए हैं। शतपथ का प्रवक्ता याज्ञवल्क्य यद्यपि प्रवीण याज्ञिक और आधिदैविक तत्वों का परम पंडित था, पर इन से भी कहीं अधिक वह आत्मतत्त्व का ज्ञाता था वह ब्रह्मनिष्ठ था। आधिदैविक ज्ञान से वह ब्रह्मवाद का अधिक प्यारा था। इसी लिये वह संन्यासी बना, और इसी लिये उस के ब्राह्मण में उस के प्रिय विषय की झलक जगह जगह पायी जाती है।

(ग) प्रजापति=पुरुष=ब्रह्म

ब्राह्मणों में आत्मा के वर्णन का संक्षेप से उल्लेख कर दिया गया है, अब आत्मा के भी अन्तरात्मा के विषय में ब्राह्मण क्या कहते हैं, यह लिखा जाता है। वैदिक धर्म आस्तिक धर्म है। वैदिक ऋषि परमात्मा के स्मरण किये विना कोई काम आरम्भ ही न करते थे। परमात्मा का निज नाम ओम् है। इस नाम की उन्हों ने इतनी महिमा गाई है कि यज्ञों में जहां मौन रहना पड़ता है, वहां किसी प्रश्न के उत्तर में ओम् कह कर अपनी स्वीकृति जताने की प्रथा चलाई है। इसी ओम् से सब व्याहृतियां और उन से सब वेदों का प्रकट होना लिखा है। इसलिए इस तत्त्व का वर्णन करना भी अत्यावश्यक है।

ब्राह्मणों में साक्षात् ब्रह्मवाद के कहने वाले अनेक मन्त्र भिन्न भिन्न कर्मों में विनियुक्त किए गए हैं। अर्थ उन का चाहे और पदार्थों में भी उचित है, पर ब्रह्मपरक तो वेद हैं ही। शतपथ ब्राह्मण[2] में कहा है— अग्ने नय सुपथा राये ऽस्मान्......।[3]

अर्थात्—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् हमें श्रेष्ठ मार्ग से मुक्ति के ऐश्वर्य के लिए ले चल। इस मन्त्र के इस प्रकरण में आ जाने से यह निश्चित है कि ब्राह्मण ग्रन्थकार ब्रह्मवाद के मन्त्रों का भी विनियोग अपने अपने कर्मों में कर लेते थे।

(क) ब्रह्म का निम्न वर्णन तैत्तिरीय ब्राह्मण में उपलब्ध है—

अथा को वेद यत आ बभूव। इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव। यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्। सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद। किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आसीत्। यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तत्। यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्। ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत् ॥७६॥

यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वः। ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ....॥७७॥[4]

---

१. ४।६।१।११॥ श० ब्रा०। २. ३।६।३।११॥ श० ब्रा०। ३. ४०।१७॥ यजुर्वेद।
४. २।८।९।७६-७७॥ तैत्तिरीय ब्राह्मण, भट्ट भास्कर भाष्य सहित, मैसूर।

ब्राह्मण ग्रन्थकार प्रजापति नाम से ब्रह्म का ही कथन करता है—

अष्टौ वसवः। एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इमे ऽएव द्यावापृथिवी त्रयस्त्रिꣳश्यौ त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवाः प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशस्तदेनं प्रजापतिं करोत्येतद्वा ऽअस्त्येतद्ध्यमृतं तद्ध्यस्त्येतदु तद्यन्मर्त्यꣳ स एष प्रजापति सर्वं वै प्रजापतिस्तदेनं प्रजापतिं करोति।[1]

अर्थात्—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, यह ही दोनों द्यौ और पृथिवी तेतीसवें हैं। तेतीस ही देव हैं। प्रजापति चौतीसवां है। तो इस (यजमान) को प्रजापति का (जानने वाला) बनाता है। यही वह है जो अमृत है, और जो अमृत है, वही यह है। जो मरणधर्मा है, वह भी प्रजापति (का ही नाम) है। सब कुछ प्रजापति है। जो इस (यजमान) को प्रजापति (का जानने वाला) बनाता है।

(ख) इसी भाव का विस्तृत वर्णन शतपथ ब्राह्मण[2] की निम्न कण्डिकाओं में है—

(१) स होवाच। महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्वेव देवा इति कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ॥५॥

(२) कतमे वसव इति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षञ्चादित्यश्चद्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एते हीदं सर्वं वासयन्ते ते यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥६॥

(३) कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणात्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥७॥

(४) कतम आदित्या इति। द्वादश मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदं सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥८॥

(५) कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति। स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतम स्तनयित्नुरित्यशनिरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥९॥

(६) कतमे ते त्रयो देवा इति। इम एव त्रयो लोका एषुहीमे सर्वे देवा इति कतमौ तौ द्वौ देवावित्यन्नञ्चैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्द्ध इति यो ऽयम्पवत इति यदस्मिन्निदं सर्वमद्ध्यार्ध्नोत्तेनाद्ध्यर्द्ध इति कतम एको देव इति प्राण इति ॥१०॥

ऐसा ही अभिप्राय शतपथ ब्राह्मण १४।६।९।३-१०॥ में व्यक्त है।

इन दोनों स्थलों में प्रजापति यज्ञ का वाची है। परन्तु इस अर्थ में यह ३३ देवों के अन्तर्गत है। वही ३४वां देव पूर्वोक्त प्रमाण में प्रजापति है।

(ग) शतपथ ब्राह्मण के एक अन्य स्थल में ब्रह्म का बड़ा सुन्दर निरूपण है।[3] इन कण्डिकाओं से प्रकट होता है कि ब्राह्मणों में भी ब्रह्म का वैसा ही वर्णन मिलता है जैसा कि उपनिषदों में है।

---

१. ४।५।७।२॥ शतपथ ब्राह्मण।
२. ११।६।३॥ श० ब्रा०।
३. १०।६।३।१-२॥ श० ब्रा०।

ताण्ड्य ब्राह्मण १७।११।३।। में भी कहा है—

(१) प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशो देवतानाम् । अर्थात्—देवताओं का प्रजापति चौतीसवां है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।८।७।१।। में भी कहा है—

(२) त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवताः । प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशः ।

अर्थात्—तेतीस देवता हैं । प्रजापति चौतीसवां है ।

एक अन्य स्थल में प्रजापति और पुरुष दोनों शब्द पर्याय रूप से आए हैं और ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के वाचक हैं—

(३) सो ऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत । भूयान्त्स्यां प्रजायेयेति सो ऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याꣳ सैवास्मा प्रतिष्ठाभवत्तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति ।[1]

अर्थात्—वह जो यह (पूर्ण) पुरुष प्रजापति है, उस ने कामना की । मैं बहुत अर्थात् महिमा वाला हो जाऊं, प्रजा वाला होऊं । उस ने (जगत् के परमाणुओं को क्रिया देने का) श्रम किया, उस ने (ज्ञानरूप) तप तपा । उस के थकने पर (क्रिया का चक्कर चल पड़ने पर) और (ज्ञानरूप) तप होने पर ब्रह्म=वेद को उस ने सब से पहले उत्पन्न किया, इसी त्रयी विद्या को । वही उस की प्रतिष्ठा है (अर्थात् आधार है । व्याहृतियों और वेद मन्त्रों पर से सारा संसार फिर बना) । इसी लिए कहते हैं कि वेद इस सारे संसार का आधार है ।

इसी प्रकार प्रजापति नाम से परमात्मा का वर्णन है—

(४) प्रजापतिर्वा ऽइदमग्रऽआसीत् । एक एव सो ऽकामयत ।[2]

अर्थात्—प्रजापति परमात्मा ही इस (विकृति रूप संसार बनने) से पहले था । एक ही (वह था) । उस ने कामना की ।

(५) शतपथ ब्राह्मण ७।४।१।१९–२०।। में इसी प्रजापति परमात्मा को मन्त्र की व्याख्या करते हुए हिरण्यगर्भ नाम से स्मरण किया है ।

अन्यत्र भी इसी ब्राह्मण में कहा है—

(६) प्रजापतिर्ह वा इदमग्र ऽएक एवास । स ऐक्षत ।[3] अर्थात्—प्रजापति परमात्मा ही इस (जगत् बनने से) पहले एक ही था । उस ने (प्रकृति में) ईक्षण किया ।

(७) न वै प्रजापतिं सवनैराप्तुमर्हत्येकधैवैनमाप्नोति नर्चमन्वाह न यजुर्वदति न वै प्रजापतिं वाचाप्तुमर्हति मनसैवैनमाप्नोति ।[4]

अर्थात्—प्रजापति=परमात्मा को सवनों से प्राप्त नहीं कर सकता । एक ही प्रकार से इसे प्राप्त करता है । ऋचा को नहीं कहता, यजु भी नहीं बोलता । प्रजापति को वाणी से भी प्राप्त नहीं कर सकता । मन से ही उसे प्राप्त करता है । यह निस्सन्देह परमात्मा का वर्णन है ।

---

१. ६।१।१।८।। श० ब्रा० ।
२. ६।१।३।१।। श० ब्रा० ।
३. २।२।४।१।। श० ब्रा० ।
४. २९।६।। का० सं० ।

उपनिषदों में भी ऐसा ही लिखा है—

(८) मनसैवेदमाप्तव्यम् । कठ० उपनिषद् ४।११॥

अर्थात्—मन से ही यह (ब्रह्म) प्राप्त करना चाहिये ।

(९) मनसैवानुद्रष्टव्यम् । बृहदारण्यक उपनिषद् ४।११॥

अर्थात्—मन से ही (उस ब्रह्म को) देखना चाहिए ।

(१०) प्रजापतिर्वा ऽअमृतः । श० ब्रा० ६।३।१।१७॥

अर्थात्—परमात्मा अमृत, अजन्मा, अनादि अनन्त है ।

(घ) तीन लोक

इसी प्रजापति परमात्मा की रची हुई यह विविध प्रकार की सृष्टि है। इस में तीन प्रकार के लोक हैं। उन का वर्णन भी ब्राह्मणों में आता है।

(१) त्रयो वा ऽइमे लोकाः । श० ब्रा० १।२।४।२०॥ अर्थात्—तीन ही ये लोक हैं।

(२) त्रय इमे लोकाः । काठक संहिता ।३१।६॥

(३) तस्मात्''''''त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः । श० ब्रा० ११।५।८।१॥

अर्थात्—उस प्रजापति परमात्मा ने तीन लोकों को उत्पन्न किया। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक।

इन्हीं तीन लोकों में प्रजापति की सब प्रकार की सृष्टि चल रही है। ये तीन लोक हमारी दृष्टि से ही कहे गये हैं। वैसे तो लोक तीन प्रकार के हैं और अनेक हैं। किसी प्राचीन ब्राह्मण का पाठ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।४।७।१६॥ में दिया है—

(४) एकरात्रं चेदतिथीन्वासयेत्पार्थिवांल्लोकानभिजयति द्वितीययान्तरिक्ष्यांस्तृतीयया दिव्यांश्चतुर्थ्या परावतो लोकानपरिमिताभिरपरिमितांल्लोकानभिजयतीति विज्ञायते ।

अर्थात्—यदि एक रात अतिथियों को वास देता है, तो पार्थिव लोकों को जीतता है। दूसरी (रात वास देने से) अन्तरिक्ष में होने वाले लोकों को, तीसरी से दिव्य लोकों को, चौथी से उन से भी परे जो लोक हैं, और अपरिमितों से अपरिमित लोकों को जीतता है, ऐसा ब्राह्मण से ज्ञात होता है।

नित्य जीवात्मा अपने अपने कर्म के अनुसार इन में से भिन्न २ लोकों में जन्म लेता है। मनुष्य शरीर सब से श्रेष्ठ शरीर माना गया है। उस मनुष्य को इस पृथिवी पर जिस प्रकार से परम सुख मिले, उस का विधान ब्राह्मण ग्रन्थ करते हैं। आज भी पश्चिम में लौकिक विद्या ने बहुत उन्नति की है। परन्तु उस सारी उन्नति में सुख की मात्रा यद्यपि अधिक तो की गई है, पर जो कर्मजन्य दुःख आते हैं, उन से निपटारे का कोई उपाय नहीं सोचा गया। पश्चिम वाले ऐसा कर भी नहीं सकते थे। अमर आत्मा में उन का विश्वास नहीं है। इसलिए प्रवाह रूप से कर्मों के सिद्धान्त को उन्होंने नहीं जाना। ब्राह्मण ग्रन्थ का पहला उपदेश है कि मनुष्य सौ वर्ष तक जीवे, इस से अधिक भी जीवे और सुखी जीवे।

(ङ) मानव आयु

(१) शतायुर्वै पुरुषः। कौ० ब्रा० ११।७॥

अर्थात्—मनुष्य की आयु सौ वर्ष की है। शतपथ ब्राह्मण १।६।३।१६॥ में तो कहा है—

(२) अपि हि भूयाᳪसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति।

अर्थात्—सौ वर्ष से भी बहुत अधिक पुरुष जीता है।

(च) पूर्ण आयु भोगने के उपाय

पूरी आयु भोगने के जो उपाय ब्राह्मण ग्रन्थों में कहे गये हैं, उन में से कतिपय उपाय आगे दिए जाते हैं।

(१) मर्त्याः पितराः पुरा ह्यायुषो म्रियते योऽनुदिते मन्थत्यपहतपाप्मानो देवा अप पाप्मानᳪ हते ऽमृता देवा नामृतत्वस्याशास्ति सर्वमायुरेति ॥[1] श० ब्रा० २।१।४।६॥

अर्थात्—रात्रियां=पितर मरणधर्मा हैं। (पूरी) आयु से पहले मर जाता है, जो सूर्योदय से पहले अग्निमन्थन करता है। दिनों=देवों ने अपने अन्दर से (सूर्य द्वारा) पाप का नाश कर दिया है, (जो सूर्योदय के पश्चात् अग्निमन्थन करता है) वह पाप का नाश करता है। दिन अमृत हैं। (सूर्योदय के पश्चात् अग्निमन्थन करने वाले को यद्यपि) अमृत की आशा नहीं है, (पर वह) पूरी आयु को प्राप्त करता है।

(२) नैव देवा अतिक्रामन्ति। न पितरो न पशवो मनुष्या एवैके ऽतिक्रामन्ति तस्माद्यो मनुष्याणां मेद्यत्यशुभे मेद्यति। विहूर्छति हि न ह्ययनाय च न भवत्यनृतᳪ हि कृत्वा मेद्यति। तस्मादु सायंप्रातराश्येव स्यात्स यो हैवं विद्वान्त्सायंप्रातराशी भवति सर्वᳪ हैवायुरेति।[2]

अर्थात्—अग्नि, वायु, रश्मियां, दिन आदि देव (प्रजापति परमात्मा के बनाये नियमों का) अतिक्रमण नहीं करते। ऋतु, रात्रि आदि पितर भी (ऐसा) नहीं (करते) न ही पशु। मनुष्य ही उल्लङ्घन करते हैं। इसलिए मनुष्यों में जो मांस बढ़ाता है (बहुत मोटा हो जाता है), वह लड़खड़ाता है, चलने योग्य नहीं रहता। अनृत करके (अनेक बार खाकर) वह मोटा होता है। इसलिए सायं प्रातः (दो काल) खाने वाला ही होवे। इस प्रकार जो विद्वान् सायं प्रातः खाने वाला होता है, सारी ही (सौ वर्ष की) आयु प्राप्त करता है।

इस का यह अभिप्राय है कि स्वस्थ पुरुष को सायं प्रातः दो काल ही खाना चाहिए। इतना मोटापा शरीर में बढ़ने नहीं देना चाहिए, जिस से चलना, दौड़ना आदि भी कठिन हो जाए।

(३) सायं प्रातर्वै मनुष्याणां देवहितमशनं। ३।६।३॥ मै० सं०।

(४) आयुषे कमग्निहोत्रं हूयते। सर्वमायुरेति य एवᳪ वेद। १।८।५॥ मै० सं०।

अर्थात्—आयु के लिए ही अग्निहोत्र की आहुतियां दी जाती हैं। सारी आयु प्राप्त करता है जो ऐसा जानता है।

---

१. एतद्वै मनुष्यस्यामृतत्वᳪ यत्सर्वमायुरेति। मै० सं० २।२।३॥ अर्थात्—यही मनुष्य का अमृतपन है, जो सारी आयु प्राप्त करता है।

२. २।४।२।६॥ श० ब्रा०।

(५) यो ह वै देवानामायुष्मतश्चायुष्कृतश्च वेद सर्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते । २।३।५।। मै०सं० ।

अर्थात्—निश्चय ही जो अग्नि, वायु आदि देवों को आयु वाला और आयु देने वाला जानता है, सारी आयु को प्राप्त होता है । पूरी आयु से पहले नहीं मरता । इस से आगे कहा है—

(६) एते वै देवा आयुष्मन्तश्चायुष्कृतश्च यदिमे प्राणाः ।

अर्थात्—यही देवता आयु वाले और आयु देने वाले हैं, जो ये प्राण हैं । इस का अभिप्राय यही है कि पुरुष प्राणायाम आदि करके भी अपनी आयु को बढ़ावे ।

(७) जरा वै देवहितमायुस्तावतीर्हि समा जीवति ।............आयुषा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो ऽग्निमुत्सादयते । शतायुर्वै पुरुषश्शतवीर्यं आयुर्वीर्यं हिरण्यं यद्धिरण्यं शतमानं ददात्यायुरेव वीर्यं पुनरालभेत ।[1]

अर्थात्—बुढ़ापा देवों में रखा हुआ आयु है, उतने ही वर्ष जीता है ।...आयु से और वीर्य से वह नष्ट होता है, जो अग्नि को बुझाता है । सौ वर्ष की आयु वाला पुरुष है, और सौ प्रकार के बल वाला, आयु, बल हिरण्य (एक ही हैं ।) जो सुवर्ण सौ मान वाला (सौ सुवर्ण मुद्रा) देता है, आयु और बल ही पुनः प्राप्त करता है ।

(८) पूर्णं गृह्णीयाद्यं कामयेत सर्वमायुरियादिति पूर्णमेवास्मा आयुर्गृह्णाति सर्वमायुरेति ।[2]

अर्थात्—पूर्ण ग्रहण करे, जिस की इच्छा करे, सारी आयु प्राप्त करे, पूर्ण ही इस के लिए आयु ग्रहण करता है, सारी आयु प्राप्त करता है ।

(९) हिरण्यमभिव्यनित्यायुर्वै हिरण्यमायुषैवात्मानमभिविनोति । २६।६।। का० सं० ।

अर्थात्—स्वर्ण पर श्वास फेंकता है । आयु ही सोना है । आयु से ही अपने आप को तृप्त करता है ।

वैदिक ग्रन्थों में स्वर्ण और आयु का बड़ा सम्बन्ध माना गया है । सोने का दान, सोने का शरीर से स्पर्श यह बहुत कल्याणकारी माने गए हैं । अथर्व वेद में भी लिखा है—

(१०) यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ।[3]

अर्थात्—जो सोना धारण करता है, वह प्राणियों में अपनी आयु लम्बी करता है ।

(११) यं कामयेतासयाविनं जीवेदिति तं व्यात्तायाभिव्यन्यादमृतेनैवैनमभिव्यनिति जीवति सर्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते । ३७।१०।। का० सं० ।

अर्थात्—जिस रोगी को चाहे कि वह जीता रहे, उस का मुख खोलकर उस पर श्वास फेंके । अमृत से ही उस पर श्वास फेंकता है । वह (रोगी) जीता रहता है । सारी आयु प्राप्त करता है । न ही आयु से पहले मरता है ।[4]

---

१. ८।२।। का० सं० ।
२. २८।१।। का० सं० ।
३. १।३५।२।। अथर्ववेद ।
४. तुलना करें, तै० सं० ६।६।१०।। श० ब्रा० ४।६।१।६।।

इन प्रमाणों से निश्चित होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के आचार्य मानव आयु का सौ वर्ष और उस से भी अधिक होना बड़ा आवश्यक समझते थे।[1]

(छ) सुखी गृहस्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रधान अभिप्राय यह है कि इन सौ वर्षों में मनुष्य अत्यन्त सुख से रहे। ब्राह्मणों में ब्रह्मचर्य काल का वर्णन है पर बहुत थोड़ा सा।[2] उस काल का अधिक वर्णन करना ब्राह्मणों का विषय नहीं। ब्राह्मण आधिदैविक तत्त्वों को बताते हैं। इन आधिदैविक तत्त्वों का ही उदाहरण ब्राह्मणों में वर्णन किए गए यज्ञ हैं। ये यज्ञ गृहस्थ के ही धर्म हैं। इसलिए गृहस्थ का जैसा सुन्दर वर्णन ब्राह्मणों में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नहीं है। ब्राह्मण कहते हैं कि वैदिक गृहस्थ को सौ वर्ष और उस से अधिक पूर्ण सुख से जीना चाहिए। इस सुख में यदि पूर्वजन्मों के कर्म बाधा डालें, तो उन्हें यज्ञ रूपी अनेक प्रायश्चित्तों से हम दूर कर सकते हैं। इस प्रकार किसी याज्ञिक को रोगी नहीं होना चाहिए। याज्ञिक को ही नहीं, प्रत्युत एक याज्ञिक अपने यज्ञ के प्रभाव से सारे देश में से रोग दूर कर सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं—

(१) ऋतुसन्धिषु हि व्याधिर्जायते। कौ० ५।१॥

(२) ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते। गो० उ० १।१९॥

अर्थात्—दो ऋतुओं के सन्धिकाल में ही व्याधि=रोग उत्पन्न होता है।

इस रोग की उत्पत्ति को यज्ञ में विशेष औषधि के प्रयोग करने से एक याज्ञिक रोक सकता है। ब्राह्मण कहता है—

(३) यदपामार्गहोमो भवति रक्षसामपहत्यै। १।७।१।८॥ तै० ब्रा०।

अर्थात्—यह जो अपामार्ग=पुठकण्डा से होम करना है, यह राक्षसों=रोग के कीटाणुओं को मारने के लिए है।

इन रोगों को फैलाने वाले राक्षस अथवा कीटाणुओं के नाशक निम्नलिखित पदार्थ ब्राह्मणों में कहे गए हैं—

(४) अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता। १।२।१।६॥ श० ब्रा०।

अर्थात्—यह अग्नि ही कीटाणुओं का मारने वाला है।

(५) अग्नेर्वा ऽएतद्रेतो यद्धिरण्यं नाष्ट्राणाᳬ रक्षसामपहत्यै। १४।१।३।२६॥ श० ब्रा०।

---

१. आयु सम्बन्धी शेष प्रमाणों के लिए देखें, तै० सं० २।५।७।४२॥ काठक सं० १०।४॥ श० ब्रा० ५।२।१।२८॥ ६।७।४।२॥ मै० सं० ४।२।४॥ ४।६।६॥

२. आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१।१।११॥ में ब्रह्मचारी के उपनयन का एक ब्राह्मण वाक्य मिलता है—

तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चाविद्वानिति हि ब्राह्मणम्॥

शतपथ ब्राह्मण ११।५।४।१८॥ में कहा है—तदाहुः। न ब्रह्मचारी सन्मध्वश्नीयात्।

तथा देखें आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१।३।२६॥ में ब्राह्मणपाठ। तथा गोपथ ब्राह्मण पू० २।२॥ शतपथ ब्राह्मण ११।३।३।७॥

अर्थात्—अग्नि का ही यह सार है, जो सुवर्ण है। (यह सुवर्ण) नाशक कीटाणुओं के हनन के लिए है।

(६) सूर्यो हि नाष्ट्राणाँ रक्षसामपहन्ता। १।३।४।८।। श० ब्रा०।

अर्थात्—सूर्य का तेज ही नाशक कीटाणुओं का मारने वाला है।

(७) ते (देवाः) एतँ रक्षोहणं वनस्पतिमपश्यन् कार्ष्यमर्य्यम्। ७।४।१।३७।। श० ब्रा०।

अर्थात्—उन्हों ने कार्ष्यमर्य्य नाम की वनस्पति को जो कीटाणुओं को मारने वाली है, देखा।

(८) ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता। १।१।४।६।। श० ब्रा०।

अर्थात्—वेद वेत्ता विद्वान् ही कीटाणुओं का नाशक है।

(९) सामहि नाष्ट्राणाँ रक्षसामपहन्ता। ४।४।५।६।। श० ब्रा०।

अर्थात्—साममन्त्रों के पाठ से उत्पन्न हुआ स्वर नाशक कीटाणुओं के मारने वाला है।

(१०) आपो वै रक्षोघ्नीः ३।२।३।१२।। तै० ब्रा०।

अर्थात्—जल ही राक्षस नाशक है।

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि अग्नि, सोना, सूर्य, अपामार्ग या पुठकण्डा, कार्ष्यमर्य, वेदवेत्ता विद्वान्, साममन्त्रों के स्वर और जल, ये सब रोग के कीटाणुओं के नाशक हैं। आज भी संसार में यही पदार्थ हैं, जिन से कीटाणुओं का नाश किया जाता है। ये कीटाणु रोगों को उत्पन्न कर के मनुष्य की आयु कम करते हैं। इसी लिए मानव आयु को बढ़ाने के उपाय बताने के विचार से ब्राह्मणों ने पूर्वोक्त वर्णन किया है। प्राचीन आर्य कानों में शुभ सुवर्ण कुण्डल धारण करते थे। उस का अभिप्राय भी रोगों को दूर रख कर दीर्घ जीवन की प्राप्ति करना ही था। एक याज्ञिक इन सब उपायों से अपने और अपने देश के रोगों को दूर करता है। ब्राह्मण ग्रन्थ जब मनुष्य की आयु ही सौ वर्ष की बताते हैं, तो इस का अभिप्राय यह भी है कि कोई मनुष्य सौ वर्ष से पहले न मरे। पिता के सामने पुत्र की कभी मृत्यु हीं न हो। गृहस्थ का कैसा सुन्दर दृश्य है। जिस घर में पिता के जीते जी उस का कोई सन्तान न मरे, वह घर कितना सुखपूर्ण घर हो सकता है। इतना ही नहीं ब्राह्मण यह भी कहता है कि प्रत्येक गृहस्थ के घर में पुत्र अवश्य उत्पन्न होना चाहिए।

(११) नापुत्रस्य लोकोऽस्ति। ऐ० ब्रा० ७।१३।।

अर्थात्—पुत्रहीन का संसार में कल्याण नहीं।

इन्हीं पुत्रों के आश्रय पर वृद्धावस्था में पिता जीते हैं। शतपथ ब्राह्मण १२।२।३।४।। में कहा है—

(१२) तस्मादुत्तरवयसे पुत्रान्पितोपजीवति।

अर्थात्—वृद्धावस्था में पुत्रों के आश्रय पर पिता जीता है।

जिस व्यक्ति के पुराने जन्मों के कर्म के फलानुसार पुत्र नहीं होता, उस के लिए पुत्रेष्टि का करना लिखा है। इस इष्टि द्वारा कार्यकर्ता प्रायश्चित्त करता है और पुराने जन्मों के कर्म के फल को इस प्रायश्चित्त से निवृत्त करता है।[१]

---

१. प्रजाकामो देविकाभिर्यजेत।.........विन्दते पुत्रम्। क ० सं० १२।८।।
अर्थात्—प्रजा की कामना वाला देविका के यज्ञ करे।.........पुत्र को प्राप्त करता है।

पुत्र आदि सन्तान जिस प्रकार से योग्य बन सकते हैं, उस का अत्यन्त सुन्दर, पर संक्षिप्त वर्णन ब्राह्मणों में पाया जाता है। शतपथ ब्राह्मण १०।५।२।६।। में एक विचित्र बात कही गई है। इस की परीक्षा होनी चाहिए।

(१३) तस्माज्जायाया अन्ते नाश्नीयाद्वीर्यवान्हास्माज्जायते वीर्यवन्तमु ह सा जनयति यस्या अन्ते नाश्नाति।[1]

अर्थात्—इसलिए अपनी स्त्री के समीप न खाए, बड़ा बलवान् पुत्र ही उस से उत्पन्न होता है। बलवान् को ही वह जन्म देती है, जिस के समीप पति भोजन नहीं करता।

स्त्री भी पुरुष के समीप भोजन न करे, ऐसा भाव भी अन्यत्र मिलता है—

(१४) तस्मादिमा मानुष्य स्त्रियस्तिर इवैव पुँसो जिघत्सन्ति। १।९।२।१२।। श० ब्रा०।

अर्थात्—इसलिए मनुष्यों की स्त्रियां, पुरुषों से परे ही खाती हैं। हमारे इस देश में यह बात अभी तक चली आ रही थी। इस आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क से ही इस का लोप होना आरम्भ हो रहा है।

संस्कार, जिनका गृह्यसूत्रों में बड़ा विस्तार है, वेदमन्त्रों के आधार पर पहले ब्राह्मणों में ही कहे गए हैं। शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।९।। में कहा है—

(१५) तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्।

अर्थात्—इसलिए जन्मे हुए पुत्र का नाम रखे।

(ज) गृहस्थ में स्त्री का स्थान

आधिदैविक तत्त्वों का वर्णन करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञों का ही अधिकांश में कथन करते हैं। यज्ञों का करना गृहस्थों का ही काम है। गृहस्थाश्रम स्त्री पुरुष दोनों के मेल से चलता है। इसलिए सुखी गृहस्थ के लिए कैसी देवियां होनी चाहिएं, स्त्रियों का क्या अधिकार है, इत्यादि विषयों पर जो ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है, उस का वर्णन किया जाता है।

(१) एवमिव हि योषां प्रशँसन्ति पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तराँसा मध्ये संग्राह्येति।[2]

अर्थात्—इसी सूरत वाली स्त्री की प्रशंसा करते हैं। स्थूलाग्र जघना, कन्धों के बीच में छाती का ऊपर का भाग श्रोणी की अपेक्षा कुछ तंग और मध्य में (कमर में) सिकुड़ी हुई।

(२) पश्चाद्वरीयसी पृथुश्रोणिरिति वै योषां प्रशँसन्ति। श० ब्रा० ३।५।१।११।।

अर्थात्—पीछे से चौड़े जघन वाली, मोटी श्रोणी वाली स्त्री की प्रशंसा करते हैं।

(३) तस्माद्रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका। श० ब्रा० १३।१।९।६।।

अर्थात्—इस लिए रूपवती युवती (मनुष्यों को) प्यारी होने वाली होती है।

(४) एतद्वै योषायै समृद्धँ रूपं यत् सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा। श० ब्रा० ६।५।१।१०।।

---

१. मानव और वाराह गृह्यसूत्र में स्त्री पुरुष के एक पात्र में सदा भोजन करने का विधान है।

२. १।२।५।१६।। श० ब्रा०।

अर्थात्—यही स्त्री का समृद्ध रूप है, जो यह सुन्दर लम्बे केशों के जूड़े वाली, सुन्दर माथे वाली, और सुजघना है।

इन गुणों वाली स्त्री से पुरुष विवाह करे। क्योंकि—

(५) अयज्ञो वा एषः। यो ऽपत्नीकः। तै० ब्रा० २।२।२।६॥

अर्थात्—यह यज्ञ का अधिकारी नहीं है, जो पत्नीहीन है।

(६) अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः। यत्पत्नी। तै० ब्रा० ३।३।३।५॥

अर्थात्—यह शरीर का आधा भाग है, जो पत्नी है।

साधारण भाषा में भी स्त्री को अर्धाङ्गी कहते हैं। प्राचीन काल से ही यह भाव आर्यजाति के हृदय में बना चला आता है। आर्य स्त्रियों का ब्राह्मण काल में बड़ा सम्मान था। कहा है—

(७) श्रिया वा एतद्रूपं यत्पत्न्यः। तै० ब्रा० २।६।४।७॥

अर्थात्—श्री का ही ये पत्नियां रूप हैं।

ब्राह्मणों में जहां स्त्री को कुछ नीची दृष्टि से देखा गया है, वहां गृहस्थ की दृष्टि से नहीं, प्रत्युत ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का नियम पालन करने के लिए यज्ञविशेषों में ही ऐसा किया गया है। प्रवर्ग्य के वर्णन में शतपथ १४।१।१।३१॥ कहता है—

(८) अनृतँ स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत।

अर्थात्—स्त्री, शूद्र, कुत्ता और काला पक्षी (कौआ) अनृत=झूठ हैं, इन्हें न देखे।

मैत्रायणी संहिता ३।६।३॥ में इसी भाव से कहा है—

(९) त्रया व नैर्ऋता अक्षाः स्त्रियः स्वप्नः।

अर्थात—तीन निर्ऋति सम्बन्धी हैं, पांसा, स्त्रियां और स्वप्न।

स्त्रियों की प्रकृति के विषय में ब्राह्मण में एक ऐसी बात कही गयी है, जो अभी तक संसार में सत्य सिद्ध हो रही है।

(१०) तस्मादप्येतर्हि मोघसँहिता एव योषा। तस्माद्य एव नृत्यति यो गायति तस्मिन्नेवैता निमिश्लतमा इव। श० ब्रा० ३।२।४।६॥

अर्थात्—इसलिए आज तक भी स्त्रियां निरर्थक बातों की ओर जाती हैं।......... अतः जो नाचता है, जो गाता है, उसी को यह तत्काल चाहनें वाली होती हैं।

(११) तस्माद्गायन्तःँ स्त्रियः कामयन्ते। तै० सं० ६।१।६।४४॥

(१२) तस्माद्गायन्स्त्रियाः प्रियः। मै० सं० ३।७।३॥

अर्थात्—(गाथा को देवों ने गाया और वेद का गन्धर्वों ने उच्चारण किया। वाणी गन्धर्वों को छोड़ देवों के समीप चली गई। इसीलिए विवाह में गाथा गाते हैं) इस लिए गायक स्त्री को प्रिय होता है।

यह बात सारे संसार में ही पायी जाती है। साधारण स्त्रियां गाने बजाने में ही अपना समय व्यतीत करती हैं और गाने वालों को प्यार करती हैं।

साधारण स्त्रियों के काम करने के विषय में भी प्राचीन काल का एक दृश्य ब्राह्मण ग्रन्थ उपस्थित करता है—

(१३) तद्वा ऽएतत्स्त्रीणां कर्म यदूर्णासूत्रम् । श० १२।७।२।११॥

अर्थात्—यही स्त्रियों का कर्म है, जो ऊन और सूत (का कातना आदि)।

जैसा हर काल में देखा जाता है, अनेक स्त्रियां पतिव्रत धर्म का पालन नहीं करतीं। इसलिये वे कुलटा बन जाती हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ में वैदिक भाव को दर्शाते हुए स्त्री के पतिव्रत धर्म पर बल दिया गया है। स्त्री जिस मनुष्य की एक बार हो जावे, सदा उस की बन कर रहे। शतपथ २।५।२।२०॥ में कहा है—

(१) स पत्नीमुदानेष्यन्पृच्छति केन चरसीति वरुण्यं वा ऽएतत्स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरत्यथो नेन्मेऽन्तः शल्या जुहवदिति तस्मात्पृच्छति निरुक्तं वा ऽएनः कनीयो भवति सत्यँ हि भवति तस्माद्धेव पृच्छति सा यन्न प्रतिजानीत ज्ञातिभ्यो हास्यै तदहितँ स्यात् ।

अर्थात्—(वह प्रतिप्रस्थाता यजमान की) पत्नी को दूर ले जाने के समय पूछता है, किस के साथ तू संगति करती है। वरुण सम्बन्धी (पाप)[1] वह स्त्री करती है, जो दूसरे की होती हुई, दूसरे के साथ संगति करती है। वह अपने मन में गुप्त पीड़ा रखती हुई हवि न दे, इसलिए पूछता है। स्वीकार किया हुआ पाप थोड़ा रह जाता है। वह सत्य ही हो जाता है। यही कारण है कि वह पूछता है। वह स्त्री जो कुछ स्वीकार नहीं करती, वह उस के सम्बन्धियों के लिए अहित होगा (जिन को वह चाहती है, वे दुःखी होंगे।)

पति यदि गुणहीन भी हो, तो भी स्त्री का धर्म उस की सेवा करना ही है। इस विषय में सुकन्या के आख्यानरूप में ब्राह्मण का वचन देखने योग्य है—

(२) सा (सुकन्या) होवाच यस्मै मा पिता ऽदान्नैवाहं तं जीवन्तँ हास्यमीति। श०ब्रा० ४।१।५।९॥

अर्थात्—वह (सुकन्या अश्विद्वय को) बोली, जिस मनुष्य के लिए मेरे पिता ने मुझे दे दिया, उस के जीते जी मैं उसे नहीं छोड़ूंगी।

आचार्य विश्वरूप अपनी बालक्रीडा टीका १।६९॥ में इसी वचन का अभिप्राय लिखते हुए कहता है—

(३) एवं च सत्याम्नाया अपि क्षत्रियविषया एव नैवाहं तं जीवन्तँ हास्यामि, इत्यादि।

अर्थात्—यह वाक्य क्षत्रियों के नियोग विषय का माना जा सकता है। जीने में समर्थ पुरुष को स्त्री न त्यागे यह ब्राह्मण का अर्थ है। फिर शतपथ ब्राह्मण कहता है—

(४) पतयो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा। श० ब्रा० २।६।२।१४॥

अर्थात्—पति ही स्त्री के लिए प्रतिष्ठा है।

(५) गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा। श० ३।३।१।१०॥

अर्थात्—घर में ठहरना ही पत्नी की प्रतिष्ठा है।

---

१. वरुण्य बात पाप होती हैं। श० १२।७।२।१७॥ में कहा है—वरुणो वा एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति॥ अर्थात्—वरुण उसे ग्रहण करता है, जो पाप से गृहीत होता है।

प्राचीन काल में गार्गी आदि ब्रह्मवादिनी स्त्रियां सभाओं में जाती थीं, पर साधारण स्त्रियां सभा में नहीं जाती थीं।

(६) तस्मात्पुमा॑ᳪसः सभा॑ᳪ यन्ति न स्त्रियः। मै० सं० ४।७।४॥

अर्थात्—इसलिये पुरुष सभाओं में जाते हैं, स्त्रियां नहीं।

वासिष्ठ धर्मसूत्र १२।३४॥ में काठक ब्राह्मण का निम्नलिखित पाठ उद्धृत है—

(७) अपि नः श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्निति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वर इति।

अर्थात्—(जो नराधम है, और किसी समय भी संयमी नहीं रह सकता, उस का कथन करके स्त्रियां इन्द्र से बोलीं) हम में से वे भी जो कल ही बच्चा जनने वाली हैं, पतियों के साथ सोवें। यह वर स्त्रियों को इन्द्र ने दे दिया।[1]

स्त्री हत्या एक निन्द्य कर्म है। इस विषय में ब्राह्मण कहता है—

(८) न वै स्त्रियं घ्नन्ति। श० ब्रा० ११।४।३।२॥

अर्थात्—(प्रजापति देवताओं से बोला) स्त्री की हत्या नहीं करते।

(९) न वै योषा कंचन हिनस्ति। श० ब्रा० ६।३।१।३९॥

अर्थात्—स्त्री किसी को नहीं मारती।

(झ) विवाह

यद्यपि कन्या का विक्रय बड़ा जघन्य कर्म है, पर कहीं कहीं यह प्रथा प्रचलित ही होगी। इसलिए ब्राह्मण कहता है—

(१) तस्माद्दुहितृमते ऽधिरथं शतं देयम्, इतीह क्रयो विज्ञायते।[2]

अर्थात्—इसलिए कन्या वाले के लिए सौ (मुद्रा) और रथ देना चाहिए। मैत्रायणी संहिता १।१०।११॥ में भी ऐसा ही भाव है—

(२) अनृत॑ᳪ वा एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरति।

अर्थात्—झूठी बात ही वह करती है, जो पति से खरीदी हुई दूसरों के साथ संगति करती है।

रजस्वला स्त्री के सम्बन्ध में, धर्मशास्त्रों में जो अनेक नियम बनाए गए हैं, उन का मूल वासिष्ठ धर्मसूत्र ५।८॥ में किसी ब्राह्मण ग्रन्थ से दिया गया है—

(३) विज्ञायते हि—तस्माद्रजस्वलाया अन्नं नाश्नीयात्।

अर्थात्—ब्राह्मण में कहा है—इसलिए रजस्वला का (पकाया वा छुआ) अन्न न खावे।

भ्रातृहीना कन्या से विवाह अच्छा नहीं समझा जाता था। इस विषय में निरुक्त ३।५॥ का एक

---

१. वासिष्ठ धर्मसूत्र १।३६॥ में किसी संहिता वा ब्राह्मण ग्रन्थ से उद्धृत पाठ। तुलना करें, आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।६।१३।११॥

२. तुलना करें १।८०॥ याज्ञवल्क्य स्मृति, बालक्रीडा टीका सहित।

प्रमाण है। वह प्रमाण भाल्लवियों के ब्राह्मण वा संहिता से लिया गया है, ऐसा बालक्रीडा में विश्वरूप ने लिखा है—

(४) नाभ्रात्रीमुपयच्छेत् तत्तोकं ह्यस्य भवति, इति भाल्लविनां श्रुतेः।[1]

अर्थात्—भ्रातृहीना कन्या से विवाह न करे, उस कन्या का बालक कन्या के पिता के कुल में चला जाता है।

इसी विषय में वासिष्ठ धर्मसूत्र में एक और ब्राह्मण से पाठ लिया गया है—

(५) विज्ञायते—अभ्रातृका पुंसः पितृनभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम्।[2]

अर्थात्—ब्राह्मण से जाना जाता है—भ्रातृहीना कन्या (अपनी कुल के) पितरों को लौटती है, लौटती हुई वह उनका पुत्र बनती है।

गृहस्थ में रहते हुए मनुष्य से अनेक पाप हो सकते हैं। पिछले जन्मों के पाप कर्मों और इस जन्म के पापों का फल दुःख है ? पाप क्या है। ईश्वरीय सृष्टि में जो ऋतरूप के स्थायी नियम चल रहे हैं, उन को उलट पुलट करने का यत्न करना और आत्मोन्नति में बाधा डालना पाप है। ईश्वरीय सृष्टि में मुख्यरूप से तेंतीस देवता काम कर रहे हैं। वे अग्नि, वायु, जल, सूर्य आदि हैं। जो अग्नि को अपने आराम के लिए तो प्रयोग करता है, परन्तु उस के स्वच्छ रखने का यत्न नहीं करता, जो वायु को दुर्गन्धयुक्त करता है, जो जल को अपवित्र करता है, जो सूर्य की रश्मियों को बिगाड़ता है, वह पाप कर रहा है। जो पुरुष अनियम पूर्वक चलने से अपने शरीर के अन्दर भी इन देवताओं को गन्दा करता है, वह पाप करता है। जो पुरुष ज्ञान में उन्नति नहीं करता, अनृतवादी है, वह भी पाप कर रहा है। और भी अनेक पाप हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में उन का उल्लेख पाया जाता है। उन सब के करने से पुरुष को दुःख होता है, वेदना होती है। उस के जीवन का सुख हट जाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इन सब पापों से बचने का उपदेश है। यदि इन में से कोई भूल हो भी गयी है, तो भी ब्राह्मण कहता है कि ईश्वरीय सृष्टि में जिस-जिस नियम के तोड़ने से तुम्हें फलरूप में दुःख मिलना है, उन्हें यदि स्वयं ठीक कर दो, तो तुम्हें दुःख नहीं होंगे।

दुःखों को दूर करने का एक मात्र उपाय यज्ञ है। इस यज्ञ से सारी सृष्टि पर हमारा राज्य हो जाता है। हम अपनी भूलों को दूर करने का एक उपाय यज्ञ से ही करते हैं। अमावास्या को प्रकृति चन्द्रमा रूप में शक्ति नहीं देती और पूर्णिमा को प्रकृति से शक्ति लेने के लिये यज्ञ का विधान है।

पहले उन भूलों अथवा पापों का कुछ वर्णन करके फिर यज्ञों का वर्णन किया जाएगा। वैसे तो जो पाप पुण्य प्राचीन धर्मसूत्रों और मानव धर्मशास्त्र में कहे हैं, वे सब ही ब्राह्मणों में मिलते होंगे, परन्तु इस समय सब ब्राह्मण नहीं मिलते। इस समय तो क्या, सम्प्राप्त धर्मसूत्रों के संकलन काल में भी अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ नष्ट हो गए थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।४।१२।१०॥ में कहा है—

---

१. १।५३॥ याज्ञवल्क्य स्मृति, बालक्रीडा टीका सहित।

२. १७।१६॥ वासिष्ठ धर्मसूत्र।

(६) ब्राह्मणोक्ता विधयस्तेषामुत्सन्नाः पाठा प्रयोगादनुमीयन्ते ।[1]

अर्थात् (धर्मशास्त्रोक्त) विधियां ब्राह्मणों में कही गई हैं। पर ऐसे पाठों (प्रमाणों) वाले ब्राह्मण नष्ट हो गए हैं। इसलिए अब तो धर्मशास्त्रों के प्रयोगों से ही उन पाठों का अस्तित्व अनुमान किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में सब पाप पुण्यों का वर्णन तो इन ब्राह्मणों में मिल ही नहीं सकता। हम पहले पृ० ६० पर किसी ब्राह्मण के प्रमाण से यह लिख चुके हैं कि ब्राह्मणों और धर्मशास्त्रों के समान-प्रवक्ता थे। यह आवश्यक नहीं कि पाप और पुण्य का विस्तृत विचार ब्राह्मणों में मिले। ब्राह्मण तो इस विषय को भी प्रसङ्गतः ही कहते हैं। इसलिए पाप पुण्यों का जो थोड़ा वर्णन हमें मिला है, वही नीचे दिया जाता है।

(अ) सत्य

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ब्राह्मणों का प्रधान विषय आधिदैविक तत्त्वों का विस्तृत वर्णन करना ही है। उन तत्त्वों का वर्णन करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञों का प्रतिपादन करते हैं। उस प्रतिपादन को करते हुए ब्राह्मण यज्ञ को ही सब कुछ समझते हैं। उस यज्ञ में किसी प्रकार की त्रुटि आना सारे परिश्रम का निष्फल होना समझा जाता है। इसलिये जो भी पाप है, उन का यज्ञ में विशेषरूप से निषेध किया गया है। कई बातें पाप तो नहीं हैं, पर यज्ञों में उन का धारण करना भी पुण्य माना गया है। इसलिये इन्हीं दो प्रकार के भावों से पाप और शुभकर्म का अगला वर्णन पढ़ना चाहिये। सत्य का बोलना, सत्य का मानना, सत्यस्वरूप और सत्यसंकल्प बनने का यत्न करना, ये सब बातें वैदिक धर्म का प्रधान अङ्ग हैं। वेदमन्त्रों में सत्य का बड़ा उज्ज्वल रूप वर्णन किया गया है। वह इस ग्रन्थ के एक अन्य भाग में ही लिखा जायगा। ब्राह्मण सत्य के विषय में कहते हैं—

शतपथ ब्राह्मण ३।१।३।१८।। में कहा है—

(१) अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति।

अर्थात्—अपवित्र वह पुरुष है जो झूठ बोलता है।

पुनः ताण्ड्य ब्राह्मण ८।६।१३।। में कहा है—

(२) एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम्।

अर्थात्—यह वाणी का छिद्र है, जो असत्य (बोलना) है। जिस प्रकार छिद्र में से सब कुछ गिर जाता है, उसी प्रकार अनृतवादी की वाणी में से सब कुछ गिर जाता है। उस के शब्दों में कोई प्रभाव नहीं रहता।

(३) अथ यो अनृतं वदति यथाग्निँ समिद्धं तमुदकेनाभिषिञ्चेदेवँ हैतँ स जासयति तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति श्वः श्वः पापीयान् भवति तस्मादु सत्यमेव वदेत्।[2]

---

१. तुलना करें—शाखानां विप्रकीर्णत्वात् पुरुषाणां प्रमादतः।
नाना प्रकरणस्थत्वात् स्मृतिमूलं न गृह्यते। बालक्रीडा, उपोद्घात।
यही पाठ तन्त्रवार्तिक चौखम्बा सं० पृ० ७६ पर मिलता है।

२. २।२।२।१९।। श० ब्रा०।

अर्थात्—और जो झूठ बोलता है, वह ऐसा ही करता है, जैसे उस जलती हुई अग्नि को जल से सिञ्चन करे। इसी प्रकार वह उस (अग्नि) को निर्बल करता है। उस (अनृतवादी) का अपना तेज भी कम होता जाता है। वह प्रतिदिन पापी होता जाता है इसलिये मनुष्य सत्य ही बोले।

तैत्तिरीय संहिता २।५।५।३२ में कहा है—

(४) नानृतं वदेन्न माँसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयात्।

अर्थात्—यज्ञविशेष में अनृत न बोले, मांस न खाए, स्त्री के समीप न जाए।

अनृत बोलना तो सदा ही पाप है, ऐसा पहले प्रमाणों से निश्चित हो चुका है। विवाहित होने पर भी संयमी रहे, ऐसा अगली बात का अभिप्राय है।

(५) नैतेन पशुनेष्ट्वोपरि शयीत न माँसमश्नीयान्न मिथुनमुपेयात्। श० ६।२।२।३९॥

अर्थात्—इस पशु की इष्टि देकर ऊपर (चारपाई पर) न सोए, मांस न खाए, ब्रह्मचर्य धारण करे।

मन्त्रों में कहीं २ ऋत और सत्य में भेद दिखाया गया है। ब्राह्मणों में भी यही अर्थ भेद कहीं कहीं पाया जाता है। पर जहां अनृतांकथन का निषेध है, वहां अनृत और असत्य पर्यायवाची ही हैं।

शतपथ ब्राह्मण ६।७।३।११॥ में यजुर्वेद १२।१४॥ का अर्थ करते हुए कहा है—

(६) ऋतमिति सत्यम्।

अर्थात्—ऋत का अर्थ सत्य है। सत्य क्या है? जैसा देखा सुना हो, वैसा कहना सत्य है। इस के विपरीत कहना अनृत है। ऐतरेय ब्राह्मण २।४०॥ में यह भाव भले प्रकार स्पष्ट किया गया है—

(७) चक्षुर्वा ऋतं तस्माद्यतरो विवदमानयोराहाहमनुष्ठ्या चक्षुषादर्शमिति तस्य श्रद्दधाति।

अर्थात्—आंख सत्य का (सहारा है) इसलिये जब दो विवाद करते हैं, तो उन में से जो कहता है, मैंने वस्तुतः यह अपनी आंख से देखा है उस के वचन में लोग श्रद्धा करते हैं।

(८) ऋतेनैवैनँस्वर्गं लोकं गमयन्ति। तां० ब्रा० १८।२।९॥

अर्थात्—सत्य के मार्ग से ही इसे स्वर्ग लोक में पहुंचाते हैं।

(९) तद्यत्तत् सत्यं। त्रयी सा विद्या। श० ब्रा० ९।५।१।१८॥

अर्थात्—तो जो सत्य है यही वेद रूपी त्रयी विद्या है। अतः वेद का स्वाध्याय करना सत्य मार्ग पर अनुसरण करना है।

(१०) एवँहवाऽअस्य जितमनपजय्यमेवं यशो भवति य एवं विद्वान्सत्यं वदति। श० ३।७।२।८॥

अर्थात्—इस प्रकार उसी की विजय है। उस का यश जीता नहीं जा सकता जो इस प्रकार से जानता हुआ सत्य बोलता है। झूठ को बता कर हम ने सत्य का स्वरूप इसलिये लिखा है कि जो कुछ सत्य नहीं वह भी झूठ है, पाप है।

(ट) अन्य पाप

जाबाल ब्राह्मण की श्रुति है—

स यदा राजानमुन्नेतोन्नयति, अथैनस्विन उपतिष्ठन्ते ऽत उपद्रवते इत्यं ब्राह्मणमवधियमित्यं गुरोर्वा-

यामम्यगामिति ।[1] निरुक्तमेनो यथा यथा तान् ऋत्विजो राजा च ब्रूयुरश्वमेधावभृथपूता भवथेति । तेऽपोऽभ्यवयन्ति । यथाहिस्त्वचो निर्मुच्यते, एवं सर्वस्मात् पाप्मनो निर्मुच्यन्ते । तान् न जुगुप्सेयुः । स यावन्तमश्वमेधेनेष्ट्वा लोकं जयति । त्रिस्तावन्तं जयति । यस्यैवं विदुषः एवमेनस्विनो ऽवभृथमभ्यवयन्तीति ।[2]

अर्थात्—वह ले जाने वाला जब राजा को ले जाता है तब पापी समीप ठहरते हैं, और बोलते हैं। इस प्रकार मैंने ब्राह्मण को मारा, इस प्रकार गुरु की पत्नी के पास गया। स्पष्ट होता है पाप, जैसे जैसे उन को ऋत्विग् लोग और राजा बोले कि अश्वमेध के अन्त के स्नान से पवित्र हो जाओ। वे जल को अपने ऊपर छिड़कते हैं। जिस प्रकार सांप केंचुली से मुक्त हो जाता है, इसी प्रकार सब पापों से मुक्त होते हैं। उन की निन्दा न करें। वह जितने लोक को अश्वमेध से जीतता है उस से तीन गुणा लोक को वह जीतता है, जिस के अवभृथ को पापी लोग ऐसे छिड़कते हैं।

इस का अभिप्राय यह नहीं है कि प्राचीन काल में आर्यावर्त्त में सब लोग बड़े पापी होते थे। वे ब्राह्मण-वध और गुरुभार्यागमन करते थे। प्रत्युत इस का यही तात्पर्य है कि हर एक मनुष्य को, यदि वह भूल से कभी पाप कर चुका है, समय पड़ने पर बड़े से बड़े पाप को स्वीकार करना चाहिए। स्वीकार किया हुआ पाप थोड़ा रह जाता है। यह पूर्व पृ० १५६ पर शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से लिखा गया है। इस प्रमाण के यहां देने का यही मुख्य प्रयोजन है कि ब्राह्मणों में ब्राह्मण वध और गुरुभार्यागमन बड़े पाप माने गए हैं।

चरकों के अग्निषोमीय ब्राह्मण में कहा है—

(१२) तस्माद्ब्राह्मणः सुरां न पिबेत् । पाप्मनात्मानं नेत्सँसृजा इति ।[3]

(१३) तस्माद्ब्राह्मणस्सुरां न पिबति पाप्मना नेत्संसृजा इति ।[4]

(१४) तस्माज्ज्यायांश्च कनीयांश्च स्नुषा च श्वशुरश्च सुरां पीत्वा सह लालपत आसते ।[5]

अर्थात्—इसलिए ब्राह्मण सुरा न पीवे। पाप से अपने आप को मत उत्पन्न करे।[6]

इसलिए बड़ा और छोटा, स्नुषा और श्वसुर सुरा पीकर एक दूसरे से झगड़ने लग पड़ते हैं।

ब्राह्मण का मुख्य काम ज्ञान विज्ञान का पढ़ना पढ़ाना है। उस में सुरा बाधा डालती है, इसलिए ब्राह्मण के लिए ही प्रधान रूप से सुरा का निषेध किया गया है।

(१५) स होवाचाजीगर्तः सौयवसिः—

तद्वै मा तात तपति पापं कर्म मया कृतम् ॥ ए० ब्रा० ८।१७॥

१, ब्राह्मणो न हन्तव्यः । अर्थात् ब्राह्मण की हत्या मत करो। यह किसी ब्राह्मण का वचन है, ऐसा अनेक पुराने ग्रन्थों में कहा गया है। देखें ३।२२२॥ बालक्रीडा।

२. ३।२३७॥ याज्ञवल्क्य स्मृति, बालक्रीडा टीका, इस में यह जावालि श्रुति उद्धृत है।

३. २।५।२॥ मै० सं०।

४. १२।१२॥ का० सं०।

५. १२।१२॥ का० सं०।

६. तुलना करें, ३।२२२॥ बालक्रीडा टीका।

अर्थात्—वह आजीगर्त सौयवसि बोला—

प्यारे पुत्र ! मुझे तपाता है, मेरा किया पाप कर्म। इस से प्रकट होता है, कि घोर आपत्ति के समय में भी सन्तान को बेचना नहीं चाहिए। आजीगर्त ऐसा घृणित कर्म करके अब पछता रहा है।

बाल क्रीडा टीका में ३।२३७॥ पर ब्राह्मण प्रमाण से भ्रूण हत्या को पाप लिखा है—

(१६) काठके ऽप्यश्वमेधवदग्निष्टोमस्यापि "भ्रूणहत्याया वा एषोऽति मुच्यते योऽग्निष्टोमसंस्थं यजते।[1]

अर्थात्—काठक में अश्वमेध के समान अग्निष्टोम सम्बन्धी एक फलश्रुति है—भ्रूणहत्या (के पाप) से वह छूट जाता है, जो अग्निष्टोम संस्था का यज्ञ करता है।

शतपथ ब्राह्मण १।४।५।१३॥ में कहा है—

(१७) आत्रेय्या योषितैनस्वी।[2]

अर्थात्—रजस्वला स्त्री के (संग) से पुरुष पापी होता है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१।१।११॥ में किसी ब्राह्मण का वचन उद्धृत् है—

(१८) तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चाविद्वान्, इति हि ब्राह्मणम्।

अर्थात्—अन्धकार से वह अंधकार में प्रवेश करता है, जिसे मूर्ख उपनयन देता है (जिस का गुरु अविद्वान् है) और जो स्वयं मूर्ख है।

इस ब्राह्मण वाक्य में अज्ञानी की घोर निन्दा मिलती है। इस से ज्ञात होता है कि आर्यजाति में विद्वान् बनना एक पुण्य कर्म समझा जाता था।

हम कह चुके हैं कि ईश्वरीय सृष्टि के नियमों का तोड़ना पाप है। कई रोग पुराने जन्मों के कर्म-फल के रूप में आते हैं और कुछ इसी जन्म में स्वास्थ्य नियमों के तोड़ने से। अतः रोगी होना पाप है। इस लिए काठक संहिता १३।६॥ में कहा है—

(१९) पाप्मनैव गृहीतो य आमयावी।

अर्थात्—पाप से वह ग्रहण किया हुआ है, जो रोगी है।

(२०) तस्माद्दीक्षितस्य नान्नमद्यान्नाश्लीलं कीर्तयेन्न नाम गृह्णीयात्॥ का० सं० २३।६॥

अर्थात्—इसलिये दीक्षित का अन्न न खावे, गन्दी वाणी न बोले, नाम न ग्रहण करे।

---

१. तुलना करें याज्ञवल्क्य स्मृति, ३।२४४॥ बाल क्रीडा टीका—
तथा चाम्नायः—सर्वां ब्रह्महत्यामपहन्ति यो अश्वमेधेन यजते। अग्निष्टुताभिशस्यमानं याजयेत् भ्रूणहत्याया वा एषो ऽतिमुच्यते यो ऽभिजिता यजेत, इति।

२. तुलना करें याज्ञवल्क्य स्मृति, ३।२४५॥ बालक्रीडा टीका।
रजस्वला के अन्य नियमों के लिये देखें बोधायन गृह्य सूत्र १।७।३६॥ में किसी ब्राह्मण का प्रमाण—
तस्यै सर्वस्तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेदञ्जलिना वा पिबेदखर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथाय इति ब्राह्मणम्॥

आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।३।६।१६,२०।। में किसी ब्राह्मण का प्रमाण दिया गया है। वह इस प्रकार है—

(२१) द्विषन्द्विषतो वा नान्नमश्नीयाद्दोषेण वा मीमांसमानस्य मीमांसितस्य वा ।।१६।।

(२२) पाप्मानं हि स तस्य भक्ष्यतीति विज्ञायते ।।२०।।

अर्थात्—द्वेष करते हुए का और द्वेष करने वाले का अन्न न खावे। (उसका भी अन्न न खावे) जो दोष पूर्वक (यज्ञ शास्त्र की) मीमांसा करता है, अथवा मीमांसा कर चुका है। पाप रूप अन्न को ही वह खाता है।

इस से प्रतीत होता है कि द्वेष का भाव रखना और शास्त्र की अशुद्ध मीमांसा करना पाप है।

(२३) यथा ह व इदं निषादा वा सेलगा वा पापकृतो वा वित्तवन्तं पुरुषमरण्ये गृहीत्वा कर्त्तमन्यस्य वित्तमादाय द्रवन्ति।[1]

अर्थात्—जिस प्रकार से निषाद, या लुटेरे, या पापकर्म करने वाले धनवान पुरुष को जङ्गल में पकड़ कर उसे गढ़े में डाल देते हैं और उस का धन ले कर भाग जाते हैं। इस से प्रकट होता है कि दूसरों का धन लूटना पापकर्म है।

(२४) पापस्य वा इमे कर्मणः कर्त्तार आसते ऽपूतायै वाचो वदितारो यच्छ्यापर्णाः।[2]

अर्थात्—ये श्यापर्ण, पापकर्म करने वाले, अपवित्र=गन्दी वाणी बोलने वाले, वहां बैठे हैं।

इस प्रमाण से ज्ञात होता है कि गन्दी वाणी का बोलना अर्थात् गाली आदि देना पाप है।

यह शुभाशुभ कर्म संक्षेप से कहे गए हैं। इन में से शुभ वा पुण्य कर्मों का फल इस लोक में या अगले लोक में सुख है। अशुभ या पाप कर्मों का फल दुःख है। इस दुःख की निवृत्ति यज्ञों में प्रायश्चित्तों द्वारा कही गयी है। पाप करते समय सृष्टि नियम में जो कुछ गड़बड़ हो गई थी वही यज्ञ द्वारा दूर की जाती है। जिस यज्ञ का ऐसा अद्भुत प्रभाव है उस का स्वरूप संक्षेप से कहा जाता है।

(ठ) यज्ञ का स्वरूप

यजुर्वेद १।१।। की व्याख्या करते हुए शतपथ ब्राह्मण १।७।१।५।। में कहा है—

(१) यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।

अर्थात्—समस्त कर्मों में से यज्ञ कर्म श्रेष्ठ कर्म है। ऐसा ही काठक संहिता ३०।१०।। में भी लिखा है। ब्राह्मण तो यज्ञ की इतनी महिमा समझते हैं कि वह ब्रह्म को भी यज्ञस्वरूप ही बताते हैं। जगत् में जो कुछ प्रत्यक्ष यज्ञरूप दिखाई दे रहा है वही प्रजापति है।

(२) एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः। श० ब्रा० ४।३।४।३।।

अर्थात्—यह प्रजापति ही है जो प्रत्यक्ष यज्ञ है। संसार में जड़ जगत् में जो यज्ञ हो रहा है, सूर्य

---

१. ८।११।। ऐतरेय ब्राह्मण।

२. ७।२७।। वही।

उस का केन्द्र है । शतपथ ब्राह्मण १४।१।१।६।। में कहा है—

(३) स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः ।

अर्थात्—यह जो यज्ञ है वह यही सूर्य है। इसी महायज्ञ का चित्र मनुष्य इस पृथिवी पर बनाता है। पृथिवी पर वेदी ही यज्ञ का केन्द्र स्थान है। ऐतरेय ब्राह्मण ३।६।। में कहा है—

(४) तं (यज्ञं) यवेद्यामन्वविवन् यद्वेद्यामन्वविन्दंस्तद्वेदेर्वेदित्वम् ।

अर्थात्—उस यज्ञ को वेदि में प्राप्त किया, क्योंकि वेदि में प्राप्त किया, अतः यही वेदि का वेदिपन है। ऐसा ही अन्य ब्राह्मणों में भी लिखा है। यह वेदि बड़ी छोटी होती है, पर इस में किए गए कर्म का प्रभाव अद्भुत है। यही वेदि को कई स्थलों में वामन विष्णु कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण १।२।५।५।। से आरम्भ करके सातवीं कण्डिका तक इसी वामन विष्णु रूपी वेदि का वर्णन है। इसी से देवताओं ने इस विशाल पृथिवी को ही प्राप्त किया। नहीं, नहीं इस पृथिवी को ही नहीं। देवताओं का क्या कहना, मनुष्य भी इस वेदि से तीनों लोकों पर राज्य कर सकते हैं।

ऋग्वेद १।२२।। का प्रसिद्ध मन्त्र है—

(५) इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।।१७।।

इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्मपरक भी है और सूर्य परक भी है। पर इस का एक और अद्भुत अर्थ भी है—

अर्थात्—इस वामन विष्णु वेदि में किया हुआ अग्निहोत्रादि कर्म तीनों लोकों में अपना प्रभाव रखता है। इसी लिये ऐतरेय ब्राह्मण के आरम्भ में कहा गया है—

(६) अग्निर्वै देवनामवमो विष्णुः परमः ।। १।१।।

अर्थात्—अग्नि देवताओं में प्रथम है और सूर्य अन्तिम। इस का अभिप्राय यह है कि वेदि में जो अग्नि होती है उसी में पहिले हवि दी जाती है। शतपथ ब्राह्मण २।५।१।८।। में भी कहा है—

७. अग्निर्वै देवतानां मुखम् ।

अर्थात्—यह जड़ अग्नि ही सारे भौतिक देवताओं का मुख है। इसी में डाला हुआ हवि वायु के सहारे सूर्य की ओर अर्थात् ऊपर को जाता है। ऊपर जाकर वह सारे अन्तरिक्ष में फैल जाता है। उसी अन्तरिक्ष में सूर्य के प्रभाव से मेघ मंडल के साथ वह हवि नीचे उतरता है और सब देवताओं को तृप्त करता जाता है। इसलिए हम ने कहा था कि इस वेदि से मनुष्य तीनों लोकों को जीतता है। यज्ञ द्वारा पृथिवी के पदार्थ शुद्ध होते हैं, अन्तरिक्ष के पदार्थ शुद्ध होते हैं और सूर्य की रश्मियां पवित्र होती हैं। यह हम सहसा नहीं बता सकते। ब्राह्मणों का गहरा पाठ ही इस बात को स्पष्ट करेगा। यज्ञ इन पदार्थों को ही शुद्ध नहीं करता, प्रत्युत इन पदार्थों को शुद्ध करता हुआ मनुष्यमात्र का कल्याण करता है। इसी लिये ब्राह्मण में कहा है—

(८) कल्पते यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति । ऐ० ब्रा० १।७।।

अर्थात्—यज्ञ को भी समर्थ करता है, उसी जनता के लिए समर्थ करता है, जहां पर इस प्रकार का जानने वाला होता है।

इस यज्ञ के अनेक प्रकार कहे गए हैं। अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध तक यज्ञ कहे गये हैं। इन सब में

ही एक बात का प्रधान रूप से ध्यान रखा गया है। जो कुछ सृष्टि में हो रहा है, वही यज्ञ में किया जाता है। इस के दो लाभ हैं। एक तो याज्ञिक को सृष्टि नियम का ज्ञान प्रत्यक्ष समान होता जाता है। दूसरे सृष्टि नियम को यह यज्ञ सहायता पहुँचाता है। सूर्य अपने बल से इस संसार की दुर्गन्धि को दूर करता है और जल को पवित्र करता है। मनुष्य का किया हुआ अग्निहोत्र भी यही दोनों काम करता है। संवत्सर में ३६० दिन हैं। मनुष्य में ३६० अस्थियां हैं।[1] ३६० ही ईंटें अग्निचयन में चिनी जाती हैं। सृष्टि नियम का यही ज्ञान है। सृष्टि नियम को यही सहायता पहुँचाता है। इसी के फल से पुरुष अनेक पापों से तर जाता है।

(ख) यज्ञों के मुख्य भेद

गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि यज्ञ की इक्कीस संस्थाएं हैं—

(१) स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत्। गो० पू० १। १२॥

अर्थात्—यज्ञ त्रिवृत्त, सात तन्तु वाला और इक्कीस संस्था युक्त है। इसे उस ने देखा। इस का विस्तार आगे किया गया है—

(२) सप्त सुत्याः सप्त च पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सप्त तथैकविंशतिः। गो० पू० ५।२५॥

अर्थात्—सात सोम संस्था, सात पाकयज्ञ और सात हविर्यज्ञ हैं। यही सब मिला कर इक्कीस संस्था का यज्ञ है।

इन इक्कीस में से सात संस्था गृह्याग्नि की हैं, और शेष चौदह श्रौताग्नि की। उन का वर्णन इस प्रकार है—

गृह्याग्नि की संस्था—

(१) **पाक संस्था**—१ अष्टका, २ पार्वण स्थालीपाक, ३ मासिक श्राद्ध, ४ पिण्ड पितृ श्रावणी ५ आग्रहायणी, ६ चैत्री, ७ आश्वयुजी।

श्रौताग्नि की संस्था—

(२) **हविर्यज्ञ या हविः संस्था**—१ अग्न्याधान, २, अग्निहोत्र, ३ दर्शपूर्णमास, ४ चातुर्मास्य, ५ आग्रयणेष्टि, ६ निरूढ पशुबन्ध, ७ सौत्रामणि।

(३) **सोम संस्था**—१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निष्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोडशी, ५ अतिरात्र, ६ अप्तोर्याम, ७ वाजपेय।[2]

यही इक्कीस संस्था रूपी यज्ञ हैं। और भी अनेक छोटे बड़े यज्ञ हैं, पर वे सब ही इन का भागमात्र

---

१. देखें, शतपथ ब्राह्मण १२।३।२।३॥ मानव अस्थियों के विषय में देखें, Medicine of Ancient India, Part I, Osteology, by R. Hoernle. यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है, यद्यपि हम इस से सर्वांश में सहमत नहीं।

२. वैखानसगृह्य सूत्र १।१।१॥ शतपथ में भी एक स्थान पर कुछ यज्ञों के नाम एक साथ मिलते हैं—
अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुबन्धं सौम्यमध्वरम् १०।४।३।४॥

हैं। एक अन्य स्थान पर गोपथ ब्राह्मण में इन यज्ञों का वर्णन किया है। यथा—

अथातो यज्ञक्रमा अग्न्याधेयमग्न्याधेयात्पूर्णाहुतिः पूर्णाहुतेरग्निहोत्रमग्निहोत्राद्दर्शपूर्णमासौ दर्शपूर्णमासा-भ्यामाग्रयणमाग्रयणाच्चातुर्मास्यानि चातुर्मास्येभ्यः पशुबन्धः पशुबन्धादग्निष्टोमो ऽग्निष्टोमाद्राजसूयो राजसूया-द्वाजपेयो वाजपेयादश्वमेधो ऽश्वमेधात् पुरुषमेधः पुरुषमेधात्सर्वमेधः सर्वमेधाद्दक्षिणावन्तो दक्षिणावद्भ्यो ऽदक्षिणा अदक्षिणाः सहस्रदक्षिणे प्रत्यतिष्ठंस्ते वा एते यज्ञक्रमाः। गो० पू० ५।७॥

अर्थात्—अब यज्ञ का क्रम कहा जाता है। १ अग्न्याधेय, २ पूर्णाहुति, ३ अग्निहोत्र, ४ दर्शपूर्णमास, ५ आग्रयण, ६ चातुर्मास्य, ७ पशुबन्ध, ८ अग्निष्टोम, ९ राजसूय, १० वाजपेय, ११ अश्वमेध, १२ पुरुषमेध, १३ सर्वमेध। इन के अतिरिक्त कुछ और भी यज्ञ कहे गए हैं।

(ढ) यज्ञ तथा पाप-विमोचन

शतपथ ब्राह्मण २।३।१।६॥ में कहा है—

(१) सर्वस्मात्पाप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।

अर्थात् सब पापों से छूट जाता है, जो इस प्रकार जानता हुआ अग्निहोत्र करता है।

(२) तेनेष्ट्वा सर्वां पापकृत्याँ सर्वां ब्रह्महत्यामपजघान सर्वां ह वै पापकृत्याँ सर्वां ब्रह्महत्याम-पहन्ति यो ऽश्वमेधेन यजते। श० ब्रा० १३।५।४।१॥

अर्थात्—उस अश्वमेध से यज्ञ कर के सब पाप कर्मों को सारी ब्रह्महत्या को नाश किया। सारे पाप कर्म को सारी ब्रह्म हत्या को नष्ट करता है, जो अश्वमेध से यज्ञ करता है।

(३) पारिक्षिता यजमाना अश्वमेधैः परो ऽवरम्।
अजहुः कर्म पापकं पुण्याः पुण्येन कर्मणा, इति॥[1]

अर्थात्—भले पारिक्षितों ने अश्वमेधों से एक के पीछे दूसरे पाप कर्मों का नाश किया, पुण्य कर्म द्वारा।

(४) तद्यथाहिर्जीर्णायास्त्वचो निर्मुच्येत इषीका वा मुञ्जात्।
एवं हैवैते सर्वस्मात्पाप्मनः सम्प्रमुच्यन्ते ये शाकलां जुह्वति॥[2]

अर्थात्—तो जिस प्रकार से सांप जीर्ण केंचुली से छूटता है, इषीका को छुड़ावे। इस प्रकार वे सब पापों से छूट जाते हैं, जो शाकला की हवि देते हैं।

(५) अंहसा वा एष गृहीतो यो भ्रातृव्यवानंहस एव तेन मुच्यते यदिन्द्रायेन्द्रियवत इन्द्रियमेव तेनात्मन्धत्ते। का० सं० १०।१०॥

अर्थात्—पाप से ही वह गृहीत है, जो शत्रु वाला है। पाप से ही उसे मुक्त करता है, जो इन्द्रिवान इन्द्र के लिए (यज्ञ करता है।) इससे (शुद्ध) इन्द्रियों को शरीर में धारण करता है।

(६) तथैवैतद्यजमानः पौर्णमासेनैव वृत्रं पाप्मानँ हत्वापहतपाप्मैतत्कर्मारभते। श० ब्रा० ६।२।२।१९॥

---

१. १३।५।४।३॥ श० ब्रा०।

२. ४।६॥ गोपथ ब्राह्मण, उत्तर भाग।

अर्थात्—इस प्रकार वह यजमान पौर्णमास से ही पाप का नाश कर के, शुद्ध हो कर यह कर्म आरम्भ करता है।

(७) पाप्मानꣳ हैष हन्ति यो यजते तमिमं पाप्मानꣳ हतमपो हराणीति।[१]

अर्थात्—पाप को वह मारता है जो (यजमान) यज्ञ करता है। उस नष्ट हुए पाप वाले को जल के समीप ले जावे।

(८) तेन पाप्मानं भ्रातृव्यꣳ स्तृणुते वसीयानात्मना भवति एतया स्तुते।[२]

अर्थात्—उस से पाप युक्त शत्रु का नाश करता है। अपने आप अत्यन्त ऐश्वर्य वाला होता है, जो इस से स्तुति करता है। इन प्रमाणों से प्रकट होता है कि यज्ञ वस्तुतः पाप नाशक है। इस यज्ञ का प्रभाव मन्त्रों के पाठ से बहुत ही बढ़ा रहता है। मन्त्रों का पाठ चित्त को शांति देता है। मन्त्रों के स्वर सहित शुद्ध पाठ से वैसा ही चक्र वायुमण्डल और आकाश में चलने लग पड़ता है जैसा कि सृष्टि बनते समय जब मन्त्र उत्पन्न हुए थे, चल रहा था। इसी लिए यज्ञों में मन्त्रपाठ का महत्व बताते हुए ऐतरेय ब्राह्मण १।४।३॥ में कहा है—

(९) एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्मक्रियमाणमृगभिवदति।

अर्थात्—यही यज्ञ की समृद्धि=सम्पूर्णता है जो रूप की सम्पूर्णता है, अर्थात् जिस प्रकार का कर्म किया जा रहा है उसी को ऋचा कहती है। ऋचा कर्म को ही नहीं कहती प्रत्युत ऋचा के उच्चारण से सारे वायुमण्डल में परिवर्तन हो जाता है। उस ऋचा का अर्थ चित्त को शान्त करता है और ठीक उच्चारण प्रसन्नता भी देता है।

(ण) यज्ञ और बलिदान

ब्राह्मण ग्रन्थों में जो यज्ञ कहे गये हैं उन में से अनेकों में बलिदान का विधान पाया जाता है। हमारा निज का इस बलिदान वाले यज्ञ में विश्वास नहीं। शतपथ ब्राह्मण में एक कथन है जिस के पाठ से प्रतीत होता है कि वनस्पतियां ही यज्ञ के योग्य हैं।

(१) अग्निर्ह्येव यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञिय इति वनस्पतयो हि यज्ञिया न हि मनुष्या यजेरन्यद्वनस्पतयो न स्युस्तस्मादाह वनस्पतिर्यज्ञिय इति।[3]

अर्थात्—अग्नि ही यज्ञ है और वनस्पतियां ही यज्ञ के योग्य हैं। मनुष्य यज्ञ न कर सकते यदि वनस्पतियां न होतीं। इसलिए कहा है कि वनस्पतियां यज्ञ के योग्य हैं।

इस से प्रकट होता है कि यज्ञ के लिए वनस्पतियां ही उपयुक्त पदार्थ हैं। पशु आदि की बली क्यों और कब से आरम्भ हुई, ब्राह्मणों में बलियों के प्रकरण का सर्वत्र प्रक्षेप हुआ है या नहीं, यह सब विचारणीय है।

(त) देवता

ब्राह्मणों में समस्त यज्ञों की हवियों को ग्रहण करने वाले देवता कहे गए हैं। यह देवता दो प्रकार के हैं। एक हैं मनुष्यदेव और दूसरे भौतिकदेव। मनुष्य देवों के सम्बन्ध में ब्राह्मण कहते हैं—

---

१. ३।१।३॥ षड्विंश ब्राह्मण।	२. ३।४।५॥ वही।	३. ३।२।२।६॥ श० ब्रा०।

(१) ये ब्राह्मणाः शुश्रुवाँसो ऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः। श० ब्रा० २।२।२।६॥ २।४।३।१४॥

अर्थात्—जो वेदादि के जानने वाले, बहुश्रुत, अत्यन्त विद्वान् हैं, वे मनुष्यों में देव हैं। फिर शतपथ कहता है—

(२) विद्वाँसो हि देवाः। श० ब्रा० ३।७।३।१०॥

अर्थात्—विद्वान् ही देवता हैं। बोधायन गृह्यसूत्र में तो इस मनुष्य तथा देव के भाव को और भी स्पष्ट किया है। वहां लिखा है—

(३) अथ यदि कामयेत् देवं जनयेयमिति संवत्सरमेतद्व्रतं चरेत्।

अर्थात्—यदि कामना करे कि देव=बहुविद्वान् को जन्म दें, तो वर्ष पर्यन्त यह व्रत करे।

मनुष्यों में विद्वानों वा श्रेष्ठों को देव कहते थे। इस का प्रमाण १८०० वर्ष पूर्व भारत में आने वाले यूनानी यात्री अपोलोनियस के यात्रा वृत्तान्त में भी मिलता है—

The Emperor next asked the question : "Why is it that men call you a god ? "Because," answered Appollonius, "every man that is thought to be good, is honoured by the title of god." I have shown in my narrative of India how this tenet passed into our hero's philosophy."[१]

अर्थात्—तब सम्राट् ने पूछा कि लोग तुम्हें देवता क्यों कहते हैं। अपोलोनियस ने उत्तर दिया—क्योंकि जो पुरुष श्रेष्ठ समझा जाता है उस की प्रतिष्ठा इस शब्द से की जाती है। अपोलोनियस का जीवन, लेखक लिखता है कि वह बता चुका है कि भारत का यह सिद्धान्त, उस के चरित्र नायक के दर्शन शास्त्र में कैसे प्रविष्ट हुआ। पूर्वोक्त सब प्रमाणों से प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में भौतिक देवों को ही देव नहीं माना गया है, प्रत्युत विद्वानों को भी देव कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण में संसार की उस अवस्था का भी वर्णन मिलता है, जब कि देव=विद्वान् आर्य और साधारण मनुष्य एकत्र रहते थे।

(४) उभये ह वाऽ इदमग्रे सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च। श० ब्रा० २।३।४।४॥

अर्थात्—इस अवस्था से पूर्व, दोनों विद्वान् और साधारण मनुष्य एकत्र रहते थे।

विद्वानों के अतिरिक्त जो भौतिक देव हैं उन का अब वर्णन किया जाता है। हम पूर्व पृष्ठ १६७ पर कह चुके हैं कि अग्नि देवताओं में प्रथम है और विष्णु अन्तिम। इन दोनों के बीच में अन्तरिक्ष स्थानी देवता हैं। यह देवता पूर्वोक्त यज्ञ से तृप्त होते हैं।

(५) सत्यसंहिता वै देवाः। ऐ० ब्रा० १।६॥

अर्थात्—यह देव एक स्थायी नियम में चलने वाले हैं। इन में से इन्द्र या विद्युत् अत्यन्त बलशाली हैं।

---

१. Philostratus, A Life of Appollonius, Book VIII, Ch. VI, Vol. II, p. 281, ed. by F.C. Conybeare.

(६) इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः । कौ० ब्रा० ६।१४॥

अर्थात्—देवों में इन्द्र अत्यन्त शक्ति वाला अथवा बल वाला है। इन्हीं सब देवों का कथन करते हुए ब्राह्मणों ने सारे सृष्टि नियम का वर्णन किया है। अन्तरिक्षस्थ पदार्थों के अनेक तत्त्व कहे हैं। वृष्टि विद्या का भी बहुत सा कथन किया है। यदि ब्राह्मणों के इन आधिदैविक अर्थों का पूरा ज्ञान हो जाए, तो आज भी हमें विज्ञान की अनेक बातों का पता लग सकता है। ब्राह्मणों का पाठ करते हुए प्रत्येक देवता के यथार्थ स्वरूप और गुण कर्मों का जानना अत्यन्त आवश्यक है। आशा है जब संसार के विद्वान् इन ब्राह्मणादि ग्रन्थों को उपेक्षा की दृष्टि से देखना छोड़ कर ध्यान पूर्वक इन का पाठ करेंगे, तो संसार के ज्ञान में पर्याप्त उन्नति होगी।

(थ) आपः

सृजन—शतपथ ब्राह्मण के षष्ठ काण्ड के आरम्भ में लिखा है—

सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत।......ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्...॥८॥

सोऽपोऽसृजत। वाच एव लोकात्। वागेवास्य सासृज्यत। सेदं सर्वम् आप्नोद् यदिदं किं च। यदाप्नोत् तस्मादापः। यदवृणोत् तस्माद्वा॥६॥

अर्थात्—इस (अग्निरूप) पुरुष-प्रजापति ने कामना की। ब्रह्म ही प्रथम उत्पन्न किया। त्रयी विद्या को ही......। उस ने अपः को उत्पन्न किया। वाक् के ही लोक से। वाक् ही इस की वह उत्पन्न की। उस (वाक्) ने इस सब को व्याप्त किया, जो कुछ भी यह था। क्योंकि व्याप्त किया, इस कारण (आपः) हुए। क्योंकि (इन्हों ने) आवृत किया, ढक लिया, इस कारण भी।

साइंस का नैबूला (Nebulae)—वर्तमान साइंस की जगदुत्पत्ति की प्रक्रिया आपः से आरम्भ होती है। इन्हें ही नैबूला अथवा गैस का रूप माना जाता है। इस गैस में ही इलैक्ट्रान आदि बनते हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण २।२।६।१॥ में धूम के पश्चात् अग्नि, तथा अग्नि के पश्चात् (१) ज्योति, (२) अर्चिः,[1] (३) मरीचयः, तथा (४) उदाराः की उत्पत्ति लिखी है। तदनु कहा है—

तद् अभ्रमिव समहन्यतः। तद् वस्तिम् अभिनत्। स समुद्रोऽभवत्।......तद्वा इदमापः सलिलमासीत्।

अर्थात्—ये उदार अभ्र के समान संहत हुए। तब वस्ति (निवास, अथवा घर के अधो भाग) को तोड़ा। वह समुद्र हुआ।......तो निश्चय ये आपः सलिल थे।

सलिलावस्था धारण करने के पश्चात् आपः प्रधान और व्यापक हुए।

स्यन्दन-हीन आपः—आपों में शीघ्रता अथवा स्यन्दन नहीं था, यह अन्यत्र भी माना है। शतपथ ब्राह्मण ३।९।२।१॥ का वचन है—

यत्र वै यज्ञस्य शिरो ऽच्छिद्यत। तस्य रसो द्रुत्वापः प्रविवेश। तेनैवैतद् रसेन आपः स्यन्दन्ते।

---

१. तुलना करें—दीपस्येवार्चिषो गतिः। शान्तिपर्व ३२५।१२२॥
शान्तिपर्व २३९।२॥ में सृष्टि के प्रत्याहार समय में अर्चियों द्वारा जगत् की जाज्वल्यता का उल्लेख है।

अर्थात्—जहां यज्ञ=प्रजापति का शिर छिन्न हुआ, उस का रस बह कर आपों में प्रविष्ट हुआ। वह ही रस आता है जो ये आपः बहते हैं।[1]

इस से स्पष्ट है कि पहले आपः स्यन्दन हीन थे। महाभारत, शान्तिपर्व में भी यही सत्य प्रकाशित किया गया है। यथा—

तस्माच्चोत्तिष्ठते देवात् सर्वभूतहिताद्रसः।
आपो हि तेन युज्यन्ते द्रवत्वं प्राप्नुवन्ति च ॥३५४।७॥

अर्थात्—और उस से उठता है, देव से, सर्वभूत हित वाले से रस। उस (रस से) आपः युक्त होते हैं और द्रवत्व को प्राप्त होते हैं।

पाश्चात्य सर्गविद्या (cosmology) का स्पष्ट आरम्भ इन संहत आपः से होता है।

स्त्री स्थानी—ब्राह्मण ग्रन्थों के सृष्टि-उत्पत्ति विषयक प्रायः सब प्रकरणों में आपः स्त्री-स्थानी हैं। योषाः वा आपः।[2] इसलिए दैवी वाक् और उस की अनुकरण कर्त्री संस्कृत-भाषा में आपः शब्द नियत ही स्त्रीलिंग में व्यवहृत होता है।

आपः का अनुवाद असम्भव—यदि कोई अनुवादक आपः शब्द का अङ्ग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं में पुंल्लिङ्ग पर्याय से अनुवाद करेगा, तो उस अनुवाद से मूल शब्द का वैज्ञानिक स्वरूप नष्ट हो जायेगा।

आपः का व्यापकत्व—आपः की व्यापकता स्पष्ट है—

(क) आपो वा इदं सर्वमाप्नुवन। काठक सं० पृ० ४९।

(ख) यदाप्नोत तस्मादापः। यदवृणोत तस्माद्वा। श० ब्रा० ६।१।१।९॥

अर्थात्—इस सम्पूर्ण अहंकार के अन्दर होने वाली परिधि में अथवा महाभूत रूपी इस सम्पूर्ण आकाश में आपः व्यापक हो गए। उन की आपः संज्ञा इसी सत्य की द्योतक है। आपः ने सब ढांप लिया।

आपः के विविध रूप—आपः को विधा (यजुः १४। ७॥ श० ब्रा० ८।२।२।८॥), विश्या आपः (जै० ब्रा० १।४५), वस्तीवरी और एकधनाः (ऐ० ब्रा०) आदि कहा है। शतपथ ब्राह्मण के इस प्रकरण में विधा का अर्थ सब कुछ बनाने वाला लिखा है। एकधना का भाव, १, ३, ५, ७ आदि संख्या भी है। इस का रहस्य जानना चाहिए। प्राचीन काल में एकधनाविद् (श० ब्रा० ३।४।३।१८॥) भी होते थे।

चतुष्टय्य आपः—तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।८।२॥ के अनुसार आपः चतुष्टय्य थे। भट्ट भास्कर इस का अर्थ करता है—चत्वारोऽवयवा यासां ताः चतुष्टय्यः। शतपथ ब्राह्मण ९।१।२।२२॥ में लिखा है—अम्य आपः।

अन्तरिक्ष दुन्दुभिः—इस का संकेत भूमि-दुन्दुभिः और अन्तरिक्ष-दुन्दुभिः का भेद बताते हुए जैमिनि के प्रवचन में है—अन्तरिक्षे दुन्दुभयो वितता वदन्ति।......अभिक्रु भाः पर्यायन्ति। २।४०४॥

अर्थात्—अन्तरिक्ष में दुन्दुभियां विस्तृत, व्याप्त बोलती हैं। यही अन्तरिक्ष में परमा वाक् है।[3]

---

१. प्रशस्तपाद गुणपदार्थ निरूपण प्रकरण पृ० ९५ में द्रवत्व को मूर्त उदकों का गुण मानता है, सूक्ष्म, अमूर्त आपों का नहीं। तथा देखें पृ० २६४, ६५। तथा वै० ५।२।४ द्रवत्वात् स्यन्दनम्॥

२. १।१।१।१८॥ श० ब्रा०।

३. ५।१।५।६॥ श० ब्रा०।

(व) हिरण्यगर्भ=तेजोमय महद् अण्ड

इस क्रमिक परिणाम के पश्चात् अथवा महाभूतों द्वारा अण्ड-सृजन के अनन्तर तथा आपों के प्रधान होने पर वह गर्भ हिरण्यगर्भ हुआ। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त। कथं नु प्रजायेमहि इति। ता अश्राम्यन्। तास्तपोऽतप्यन्त। तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्डं सम्बभूव। तदिदं......यावत् संवत्सरस्य वेला तावत् पर्यप्लवत। ततः संवत्सरे पुरुषः समभवत्। स प्रजापतिः। श० ब्रा० ११।१।६।१-२॥

अर्थात्—आपः निश्चय ही आरम्भ में सलिलावस्था[1] (एकार्णवीभूतावस्था) में ही थीं। उन में (स्वयम्भू ब्रह्म द्वारा) कामना हुई। कैसे हम प्रजारूप में फैलें। उन्हों ने श्रम किया। उन्हों ने तप तपा। उन तपती हुई (आपों) में हिरण्याण्ड उत्पन्न हुआ। वह हिरण्याण्ड जब तक (एक दैव) वर्ष का काल, तब तक परिप्लव (=चक्र में तैरना) करता रहा। तब संवत्सर बीत जाने पर पुरुष[2] प्रकट हुआ।

हिरण्यगर्भ का पर्यप्लवन—शतपथ के पूर्व उद्धृत वचन में हिरण्यगर्भ की पर्यप्लवन-रूपी गति का स्पष्ट निर्देश किया है। हिरण्याण्ड संवत्सर पर्यन्त पर्यप्लवन करता रहा। यह काल गणना किन नियमों पर आश्रित है, यह ज्ञातव्य है।

प्रजापति का प्रसर्पण—ताण्ड्य ब्राह्मण १६।११॥ में लिखा है—

(१) प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्। नाहरासीन्न रात्रिरासीत्। सोऽस्मिन्नन्धे तमसि प्रासर्पत्।

अर्थात्—प्रजापति=पुरुष एक ही था, न दिन था, न रात्रि थी। वह अन्धे (करने वाले) अन्धेरे में[3] प्रासर्पण (=आगे आगे सरकना) करता था।

(२) जैमिनीय ब्राह्मण ३।३६०॥ में लिखा है—आपो वा इदमग्रे महत् सलिलमासीद्, एतास्ता आपः। स ऊर्मयः समतप्यन्त फाल् फालिति। तद्धिरण्मयमाण्डं समैरत्।

अर्थात्—(जो यह कहा है—) आपः ही पहले महान् सलिल (रूप) थीं, ये ही वे आपः हैं। उन ऊर्मियों ने फाल् फाल् शब्द को प्राप्त किया। (और उन आपों में उत्पन्न) उस हिरण्मय अण्ड ने गति की।

हिरण्यगर्भ अण्ड की तीन गतियां—ऊपर हम ने शतपथ, ताण्ड्य तथा जैमिनीय ब्राह्मण के जो वचन उद्धृत किए हैं उन में हिरण्यगर्भ की तीन गतियों का उल्लेख है—पर्यप्लवन, प्रसर्पण और समेषण।

तीनों गतियों के लिए प्रयुक्त शब्दों की सूक्ष्म आलोचना से प्रतीत होता है कि हिरण्यगर्भ में प्रथम गति सलिलावस्था वाले आपः में उत्पन्न ऊर्मियों से उत्पन्न हुई। तदनन्तर उस में प्रसर्पण=आगे बढ़ना रूपी क्रिया हुई। उसी से पर्यप्लवन=चारों ओर चक्कर काटना रूपी क्रिया प्रकट हुई।

पृथिवी, ग्रह, नक्षत्र की आदिगति का मूल कारण—हिरण्यगर्भ में किस क्रम से गति का आरम्भ

---

१. जिस में सब लीन था।
२. पुरुषसूक्त इसी पुरुष का प्रधानतया वर्णन करता है।
३. तुलना करें—अन्धे तमसि जलैकार्णवे लोके। महाभारत, शान्तिपर्व ३५१।३॥

हुआ और उत्तरोत्तर उस गति ने क्या रूप धारण किया इस का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। हिरण्यगर्भ की ये ही प्रसर्पण (=आगे बढ़ना) और पर्यप्लवन (धुरी पर चारों ओर घूमना) क्रियाएं उस की प्रजाओं, पृथिवी, ग्रह, नक्षत्र आदि को दायभाग में प्राप्त हुईं। हिरण्यगर्भ की आदिगति का कारण जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार आपः में उत्पन्न ऊर्मियां थीं।

इसी तत्त्व का वर्णन जैमिनीय ब्राह्मण ३।३६१॥ में इस प्रकार किया है—**अथ ह ततः पुराहोरात्रे संश्लिष्टे एवासतुरव्याकृते।** हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति का ब्राह्मणोक्त वर्णन कितना वैज्ञानिक है।

वह अण्ड अग्नि के प्रभाव के कारण **हैमवर्ण अथवा सहस्रांशु समप्रभ**[1] हो गया था। इस हिरण्यगर्भ को स्वयम्भू ब्रह्म ने अपना विराट् शरीर बनाया। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस हेमाभ महान् अण्ड को बहुधा **पुरुष अथवा प्रजापति** कहा है।

महदण्ड का स्वरूप—महदण्ड महाभूतों का परिणाम था। इन महाभूतों में पार्थिव परमाणु भारगुण-युक्त थे। महदण्ड का उपरिभाग लघु और अधोभाग भारी था। इस अधोभाग से पृथिवी बनी। अण्ड पूरा गोल नहीं था। अण्ड गोल होता भी नहीं। यह लम्बा अधिक था।

प्रजापति का मान—प्रजापति की लम्बाई-ऊंचाई तथा चौड़ाई के विषय में ताण्ड्य ब्राह्मण १८।६।२॥ में लिखा है—**यावान् वै प्रजापतिः ऊर्ध्वः तावान् तिर्यङ्।** अर्थात् जितना निश्चय प्रजापति ऊपर की ओर उतना पार्श्वों में। प्रजापति का एक नाम बृहदुक्ष है। लिखा है—**प्रजापतिर्वै बृहदुक्षः।**[2] अर्थात् प्रजापति ही बृहदुक्ष है।

अण्ड का अन्तः रूप—शतपथ ब्राह्मण में इस का स्पष्टीकरण है—

सा वै शाणी भवति। मृद्वयसदिति त्वेव शाणी। यत्र वै प्रजापतिरजायत गर्भो भूत्वा एतस्माद् यज्ञात् तस्य यन्नेदिष्ठमुल्बमासीत् ते[3] शाणाः। तस्मात्ते पूतयो वान्ति। यदस्य जराय्वासीत् तद्दीक्षितवसनम्। अन्तरं वा उल्बं जरायुणो भवति। ३।२।१।११॥

अर्थात्—वह ही सान वाली होती है। कोमल थी निश्चय ही सान वाली। जहां निश्चय प्रजापति जन्मा गर्भ होकर, इस यज्ञ से उस का निकटतम उल्ब था। वे ही सान (यज्ञ में दिखाए जाते हैं) इसलिए वे गन्धयुक्त बहते हैं। जो निश्चय इस की जेर थी, वह दीक्षित का वस्त्र (है।) अन्तर निश्चय उल्ब जेर के होता है।

(घ) अग्निः

अग्नि का त्रेधा[4] **जन्म**—अग्नि की सारी पूर्वावस्था अथवा भूतावस्था के लिए वाङ्मय में **तेजः और ज्योतिः** शब्द का व्यवहार हुआ है। वेद में अत्यन्त स्पष्ट रूप से अग्नि का तीन बार का जन्म वर्णित है। इस को यथार्थ समझे बिना वेद और ब्राह्मण का वैज्ञानिक अर्थ तिरोहित रहता है।

---

१. १।६॥ मनुस्मृति। २. ४।४।१।१४॥ श० ब्रा०।

३. तुलना करें—(क) **हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योल्वं तन्महात्मनः।** वायु ४।८०॥ तथा रसरत्नसमुच्चय—(ख) **ब्रह्मा येनावृतो जातः सुवर्णेन। तन्मेरुरूपतां यातं सुवर्णं सहजं हि तत्॥**५।४॥

४. तुलना करें ऋ० १०।८८।१०॥ निरुक्त ७।२८॥ से।

ऋग्वेद में वत्सप्रि: ऋषि की ऋचा है—

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ १०।४५।१॥

इस मन्त्र में दिवः शब्द एक विशेष संज्ञा है। यही ऋचा यजुर्वेद १२।१८॥[1] में पढ़ी गई है। इस का अति सुन्दर और वैज्ञानिक व्याख्यान ब्रह्मिष्ठ वाजसनेय याज्ञवल्क्य के शिष्य माध्यन्दिन ने अपने शतपथ ब्राह्मण ६।७।४।३॥ में किया है। यथा—

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे ऽअग्निः इति । प्राणो वै दिवः । प्राणाद्वा एष प्रथममजायत । अस्मद् द्वितीयं परि जातवेदा इति । यदेनमदो द्वितीयं पुरुषविधो ऽजनयत् । तृतीयम् अप्स्विति । यदेनमदस् तृतीयम् अद्भ्यो ऽजनयत् ।

प्रथम जन्म—अर्थात् प्रथम जन्म प्राण अथवा वायु से हुआ। यह अग्नि भूतों में तीसरा है ।

द्वितीय जन्म—दूसरा जन्म जब गर्भ अथवा अण्ड हिरण्यगर्भ बना, तब हुआ। वह हिरण्यगर्भ पुरुष अथवा पुरुषविध था।

जातवेद अग्नि—जातवेद मध्यमस्थानी अग्नि है।

तृतीय जन्म—तीसरा जन्म अपों में हुआ। इस तीसरे जन्म का कथन अन्यत्र मैत्रायणी संहिता ३।२।३॥ में भी है। आपो वा अग्नेर्योनिः । अर्थात्—आपः अग्निः का कारण है।

त्रिवृद् अग्निः—स एताः तिस्रः तनूरेषु लोकेषु विन्यधत्त । यदस्य पवमानं रूपमासीत् तदस्यां पृथिव्यां न्यधत्त । अथ यत् पावकं तदन्तरिक्षे । अथ यत् शुचि-तद्दिवि । तद्वा ऋषयः प्रतिबुबुधिरे । श०ब्रा०२।२।१।१४॥

अर्थात्—उस ने ये तीन तनू इन लोकों में रखे। पवमान, पावक और शुचि शब्द सार्थक होते हुए भी संज्ञावाची हैं। ये संज्ञाएं ही वैदिक विज्ञान को स्पष्ट करती हैं।[2]

मन्त्रों में यही विभाग—अग्नि के जो तीन विभाग मैत्रायणी संहिता में दिखाए गए हैं, वही मंत्रों में भी दृष्टि में पड़ते हैं—

(क) अग्निः ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः । ऋ० ६।६६।२०॥
(ख) अग्ने पावक रोचिषा । ऋ० ५।२६।१॥
(ग) अग्निः शुचिव्रततमः । ऋ० ८।४४।२१॥

अग्न्युपस्थानम्—मैत्रायणी संहिता में अग्नि सम्बन्धी मन्त्रों का एक अपूर्व संग्रह किया गया है। उस में पूर्वलिखित तीनों प्रकार के अग्नि के मन्त्र हैं।

शुचि रूप—(क) यत् (अग्नेः) शुचि (रूपम्)[3] तद्दिवि (न्यधत्त) । श० ब्रा० २।२।१।१४॥
(ख) वीर्यं वै शुचि । यद्वा अस्य (अग्नेः) एतदुज्ज्वलति एतदस्य वीर्यं वै शुचि । श० ब्रा० १।२।१।८॥
(ग) असौ वा आदित्यो अग्निः शुचिः । तै० ब्रा० १।१।६।२॥

---

१. १।३।१४॥ तै० सं० ।
२. अग्नि का रूप विस्तार वायु पुराण अध्याय २६ में है ।
३. तुलना करें—अग्ने शुचं शमयति । ३।३।६॥ मै० सं० ।

ब्राह्मणस्थ त्रिवृदग्नि पाठ की व्याख्या—शतपथ ब्राह्मण के त्रिवृदग्नि-विषयक पाठ की प्रतिध्वनि वायु पुराण ५३।५।। से आरम्भ होती है। यह वर्णन पूर्ण वैज्ञानिक है। ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्व-भाग २४।६।। से भी यही वर्णन आरम्भ होता है। मत्स्य पुराण १२८।५६।। में भी थोड़ा सा ऐसा पाठ है।

तीन अग्नियों की अन्य संज्ञाएं—जैमिनीय ब्राह्मण २।४१।। के अनुसार पूर्व अग्नियों की, भूपतिः, भुवनपतिः और भूतानां पतिः संज्ञाएं भी थीं।

मैत्रायणी संहिता के अनुसार अग्नि के तपः, शोचिः अर्चिः, हरः और तेज पांच रूप हैं। निरुक्त ४।१६।। में यास्क के अनुसार लिखा है—ज्योतिः हरः उच्यते।

शतपथ ब्राह्मण १।६।३।३१ में स्पष्ट कहा है—यत् शुक्लं तदाग्नेयं यत् कृष्णं तत् सौम्यम्। अर्थात् जो शुक्ल रूप है, वह अग्नि के कारण है।

भास्कर का उल्लेख करते हुए वायुपुराण ५०।११०।। में कहा है—शुक्लच्छायो ऽग्निरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी।

यहां अग्निः और आपः शुक्लच्छाया वाले कहे गए हैं। छाया का अभिप्राय मूर्छा अथवा reflection प्रतीत होता है।

अर्चिः का अर्थ—वैश्वानर अग्निः के पूर्व रूप का वर्णन करते हुए जैमिनीय ब्राह्मण ३।१६५।। में लिखा है—अथ ह वा अग्निर्वैश्वानर इत्यमेवास यथेमे ऽङ्गाराः। सो ऽकामयत स्नुष्टयो मे जायेरन्न् अर्चय इति। ...एते ह वा अस्य स्नुष्टयो यदर्चयः। इस से ज्ञात होता है कि अर्चिः का अर्थ लाट, ज्वाला (=flame) है।

दीप्ति-रहित अग्निः—उत्पन्न होने के समय अग्नि में दीप्ति न थी। ताण्ड्य ब्राह्मण में लिखा है—अग्निः सृष्टो नोवदीप्यत। तं प्रजापतिरेतेन साम्नोपाधमत् स उदवीप्यत। १३।३।२२।।

अर्थात्—अग्निः उत्पन्न हुआ नहीं चमका। उसे प्रजापति ने इस साम से फूंका, वह चमक उठा। साम से तरंगें उठीं (=vibrations अथवा waves)। ये कौन-सी तरंगें हैं, जो पंखा झलने का काम करती हैं।

ऐसा भाव अन्यत्र भी है—

अग्निर्वै जातो न व्यरोचत। सो ऽकामयत। तेजस्वी स्यामिति। सो ऽग्नये तेजस्विने ऽजं कृष्णग्रीवम् आलभत। ततो वै स तेजस्वी अभवत्। काठक सं० १३।३।।; मै० सं २।५।११।।

अर्थात्—अग्निः उत्पन्न हुआ न चमका। उस ने कामना की। तेजस्वी होऊं। उस ने अग्नि के लिए, तेजस्वी के लिए अज को (जो) कृष्ण ग्रीव अज (था,) छुआ। तब वह तेजस्वी हुआ।

कृष्ण ग्रीव अज क्या था जिस के स्पर्श से अग्नि तेजस्वी हुआ। यह भविष्य की खोज का विषय है।

नो ह वा इदमग्रे ऽग्नौ वर्च आस। यदिदमस्मिन्वर्चः सो ऽकामयत। इदं मयि वर्चः स्यादिति। ......ततो ऽस्मिन्नेतद् वर्च आस। श० ब्रा० ४।५।४।३।।

अर्थात्—पहले अग्नि में वर्च नहीं था।

(न) वृष्टि का वर्णन

सारी वृष्टि विद्या का बड़ा सुन्दर वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में पाया जाता है। उस वर्णन को पढ़ कर प्रत्येक विचारवान पुरुष जान सकता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रवचन करने वाले वृष्टि विज्ञान में पर्याप्त गति रखते थे। शतपथ ब्रा० ५।३।५।१७।। में कहा है—

(१) **अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः।** अर्थात् ताप के प्रभाव से जलधूम उत्पन्न होता है। उसी जलधूम के बादल बनते हैं और बादल से वृष्टि होती है।

(२) **अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति धामच्छदिव भूत्वा वर्षति मरुतस्सृष्टां वृष्टिं नयन्ति ॥ यदासा आदित्यो ऽर्वाङ् रश्मिभिः पर्यावर्तते ऽथ वर्षति। कां० सं० ११।१०।।**[1]

अर्थात्—अग्नि=ताप ही इस भूमि पर से वृष्टि को ऊपर ले जाता है। सूर्य के समान अर्थात् अग्नि के प्रभाव से ही वर्षा होती है। वायुगण उत्पन्न हुई वृष्टि को नीचे लाते हैं। जब वह सूर्य अर्वाङ् किरणों से काम करता है तब वर्षा होती है।

(३) **विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति।** ऐ० ब्राह्मण २।४१।।

अर्थात्—विद्युत् या अग्नि का ताप ही वर्षा और खाने योग्य पदार्थों को देता है।

(४) **तस्या एते घोरे तन्वौ विद्युच्च ह्रादुनिश्च।** शतपथ ब्राह्मण १२।८।३।११।।

अर्थात्—उस वृष्टि के ये दो भयंकर रूप हैं, जो बिजली (का चमकना) और ओले (पड़ना)।

(५) **तौ यदि कृष्णौ स्यातामन्यतरो वा कृष्णस्तत्र विद्याद्वर्षिष्यत्यैषमः पर्जन्यो वृष्टिमान्भविष्यतीत्येतदु विज्ञानम्।** शतपथ ब्राह्मण ३।३।४।११।।

अर्थात्—(सोम की गाड़ी के बैल) यदि दोनों काले हों, अथवा उन में से एक काला हो, तब जानें कि वर्षा होगी ? बादल उस वर्ष बहुत बरसेगा, यही विज्ञान है। काले पदार्थ का वर्षा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। पञ्जाबी में भी इस भाव का एक वचन है—

(६) **कालियां इट्टां काले रोड़, मींह् वरावे जोरो जोर।**

वायु का भी वर्षा के साथ बड़ा सम्बन्ध है। शतपथ ब्राह्मण १।८।३।१२।। कहता है—

(७) **अयं वै वर्षस्येष्टे यो ऽयं पवते।**

अर्थात् यही वर्षा को चलाने वाला है, जो यह वायु चलता है। वायु के ही प्रभाव से बादल बन जाते हैं, यह सब जानते हैं।

(८) **तस्मात्तां दिशं वायुरेति तां दिशं वृष्टिरन्वेति।** शतपथ ब्राह्मण ८।२।३।५।।

अर्थात्—इसलिए जिस दिशा को वायु जाता है, उसी दिशा को वृष्टि जाती है।

(९) **मरुतो वै वर्षस्येशते।** शतपथ ब्राह्मण ९।१।२।५।।

अर्थात्—वायुगण (monsoon) ही वर्षा पर राज्य करते हैं।

---

[1] तुलना करें, तै० सं० २।४।९।१०।। तथा मै० सं० २।४।८।। से।

(९) ऋग्वेद ५।५५।५।। में लिखा है—उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
आजकल भी वर्षा के सम्बन्ध में हम सर्वत्र यही विचार देखते हैं।

(१०) इतो ह्यग्निर्वृष्टिं वनुते। शतपथ ब्राह्मण ३।८।२।२२।।

अर्थात्—इसी भूमि पर से अग्नि=ताप वृष्टि को प्राप्त करता है। श्रौतसूत्रों में कारीरि इष्टि की बड़ी प्रशंसा है। इसी के द्वारा अपनी इच्छा से वर्षा प्राप्त की जा सकती है। आर्य लोग ऐसा करते भी आए हैं। उसी का वर्णन ब्राह्मणों में भी है। मैत्रायणी संहिता १।१०।१२।। में कहा है—

(११) सौम्यानि वै करीराणि सौमी ह उ त्वेवाहुतिरमुतो वृष्टिं च्यावयति।

अर्थात्—सोम सम्बन्धी ही ये करीरि इष्टियां हैं। सोम सम्बन्धी ही यह आहुति होती है, जो अन्तरिक्ष से वर्षा को यहां ले आती है।

(१२) वर्ष्यं उदके यजेतैतद्वधन्नाद्यस्य नेदिष्ठं वृष्टिकामो यजेत वायुर्वा इमे समीरयति।[1]

अर्थात्—वर्षा के जल से यज्ञ करे, यही खाने योग्य पदार्थों के अत्यन्त समीप है। वर्षा की कामना वाला यज्ञ करे। वायु ही इन्हें ले जाता है।

(१३) आपो ह वै वृत्रं जघ्नुस्तेनैवैतद्वीर्येणापः स्यन्दन्ते। शतपथ ब्राह्मण ३।९।४।१४।।

अर्थात्—(आकाशस्थ) जलों ने बादल को नष्ट किया। उस ही बल से जल (सदा) बहते रहते हैं। वर्षा का विज्ञान प्राप्त करते करते ब्राह्मण ग्रन्थ प्रवक्ता विद्युत सम्बन्धी बातों को भी जान गए थे।

(१४) एतस्यामुपवीच्यान्दिशि भूयिष्ठं विद्योतते। षड्विंश ब्रा० २।४।।

अर्थात्—इस उदीची=उत्तर की दिशा में बिजली बहुत चमकती है।

(१५) विद्युद्वाऽ अपां ज्योतिः। शतपथ ब्राह्मण ७।५।२।४९।।

अर्थात्—बिजली जलों का तेज है।

(प) वर्षा

(१६) तस्माद् बृहतस्तोत्रे दुन्दुभीनुद्वादयन्ति वर्षुकः पर्जन्यो भवति। जै० ब्रा० १।१४३।।

अर्थात्—इसलिए बृहतस्तोत्र में दुन्दुभियों को बजाते हैं, बादल बरसने वाला होता है।

जब बादल घिरे हुए हों, तो ऊंचा शब्द करने से वर्षा आरम्भ हो जाती है। काश्मीर देश में अमरनाथ की यात्रा करते हुए हत्यारा तालाब के निकट ऊंचा बोलना वर्जित है। ऐसा करने से वहां बरफ गिरने लगती है। इस लिए ब्राह्मण का लिखना उचित ही है।[2]

वर्षा की विद्या प्राचीन आर्यावर्त्त में बहुत ही अच्छी तरह से जानी गयी थी। इसी विद्या का विशेष वर्णन वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में किया है। यज्ञों द्वारा शुद्ध हुआ वर्षा का जल अन्न और जलों

---

१. मै० सं० ४।३।३।। वर्षा सम्बन्धी प्रमाणों के लिए देखें, श० ब्रा० ७।५।२।३७।। मै० सं० १।१०।७।। ३।८।९।। ४।७।७।।

२. तुलना करें मै० सं० ३।८।९।। तथा का० सं० २५।१०।। से।

को शुद्ध करता है। शुद्ध अन्न, जल से शुद्ध शरीर बनते हैं, रोग नहीं होते। निरोग शरीर ही सब काम कर सकता है। इन्हीं कारणों से वर्षा सम्बन्धी विद्या में ब्राह्मणग्रन्थ वालों ने इतना परिश्रम किया।

(फ) समुद्र

(१) इमं लोकँ सर्वतः समुद्रः पर्येति।...इमं लोकं दक्षिणावृत्समुद्रः पर्येति। श० ब्रा० ७।१।१।१३॥

अर्थात्—इस पृथिवी लोक को समुद्र सब ओर से घेरता है।...इस पृथिवी को (पूर्व से) दक्षिण की ओर बहने वाला समुद्र घेरता है। (सूर्य की गति के अनुसार ही यह समुद्र की गति है।)

भूगोल के जानने वाले जानते हैं कि पृथिवी के दक्षिण की ओर ही समुद्र का अधिकांश भाग है।

(२) तस्मादिमांल्लोकान्त्सर्वतः समुद्रः पर्येति। शतपथ ब्राह्मण ६।१।२।३॥

अर्थात्—(इस सौर जगत् सम्बन्धी) सब ही लोकों को समुद्र सब ओर से घेरता है। अर्थात् पृथिवी के सिवा दूसरे लोकों की भी यही दशा है।

(ब) सूर्य

(१) सूर्यस्येव हि चन्द्रमसो रश्मयः। शतपथ ब्राह्मण ६।४।१।६॥ तथा देखें यजुर्वेद १८।४०॥

(२) स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति तं यदस्तमेतीति मन्यन्ते ऽह्न एव तदन्तमित्वा ऽथात्मानं विपर्यस्यते रात्रिमेवावस्तात् कुरुते ऽहः परस्तादथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते ऽहरेवावस्तात्कुरुते रात्रिं परस्तात्स वा एष न कदाचन निम्रोचति। ऐ० ब्रा० ३।४४॥[1]

अर्थात्—वह (सूर्य) न कभी अस्त होता है, न उदय होता है। उस (सूर्य) को जब अस्त हो रहा है, ऐसा (साधारण लोग) मानते हैं तो दिन के अन्त को प्राप्त करके अपने द्वारा दो विरोधी भाव उत्पन्न करता है, अर्थात् रात को ही इस ओर बनाता है, दिन को दूसरी ओर। और जो (साधारण लोग) मानते हैं, कि यह (सूर्य) प्रातः उदय होता है, तो रात के अन्त को प्राप्त होकर अपने द्वारा दो विरोधी भाव उत्पन्न करता है, अर्थात् दिन को ही इस ओर बनाता है, रात को उस ओर। वह (सूर्य) कभी नहीं डूबता।

(भ) प्राणापान

(१) प्राणापानौ पवित्रे। तै० ब्रा० ३।३।४॥

अर्थात्—प्राण और अपान पवित्र करने वाले हैं। पवित्रे कुशा के बने होते हैं। उन दोनों से यज्ञ में जल छिड़क कर पदार्थों को पवित्र करते हैं। पवित्र करने से ही उन का पवित्रे नाम पड़ा है। मनुष्य शरीर में भी रक्त को प्राणापान पवित्र करते हैं। इसी लिए ब्राह्मण कहता है, प्राणापान पवित्र करने वाले हैं।

प्राणोदान के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा है। शतपथ ब्राह्मण १।८।१।४४॥ में लिखा है—

(२) शतँ शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मितं तद्वदन्ति। अहोरात्राभ्यां पुरुषः समेन तावत्कृत्वः प्राणीत चाप चानिति॥ शतपथ ब्राह्मण १२।३।२।८॥

अर्थात्—१००×१००+८००=१०८०० इतने परिमाण वाला पुरुष है। इस लिए कहते हैं, दिन

---

१. तुलना करें, गोपथ ब्राह्मण, उ०, ४।११॥ से।

और रात में पुरुष इतनी बार ही प्राण लेता है। (और इतनी बार ही) अपान लेता है। अर्थात् १०८००+१०८००=२१६००।

हम शरीरशास्त्र सम्बन्धी समस्त आधुनिक ग्रन्थों से जानते हैं कि एक मिनट में पुरुष १५ बार श्वास लेता है। इस प्रकार एक घण्टे में ६०×१५=९०० श्वास हुए। और २४ घण्टों में ९००×२४=२१६०० श्वास ही बनते हैं।

(म) पृथिवी का इतिहास

माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण १४।१।२।१०।। में लिखा है—**इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा।** अर्थात् यह ही पृथिवी भुवनों में प्रथम उत्पन्ना...।

यही सत्य शतपथ ब्राह्मण ६।५।३।१।। में अन्यत्र भी प्रकट किया गया है—**इयमु (भूमिः) वा एषां लोकानां प्रथमा ऽसृज्यत।** अर्थात् यह भूमि ही इन लोकों में प्रथम उत्पन्न हुई।

भूमि-सृजन समय भूः व्याहृति—दैवी सृष्टि में भूः व्याहृति की उत्पत्ति के समय ही भूमि बनी थी। ब्राह्मणों में प्रवचन है—

स भूरिति व्याहरत। स भूमिमसृजत्। तै० ब्रा० २।२।४।२।।

अर्थात्—उस (प्रजापति) ने भूः शब्द उच्चारा। उस ने भूमि उत्पन्न की।[1]

प्रजापतिर्यदग्रे व्याहरत् स भूरित्येव व्याहरत्। स इमाम असृजत्। जै० ब्रा० १।१०१।।

अर्थात्— प्रजापति जो पहले बोला, वह भूः यही बोला। उस ने इस (पृथिवी) को उत्पन्न किया।

प्रजापति अथवा ईश्वर के व्याहरण से भूमि आदि सृष्टियां बनीं, यह भाव बाईबिल में भी है।[1]

ऋचा में अन्य शब्द द्वारा यही भाव—ऋग्वेद में अदिति-देवता-परक ऋचा है—**भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त** ।१०।७२।४।।

अर्थात्—भूमि अथवा भूः व्याहृति उत्पन्न हुई ऊपर उठे पांव वाले (प्रजापति रूपी वृक्ष) से। भुवः (व्याहृति) से आशाएं (अथवा अन्तरिक्ष) उत्पन्न हुईं।

बृहदारण्यक उपनिषद् २।२।३।। में प्राचीन श्लोक **अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः**[2] पाठ इसी भाव का द्योतक है। कठ उपनिषद् २।३।१।। का पाठ **ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषो ऽश्वत्थः सनातनः,** भी द्रष्टव्य है। इस उपनिषद् वाक्य का अनुवाद भगवद्गीता १४।१।। में **ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्** में दिखाई देता है।

आर्द्रा=शिथिला पृथिवी

(क) शतपथ ब्राह्मण में एक आश्चर्योत्पादक संदर्भ है—

अथ शर्कराः सम्भरति। देवाश्च वा असुराश्चोभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। सा हेयं पृथिवी अलेलायद्-यथा पुष्करपर्णमेवम्। तां ह स्म वातः संवहति।[3] **सोपैव देवान् जगाम। उपासुरान्। स यत्र देवान् उपा-**

---

१. बाइबिल के Chapter I. 3, 6, 9, 140 से तुलना करें।

२. नीचे की ओर छिद्र अर्थात् मुख वाला चमस, ऊपर मूल वा जड़ वाला है।

३. तां दिशो ऽनु वातः समवहत्। तै० ब्रा० १।१।३।।

अगाम ॥८॥

तद्धोचुः । हन्तेमां प्रतिष्ठां दृंहामहै । तस्यां ध्रुवायाम् अशिथिलायाम् अग्नी आदधामहै । ततोऽस्य सपत्नाद् निर्भक्ष्याम इति ॥९॥

तद् यथा शंकुभिः चर्म विहन्यात् । एवमिमां प्रतिष्ठां शर्कराभिः पर्यदृंहन्त ।

अर्थात्—तब कंकरों को एकत्र करता है। देव तथा असुर दोनों प्रजापति (हिरण्यगर्भ) के पुत्र स्पर्धा करने लगे। वह निश्चय यह पृथिवी लहलहाती थी जैसे कमलपत्र ऐसे। उस (पृथिवी) को वात ले जाती थी। वह (कभी) देवों के समीप जाती थी (कभी) असुरों के समीप। वहां जहां देवों के समीप आई। तब निश्चय (देव) बोले। आओ इस ठहरने के स्थान को दृढ़ करते हैं। उस में, स्थिर हुई में, ठोस हुई है, दो अग्नियां आधान करते हैं। तब इस के शत्रुओं को भाग-रहित करेंगे। तो जिस प्रकार कीलों से चमड़े को ठोक देवे, उसी प्रकार इस प्रतिष्ठा (=ठहरने के स्थान) को कंकरों से चारों ओर दृंहण किया।

उस समय पृथिवी अति शिथिला होगी। तभी उसे वात कभी ऊपर कभी नीचे ले जाती थी। देवों ने उसे कंकरों से दृढ़ किया।

आर्द्रा पृथिवी पर क्रमशः नौ सृष्टियां

इन नौ सृष्टियों का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है— स श्रान्तस्तेपानः फेनमसृजत ।......स श्रान्तस्तेपानो मृदं शुष्कापमूष सिकतं शर्कराम् अश्मानम् अयो हिरण्यम्-ओषधि-वनस्पति-असृजत । तेनेमां पृथिवीं प्राच्छादयत ॥१३॥ ता वा एता नव सृष्टयः ॥१४॥[1]

अर्थात्—उस श्रान्त और तप करते हुए (प्रजापति) ने (१) फेन को उत्पन्न किया।......उस श्रान्त और तप करते हुए ने (२) मृत् (३) शुष्कापम् (४) ऊष (५) सिकता (६) शर्करा (७) अश्मा (८) अयः और (९) ओषधि-वनस्पति को उत्पन्न किया। उस से इस पृथिवी को ढक दिया। वे ही ये नौ सृष्टियां हैं।

१. फेन

अग्नि और आपों के मेल का फल—इस मेल से फेन उत्पन्न हुआ। यथा—ताऽतप्यन्त। ताः फेनमसृजन्त ।[2] अर्थात्—वे आपः तपे (श्रमयुक्त हुए)। उन्हों ने फेन को उत्पन्न किया। शतपथ में पुनरपि ऐसा उल्लेख है—तस्माद् अपां तप्तानां फेनो जायते।

फेन का स्वरूप—ब्राह्मण ग्रन्थों में इस का स्पष्टीकरण है—

न वा एष शुष्को नार्द्रो व्युष्टासीत् । तै० ब्रा० १।७।१।६-७॥ श० ब्रा० १०।७।३।१-३॥

अर्थात्—न ही निश्चय से यह शुष्क था न गीला।

ऋग्वेद के मन्त्र ८।१४।३॥ में भी इसी फेन का निर्देश है—अपां फेनेन—नमुचेः शिरः। अर्थात्—आपों के फेन से......नमुचि के शिर को काटा।

फेन का अपर नाम—फेन का दूसरा नाम अपां अर्कः है। शतपथ ब्राह्मण में ही इस का स्पष्ट उल्लेख है—आपो वा अर्कः। तद् यद् अपां शर आसीत् तत् समहन्यत् सा पृथिवी अभवत् । १०।६।५।२॥

---

१. ६।१।१। श० ब्रा०।   २. ६।१।३।२॥ श० ब्रा०।

अर्थात्—आपः निश्चय ही अर्क (थे)। तो जो आपों का शर=मलाई रूपी झाग था, वह घना हुआ। वह पृथिवी हुई।

घनत्व—शतपथ ब्राह्मण के १०।६।५।२।। के पूर्व उद्धरण में फेन के घने हो जाने का वर्णन किया है। वह घनत्व कैसे उत्पन्न होता है, इसका सुन्दर वर्णन महाभारत, शान्तिपर्व में मिलता है—

आकाशादभवद् वारि सलिलादग्निमारुतौ।
अग्निमारुतसंयोगात्ततः सम्भवन्मही ।।१८०।१६।।

अर्थात्—आकाश से वारि उत्पन्न हुए, सलिल (=वारि) से अग्नि और मारुत। अग्नि और मारुत के संयोग से तब पृथिवी हुई।

अग्निः पवनसंयुक्तः खात् समुत्क्षिपते जलम्।
सोऽग्निमारुतसंयोगाद् घनत्वमुपपद्यते ।।१८१।१५।।
तस्याकाशान्निपततः स्नेहस्तिष्ठति यो ऽपरः।
स संघातत्वमापान्नो भूमित्वमनुगच्छति ।।१८१।१६।।

अर्थात्—पवन से युक्त होकर अग्नि आकाश से जल को उत्पन्न करता है। वह जल अग्नि और मारुत के संयोग से घनत्व को प्राप्त होता है। उस आकाश से गिरते हुए जल में जो स्नेह-रूपी गुण होता है वह संघात को प्राप्त होकर पृथिवी भाव को प्राप्त होता है।

दूध का उदाहरण—अब भी दूध के उबल जाने के पश्चात् वायु के स्पर्श से दूध पर मलाई आती है। यदि उबला हुआ दूध तत्काल ढांप दिया जाए और उसका वायु से स्पर्श सर्वथा न हो, तो मलाई नहीं आती। इसी प्रकार आपों के तप्त होने पर वायु-स्पर्श से उन पर फेन बना। दूध को जमाते समय भी ढांप देने पर दही पर मलाई नहीं होती।

शतपथ ब्राह्मण ६।५।१।३।। में लिखा है—यदेव तत् फेनो द्वितीयं रूपम् असृज्यत।

अर्थात्—वह फेन रूप जो दूसरा रूप उत्पन्न हुआ। आपः एक रूप था, और फेन उसका दूसरा रूप।

२. मृत् (मिट्टी)

स (फेनः) यदोपहन्यते मृदेव भवति। शत० ६।१।३।३।।

अर्थात्—वह फेन जब घना (कठोर) हो जाता है, (तब) मृत् ही हो जाता है।

दो प्रधान रूप—इस पृथिवी पर दो रूप प्रधान हैं। शतपथ ब्राह्मण ६।४।१।३।। में लिखा है—अथो द्वयं ह्येव एतद् रूपं मृच्च आपश्च।

अर्थात्—मृत् और आपः दो ही रूप हैं।

अथ यत्तत् कपालमासीद् एषा सा मृत्। शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।२८।।

अर्थात्—फिर वह जो कपाल था, यही वह मिट्टी है। इस से प्रतीत होता है कि अण्ड के अधो भाग की त्वक् मृत् बन चुकी थी।

यन्मृद् इयं तत् (पृथिवी)। शतपथ ब्राह्मण १४।१।२।६॥

अर्थात्—जो मृत् रूप है, वही पृथिवी है।

जब भूमि हिरण्यगर्भ से पृथक् हुई तब वह सलिल-रूपा थी। उस में पार्थिव परमाणु जल-लीन थे। उस सलिलमयी भूमि में शर अथवा फेन उत्पन्न हुआ। कपाल के बाह्य भाग से और फेन के कारण मृत्तिका का प्रादुर्भाव हुआ। इस से स्पष्ट है कि मृत्तिका पृथिवी रूपी मूल तत्त्व नहीं है। आरम्भ में पार्थिव परमाणु क्या रूप रखते थे, इस का अध्ययन अभीष्ट है।

उस सलिलमयी भूमि के सलिल को कौन-सी शक्तियां अन्तरिक्ष में शीर्ण होने से बचाती थीं, इस के प्रमाण गवेषणा योग्य हैं।

अल्पा पृथिवी—पार्थिव परमाणुओं से आरम्भ में जो मृत्तिका रूप बना, वह विस्तार में अल्प था। विज्ञान के ग्रन्थों में लिखा है—

(क) **अथ वै तर्हि अल्पा पृथिव्यासीद्, अजाता ओषधयः।** तै० सं० २।१।२॥

(ख) **यावद् वै वराहस्य चषालं तावतीयमग्र आसीत्।** मै० सं० १।६।३॥

(ग) **एतावती वा इयं पृथिव्यासीद् यावती उत्तरवेदिः।** का० सं० २५।६॥

(घ) **इयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री, तामेमूष इति वराह उज्जघान।** शत १४।१।२।११॥

इन सब का भाव यह है कि आरम्भ में पृथिवी का परिमाण वराहचषाल, उत्तरवेदि, अथवा प्रादेशमात्र था। तब पृथिवी अति अल्पा थी।

४. ऊष (Saline Earth)

ऊसर भूमि साथ की उपजाऊ भूमि को भी ऊसर बनाती रहती है, यह सार्वजनिक तथ्य है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—**असौ ह वै द्यौरस्यै पृथिव्या एतान् पशून् प्रददौ। तस्मात् पशव्यमूषरमाहुः।...त ऽमुत आगता अस्यां पृथिव्यां प्रतिष्ठिताः। तमनयोर्द्यावापृथिव्यो रसं मन्यन्ते।**

अर्थात्—निश्चय ही उस द्यौ ने इस पृथिवी के लिए इन पशुओं को दिया। इसलिए ऊषर भाग पशव्य (=पशुओं के लिए हितकारी) कहाता है।......वे पशु वहां (द्यौ) से आए हुए इस पृथिवी में ठहरे हैं। उस (ऊषर) को द्यु लोक और पृथिवी लोक का रस मानते हैं।

ऊष अथवा ऊषर का पशुओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए अन्यत्र कहा है—**पशव ऊषाः।**[1] अर्थात्—पशु ही ऊष है।

ऊपर के वचन से स्पष्ट है कि उक्त वचन में पठित पशु पार्थिव पशु नहीं हैं क्योंकि इन पशुओं को द्यु लोक से आया हुआ कहा है, तथा ऊषर भूमि इन पार्थिव पशुओं के लिए हितकारी नहीं है। पार्थिव अथवा मानुष पशु तो हरित भूमि को चाहते हैं।

---

१. ७।१।१।६॥ शतपथ ब्राह्मण।

पशु—ऊषर भूमि के तत्त्व को समझने के लिए 'पशु' पद का आधिदैविक अर्थ जानना अत्यावश्यक है। पशु का अर्थ है जो नेत्रेन्द्रिय से देखा जाए अथवा जो चतुष्पाद[1] हो। द्यु लोक और अन्तरिक्ष लोक से उत्पन्न वे कण अथवा रेणु अथवा पांसु[2] जो अंधेरी रातों के समय अथवा अन्य किसी प्रकार से देखे जाएं पशु हैं। ब्राह्मण कहता है—

(क) (प्रजापतिः) तेषु (पशुषु) एतम् (अग्निम्) अपश्यत्, तस्मादेवैते पशवः। ६।२।१।४॥ श० ब्रा०।

अर्थात्—प्रजापति ने इन पशुओं में अग्नि को देखा, इसलिए ही ये पशु हैं।

सम्भवतः इन में भौतिक अग्नि और सौर अग्नि दोनों का योग है। अग्नियोग से ही ये दृष्टि का विषय बने। अन्यत्र भी लिखा है—

(ख) आग्नेयो वाव सर्वः पशुः। ऐ० ब्रा० २।६॥

(ग) आग्नेयाः पशवः। तै० ब्रा० १।१।४।३॥

अर्थात्—पशुओं में अग्नि का योग है।

इसलिए शतपथ ब्राह्मण ६।४।१।२॥ में कहा है—

(घ) पृथिव्या उपस्थाद् अग्निं पशव्यम्।

अर्थात्—पृथिवी के उपस्थ से पशुओं के लिए हितकारी अग्नि को......।

(ङ) पशुर्वा अग्निः। अग्निमुखान् प्रजापतिः पशूनसृजत्। कपिष्ठल ३१।१९॥

अर्थात्—पशु ही अग्नि है। प्रजापति ने अग्निमुख (=अग्नि प्रधान) पशुओं को उत्पन्न किया।

(च) सर्वे पशवो यदग्निः। तस्मादग्नौ पशवो रमन्ते। श० ब्रा० ६।१।४।१२॥

अर्थात्—सब पशु (हैं) जो अग्नि। इसलिए अग्नि में पशु रमण करते हैं।

(छ) वायुप्रणेत्रा वै पशवः। श० ब्रा० ४।४।१।१५॥

(ज) अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः। तै० ब्रा० ३।२।१।३॥

(झ) तस्मादन्तरिक्षायतना वै पशवः। श० ब्रा० ८।३।२।९॥

(ञ) पशवो वै मरुतः। ऐ० ब्रा० ३।१९॥

(ट) पशवो वै वयांसि। श० ब्रा० ९।३।३।७॥

इन सब का भाव यह है कि अन्तरिक्ष स्थानीय वायु, मरुत् तथा वयांसि (पार्थिव पक्षी नहीं) आदि का पशुओं के साथ सम्बन्ध है।

रुद्र भी अन्तरिक्ष स्थानीय है। रुद्र का विद्युत् के साथ सम्बन्ध है। अन्तरिक्षस्थ पशु रुद्र से आग्नेय योग प्राप्त करते हैं। इसलिए रुद्र पशुपति कहाता है। रुद्र का वाहन आखु भी अन्तरिक्षस्थ पशु है।[3]

---

१. २३।८८, ९४॥ वायु पुराण।

२. समूढमस्य पांसुरे। ऋ० १।२२।१७॥

३. आखुस्ते (रुद्रस्य) पशुः। २।६।२।१०॥ श० ब्रा०।

(ठ) वैव्या वा एता विशो यत् पशवः। श० ब्रा० ३।७।३।९॥

अर्थात्—द्यु लोक की प्रजाएं हैं जो पशु [हैं]।

अतः स्पष्ट है कि पृथिवी के ऊषर भाग केवल पार्थिव-परिणाम नहीं हैं, प्रत्युत् द्यु और अन्तरिक्षस्थ पशुओं का इन में योग है।

- वर्तमान विज्ञान वेत्ता इस ऊषर को सोडियम नाईट्रेट (Sodium Nitrate) अथवा पोटेशियम नाईट्रेट (Potassium Nitrate) का नाम देते हैं। लवण में भी सोडियम का प्रधान भाग होता है। आयुर्वेद की सुश्रुत आदि संहिताओं में षड्रस के व्याख्यान में लवण को आग्नेय कहा है।[1] क्या समुद्री जल में लवण का अत्यधिक भाग इन पशुओं से सम्बन्ध रखता है ?

पृथिवी का विस्तार—ऊषरों के बनने से पूर्व ही पृथिवी का विस्तार पर्याप्त हो चुका था। यद्यपि पृथिवीस्थ उपलब्ध ऊष-स्थान वर्तमान मन्वन्तर की कई घटनाओं का फल हैं तथापि उन का मूल पृथिवी की प्रथमोत्पत्ति के समय से विद्यमान था।

५. सिकता

ऊष अथवा ऊषर के अनन्तर सिकता की उत्पत्ति हुई। वैदिक ग्रन्थों में सिकता की उत्पत्ति का वर्णन निम्न प्रकार से मिलता है—

(क) स (मृत्) अतप्यत् सा सिकता असृज्यत। श० ब्रा० ६।१।३।४॥

अर्थात्—मृत् तप्त हुई, वह सिकता बनी।

(ख) एषा वा अग्निर्वैश्वानरो यवसा आदित्यः। स यद् इह आसीत् तस्यैतद् भस्म यत् सिकता।[2]

(ग) अग्नेर्वा एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत् सिकताः। कपिष्ठल ३१।९॥

अर्थात्—यह निश्चय से अग्नि वैश्वानर है। जो यह आदित्य है वह (आदित्य) जो यहां था उस की यह भस्म है जो सिकता है।

आदित्य कभी पृथिवी के अति समीप था।

पृथिवी की त्वचा पर ही नहीं, अपितु इस के बहुत नीचे के स्तरों में भी सिकता मिलती है। सिकता का उस स्तर में अस्तित्व पृथिवी की प्राथमिक दशा में भी था व नहीं। अथवा वर्तमान मन्वन्तर में ही हो गया, ये बातें विज्ञान के अध्ययन का विषय हैं। निम्न स्तरों में सिकता की उपस्थिति आदि में भी थी। यह जानना आवश्यक है कि वहां पर आदित्य का प्रभाव कैसे हुआ और वैश्वानर अग्नि ने कैसे अपना कार्य किया।

(घ) भाजन्त इव हि सिकता। अग्नेर्वा एतद् वैश्वानरस्य भस्म यत् सिकता। श० ब्रा० ३।५।१।३६॥

अर्थात्—प्रकाशमान के समान है सिकता। निश्चय से वैश्वानर अग्नि की यह भस्म है यह सिकता।

---

१. सुश्रुत का पाठ है—'कटु-अम्ल-लवणा आग्नेयः'। सूत्र स्थान ४२।७॥ चरक में भी लिखा है—सलिलाग्नि-भूयिष्ठत्वाल्लवणः। सूत्र० २६।४०॥

२. १।६।३॥ मै० सं०।

रेत के कणों में चमक है, यह कौन नहीं जानता।

(ङ) अग्नेरेतद् वैश्वानरस्य रेतो यत् सिकता। श० ब्रा० ७।१।१।१०, ४१॥
निश्चय से अग्नि वैश्वानर का यह रेत है, जो सिकता है।

शतपथ ब्राह्मण ७।५।२।५६॥ में सिकता को आपों का पुरीष कहा है—सिकता वा अपां पुरीषम्।

दो प्रकार की सिकता—शतपथ ब्राह्मण ७।३।१।४३॥ में दो प्रकार की सिकता का उल्लेख मिलता है—द्वे हि सिकते, शुक्ला च कृष्णा च। अर्थात् दो ही प्रकार की सिकता है, शुक्ला और कृष्णा।

सिकता को अंग्रेजी में silica कहते हैं। इस में सिलिकोन तथा आक्सीजन होती है (SiO_2)। सिलिकोन कभी स्वतन्त्र नहीं मिलती। उस की आक्सीजन (वैश्वानर अग्नि ?) से घनिष्ठ मैत्री है।

पृथिवी के आरम्भिक दिनों में सिलिकोन का स्वतन्त्र अस्तित्व अवश्य था। पर आदित्य के समीप होने से किस प्रकार उस ने आक्सीजन से मेल कर लिया, यह जानने योग्य है।

६. शर्करा

सिकता के अनन्तर शर्करा की उत्पत्ति हुई। शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।५॥ में लिखा है—सिकताभ्यः शर्कराम्। अर्थात् सिकता से शर्करा उत्पन्न हुए।

शर्करा का अर्थ है, कंकर। शर्करा का वर्णन वैदिक ग्रन्थों में इस प्रकार मिलता है—

(क) इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत। तस्य या विप्रुषा आसंस्ताः शर्करा अभवन्।[1] मै० सं १।६।३॥
अर्थात्—इन्द्र ने निश्चय से वृत्र के लिए वज्र[2] का प्रहार किया, उस के जो छींटे थे वे शर्करा हो गए।

(ख) इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्। स त्रेधा व्यभवत्, स्फ्यस्तृतीयं रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयम्, ये ऽन्तः शरा अशीर्यन्त ताः शर्करा अभवन्। तै० सं० ५।२।६॥

अर्थात्—इन्द्र ने वृत्र के लिए वज्र का प्रहार किया, वह (वज्र) तीन प्रकार से हो गया। स्फ्य, रथ और यूप। जो उस (वज्र) के भीतर के शर बिखरे वे शर्करा हो गए।

(ग) तेजो वा अग्नौ अवधुर्यच्छर्करा। काठक संहिता ८।२॥

अर्थात्—तेज ही अग्नि में रखा जो शर्करा है।

शर्करा से पृथिवी का बृंहण—पहले पृथिवी दलदल के समान अकठोर थी। उस के ऊपर के तह पर ऊषर और सिकता के उत्पन्न हो जाने पर भी आन्तरिक भाग अभी कठोर नहीं हुआ था। पृथिवी के आन्तरिक भाग में शर्करा की उत्पत्ति होने पर उस का आन्तरिक भाग भी दृढ़=कठोर हुआ। विज्ञान के ग्रन्थों में लिखा है—

---

१. १।६।३॥ मैत्रायणी संहिता।

२. ओले अथवा हिमपात के समय गिरने वाले हिमकणों को आज भी जन साधारण की भाषा में वज्र अथवा बजरी कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—वज्रो वा आपः। १।७।१।२०॥
कौषीतकी ब्राह्मण में इस की व्याख्या है—आपः इति। तत् प्रथमं वज्ररूपम्। १२।२॥ इन्हीं आपः के हिमभूत कंकर वज्र हैं। यही इन्द्र का आयुध है।

(क) शिथिरा वा इयमग्र आसीत् । तां प्रजापतिः शर्कराभिरदृंहत् ।[1]

(ख) आर्द्रेव हीयमासीत् । तां देवाः शर्कराभिरदृंहत् ।[2]

(ग) आर्द्रेव हीयमासीत् । तां देवाः शर्कराभिरदृंहन् ।[3]

(घ) एवमिमां प्रतिष्ठां शर्कराभिः पर्यबृंहन्त ।

इन सब का भाव यह है कि पहले पृथिवी ढीली अथवा आर्द्रा के समान थी । उस में शर्करा की उत्पत्ति हुई और शर्करा के द्वारा पृथिवी का दृंहण हुआ । नदियों और पर्वतों से भी पृथिवी का दृंहण हुआ । आज भी भवन आदि के निर्माण के लिए नींव में शर्करा=कंकर=बजरी कूटकर नींव स्थल की भूमि का दृंहण किया जाता है ।

७. अश्मा

शर्करा के अनन्तर अश्मा (=पाषाण) की उत्पत्ति हुई । शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।३।। में लिखा है—शर्कराया अश्मानम् (असृजत) । तस्मात् शर्कराश्मैव अन्ततो भवति । अर्थात् शर्करा से अश्मा को उत्पन्न किया । इसलिए शर्करा अश्मा ही अन्त में बन जाती है ।

तस्य (वृत्रस्य) एतच्छरीरं यद् गिरयो यदश्मानः । श० ब्रा० ३।४।३।१३।।

अर्थात्—उस वृत्र का ही यह शरीर है जो गिरि और अश्मा हैं ।

शर्करा के छोटे-छोटे कण एकत्र हुए, और संपीडन द्वारा संहत होकर अश्मा बने ।

८. अयः और हिरण्यम्

अश्मा के अन्तर अयः=लोह की उत्पत्ति हुई । धातुओं में अयः प्रथम धातु है । लोह के अनन्तर अन्य धातु बने । हिरण्य अर्थात् सुवर्ण अन्तिम धातु है ।

९. ओषधि-वनस्पति का प्रादुर्भाव

ओषधि वनस्पतियों के प्रादुर्भाव से पूर्व पृथिवी की अवस्था कैसी थी, इस के निदर्शक कतिपय वचन आगे उद्धृत किए जाते हैं—

(क) काल्वाली कृता हेयं तर्हि पृथिव्यास । माध्यन्दिन शत० २।२।४।३।। काण्व शत० १।२।४।।

अर्थात्—गञ्जी थी निश्चय से यह पृथिवी ।

(ख) अथ वै तर्हि अल्पा पृथिव्यासीद् अजाता ओषधयः ।

अर्थात्—निश्चय से अल्पा पृथिवी थी, नहीं पैदा हुई थीं ओषधियां ।

(ग) ऋक्षा ह वा इयमग्र आसीत् । तस्यां देवा रोहिण्यां वीरुधोऽरोहयन् । मै० सं० १।६।९।२।।

अर्थात्—लोम रहित[4] निश्चय से यह पृथिवी पहले थी । उस में देवों ने रोहिणी में वीरुत्=लताओं को लगाया ।

---

१. १।६।३।। मै० सं० ।
२. २।१।। कां० सं० ।
३. ६।६।। कपिष्ठल काठ संहिता ।
४. ऋक्ष का अर्थ लोम रहित है, यह अगले उद्धरणों से स्पष्ट है ।

रोहिणी नक्षत्र ने पृथिवी पर ओषधि वनस्पतियों के प्रादुर्भाव में सहायता दी यह जानने योग्य है।

(घ) अथ वा इयं तर्हि ऋक्षासीद् अलोमिका। तेऽब्रुवन् तस्मै कामायालभामहै यथास्यामोषधयश्च वनस्पतयश्च जायन्ता इति।[1] अर्थात् निश्चय से यह ऋक्षा थी लोम-रहिता। वे देव बोले—उस काम के लिए आलंभन करते हैं जैसे इस में ओषधियां और वनस्पतियां उत्पन्न हों।

(ङ) त इमे लोका अभवन् ऋक्षा अनुपजीवनीयाः। कथमिमे लोका लोम गृह्णीयुः।[2] अर्थात् वे ये लोक थे ऋक्ष अनुपजीवनीय, प्राण धारण करने के अयोग्य'।......किस प्रकार ये लोक लोम ग्रहण करें।

(च) इयं वा अलोमिकेवाग्र आसीत्।[3]

(छ) ओषधिवनस्पतयो वै लोमानि।[4]

अर्थात्—यह निश्चय से लोम रहित के समान आरम्भ में थी। ओषधि वनस्पतियां ही निश्चय से लोम हैं।

इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि ओषधि वनस्पतियों की उत्पत्ति से पूर्व यह पृथिवी गञ्जी-सी थी। अतएव इसे 'कूर्मपृष्ठनिभा' (कछुए की पीठ के समान कठोर, लोम रहित) भी कहा जाता है।

ओषधी वनस्पति की उत्पत्ति—अयः हिरण्य की उत्पत्ति के पश्चात् पृथिवी पर ओषधि वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई। ओषधि वनस्पतियों की उत्पत्ति में सोम का प्रधान हाथ था। इसी लिए वैदिक ग्रन्थों में लिखा है—सोम ओषधीनामधिपतिः।[5] अर्थात् सोम ओषधियों का अधिपति है। सोम का स्थान द्यु लोक है। द्यु लोक से पृथिवी पर सोम के अवतरण में वृत्र और आदित्य रश्मियां सहायक होती हैं। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—सोमं वै राजानं यत् सुपर्ण आहरत् समभिनत् तस्य या विप्रुषो अपतंस्ता एवेमा ओषधयोऽभवन्। सर्वा उ ह वै सौम्या ओषधयः।[6] अर्थात् निश्चय से सोम राजा का सुपर्ण ने जो आहरण किया था, उस के जो छींटे गिरे, वे ही ओषधियां हुईं। सब ही ओषधियां निश्चय से सौम्य हैं।

सोम और पृथिवी के संयोग से पहले बीज की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् ओषधि तथा वनस्पति की। मैत्रायणी संहिता ३।१।५।। में लिखा है—प्राचीनं वै सोमीरोषधयः। प्रतीचीनं रौद्रीः। न हि प्राचीनं शुष्यन्ति। शुष्यन्ति प्रतिचीनम्। अर्थात् ओषधियों का मूल-भाग सोम-प्रधान रहता है। ऊपर का अन्तिम भाग अग्नि-प्रधान रहता है। मूल सूखते नहीं। सूखते हैं ऊपर के भाग। ऐसा ही भाग शतपथ ब्राह्मण १।३।६।४।। में व्यक्त है।

---

१. २।५।२।। मै० सं० तथा देखें तै० सं० ७।४।३१।। ता० ब्रा० २०।१४।५।।

२. २।२४४।। जै० ब्रा०।

३. २४।२२।। ऐ० ब्रा०।

४. २।५४।। जै० ब्रा०।

५. अथर्व वेद।

६. १।३५५।। जै० ब्रा०।

आग्नेयी पृथिवी

विज्ञान के ग्रन्थों में पृथिवी को बहुधा आग्नेयी अर्थात् आग्नेय परमाणुओं से ओत-प्रोत कहा है—

(क) आग्नेयी पृथिवी। तां० ब्रा० १५।४।८॥

अर्थात्—अग्नि से युक्त है यह पृथिवी।

(ख) आग्नेयोऽयं लोकः। जै० उ० १।३७।२॥

अर्थात्—अग्नि से युक्त है यह (पृथिवी) लोक।

इस लोक को ही प्रधानता से आग्नेय कहा है। दूसरे लोकों को नहीं। इस का कारण भी जानने योग्य है। अनेक पार्थिव पदार्थों में आग्नेय योग अधिक है और अनेक में न्यून। यथा गन्धक अथवा शुल्वारि (=sulphur) में यह अधिक है। इसी प्रकार शमी, अश्वत्थ और वेणु में अधिक और दूसरे काष्ठों में न्यून। जो धातु अधिकाधिक ताप से पिघलती है, उस में आग्नेय योग न्यून प्रतीत होता है ?

गन्ध युक्त पदार्थ आग्नेय योग के कारण ऐसे हैं। शतपथ ब्राह्मण ३।५।२।१७ में कहा है—गन्धो हैवास्य (अग्नेः) सुगन्धितेजनम्।

गुग्गुल आदि वृक्ष भी ऐसे हैं। गन्धक में गन्ध का कारण यही है। सुवर्ण आग्नेय है।[1]

अग्निगर्भा पृथिवी

पृथिवी त्वक् पर अधिक अग्नि नहीं है। अतः पृथिवी में अग्नि का सर्वाधिक योग कहां है, यह विचारणीय है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—

(ग) अग्निगर्भा पृथिवी। शतपथ ब्राह्मण १४।९।४।२१॥

अर्थात्—अग्नि गर्भ में है पृथिवी के।

याजुष मन्त्र और उस का ब्राह्मण अति स्पष्ट रूप में कहते हैं—

(घ) माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं[2] बिभर्तु गर्भ आ इति। यजुः ११।५७॥

(ङ) यथा माता पुत्रमुपस्थे बिभृयादेवमग्निं गर्भे बिभर्त्वित्ति। शतपथ ब्राह्मण ६।५।१।११॥

अर्थात्—माता पुत्र को जैसे उपस्थ (=गोद अथवा गर्भ) में धारण करती है (उसी प्रकार) वह (पृथिवी) अग्नि को[2] धारण करे गर्भ में।

यही तथ्य अन्य प्रकार से—पृथिवी के गर्भ में अग्नि का वास है, यह भाव अन्य प्रकार से भी व्यक्त किया गया है। शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन है—

त्रिवृद् हि-इयम् (पृथिवी)। ६।५।५।२॥

अर्थात्—तीन वृतों वाली यह पृथिवी है। इस की विषद व्याख्या ताण्ड्य ब्राह्मण में मिलती है—

---

१. देखें, कपिष्ठल कठ संहिता ३९।४॥

२. कपिष्ठल कठ संहिता ३४।१॥ में इस मन्त्र के पाठ में अग्नि का विशेषण 'पुरीष्य' है। पुरीष्य अग्नि विषयक एक वचन हम आगे पृ० १९४ पर उद्धृत करेंगे। तथा देखें मै० सं० २।७।११॥ का पाठ।

अग्निना पृथिव्या—ओषधिभिः—तेनायं (पृथिवी) लोकः त्रिवृत् । १०।१।१॥

अर्थात्—अग्नि से, पृथिवी से ओषधियों से यह लोक त्रिवृत् है।

अग्नि सब से भीतर, उस के चारों ओर पृथिवी, और पृथिवी पर ओषधियां। सब से भीतर आग्नेय परमाणु हैं। पृथिवी के भीतर नदियां आदि हैं।

निस्सन्देह महाभूत अग्नि आदि के अस्तित्व को स्वीकार किए बिना जगत्-चक्र समझ में नहीं आ सकता।

एतद्विषयक वर्तमान-विचार—वर्तमान पाश्चात्य वैज्ञानिकों के एतद्विषयक विचारों का संग्रह गेमो के निम्नलिखित वचनों में मिलता है—

1. It isn't, however, difficult to see that there must have been a time when no such solid crust existed at all, and when our Earth was a glowing globe of melted rocks. In fact, the study of the Earth's interior indicates that most of its body is still in a molten state, and that the "solid ground" of which we speak so casually is actually only a comparatively thin sheet floating on the surface of the molten magma. The simplest way to arrive at this conclusion is to remember that the temperature measured at different depths under the surface of the Earth increases at the rate of about 30°C per kilometer of depth (or 16°F per thousand feet) so that, for example, in the world's deepest mine (a gold mine in Robinson Deep, South Africa) the walls are so hot that an air-conditioning plant had to be installed to prevent the miners from being roasted alive.

At such a rate of increase, the temperature of the Earth must reach the melting point of rocks (between 1200°C and 1800°C) at a depth of only 50 km beneath the surface, that is, at less than 1 per cent of the total distance from the centre. All the material farther below, forming more than 97 per cent of the Earth's body, must be in a completely molten state."[1]

अर्थात्—यह देखना कठिन नहीं कि कभी पृथिवी-त्वक् ठोस सिक्कड़ रूप में न थी, प्रत्युत पिघली चट्टानों का एक जलता गोला था। पृथिवी के अन्दर का अध्ययन प्रकट करता है कि पृथिवी का अधिकांश अब भी पिघली दशा में है। "ठोस भूमि" तो तुलना की दृष्टि से एक पतली चादर सी है। यह चादर पिघले द्रव्यों पर तैरती है। पृथिवी के अन्दर का ताप प्रति सहस्र-फुट नीचे की ओर १६ डिगरी फारेनहाईट बढ़ता है। दक्षिण अफ्रीका की सोने की रोबिनसन कान में, जो संसार की सबसे गहरी कान है, दीवारें इतनी गरम हैं कि मनुष्य उस में भुन जाए, पर उसे ठण्डा रखने का प्रबन्ध है।

पृथिवी का ९७ प्रतिशत अंश पिघली दशा में है।

---

1. p. 27-28, Biography of the Earth.

गेमो फिर लिखता है—

२. the temperature of the rocks steadily increases as we dig deeper and deeper beneath the surface.[1]

अर्थात्—चट्टानों का ताप जितना हम गहरा पहुँचते जाएं क्रमशः बढ़ता जाता है।

पुनः वह लिखता है—

३. during the last two billion years the temperature of most of the Earth has remained practically unchanged, and that the cooling effect has been confined to the outer parts of its body.[2]

अर्थात्—गत २०००,०००,०००,००० वर्षों में पृथिवी का ताप लगभग समान रहा है। शीत प्रभाव पृथिवी त्वक् तक ही सीमित है।

इस पर प्रश्न होता है कि क्या यह पृथिवी आरम्भ से ही आग्नेयी थी अथवा उत्तर काल में इस में अग्नि का प्रवेश हुआ। हमारा अध्ययन बताता है कि आरम्भ में पृथिवी आग्नेयी नहीं थी। यदि वह आरम्भ में आग्नेयी होती तो वह आद्यन्त आर्द्रा न होती।[3]

कृष्ट और अकृष्ट भूमि में उत्पन्न ओषधियों द्वारा भूमिस्थ अग्नि के ग्रहण किए जाने से भी पृथिवी की अतिदाह से रक्षा होती रहती है। यह आगे स्पष्ट किया गया है।

दारुगत अग्नि—महाभारत शान्तिपर्व में श्लोक है—

> अग्निर्दारुगतो यद्वद् भिन्ने दारौ न दृश्यते।
> तथैवात्मा शरीरस्थ ऋते योगान्न दृश्यते॥ ११२।५६॥

मैत्रायणी संहिता २।७।१०॥ में लिखा है—

> गर्भो तस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्।
> गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि॥

अर्थात् गर्भ ही ओषधियों का, गर्भ वनस्पतियों का, हे अग्ने!

ओषधि—शतपथ २।२।४।५ के अनुसार ओषधि पद का अर्थ है, ओषं धय इति, अर्थात् दाह शक्ति को धारण कर। इस से प्रतीत होता है कि ओषधियां आदि पृथिवी-गत आग्नेय परमाणुओं को ग्रहण करती रहती हैं। इन में आग्नेय परमाणुओं का प्रवेश जल के साथ होता है, अथवा किसी अन्य प्रकार से, यह विवेचनीय है। यही कारण है कि अत्यधिक आग्नेय परमाणु पृथिवी के अन्दर समाविष्ट नहीं रहते। इस विषय में कपिष्ठल-कठ का वचन है—तस्मादग्निर्मथ्यत ओषधीः प्रविष्टः। ४१।७॥

वृक्षों में से कुछ एक में आग्नेय-परमाणु बहुत अधिक होते हैं, इस के प्रमाण भी मिलते हैं। यथा—शमी। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।३।११ में पाठ है—प्रजापतिः अग्निमसृजत। सोऽबिभेत। प्र मा धक्ष्यतीति। तं शम्या अशमयत्। अर्थात् प्रजापति ने अग्नि को उत्पन्न किया। वह डरा। यह मुझे अधिक जला देगा। उस

---

१. p. 71. २. p. 99. ३. द्रष्टव्य—पूर्व पृष्ठ १८१-१८२ के प्रमाण।

(अग्नि को) शमी से शान्त किया।

अश्वत्थ—पुनः तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।३।९।। में लिखा है—अग्निर्देवेभ्यो निलायत। अश्वो रूपं कृत्वा। सोऽश्वत्थे संवत्सरमतिष्ठत्। तदश्वत्थस्याश्वत्थत्वम्। अर्थात् अग्नि देवों से छिपा। (परमाणुओं का) अश्व रूप कर के। वह अश्वत्थ में संवत्सर पर्यन्त ठहरा। यही अश्वत्थ का अश्वत्थपन है।

वैदिक शब्द किस प्रकार से अपना अर्थ देते हैं, इस सत्य के ओषधि और अश्वत्थ शब्द उज्ज्वल उदाहरण हैं।

स्मरण रहे कि यज्ञीय अग्नि उत्पन्न करने के लिए अश्वत्थ और शमी ही अरणी रूप में रखे जाते हैं।

वेणु—शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।३१।। में कहा है—अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्। स वेणुं प्राविशत्। स सुषिरः। अर्थात् अग्नि देवों से ऊपर भागा। वह बांस में प्रविष्ट हुआ। वह (वेणु) अच्छे सिर वाला (अर्थात् नाली वाला, खोखला है)।

मुञ्ज—शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।२६।। का वचन है—सैषा योनिरग्नेर्यन् मुञ्जः। अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्स मुञ्जं प्राविशत्। तस्मात् स सुषिरः।

अग्नि कणों का पृथिवी-प्रवेश—अग्नि किस प्रकार पृथिवी में प्रविष्ट हुआ, इस विषय का कपिष्ठल कठ संहिता में एक मन्त्र है—ये अग्नयः पुरीषिण आविष्टा पृथिवीमनु। ३५।३।।

अर्थात्—जो अग्नियां पुरीषी[1] (अन्दर) प्रविष्ट हुईं पृथिवी में पीछे से।

ये पुरीषी अग्नियां क्या हैं, यह अनुसन्धेय है। यास्कीय निघण्टु में पुरीष पद जल-नामों में पढ़ा गया है।

हम पूर्व पृष्ठ १९० पर माध्यन्दिन संहिता का एक मन्त्र और उस के ब्राह्मण का प्रवचन उद्धृत कर चुके हैं। कपिष्ठल कठ संहिता ३४।१।। में उस मन्त्र का पाठ निम्नलिखित है—

मातेव पुत्रं पृथिवीं पुरीष्यमग्निं स्वे योनावभारुखा।

इस पाठ में अग्नि का विशेषण पुरीष्य है। पुरीषिन् अथवा पुरीष्य, इन दोनों पदों का एक ही अभिप्राय है। सायण अपने ऋग्वेद भाष्य ३।२२।४।। में लिखता है—पुरीष्याः=सिकता संमिश्राः।

पार्थिव-अग्नि सम्बन्धी निम्न ब्राह्मण-वचन देखने योग्य है—

अग्निरसि पृथिव्यां श्रितः। तै० ब्रा० ३।११।१।७।।

अर्थात्—तू अग्नि है, पृथिवी में रखा हुआ।

पृथिवी में अग्नि के प्रवेश का उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।३।३।। में अधिक स्पष्ट शब्दों में किया गया है। यथा—अग्निर्देवेभ्यो निलायत। आखूरूपं कृत्वा। स पृथिवीं प्राविशत्।[2]

---

१. तुलना करें—(क) अयोवशाग्नेः चितिपुरीषाणि। ६।३।३।९।। श० ब्रा०।
(ख) अग्निं पुरीष्यम् अङ्गिरस्वदाभरा। २।७।२।। मै० सं०।

२. तुलना करें कपिष्ठल कठ संहिता ४०।४।। से।

अर्थात्—अग्नि देवों से छिपा। आखू रूप करके वह पृथिवी में प्रविष्ट हुआ। यह आखू पार्थिव चूहा नहीं है। अन्तरिक्ष-स्थानीय पशु (=अग्निः और आपः आदि) की अवस्था विशेष है।

आखु रुद्र का पशु—शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मणों में लिखा है—आखुस्ते रुद्रस्य पशुः।[१] अर्थात् आखु रुद्र का पशु है।

रुद्र—रुद्र अन्तरिक्षस्थ अग्नि का रूप है। आखु अन्तरिक्षस्थ आग्नेय पशु अथवा विशेष प्रकार के परमाणु हैं। ये आखुवत् लम्बे हैं और जिस प्रकार जंगली चूहा पृथिवी के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है उसी प्रकार ये लम्बे पशु पृथिवी के अन्दर-अन्दर धंसते जाते हैं। वे ही परमाणु देवों से छिप कर पृथिवी में प्रविष्ट हो गए। इस घटना के समय अन्तरिक्ष और पृथिवी में क्या-क्या माया घटी, इस का भी विचित्र प्रकार होगा।

पृथिवी के गर्भ की अग्नि ज्वलन रूप में है अथवा नहीं। यदि ज्वलन रूप में है तो उस का इन्धन क्या है। पृथिवी गर्भ में आक्सीजन अधिक नहीं है। वहां आपः भी अपने मूल रूप में नहीं ठहर सकते। फिर पार्थिव अग्नि का स्वरूप क्या है। ये आग्नेय परमाणु किस रूप में हैं। पृथिवी के गर्भ में इन का ताप इतना अधिक क्यों हो गया है। पुराणों में पार्थिव अग्नि की पृथक् संज्ञा कर के किसी ऐसे ही तथ्य का निर्देश है।

इस गम्भीर विवेचन से हमें इतना विश्वास हो गया है कि आधुनिक विज्ञान की अपेक्षा यह अति सूक्ष्म विज्ञान सहस्रों गुणा गम्भीर है।

परिमण्डला पृथिवी

इस काल तक पृथिवी प्रायः अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इस पृथिवी का स्वरूप (आकार) कैसा है, इस का विवेचन वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—स एष प्रजापतिः अग्निष्टोमः परिमण्डलो भूत्वा अनन्तो भूत्वा शये। तदनुकृतीवम् अपि अन्या देवताः परिमण्डलाः। परिमण्डल आदित्यः, परिमण्डलः चन्द्रमाः, परिमण्डला द्यौः, परिमण्डलमन्तरिक्षम्, परिमण्डला इयं पृथिवी।[२]

अर्थात्—वह यह प्रजापति अग्निष्टोम परिमण्डल रूप हो कर अनन्त (गोल ?) होकर ठहरा। उसी का अनुकरण रूप अन्य देवता भी परिमण्डल हैं। आदित्य, चन्द्रमा, द्यौ, अन्तरिक्ष और यह पृथिवी परिमण्डल रूप हैं।

परिमण्डल का अर्थ—जिस के सब ओर मण्डल अथवा घेरा (atmosphere) है। दूसरा अर्थ है, जो गोल घेरे में अथवा गोल आवृत हो। सारा द्यु लोक परिमण्डल है, यह विशेष ध्यान देने योग्य है। यही अभिप्राय शतपथ ब्राह्मण में भी व्यक्त किया गया है—परिमण्डल उ वा अयं (पृथिवी) लोकः।[३] अर्थात् परिमण्डल रूप है निश्चय से यह (पृथिवी) लोक।

काठक ब्राह्मण में भी ऐसा ही संकेत है—मण्डलो ह्ययं लोकः।[४]

परिमण्डल का अन्य अर्थ—वैशेषिक दर्शन में परिमण्डल परिमाण का वर्णन मिलता है। वहां परि-

---

१. २।६।२।१०॥ श० ब्रा०, १।६।१०।२॥ तै० ब्रा०।
२. १।२५७॥ जै० ब्रा०।
३. ७।१।१।३७॥ श० ब्रा०। एग्लिङ्ग का अनुवाद है—and this world doubtless is circular.
४. पृ० १६, काठक संकलन, सूर्यकान्त।

मण्डल परिमाण का अर्थ परम महत् अथवा सर्वव्यापक परिमाण है। सम्भवतः इस भाव से मिलता जुलता जैमिनीय ब्राह्मण का अनन्तो भूत्वा पाठ है।

पृथिवी को पुराणों में पद्माकारा, अण्डाकारा, छत्राकारा और कटाहाकारा लिखा है। ये सब शब्द गोलाकार रूप के द्योतक हैं।

अयस्मयी पृथिवी

यह पृथिवी लोह-धातु से परिपूर्ण है, इस का उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। महिदास ऐतरेय का १।२३॥ पर प्रवचन है—ते (असुरा) वा अयस्मयीम् एवेमां (पृथिवीम्) अकुर्वत्। अर्थात् उन असुर-शक्तियों ने लोह-युक्ता ही इस पृथिवी को बनाया।

कौषीतकि ब्राह्मण ८।८॥ में भी इसी भाव की प्रतिध्वनि है—(असुराः) अयस्मयीं (पुरीम्) अस्मिन् (अकुर्वत)। अर्थात् असुरों ने लोहमयी पुरी इस पृथिवी लोक में बनाई।

अयस्मयी सूचियां—न केवल पृथिवी लोहमयी है, प्रत्युत इस का लोह सूचियों का रूप भी धारण करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।९।६।५॥ का वचन है—अस्य वै (भू-) लोकस्य रूपम् अयस्मय्यः (सूच्यः)। अर्थात् इस भू-लोक का रूप लोहमयी सूचियां हैं।

ये लोहमयी सूचियां कैसे बनी हैं। दिशाएं भी इसी प्रभाव से बनी हैं। इसी का मूल तैत्तिरीय संहिता ६।२।३॥ में इस प्रकार मिलता है—तेषामसुराणां तिस्रः पुरः आसन्, अयस्मय्यवमा, ऽथ रजता, ऽथ हरिणी। अर्थात् उन असुरों की तीन नगरियां थीं। अयस्मयी छोटी, रजता (रजतमयी) और हरिणी (सुवर्णमयी)।

रजत श्वेत, शुभ्र होता है। आपः और आग्नेय योग से मरुत, वयांसि, पशु और रश्मियों का प्रभाव सुवर्ण रूप उत्पन्न करता है। इस का संकेत ऋग्वेद ७।१६।१४॥ मन्त्र में भी है। उस में मही (=पृथिवी) को आयसी अर्थात् लोह युक्ता कहा है।

सुश्रुत संहिता की डल्हण कृत टीका में सूत्रस्थान अध्याय ८।१६॥ पर अयस्कान्त के यह चार भेद लिखे हैं—अयस्कान्तः पाषाणविशेषः। आकर्षक-द्रावक-चुम्बक-भ्रामकभेदाच्चतुर्विधः। अयस्कान्त वह पाषाण अथवा अश्मा है जिस में लोह-मात्रा अत्यधिक है। क्या यह सम्भव है कि पृथिवीगत लोह अन्तरिक्षस्थ मरुतों के वैद्युत-प्रभाव के कारण सूचियों के रूप में बद्ध हो गया हो और वही चुम्बक-प्रभाव प्रकट करता है।

सर्पराज्ञी पृथिवी

वैदिक ग्रन्थों में पृथिवी को कई बार सर्पराज्ञी कहा है। यह विशेषण बड़ा विचित्र है। इस नाम का कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में बताया है। यथा—

(क) इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञी। इयं हि सर्पतो राज्ञी।[1] ऐ० ब्रा० ५।२३॥

अर्थात्—यह पृथिवी निश्चय सर्पराज्ञी है। यह पृथिवी निश्चय सर्पण करने वालों अथवा रींगने वालों की रानी है।

---

१. तुलना करें, जै० ब्रा० ३।३०४॥ से।

प्रश्न होता है कि ये सर्पण करने वाले कौन हैं। इस का उत्तर भी प्रवचनकार स्वयं देते हैं। यथा—

(ख) देवा वै सर्पाः। तेषामियं (पृथिवी) राज्ञी। तै० ब्रा० २।२।६।२॥

अर्थात्—(इन्द्र, मित्र, बृहस्पति, सूर्य आदि) देव ही सर्प हैं। उन की पृथिवी रानी है।

देवों में इन्द्र, मित्र आदि प्राण हैं।[1] तथा बृहस्पति आदि ग्रह अथवा लोक हैं। ये सब रींगते हैं। इन की गति में रींगने के अनेक रूप हैं।

ब्रह्मिष्ठ महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है—

(ग) इमे वै लोकाः सर्पा। ते ह्यनेन सर्वेण सर्पन्ति यदिदं किं च।[2]

अर्थात्—ये ही लोक सर्प हैं। वे इस सब के साथ सर्पण करते हैं, जो यह (पृथिवी पर प्राण आदि और अन्तरिक्ष में पशु, वयांसि आदि) कुछ हैं।

(घ) इमे वै लोकाः सर्पा यद्धि किं च सर्पत्येष्वेव तल्लोकेषु सर्पति।[3]

इन वचनों में अनेन सर्वेण पद ध्यान देने योग्य हैं। पृथिवी के साथ उस का सारा मण्डल भी सर्पण करता है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष और द्यु लोक भी वायुसूत्र में बंधे अपने पूरे मण्डलों के साथ सर्पण करते हैं।

सर्पण के प्रकारों के लिए प्रमाण अन्वेष्टव्य हैं।

देवायतन—पृथिवी और आदित्य लगभग समान रूप से सब देवों के आयतन हैं। शतपथ ब्राह्मण के वचन हैं—

पृथिवी वै सर्वेषां देवानाम् आयतनम्। १४।३।२।४॥
अन्तरिक्षं वै सर्वेषां देवानाम् आयतनम्। ॥६॥
द्यौर्वै सर्वेषां देवानाम् आयतनम्। ॥८॥
सूर्यो वै सर्वेषां देवानाम् आत्मा। ॥९॥

अर्थात्—पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ सब देवों के आयतन हैं। सूर्य सब देवों का आत्मा है। भूत चतुष्टय और सारे प्राण (gases) देव हैं। ये पृथिवी पर हैं और सूर्य से भी इन का सम्बन्ध है।

मन्त्रों में सर्पों के स्थानों का विशेष वर्णन मिलता है। उस से पता लगता है कि इन सर्पों का स्वरूप क्या हो सकता है। यथा मैत्रायणी संहिता २।७।२०१॥ में लिखा है—नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥

इन सब सर्पों की रानी पृथिवी है। ऋग्वेद १०।१८९॥ का आयं गौः पृश्निः सूक्त, सर्पराज्ञी का है।

बिस और वधि-रूपा पृथिवी—यह पृथिवी बिस-रूपा है। बिसों में छिद्र और खोखलापन रहता है। यही पृथिवी की अवस्था है। इस के अन्दर की मृत्तिका और रेत आदि के बीच-बीच में छिद्र हैं। शतपथ ब्राह्मण में प्रवचन है—यानि बिसानि तान्यस्यै पृथिव्यै रूपम्।५।४।५।१४॥

पुनश्च याज्ञवल्क्य-शिष्य माध्यन्दिन लिखता है—वधि हैवास्य (भू-) लोकस्य रूपम्।७।५।१।३॥

---

१. देखें—स यो ऽयं मध्ये प्राणः। एष एवेन्द्रः। श० ब्रा० ६।१।१।२॥

२. ७।४।१।२५॥ श० ब्रा०।

३. ७।४।१।२७॥ श० ब्रा०।

अर्थात्—दधि ठीक इस भूलोक के रूप के समान है। दही के ऊपर मलाई रहती है। यह शुष्क और सिक्कड़ के समान अधिक संहत होती है। पृथिवी के ऊपर भी एक संहत भाग (crust) रहता है। इस संहत भाग के नीचे अल्प संहत और आर्द्र भाग रहता है। इस भाग में कुछ-कुछ जल भी रहता है।

पृथिवी अन्तर्गत महीधर—विष्णु धर्मोत्तर पुराण ३।३०६।। में निम्नलिखित वचन है—

अपाम् अधस्ताल् लोको वै तस्योपरि महीधराः।
नागानामुपरिष्टाद् भूः पृथिव्युपरि मानवाः। ॥४४॥

अर्थात् आपों का नीचे लोक है। उस के ऊपर महीधर हैं। इन महीधरो अथवा नागों के ऊपर भूः है और पृथिवी पर मानव हैं।

(ग) अन्तरिक्ष

वाजसनेय याज्ञवल्क्य का विशद वर्णन—मानव धर्मशास्त्र और पुराणों आदि में हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति आदि एक ही महद् अण्ड से सारे जगत् की उत्पत्ति वर्णित है। पर पुराणों में कोटिशः अण्डों का उल्लेख भी है। याज्ञवल्क्य के शिष्य माध्यन्दिन ने तीन लोकों का रचन महद् अण्ड से उत्पन्न पृथक्-पृथक् आण्डों से कहा है। तदनुसार सृष्टि-रचन-क्रम में अन्तरिक्ष का दूसरा स्थान है। उस का व्याख्यान निम्नलिखित है—सोऽकामयत प्रजापतिः। भूय एव स्यात् प्रजायेत इति। सोऽग्निना पृथिवीं मिथुनं समभवत्। ततः आण्डं समवर्तत। तदभ्यमृशत्। पुष्यतु इति पुष्यतु। भूयो ऽस्तु इत्येव तदब्रवीत् ॥१॥ स यो गर्भो ऽन्तरासीत् स वायुरसृज्यत। अथ यदश्रुसंक्षरितमासीत् तानि वयांसि-अभवन्। अथ यः कपाले रसो लिप्त आसीत् ता मरीचयोऽभवन्। अथ यत् कपालमासीत् तदन्तरिक्षमभवत् ॥२॥ ६।१।२।१,२॥

अर्थात्—उस (प्रजापति) ने कामना की। अधिक ही हो। प्रजा उत्पन्न करे। वह अग्नि के द्वारा पृथिवी के साथ मिथुन रूप हुआ। उस से आण्ड उत्पन्न हुआ। उस (आण्ड) को छुआ। पुष्ट होवे, पुष्ट होवे। अधिक होवे। यह ही वह बोला। वह जो गर्भ अन्दर था वह वायु उत्पन्न किया गया। फिर जो आंसू गिरे, वे वयांसि हुए। फिर जो कपाल में रस लिप्त था, वे मरीचि हुए। जो कपाल था वह अन्तरिक्ष बना।

इस वचन में निम्नलिखित तथ्य विशेष ध्यान देने योग्य हैं—

१. अग्नि और पृथिवी का मिथुन'।

२. अण्ड के पुत्र आण्ड की उत्पत्ति।

३. आण्ड के अन्दर गर्भ।

४. वायु-सृजन।

५. वयांसि-उत्पत्ति।

६. मरीचि-प्रादुर्भाव।

७. अन्तरिक्ष-अस्तित्व।

अन्तरिक्ष क्या है—पाश्चात्य वैज्ञानिकों को अन्तरिक्ष और उस में होने वाली माया का पहले अणु-

मात्र ज्ञान न था। यूनानी ग्रन्थों के आधार पर वे इसे (ether) अथवा किसी अनुमानित द्रव्य का स्थान मानते थे। फिर ईश्वर के स्थान में शून्य (space) का विचार प्रस्तुत किया गया। तत्पश्चात् इस शून्य में (cosmic rays) आदि का अस्तित्व माना गया। अब शून्य का विचार भी शिथिल पड़ रहा है और इस शून्य में गैस आदि किसी सूक्ष्म द्रव्य का विचार सामने आ रहा है।

वस्तुतः यह सत्य है कि अन्तरिक्ष के यथार्थ ज्ञान के विना पार्थिव माया तथा सौरी क्रियाएं पूरी समझ में नहीं आ सकतीं। पृथिवीगत चुम्बकीय-प्रभाव इस का उदाहरण है। सूर्य से वर्षा का सम्बन्ध भी अन्तरिक्ष के कारण है।

अन्तरिक्ष का विशद वर्णन वैदिक-ग्रन्थों में मिलता है। अन्तरिक्ष की उत्पत्ति कैसे हुई, यह अब लिखा जाता है।

व्यापक आपः में प्रजापति था। प्रजापति से भूलोक पृथक् हुआ। अब आपः में उपस्थित अग्नि का पृथिवी से मिथुन हुआ। यह मिथुन किन प्रभावों से हुआ, यह ब्राह्मण में स्पष्ट नहीं किया गया है। प्रजापति की कामना कैसे हुई, यह भी विचारणीय है। प्रजापति की नाभि से अन्तरिक्षोत्पत्ति का सम्बन्ध स्पष्ट है। ऋग्वेद १०।९०।१४॥ में मन्त्रभाग है—नाभ्याः आसीद् अन्तरिक्षम्। अर्थात् नाभि से था यह अन्तरिक्ष।

अन्तरिक्ष में वायु का प्रधान स्थान हुआ।

वायु सृजन—भूत वायु पहले विद्यमान था। वह वायु अपर-वायु अथवा अपर-काल में जन्मा वायु है। इस में पवन अर्थात् बहने की विशिष्ट-शक्ति उत्पन्न हुई। इस वायु ने व्यापक आपः पर जो प्रभाव डाला, वह अज्ञात है।

अन्तरिक्ष दीप्ति—यह वायु अन्तरिक्ष में दीप्त रहता है। जैमिनीय ब्राह्मण का प्रवचन है— **वायुर् अन्तरिक्षे (दीप्यते)**।[1] अर्थात् वायु अन्तरिक्ष में दीप्त होता है (चमकता) है।

याजुष मन्त्र में भी ऐसा भाव है—**वायुरसि तिग्मतेजाः**।[2] अर्थात् वायु है तीक्ष्ण तेजयुक्त।

ब्रह्मिष्ठ याज्ञवल्क्य ने इस भाव को अत्यधिक स्पष्ट किया है—**प्राणेन वाऽग्निर्दीप्यते। अग्निना वायुः। वायुना आदित्यः। आदित्येन चन्द्रमाः**।[3] अर्थात् प्राण से अग्नि दीप्त होता है। अग्नि से वायु। वायु से आदित्य। आदित्य से चन्द्रमा।

वस्तुतः वयांसि, मरीचि और पशु आदि अन्तरिक्ष में अग्निजन्य हैं। उन में आग्नेय-अंश है जो वायु की दीप्ति का कारण है।

ताण्ड्य ब्राह्मण १।७।३॥ में भी वायु के तेज का उल्लेख है। यथा—**वायोष्ट्वा तेजसा। सूर्यस्य त्वा वर्चसा**। अर्थात् वायु के तुझे तेज से।

ब्रह्माण्ड पुराण में भी **वायोर्मिभिः** प्रयोग इसी बात को बताता है।

तिर्यक् गति—अन्तरिक्ष में सूर्य-रश्मियों की ऊपर से नीचे की ओर गति के समान वायु की गति नहीं

---

१. १।११९२॥ २. १।२४॥ ३. १०।६।२।११॥ श० ब्रा०।

होती, प्रत्युत वायु तिरछी गति में चलता है। इस का कारण यह है। अन्तरिक्षस्थ मरुत सारे अन्तरिक्ष में और पृथिवी मण्डल के ऊपर और मध्य में एक चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करते हैं। उस से वैद्युत-वायु और अपर वायु की तिर्यक् गति हो जाती है।

जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—तस्माद् अयं वायुः अस्मिन् अन्तरिक्षे तिर्यङ् पवते। ३।३१०॥

वयांसि-उत्पत्ति का स्पष्टीकरण—वायु के साथ वयांसि-उत्पत्ति का सामान्य उल्लेख तथा एतद्विषयक एक अन्य वचन आगे उद्धृत किया जाता है—

प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवास। स ऐक्षत कथं नु प्रजायेयेति। सो ऽश्राम्यत्। स तपो ऽतप्यत। स प्रजा असृजत। ता अस्या प्रजाः सृष्टाः पराबभूवुः। तानीमानि वयांसि। पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम्। द्विपाद् वा अयं पुरुषः। तस्माद् द्विपादो वयांसि। श० ब्रा० २।५।१।१॥

अर्थात्—प्रजापति की प्रजाएं वयांसि हैं। ये द्विपाद हैं। अन्तरिक्ष वयांसि द्विपाद हैं।

जैमिनीय ब्राह्मण २।१५४॥ में लिखा है—

तस्य ह वज्रेण शीर्षाणि प्रचिच्छेद। तान्येव वयांसि अभवन्। तद् यत् सोमपानम् आसीत् स कपिञ्जलो ऽभवत्। तस्मात्स बभ्रुरिव। बभ्रुरिव हि सोमः। अथ यत् सुरापानम् आसीत् स कलविङ्को ऽभवत्। तस्मात्स मत्त इवाक्रन्दति। अथ यद् अन्नादनम् आसीत् स तित्तिरिः अभवत्। तस्मात्स बहुरूप इव।

अर्थात्—उस (त्रिशीर्षा त्वाष्ट्र) के निश्चय वज्र से सिर काट दिए। वे ही वयांसि हुए। तो जो सोमपान (शीर्ष) था, वह कपिञ्जल हुआ। अतः वह (कपिञ्जल) भूरे के समान (है)। भूरे के समान ही सोम (है)। फिर जो सुरापान (शीर्ष अथवा मुख) था, वह कलविंक हुआ। अतः वह मत्त के समान शब्द करता है। फिर जो अन्न खाने वाला (मुख) था, वह तित्तिरि हुआ। अतः वह बहुरूप के समान (होता है)।

यह अत्यन्त गूढ़ रहस्य है। वैदिक ऋषियों की असाधारण सूझ का द्योतक है। गम्भीर निरीक्षण का यह स्पष्ट उदाहरण है।

आपः में आग्नेय परमाणुओं का जाल बना है। जिस प्रकार जाल बांध लेता है। उसी प्रकार आपः के परमाणुओं को अग्नि ने अपने जाल में बांध रखा है। इसी कारण उदक सामान्यतया संहत रहते हैं।

मरीचयः—वायु के साथ मरीचियों का भी जन्म हुआ। इन का पिता भी अग्नि है। इसलिए इन में आग्नेय अंश विद्यमान है। जैमिनीय ब्राह्मण १।४५॥ में इन की चिंगारियों से उपमा दी है—**मरीचयो विस्फुलिङ्गाः।**

(र) मरुत

अन्तरिक्ष में मरुत् गणों का वास है। इन के विषय में निम्न बातें अति स्पष्ट हैं—

गण—मरुतों के गण हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण १९।१४।२॥ का वचन है—**गणशो हि मरुतः।** अर्थात् गण गण में मरुत हैं। शतपथ ब्राह्मण ९।३।१।२५॥ में लिखा है—**सप्त-सप्त हि मरुता गणाः।** अर्थात् सात-सात का मरुतों का एक गण है। **सान्तपन, गृहमेधी,** और **क्रीडी** तीन प्रकार के मरुत हैं।

रश्मियां—मरुत तथा आपः कणों की विद्युत् युक्त रश्मियां हैं। ताण्डय ब्राह्मण के अनुसार **मरुतो रश्मयः**। अर्थात् मरुत् रश्मि रूप हैं।[1]

आपः वासी अन्तरिक्ष आपः से व्याप्त है। ये मरुत् उसी आपः में रहते हैं। कौषीतकि ब्राह्मण ५।४॥ के अनुसार **अप्सु वै मरुतः श्रिता**, अर्थात् आपों में निश्चय मरुत् आश्रित हैं। तथा ऐतरेय ब्राह्मण ६।३०॥ के अनुसार **आपो वै मरुतः**, अर्थात् आपः ही मरुत् हैं।

इन वचनों से परिणाम निकलता है कि मरुत अन्तरिक्षस्थ आपः तथा अग्नि और पृथिवी के योग से इन का जन्म है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।३।१२॥ में मरुतों की एक आन्तरिक्षी-माया का रहस्य-उद्घाटित किया गया है। यथा—**मरुतो ऽद्भिरग्निमतमयन्। तस्य तान्तस्य हृदयम् आच्छिन्दन्। सा अशनिरभवत्।**

मरुतों के छन्द (waves)—जैसे तरंगों में उतार-चढ़ाव होता है, उसी प्रकार अग्नि, सूर्य-रश्मि और मरुतों आदि की गतियां भी छन्दों में ही होती हैं। कुछ वस्तुओं के छन्द लम्बे और कुछ के क्षुद्र होते हैं। मरुतों के छन्दों के विषय में लिखा है—**मरुत्स्तोमा वा एषः। यानि क्षुद्राणि छन्दांसि तानि मरुताम्।**[2]

मरुत गति की दिशा—मरुत छन्दों की गति की दिशा का भी कथन है। जैमिनीय ब्राह्मण ३।३८१॥ में लिखा है—**ततो मरुतोऽसृजत—ईशानमुखान्**। अर्थात् तब मरुतों को उत्पन्न किया, ईशानमुखों को।

ईशानमुख—ईशान पद के दो अर्थ हैं। एक है उत्तर-पूर्व दिशा की ओर मुख किए और दूसरा अर्थ है जिन के उपरि भाग शिर अथवा ईशान (रुद्र=विद्युत के किसी प्रकार) का रूप विशेष है। क्या सारे मरुद-गण ईशान मुख हैं। अथवा उन का कोई गणविशेष ऐसा है।

शतपथ ब्राह्मण १३।२।१०।३॥ के अनुसार अवान्तर-दिशाएं ·.जत सूचियां हैं। इन दिशाओं का ऐसा स्वरूप मरुत् आदि के कारण है। इस का कुछ आभास जैमिनीय ब्राह्मण ३।३८२॥ के निम्नलिखित वचन में है—**तमस्याम् ऊर्ध्वायां दिशि मरुतोऽन्वैच्छन् ईशानमुखाः। तेऽन्वविन्दन् यत् श्वेतं रूपं तत्।** अर्थात् उस को इस ऊर्ध्व दिशा में मरुतों ने चाहा, (जो) ईशान-मुख (हैं) उन्हों ने प्राप्त किया जो श्वेत रूप वह।

निस्सन्देह श्वेतरूप अन्तरिक्ष में मरुतों का है।

श्वेत रूप—अन्तरिक्ष में असुरों ने रजत-पुरी बनाई। ऐतरेय ब्राह्मण १।२३॥ का वचन है—**(असुराः) रजतां (पुरी) अन्तरिक्षम् (अकुर्वत्)।**

रजत (चान्दी) श्वेत-वर्ण का होता है। यही श्वेत-रूप मरुतों ने प्राप्त किया। अन्तरिक्ष में श्वेत पुरी मरुतों के कारण बनी है। इन मरुतों में विद्युत्-प्रभाव है, यह पूर्व लिख चुके हैं। इस विद्युत् के कारण भी मरुतों में श्वेत-रूप आया।

अग्नि-जिह्वा—मरुत अग्निजिह्व भी हैं।[3] इस कारण भी उन में श्वेत-वर्ण है। भूमि पर भी श्वेत-पुरी बनती है। वस्तुतः मरुतः भूमि तक क्रीड़ा करते हैं।

---

१. १४।१२।९॥ ता० ब्रा०।
२. १७।१।३॥ तां० ब्रा०।
३. १।४५।१४॥ ऋग्वेद।

मरुतों का प्रभाव दिशाओं तक पहुँचता है और विशेष बलशाली रूप में पहुँचता है। दिशाएं मरुतों की गति और इन के चक्र को ठीक रखती हैं।

(ल) अन्तरिक्षस्थ पशु

जिस प्रकार अन्तरिक्ष में नर हैं, उसी प्रकार अन्तरिक्ष में पशु भी हैं। पशुओं का जन्म प्राण,[1] आपः[2] और अग्नि[3] के परमाणुओं के योग से हुआ है। ऋग्वेद १०।९०।। में इन पशुओं को वायव्य पशु कहा है—पशून्तांश्चक्रे वायव्यान्। अर्थात् (उस यज्ञ प्रजापति ने) पशु, उन को बनाया वायु के।

इसी तथ्य का प्रतिपादन मैत्रायणी संहिता में अति स्पष्ट रूप से किया गया है। यथा—वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षः। अन्तरिक्षदेवत्याः पशवः। वायुरेवैनान् अन्तरिक्षाय परिददाति।[4] अर्थात् वायु निश्चय ही अन्तरिक्ष का अध्यक्ष है। अन्तरिक्ष देवता वाले पशु हैं। वायु ही इन को अन्तरिक्ष के लिए देता है। पुनः जैमिनीय ब्राह्मण में कहा है—पशवो वा अन्तरिक्षम्। ३।१८६।।

पशु रूप—पशु प्रायः चतुष्पाद हैं। जैमिनीय ब्राह्मण २।२६७।। आदि में ऐसा उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण १।८।१।१२।। में पशु पांक्त अथवा पञ्चावयव कहे गए हैं। कहीं-कहीं द्विपाद वयांसि भी पशु हैं—पशवो वै वयांसि।[5] मरुतः भी पशु होते हैं।[6] पशुओं को द्युतान मारुत भी कहा है।[7] पशु ग्रावाण भी होते हैं। ग्रावाण और वज्र का भेद जानने योग्य है। कपिष्ठल कठ संहिता ३१।११।। में पशुओं को अग्निमुख कहा है। मैत्रायणी संहिता ३।३।१०।।में भी यही भाव है, अग्निमुखान् वै प्रजापतिः पशून् असृजत। पशवो मारुताः।

जैमिनीय ब्राह्मण में आठ प्रकार के पशु कहे हैं—अष्टातयान् पशून् ३।३१८।।

चमक वाले पशु—जैमिनीय ब्राह्मण १।१४०।। में लिखा है—ततो रेवतयः पशवोऽसृज्यन्त। अर्थात् तब दीप्तिमय पशु उत्पन्न हुए। यह बात सर्वथा युक्त है क्योंकि जैमिनीय ब्राह्मण २।२३१।। में ही कहा है—आग्नेयश्च मारुतश्च पशू। अग्नि और मरुतों से पशु उत्पन्न हुए। अतः वे चमकते हैं।

रूप प्रदाता—पशुओं को रूप देने वाला त्वष्टा है—त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूपकृत, रूपपतिः।[8] अर्थात् त्वष्टा निश्चय पशुओं के मिथुनों का रूप बनाने वाला, रूपपति (है)।

---

१. प्राणाः पशवः। तै० ब्रा० ३।२।८।९।। स (प्रजापतिः) प्राणेभ्यः एवाधि पशून् निरमिमीत। श० ब्रा० ७।५।२।६।।

२. आपो वा एते यत् पशव इति। जै० ब्रा० ३।१४६।। पशवो वै सलिलम्। मै० संहिता १।४।९।।

३. आग्नेया वै पशवः। कपिष्ठल कठ सं० ३८।१।। आग्नेयाः पशवः। तै० ब्रा० १।१।४।३।। पशुरेव यदग्निः। श० ब्रा० ६।४।१।२।। आग्नेयो वाव सर्वः पशुः। ऐ० ब्रा० २।६।। आग्नेयश्च मारुतश्च पशू। जै० ब्रा० २।२३१।।

४. ४।१।१।। मै० सं०। देखें कपिष्ठल संहिता ४६।८।।

५. ९।३।३।७।। शतपथ ब्राह्मण।

६. ३।१९। ऐ० ब्रा०।

७. ४८।१४।। कपिष्ठल कठ संहिता।

८. २।५।७।५।। तै० ब्रा०।

ये पशु अन्तरिक्ष की माया हैं और पृथिवी से द्यु लोक तक पहुँचते हैं। अश्व इन में प्रमुख हैं। ये आन्तरिक्ष अश्व हैं। संस्कृत वाङ्मय में अप्सुजा कहा है।[1] इन पशुओं की संख्या पर्याप्त है। रुद्र के वर्णन में वृषभ का भी उल्लेख है।

पशु भेद का कारण—पशुओं के इतने भेद कैसे बन गए। इस प्रश्न का उत्तर जैमिनीय ब्राह्मण २।६६॥ में अति सुन्दर और गम्भीर प्रकार से दिया गया है।[2] यथा—**ऊनातिरिक्तौ मिथुनौ प्रजननौ। ऊनम् अन्यस्य, अतिरिक्तम् अन्यस्य। ऊनातिरिक्ताद् वै मिथुनात् प्रजा पशवः प्रजायन्ते।** अर्थात् न्यून और अधिक मिथुन से प्रजा, पशु उत्पन्न होते हैं।

मिथुन में स्पर्श, संपीडन और रज-वीर्य का सिद्धान्त काम करता है। अन्तरिक्ष में वायु, आपः, अग्नि और पृथिवी के परमाणु अनेक संयोग उत्पन्न करते हैं। उन में स्पर्श और संपीडन विविध प्रकार का होता है। उन परमाणुओं में दिव्यत्व भिन्न प्रकार का होता है। इन सब के संयोग और विभाग से अन्तरिक्ष के विभिन्न पशु उत्पन्न होते हैं।

संज्ञान=ऐक्य—इन पशुओं में कुछ मतैक्य अवश्य है। इन में से प्रत्येक अपने सजातीय को पहचानता है। मतैक्य आपः के कारण है। शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।२२॥ का एक वचन ध्यान में रखना चाहिए। यथा—**तस्माद् हैतत् पशुः स्वाय रूपाय आविर्भवतीति। गौर्वा गवे। अश्वो वाश्वाय। पुरुषो वा पुरुषाय।** अर्थात् इस लिए निश्चय यह पशु अपने रूप के लिए प्रकाशित होता है। गौ-गौ के लिए, अश्व-अश्व के लिए (और) पुरुष निश्चय पुरुष के लिए।

रोहितरूप—अन्तरिक्ष के अधिकांश पशुओं का रूप रोहित है। इस विषय में ताण्ड्य ब्राह्मण १६।६।२॥ में लिखा है—**एतद्वै पशूनां भूयिष्ठं रूपं यद् रोहितम्।** कपिष्ठल संहिता ३७।३॥ में भी लिखा है—**तस्माद् रोहितरूपं पशवो भूयिष्ठाः।**

असंश्लिष्ट—आग्नेय परमाणु संश्लिष्ट रहते हैं, आपः परमाणु संश्लिष्ट हैं। मरुत् गणों में और संश्लिष्ट रहते हैं।[3] ऋभुओं की भी यही दशा है। पर पशु अनियमित गति, स्वेच्छाचारी हैं। ये पृथक्-पृथक् रहते हैं। इसलिए ताण्ड्य ब्राह्मण में लिखा है—**तस्माद् असंश्लिष्टाः पशवः। १३।४।६॥**

पशु नाम—वैदिक विज्ञान में तत्तद् रूपानुसार पशुओं के अश्व, रासभ, अज, वृषभ,[4] नर और मृगी आदि नाम हैं। यथा—

अश्वः प्रथमो ऽथ रासभो ऽथाजः। शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।२८॥

---

१. **आकाशसम्भवैरश्वैः।** विष्णु पुराण २।१२।२०॥ वर्तमान विज्ञान वेत्ता पृथिवी पर होने वाले घोड़े को ही अश्व समझता है और वेद में अश्व पद से कोई दूसरा अभिप्राय नहीं लेता। वह यहां क्या करेगा। "आकाश में उत्पन्न" घोड़े से वह क्या अभिप्राय लेगा।

२. तुलना करें—**पशूनेवावरुंद्धे। ऊनातिरिक्ता मिथुनाः।** कपिष्ठल कठ संहिता ३१।६॥

३. मरुत इन्द्र से भी सम्मिश्रित हो जाते हैं—**संमिश्ला इन्द्र।** ऋ० १।१६६।११॥

४. **त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धनः।** ऋ० १।३१।५॥

तथा यास्कीय निघण्टु १।१५।। में जो दस पशु लिखे हैं, वे प्रायः अन्तरिक्ष के पशु हैं। इन में से मरुतों के पशु पृशत्यः (मृगियां) हैं।

(व) धातुओं को टांका लगाना

(१) गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग १।१४।। में लिखा है—लवणेन सुवर्णं संदध्यात्। अर्थात् लवण से सोने को टांका लगावे।

(२) गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग १।१४।। में ही लिखा है—सुवर्णेन रजतम् (संदध्यात्)। अर्थात् सोने से चांदी को टांका लगावे।

(श) रेखागणित

ब्राह्मण काल में रेखागणित का ज्ञान भी पर्याप्त बढ़ा हुआ था। शतपथ ब्राह्मण १०।२।२।५-८।। में चतुरश्रश्येनचिति का कुछ वर्णन पाया जाता है। इस में मध्य में चार अश्र, पक्षों के दो अश्र (triangle) और पूंछ का एक अश्र होता है। सब मिल कर सात अश्र हो जाते हैं। इसलिए शतपथ ब्राह्मण १०।२।२।५।। कहता है—

(१) स वै सप्तपुरुषो भवति।......चत्वारो हि तस्य पुरुषस्यात्मा त्रयः पक्षपुच्छानि। अर्थात् वह वेदि सात पुरुष वाली होती है।......चार (अश्र) उस पुरुष का शरीर और तीन (अश्र) पक्ष और पूंछ के।

इस वेदि का आकार श्येन पक्षी के समान होता है। इस का उदाहरण इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी की खुदाई में मिला है। इस के बनाने वाले को अश्रों (triangle) का पूरा ज्ञान होना चाहिए। साधारण लोग इस कठिन रूप वाली वेदि को न बना कर एक अश्र वाली वेदि ही बनाते थे। उन का शतपथ ब्राह्मण खण्डन करता है—

(२) तद्धैके। एकविधं प्रथमं विदधाति......न तथा कुर्यात्। १०।२।३।१७।।

(३) तस्मादु सप्तविधमेव प्रथमं विदधीत। १०।२।३।१८।।

अर्थात्—कई एक (साधारण लोग) एकविध अर्थात् एक ही अश्र पहले बनाते हैं।...वैसा न करे। इसलिए पहले ही सात प्रकार की बनावे।

काठक संहिता २१।४।। में वेदियों के और भी रूप कहे हैं—

(४) प्रउगचितं चिन्वीत। अर्थात् प्रउगचित (triangle) रूप वाली अग्नि का चयन करे।

(५) उभयतः प्रउगं चिन्वीत। अर्थात् दोनों ओर (Squares) रूप वाली अग्नि बनावे।

(६) रथचक्रचितं चिन्वीत। अर्थात् रथचक्र के समान गोलाकार अग्नि चयन करे।

(७) द्रोणचितं चिन्वीत अर्थात् द्रोणाकार (trough) चिति चिने।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार की वेदियां शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता आदि में कही गयी हैं। इन के बनाने वालों को रेखागणित के कई कठिन रहस्यों का भी ज्ञान था। इस बात का विशेष उल्लेख जर्मन विद्वान् बर्क ने किया है।[1]

---

१. पृ० ५४३-५७६, Z.D.M.G, सन् १९०१।

(घ) स्वर्ग

ब्राह्मण ग्रन्थों में सब शुभ कर्मों का फल स्वर्ग कहा गया है—

(१) ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति । श० ब्रा० ६।५।४।८।।

अर्थात्—जो मनुष्य पुण्य कर्म करने वाले हैं, वे स्वर्ग लोक को जाते हैं।

यही स्वर्ग लोक यज्ञ, तप आदि से भी प्राप्त होता है। यथा—

(२) देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाहुतिभिः स्वर्गं लोकमायन् । ऐ० ब्रा० ३।४२।।

अर्थात्—विद्वान् जन यज्ञ से, श्रम से, तप से और आहुतियां देकर स्वर्ग लोक को प्राप्त हुए।

स्वर्ग लोक क्या है और ब्राह्मण ग्रन्थकारों का स्वर्ग से क्या अभिप्राय था, यह बड़ा संदिग्ध विषय है। ऐतरेय ब्राह्मण २।१७।। में कहा गया है—

(३) सहस्राश्वीने वा इतः स्वर्गो लोकः । अर्थात् एक तेज घोड़ा हजार दिन में जितना चलता है, उतना ही यहां से स्वर्ग लोक है। फिर ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१०।१६।। में कहा है—

(४) चतुश्चत्वारिँशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात् प्लक्षः प्रास्रवणस्तावदितः स्वर्गो लोकः सरस्वतीसम्मितेनाध्वना स्वर्गं लोकं यन्ति । अर्थात् चवालीस आश्वीन सरस्वती के विनशन से प्लक्ष का स्थान है। उतना ही यहां से स्वर्ग लोक है। सरस्वती सम्मित मार्ग से ही स्वर्ग लोक को जाते हैं। दोनों ब्राह्मणों के कथन में कुछ भेद है। ऐतरेय ब्राह्मण के सहस्र पद का अर्थ बहुत भी हो सकता है। सहस्र और शत शब्द बहुवाची माने गए हैं।

(५) शतयोजने ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति । कौ० ८।३।।

अर्थात्—अनेक योजन यहां से सूर्य तपता है। इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों ब्राह्मणों में से ताण्ड्य ब्राह्मण का कथन युक्ति-युक्त हो सकता है। हम पहले पृ० २२ पर लिख चुके हैं कि ताण्ड्य लोग नर्मदा के उत्तर भाग में रहते थे। वहां से हिमालय प्रदेश की दूरी लगभग चवालीस आश्वीन ही है। हिमालय ही पुराने आर्यों का स्वर्ग लोक था। वहीं इन्द्र नाम के सहस्रों राजाओं ने राज्य किया है।

ब्राह्मणों में कई स्थानों पर सूर्य लोक भी स्वर्ग लोक कहा गया है—एष (आदित्यः) स्वर्गो लोकः ।[1] अर्थात् यह सूर्य ही स्वर्ग लोक है। यह स्वर्ग लोक मृत्यु के अनन्तर ही प्राप्त होता है। इस पृथिवी का स्वर्ग लोक हिमालय तो पुरुषार्थी को सदा ही प्राप्त था। सम्भवतः इस का यह भी अभिप्राय हो सकता है कि इस जन्म के पुण्य कर्मों के श्रेष्ठ फल अगले जन्म में ही विशेष सुख के रूप में मिलते हैं, साधारण फल इस जन्म में भले ही मिलें।

अनेक पदार्थ भी स्वर्ग लोक के नाम से पुकारे गए हैं। सब का भाव यही है कि सुख विशेष का ही नाम स्वर्ग लोक है। वह इस पृथिवी पर ईश्वर की इस अथाह सृष्टि में से किसी और लोक में भोगा जाए। वह लोक भी ऐसा ही होगा। हां, इतना सम्भव है कि वहां दुःख कुछ कम हों।[2]

---

१. ३।८।१०।३।। तै० ब्रा०।

२. इस अध्याय के लिए निम्न दो पुस्तकें विशेष द्रष्टव्य हैं—(क) वेदविद्या निदर्शन, भगवद्दत्त कृत।
(ख) Story of Creation, भगवद्दत्त कृत।

ग्यारहवां अध्याय

वर्ण व्यवस्था

ब्राह्मण ग्रन्थों में आर्य जाति के प्रसिद्ध चार विभागों का वर्णन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण ५।५।४।९।। में कहा है—चत्वारो वै वर्णाः। ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रः। अर्थात् वर्ण चार ही हैं। ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र। मैत्रायणी संहिता ४।४।६।। में भी कहा है—चत्वारो वै पुरुषा ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रः। अर्थात् चार प्रकार के ही मनुष्य हैं, ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र।

(१) ब्राह्मण

ये ब्राह्मण ही हैं, जो मनुष्यदेव हैं। षड्विंश ब्राह्मण १।१।। में लिखा है—अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः। अर्थात् यही मनुष्यों में देव हैं, जो ब्राह्मण हैं। अर्थात् ब्राह्मण को बहुत विद्वान् होना चाहिए। फिर तैत्तिरीय ब्राह्मण २।७।३।१।। में कहा है—आग्नेयो वै ब्राह्मणः। अर्थात् अग्नि के गुणों से विभूषित ही ब्राह्मण हैं। वे ज्ञानवान, तेजोमय आदि हैं।

ब्राह्मण के अवश्य ही सब संस्कार होने चाहिएं। इस विषय में कहा है—

एष ह वै सान्तपनो ऽग्निर्यद् ब्राह्मणो यस्य गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म-नामकर्ण-निष्क्रमण-अन्नप्राशन-गोदान-चूड़ाकरण-उपनयन-आप्लावन-अग्निहोत्र-व्रतचर्यादीनी कृतानि भवन्ति स सान्तपनः।[१] अर्थात् यह सान्तपन अग्नि ही है, जो ब्राह्मण है, जिस के गर्भाधान से लेकर व्रतचर्यादि संस्कार किए गए हैं, वह सान्तपन है।

मनुष्यों में ब्राह्मण क्यों श्रेष्ठ माना गया है, इस विषय में शतपथ ब्राह्मण ५।१।५।२।। में कहा है—ब्रह्म हि ब्राह्मणः। अर्थात् वेद ही ब्राह्मण है। वेद आर्य जाति का सब से बड़ा कोष है। उस कोष की जो कोई रक्षा करता था, वह आर्यों के लिए अत्यन्त मान्य होता था। ब्राह्मण वेद को कण्ठस्थ रखता था, वेद को पढ़ाता था, इसलिए ब्राह्मण ही मान्य दृष्टि से वेद कहा गया है।

ब्राह्मण को कभी भी सुरा न पीनी चाहिए। इस का भाव यही है कि ब्राह्मण को कोई ऐसा काम न करना चाहिए, जिस से उस की बुद्धि भ्रष्ट हो। इसी भाव से शतपथ ब्राह्मण १२।८।१।५।। में कहा है—अशिव

---

१. गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग, २।२३।।

इव वाऽ एष मक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य । अर्थात् अकल्याणकारी के समान ही यह भोजन है, जो सुरा है, ब्राह्मण का ।

दीक्षित होते हुए क्षत्रिय और वैश्य भी कुछ काल के लिए ब्राह्मण अर्थात् सौम्य स्वभाव वाले, सत्य-वक्ता, तपस्वी बनते हैं । ऐतरेय ब्राह्मण ७।२३।। कहता है—स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति । अर्थात् वह (क्षत्रिय) ही दीक्षित होकर ब्राह्मणपन को प्राप्त होता है ।

तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद् ब्राह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते ।[1] अर्थात् इसी लिए (दीक्षित) क्षत्रिय अथवा वैश्य (हो, उसे) ब्राह्मण ही कहे । ब्राह्मण ही उत्पन्न होता है, जो यज्ञ से उत्पन्न होता है ।

य उ वै कश्च यजते ब्राह्मणीभूयेवैव यजते । श० ब्रा० १३।४।१।३।।

अर्थात्—जो कोई ही यज्ञ करता है, ब्राह्मण हो कर ही यज्ञ करता है ।

ब्राह्मण अपना समय गाने बजाने में कभी नष्ट न करे । हां, वेद का स्वरसहित पढ़ना तो उस का धर्म ही है । यथा—ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येत् ।[2] अर्थात् ब्राह्मण न ही गाए, न नाचे ।

ब्राह्मण को ब्रह्मवर्चसी=वेद के तेज वाला बनना चाहिए—तत्ह्येव ब्राह्मणेनैष्टव्यं यद्ब्रह्मवर्चसी स्यादिति ।[3] अर्थात् यह ही ब्राह्मण को इष्ट होना चाहिए, जो ब्रह्मवर्चसी होवे ।

ब्राह्मणों में विद्वान् ही बलवान् है, क्योंकि कहा है—यो वै ब्राह्मणानामनूचानतमः स एषां वीर्य-वत्तमः ।[4] अर्थात् जो ही ब्राह्मणों में परम विद्वान् है, वह इन में अत्यन्त बलवान् है । बलवान् ब्राह्मण के कौन से शस्त्र हैं—एतानि वै ब्रह्मण आयधानि यद्यज्ञायुधानि ।[5] अर्थात् यही ब्रह्म=सौम्यशक्ति के शस्त्र हैं, जो यज्ञ के शस्त्र हैं ।

तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यङ्करोति मुखतो हि सृष्टः । ता० ब्रा० ६।१।६।।

अर्थात्—इसलिए ब्राह्मण मुख से ही अपना बल दिखाता है ।[6] मुख अर्थात् मुख्य गुणों से ही उत्पन्न हुआ है । ज्ञान ही मुख्य गुण है ।

पूर्वोक्त विद्या आदि गुणयुक्त ब्राह्मण ही सर्वत्र मान की दृष्टि से देखे जाते थे ।

(२) क्षत्रिय

ऐतरेय ब्राह्मण ८।६।। में लिखा है—क्षत्रं राजन्यः । अर्थात् बलरूप ही क्षत्रिय है ।

---

१. ३।२।१।४०।। श० ब्रा० ।
२. २।२१।। गो० पू० ।
३. १।६।३।१६।। श० ब्रा० ।
४. ४।६।६।५।। श० ब्रा० ।
५. ७।१६।। ऐ० ब्रा० ।
६. तुलना करें मनुस्मृति—वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः । ११।३३।।

ऐतरेय ब्राह्मण ७।२२।। में लिखा है—क्षत्रं हि राष्ट्रम् । अर्थात् बलरूप का अस्तित्व ही राज्य है । बलहीन जातियां राष्ट्र को ठीक नहीं रख सकतीं ।

क्षत्रियों की सम्पत्ति—गोपथ ब्राह्मण, उत्तर भाग ६।७।। में लिखा है—**तस्माद् क्षत्रियो भूयिष्ठं हि पशूनामीष्टे ।** अर्थात् इस लिए क्षत्रिय सब से अधिक पशुओं का स्वामी होता है । इस से प्रकट होता है कि राजाओं के पास सहस्रों घोड़े, गौ आदि होने चाहिएं ।

क्षत्रिय और ब्राह्मण का सम्बन्ध—ऐतरेय ब्राह्मण ८।६।। में लिखा है—**यत्र ब्राह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते ।** अर्थात् जहां ज्ञानशक्ति के आश्रय बलशक्ति काम करती है, वही राष्ट्र सम्पत्तिशाली (होता है), वही राष्ट्र वीरों वाला होता है । इसी राष्ट्र में वीर=शक्तिशाली पुरुष उत्पन्न होता है ।

इस कथन में स्पष्ट उपदेश किया गया है कि क्षत्रियों को विद्वानों के अधीन रह कर ही राज्य प्रबन्ध करना चाहिए । वेदादि शास्त्रों में अनेक स्थानों पर कहा गया है कि संसार के कल्याण के लिए, भुज-बल और ज्ञानबल को परस्पर मिल कर काम करना चाहिए । जो आधुनिक ग्रन्थकार पुराने आर्यों को ब्राह्मणों के आधिपत्य के नीचे दबा हुआ समझते हैं, उन्हों ने आर्य जाति के भाव को नहीं समझा । आर्य लोग विद्याबल को सब बलों से सर्वोपरि मानते थे । ब्राह्मण में वह बल पूरे रूप में पाया जाता है, ऐसा पूर्वोक्त प्रमाणों द्वारा प्रकट किया जा चुका है । इस लिए क्षात्र-बल को ब्राह्मणों के साथ मिल कर ही काम करना चाहिए ।

यो वै राजा ब्राह्मणादबलीयानमित्रेभ्यो वै स बलीयान्भवति । श० ब्रा० ५।४।४।१५।।

अर्थात्—जो राजा ब्राह्मण से निर्बल है (जिस के पास विद्वान् ब्राह्मण नहीं हैं) वह शत्रुओं से बल वाला होता है । अर्थात् विद्वान् ब्राह्मणों के मन्त्री आदि पदों को सुशोभित न करने पर राजा के शत्रु बढ़ जाते हैं ।

तत्तदवक्लृप्तमेव । यद् ब्राह्मणो ऽराजन्यः स्याद्यद्यु राजानं लभेत समृद्धं तदेतद्ध त्वेवानवक्लृप्तं । यत्क्षत्रियो ऽब्राह्मणो भवति यद्ध किं च कर्म्म कुरुते ऽप्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण न हैवास्मै तत्समृध्यते तस्माद् क्षत्रियेण कर्म करिष्यमाणेनोपसर्तव्य एव ब्राह्मणः सꣳहैवास्मै तद्ब्रह्मप्रसूतं कर्म ऽर्ध्यते । श० ब्रा० ४।१।४।६।।

अर्थात्—तब यह युक्त ही है कि ब्राह्मण राजा के बिना ही हो । यदि (ब्राह्मण) राजा को प्राप्त करे, यह (दोनों ब्राह्मण और राजा या क्षत्रिय) के लिए कल्याणकारी होता है । यह सर्वथा अयुक्त है कि क्षत्रिय=राजा ब्राह्मण के बिना हो । क्योंकि जो कर्म वह करता है, ब्रह्म और मित्र से अप्रसूत, नहीं वह इस के लिए समृद्धियुक्त होता । इस लिए जब क्षत्रिय कोई (भारी और साहस का) काम करने लगे तो ब्राह्मण के समीप जावे, क्योंकि ब्राह्मण से बताए हुए कर्म में वह सफल होता है ।

जो सौम्य गुणयुक्त निष्कपट विद्वान्, सात्विक स्वभाव वाला व्यक्ति है, उसे राजा की कोई आवश्यकता नहीं । प्रथम तो उस के शत्रु होते ही नहीं, और यदि होते हैं, तो उन्हें सच्चा ब्राह्मण अपनी वाणी से परास्त कर देता है । क्षत्रिय को वस्तुतः पदे पदे ब्राह्मण की बड़ी आवश्यकता है । ठीक सम्मति से क्षत्रिय सफल हो जाता है । चन्द्रगुप्त, एक ब्राह्मण की सम्मति से ही कितना महान् बन गया । अतः पूर्वोक्त ब्राह्मण वचन राजनीति के वास्तविक तत्व को बताता है ।

क्षत्रिय के शस्त्र—ऐतरेय ब्राह्मण ७।१६।। में लिखा है—**एतानि क्षत्रस्यायुधानि यदश्वरथः कवच इषुधन्व।** अर्थात् यही क्षात्र बल के शस्त्र हैं, जो घोड़ा, रथ, कवच, तीर और धनुष। पुनः शतपथ ब्राह्मण १३।१।५।६।। में लिखा है—**युद्धं वै राजन्यस्य वीर्यम्।** अर्थात् युद्ध ही क्षत्रिय का बल है।

राजा—शतपथ ब्राह्मण १३।२।२।५।। के अनुसार **तस्माद्राजा बाहुबली भावुकः।** अर्थात् इसलिए बाहुबल युक्त राजा प्रिय होता है। पुनः शतपथ ब्राह्मण १३।२।२।२८।। के अनुसार—**तस्माद्राजोरुबली भावुकः।** अर्थात् इस लिए जंघा में बलवान् राजा प्रिय होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।६।१।। में लिखा है—**नाऽराजकस्य युद्धमस्ति।** अर्थात् जिस देश में अराजकता है, वह देश किसी से युद्ध नहीं कर सकता। जिस देश के लोग परस्पर लड़ते झगड़ते हैं, जहां कोई नियम नहीं है, वहां ऐसा ही हाल होता है।

राजा का युद्ध-प्रस्थान—**तद्यथा महाराजः पुरस्तात्सैनानीकानि प्रत्युह्याभयं पन्थानमन्वियात्।**[1] अर्थात् तो जिस प्रकार एक बड़ा राजा सब से आगे सेना के अग्रभाग को करके निर्भय हो कर मार्ग को तय करता है। इस से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय सम्राट् युद्ध में जाते समय सेना के अग्रभाग को आगे रखते थे।

(३) वैश्य

वैश्यों का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में कम मिलता है।

ऐतरेय ब्राह्मण ८।२६।। में लिखा है—**राष्ट्राणि वै विशः।** अर्थात् वैश्य ही राष्ट्र हैं। वैश्य के धन कमाने पर ही राज्य में सब वर्णों का काम चलता है।

(४) शूद्र

प्राचीन शास्त्रों में शूद्र की बड़ी निन्दा पाई जाती है। इस का अभिप्राय यह नहीं कि आर्य लोग शूद्रों के विरोधी थे। आर्य सभ्यता में शूद्र उसी को कहा गया है, जो यत्न किए जाने पर भी पढ़ लिख न सके, मूर्ख का मूर्ख रहे। वह संसार में किसी प्रकार भी उन्नति नहीं कर सकता। ऐसे आदमियों के काम तो दूसरों की सेवा और उदरपूर्ति ही हैं। इसी लिए ब्राह्मण कहता है—**तस्मात्पादावनेज्यन्नाति वर्द्धते पत्तो हि सृष्टः।**[2]

अर्थात्—इस लिये पाओं को धोता हुआ, अधिक वृद्धि को प्राप्त नहीं होता, पाओं से ही उत्पन्न हुआ हुआ है।

जो अज्ञानी है वह श्रम से ही अपना जीवन निर्वाह कर सकता है। इसलिए ब्राह्मण कहता है—

(१) **तपो वै शूद्रः।** श० ब्रा० १३।६।२।१०।।

(२) **असुर्य्यः शूद्रः।** तै० सं० १।२।६।७।।

अर्थात्—श्रमरूप ही शूद्र है। ज्ञानहीन ही शूद्र है।

ऐसे मूर्ख के समीप वेद का पढ़ना निरर्थक है। इसलिए ब्राह्मण कहता है—**पद्यु ह वा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्।**[3] अर्थात् पांव वाला चलता फिरता ही यह श्मशान है, जो शूद्र है। इसलिए

---

१. ५।५।। कौशिक सूत्र।
२. ६।१।११।। ताण्ड्य ब्राह्मण।
३. वेदान्त सूत्र १।३।३८।। पर शङ्करभाष्योद्धृत किसी ब्राह्मण का पाठ।

(जिस प्रकार श्मशान में स्वाध्याय वर्जित है, वैसे ही) शूद्र के समीप नहीं पढ़ना चाहिए। इस का भाव तो यही था कि शूद्र को वेद का उपदेश सुनाने का कोई लाभ नहीं। मध्य काल के तंग दिल लोगों ने यह ही समझ लिया कि यदि वेद पढ़ने वाले के पास से भी कोई शूद्र निकल जाए, तो शूद्र को दण्ड देना चाहिए। यह भाव नवीन स्मृतिकारों का है, वैदिक ग्रन्थकारों का नहीं।

अज्ञानी होने से ही शूद्र का यज्ञ में अधिकार नहीं है, इसी लिए तैत्तिरीय संहिता ७।१।१।६।। में कहा है—**तस्माच्छूद्रो यज्ञे ऽनवक्लृप्तः।** अर्थात् इसीलिए शूद्र यज्ञ में ठीक नहीं समझा गया।

यही चारों वर्ण थे, जो आर्य जाति के अङ्ग थे।

वर्ण परिवर्तन

ब्राह्मणों के पाठ से पता लगता है कि यह चारों वर्ण साधारणतया जन्म से ही माने जाते थे। ब्राह्मण अवश्य ही अपने लड़के को ब्राह्मण अर्थात् वेदवेत्ता बनाता था और क्षत्रिय अपने लड़के को युद्ध विद्या विशारद। ब्राह्मण पुत्र के लिए ब्राह्मण बनना है भी सरल। इसी लिए एक ही कुल में एक के पीछे दूसरा सहस्रों ब्राह्मण बनते गए थे। पर ब्राह्मणों का पाठ यह भी बताता है कि जन्म से वर्ण एक कड़ा नियम न था। तप से, ज्ञान से, घोर परिश्रम से, एक अब्राह्मण भी ब्राह्मण बन सकता था। इसी प्रकार विद्या-गुणहीन एक ब्राह्मण भी नाममात्र का ही ब्राह्मण रह जाता था। यथा—

(१) **माध्यमाः सरस्वत्यां।** कौ० ब्रा० १२।३।।

(२) **ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत ते कवषमैलूषं सोमादनयन दास्याः पुत्रः कितवो ऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्टेति।.........स बहिर्धन्वोदूढह पिपासया वित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत्, प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु, इति।** ऐ० ब्रा० २।१९।।

अर्थात्—ऋषि जन सरस्वती के तट पर यज्ञ करते थे। उन्हों ने कवष ऐलूष[1] को सोम से दूर कर दिया। दासी का पुत्र, धोखा देने वाला, अब्राह्मण, किस प्रकार यह हमारे मध्य में दीक्षित हुआ है। वह बाहर जंगल में गया पिपासा से संतप्त। उस ने यह अपोनप्त्र देवता वाला सूक्त देखा—**प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु।**[2]

इस से प्रतीत होता है कि एक अब्राह्मण भी मन्त्रों का द्रष्टा बन गया। उसे ही ऋषियों ने वेदार्थ द्रष्टा ब्राह्मण मान कर पुनः अपने यज्ञ में बुलाया।

अभिमान की निन्दा—मानव जीवन के सम्बन्ध में ब्राह्मण का यह एक सुन्दर उपदेश है कि अभिमान बड़ा बुरा कर्म है। अभिमान करने वाले के जीवन से सारा रस उड़ जाता है। अभिमान को सब ही बुरा कहते आए हैं। प्राचीन काल में ब्राह्मण ग्रन्थ के प्रवचनकर्त्ता ने भी इस तत्त्व को जान लिया था। इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में कहा है—**तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमानः।**[3] अर्थात् इसलिए अतिमान=अभिमान न करे। हार, अधःपतन का ही यह मुख अभिमान है।

---

१. इसी कवष ऐलूष सम्बन्धी एक कथा छागलेयोपनिषद् में मिलती है। वहां भी इसे दास्याः पुत्रः कहा है। तुलना करें, कौ० ब्रा० १२।३।।

२. १०।३०।। ऋ०।

३. ५।१।१।१।। श० ब्रा०।

बारहवां अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थों के भाष्यकार

(क) ऐतरेय ब्राह्मण

१. भट्ट गोविन्द स्वामी (११वीं-१२वीं शताब्दी ईसा)

दैव ग्रन्थ की पुरुषकार व्याख्या का कर्त्ता श्री कृष्ण लीला शुकमुनि (१३वीं शताब्दी ईसा) कारिका संख्या १६८ की व्याख्या में लिखता है—तथा च बह्वृचब्राह्मणम्—'प्रवल्हिकाः शंसति । प्रवल्हिकाभिर्वै देवा असुरान् प्रवल्ह्यार्थेनानात्यायन् इति । ऐ० ब्रा० ६।३३।। व्याकृतं चैतत् गोविन्दस्वामिना—प्रवल्हिकाः प्रहेलिकाः ...इति । यहां पुरुषकार का रचयिता ऐतरेय ब्राह्मण भाष्यकार गोविन्द स्वामी का स्मरण करता है ।

माधवीय धातुवृत्ति में भी पुरुषकार के पूर्वोक्त वर्णन को उद्धृत करके गोविन्द स्वामी का नाम लिया गया है ।[१] यह पाठ अधिक स्पष्ट है ।

गोविन्द स्वामी को षड्गुरुशिष्य भी स्मरण करता है ।[२] गोविन्द स्वामी अष्टाध्यायी वृत्ति को ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य में उद्धृत करता है । वह अष्टाध्यायी ७।३।६२।। पर अपनी वृत्ति में वृत्तिकारौ वर्णयाञ्चकार लिखता है ।

गोविन्द स्वामी के ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य का एक हस्तलिखित ग्रन्थ मैंने गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मेनुस्क्रप्टस लाइब्रेरी मद्रास में देखा था ।[३] इस के अध्याय २५ में गोविन्द भट्टाचार्य (कुमारिल ?) को उद्धृत करता है ।[४]

अनुमान होता है कि इसी गोविन्द स्वामी ने बौधायन धर्म सूत्र पर बौधायनीय धर्म विवरण लिखा है । इस विवरण में यह भट्ट कुमारिल का नाम और तन्त्र वार्तिक की पंक्तियां उद्धृत करता है ।[५] एक स्थान

---

१. पृ० ३६३, भ्वादि प्रकरण, धातुवृत्ति, माधव कृत ।

२. पृ० २, ऐ० ब्रा०, षड्गुरुशिष्य भाष्य सहित, त्रिवेन्द्रम्, १९४२ ।

३. संख्या ३८०६, Catalogue of Manuscripts, Government Oriental Manuscripts Library, Madras.

४. डा० राम शर्मा ने गोविन्द स्वामी तथा भट्ट भास्कर के भाष्यों के प्रथम दस अध्यायों का संपादन किया है । आशा है यह शीघ्र छप जायगा । डा० शर्मा, Epigraphist to the Government of India, Mysore, के कार्यालय में कार्य करते हैं ।

५. १।१।२१।।

पर बिना नाम लिखे यह तन्त्रवार्तिक का एक प्रसिद्ध श्लोक लिखता है। अन्यत्र यह यज्ञस्वामी प्रणीत वसिष्ठ धर्म सूत्र विवरण को उद्धृत करता है।

एक और अनुमान है, जिस से गोविन्द स्वामी के काल के विषय में कुछ प्रकाश पड़ सकता है। यह अनुमान भी सन्देह पूर्ण है। फिर भी इसे विचारास्पद समझ कर लिख रहे हैं। मेधातिथि अपने मनुभाष्य में लिखता है—इह पञ्चप्रकारो धर्म इति स्मृति विवरणकारा प्रपञ्चयन्ति। **वर्णधर्म आश्रमधर्मो वर्णाश्रमधर्मो नैमित्तिको गुणधर्मश्चेति।** २।२५॥

गोविन्द स्वामी अपने बौधायन धर्म विवरण में लिखता है—**स च स्मार्तो धर्मः पञ्चविधो भवति। वर्णधर्म आश्रमधर्मो वर्णाश्रमधर्मो गुणधर्मो निमित्तधर्मश्चेति।** १।१।३॥

मेधातिथि का लेख, गोविन्द स्वामी के लेख से पर्याप्त मिलता है। गोविन्द स्वामी की टीका का नाम भी विवरण है। इस लिए अनुमान किया जा सकता है कि मनु के श्लोक का भाष्य करते समय मेधातिथि का ध्यान गोविन्द स्वामी के विवरण की ओर था। यदि यह बात सत्य निकले, तो गोविन्द स्वामी का काल नवम शताब्दी से पहले का हो सकता है।

मस्करी भी अपने गौतम धर्म सूत्र के भाष्य में यही कहता है—**धर्मः पञ्चप्रकारः—वर्णधर्म आश्रमधर्मो गुणधर्मो वर्णाश्रमधर्मो निमित्तधर्म इति।** १।१॥

इसलिए सुनिश्चित नहीं कहा जा सकता कि पूर्वोक्त पंक्तियां लिखते समय मेधातिथि का ध्यान किस की अथवा किन किन की ओर था।

मद्रास सूची भाग ४, पृ० ५६३४ और ५७४७ पर ऐतरेय भाष्य और बोधायन धर्म विवरण को दो दो स्थलों पर **गोविन्द स्वामिनि** लिखा है। यदि यह लेखक का भ्रम नहीं तो दोनों ग्रन्थों के समान कर्त्ता को बताता है। इस के पिता का नाम विष्णुसंकर तथा माता का नाम अरविन्दा लिखा है—

आत्मजेनारावन्दाया विष्णोस्संस्कृतिजन्मना।
गोविन्देनैतरेयस्य व्याख्यानं क्रियतेऽधुना॥[1]

एक अन्य गोविन्द स्वामी का श्लोक शार्ङ्गधर पद्धति ११६।१॥ में मिलता है।

२. जय स्वामी

रघुनन्दन अपने स्मृति तत्व के मलमास प्रकरण में 'आश्वलायन ब्राह्मण' भाष्यकार जय स्वामी को उद्धृत करता है। यह भूल है। वहां पर तो कठ शाखा के ब्राह्मण की व्याख्या जयस्वामी ने की है। आश्वलायन ब्राह्मण पर किसी की व्याख्या उद्धृत नहीं है।

ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्यकारों के सम्बन्ध में यह नाम हम ने अन्यत्र नहीं पढ़ा। यदि जयन्त स्वामी का ही पाठ भ्रंश होने के कारण जयं स्वामी नाम हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। जयन्त स्वामी ऋग्वेदीय वाङ्मय का प्रसिद्ध टीकाकार है। इसी ने आश्वलायन गृह्य सूत्र पर विमलोदय माला नाम की टीका लिखी है। इस जयन्त स्वामी को आश्वलायन गृह्य कारिका का कर्ता भट्ट कुमारिल स्वामी बहुधा उद्धृत करता है।

---

१. देखें, उपरिलिखित मद्रास कैटालाग, संख्या ३८०६।

यह भट्ट कुमारिल बहुत नवीन काल का है। पुंसवन प्रकरण में वह प्रयोग पारिजात (सन् १४३०) को उद्धृत करता है। प्रयोग पारिजात एक कुमारिल को उद्धृत करता है (पृ० १०७ ए)। प्रयोग पारिजात में विद्यारण्य और हेमाद्रि बहुधा उद्धृत हैं। प्रयोग पारिजात (सन् १४३०) में ही जयन्त उद्धृत है। हरिहर में भी एक जयन्त उद्धृत है। अतः जयन्त सन् १४०० से पहले का है और कुमारिल १४३० से पहले का है।

जयन्त स्वामी अपनी गृह्य टीका में अग्निशर्मोपाध्याय को स्मरण करता है। जयन्त स्वामी के विषय में और अधिक नहीं ज्ञात है।

यह भी सम्भव है कि जयस्वामी ही कोई ग्रन्थकार हो, क्योंकि हेमाद्रि श्राद्ध कल्प पृ० ७५ पर हारीत पर टीका लिखने वाला जयस्वामी भी स्मरण किया गया है।

३. भट्ट भास्कर

भट्ट भास्कर कृत ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य का एक हस्तलेख दयानन्द कालेज लाहौर के पुस्तकालय में था। अब यह विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, पंजाब, में होना चाहिए।[1] सम्भवतः ऐतरेय ब्राह्मण पर भाष्य करने वाले भट्ट भास्कर ने ऋग्वेद पर भी अपना भाष्य किया होगा। भट्ट भास्कर कृत उपलब्ध हस्तलिखित कापी में अब १४ अध्याय पर वृत्ति ही शेष है।[2]

४. षड्गुरुशिष्य (१२०० –१२५० संवत्)

प्रसिद्ध षड्गुरुशिष्य ने ऐतरेय ब्राह्मण पर एक वृत्ति लिखी थी। इस का नाम सुखप्रदा है। यह छप चुकी है। इस के अतिरिक्त षड्गुरुशिष्य ने ऐतरेय आरण्यक, आश्वलायन श्रौत, आश्वलायन गृह्य और ऋक् सर्वानुक्रमणी पर भी वृत्तियां लिखी थीं। ये प्रकाशित अथवा हस्तलिखित रूप में अब प्राप्य हैं। षड्गुरुशिष्य की सर्वानुक्रमणी वृत्ति का सार मैंकडानल ने छापा था। षड्गुरुशिष्य ने कुछ और भी वृत्तियां लिखी हों, यह ज्ञात नहीं।

षड्गुरुशिष्य ऐतरेय ब्राह्मण पर अपनी सुखप्रदा वृत्ति के अन्त में लिखता है—इति षड्गुरुशिष्य विरचितायां महिदासैतरेय ब्राह्मणवृत्तौ सुखप्रदायां...। अपने भाष्य के आरम्भ में वह लिखता है—

चात्वारिंशाख्यमध्यायाश्चत्वारिंशदिहेति इण्।
प्रतायते तस्य वृत्तिर्नाम्ना चैषा सुखप्रदा ॥
गोविन्दस्वामि कृष्णादिभाष्य दृष्टार्थ भाषिणी।
नास्या वृत्तेरर्थवत्त्वमनुक्तार्थोपवर्णनात् ॥[2]

षड्गुरुशिष्य ने सर्वानुक्रमणी वृत्ति वेदार्थदीपिका सम्वत् १२३४ में लिखी थी। यह तिथि उस ने अपनी वृत्ति के अन्त में निम्नलिखित श्लोक से प्रकट की है—

खगोत्यान्मेवुमायेति कल्यहर्गणने सति।
सर्वानुक्रमणीवृत्तिर्जाता वेदार्थदीपिका ॥१३॥

---

१. इस हस्तलिखित प्रति का संपादनार्थ प्रयोग डाक्टर शर्मा ने किया है।
२. पृ० २, ऐ० ब्रा०, आर० अनन्त कृष्ण शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९४२।

अर्थात् कलि के १,५६५,१३२ दिन व्यतीत होने पर यह वृत्ति लिखी गयी। अर्थात् कलि संवत् ४२८८ अथवा विक्रम सम्वत् १२३४ में षड्गुरुशिष्य विद्यमान था।

आन्तरिक साक्ष्य से भी षड्गुरुशिष्य का पूर्वोक्त काल ही निर्धारित होता है।

षड्गुरुशिष्य के छः गुरु श्लोक १५ में वर्णित हैं। यथा—विनायक, शूलपाणि अथवा शूलाङ्क, मुकुन्द अथवा गोविन्द, सूर्य, व्यास तथा शिवयोगी। इन नामों से क्या यह परिणाम निकाला जाय कि षड्गुरुशिष्य महाराष्ट्र का रहने वाला था।

षड्गुरुशिष्योद्धृत ग्रन्थों व ग्रन्थकारों की जो सूची मैकडानल ने अपने संस्करण के पांचवें परिशिष्ट में दी है, उस में दो नाम रह गए हैं। पहला तो स्पष्ट ही पृ० ८१ पर मिलता है। यह है नारद स्तोत्र। दूसरा नाम स्पष्ट रूप से नहीं आया। वेदार्थ दीपिका के पृष्ठ ५६ तथा ६६ पर क्रमशः लिखा है—**यातयामो जीर्णे भुक्तोच्छिष्टेऽपि च, इति निघण्टौ।** तथा—**शङ्काऽवितर्कभययोः इति निघण्टुः।** मैकडानल दोनों स्थलों पर टिप्पणी में लिखता है कि ये प्रमाण यास्क कृत निघण्टु में नहीं हैं। हमारा कहना है कि यास्क कृत निघण्टु ही केवल निघण्टु नहीं है, प्रत्युत प्रत्येक कोष निघण्टु कहलाता है। ये दोनों वचन वैजयन्ती पृष्ठ २७५, २२३ पर क्रमशः मिलते हैं। वैजयन्तीकार यादव प्रकाश का काल लगभग विक्रम सम्वत् १०५० है। अतः उसे उद्धृत करने वाला षड्गुरुशिष्य निश्चय ही ग्यारहवीं शताब्दी से पीछे का है।

५. सायण (लगभग संवत् १३७२-१४४४)

वैदिक भाष्यकारों में सायण विशेष स्थान रखता है। उस का वैदिक वाङ्मय से प्रेम, उस का विस्तृत अध्ययन, उस का विजय नगर के राज्य को सुदृढ़ करना, ये सब कार्य उस की असाधारण योग्यता प्रकट करते हैं।

काल—बुक्क प्रथम, कम्पण, सङ्गम द्वितीय और हरिहर द्वितीय, विजय नगर और उस के उपराज्यों के इन चार राजाओं का मन्त्री सायण रहा है। सायण अपने ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्य के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर लिखता है—**इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर वैदिक धर्म मार्ग प्रवर्तक वीर बुक्कण साम्राज्य धुरंधर सायणाचार्य कृतावैतरेय ब्राह्मण भाष्ये......।** अर्थात् वैदिक धर्म के मार्ग प्रवर्तक महाराज श्रीबुक्क के काल में ऐतरेय ब्राह्मण का भाष्य सायणाचार्य ने रचा।

अपनी सुभाषितसुधानिधि के आरम्भ में सायण लिखता है कि वह कम्पराज का मन्त्री था। धातुवृत्ति, प्रायश्चित सुधानिधि, यज्ञतन्त्र सुधानिधि, और अलंकार सुधानिधि में वह लिखता है कि वह सङ्गम द्वितीय का मन्त्री था। शतपथ ब्राह्मण के भाष्य में वह लिखता है कि वह हरिहर द्वितीय का मन्त्री था।

आफ्रेक्ट के मतानुसार सायण का देहान्त संवत् १४४४ में हो गया था। सायण ७२ वर्ष जीवित रहा, अतः संवत् १३७२ अनुमानतः उस की जन्मतिथि होगी।

सायण का कुल—एक भग्न शिलालेख काञ्चीपुरम के एक मन्दिर में ग्रन्थाक्षरों में लिखा मिलता है। उस में लिखा है—**स्वस्ति श्री श्रीमायी जननी पिता तव मुनिर्बोधाय[नो] सायणो......ष्ठो......भूष्णर-नुजः श्री भोगन[ा]थः कविः स्वा[मी] [सं]ग[म] भूप[तिः]......पूर्वी [क]ण्ठनाथो गुरुर्भारद्वाज [कु]लेश सा[य]ण गुर्णस्वत्त।** इस लेख में सायण को सम्बोधन कर के कहा गया है कि तुम्हारा गोत्र भारद्वाज है, सूत्र

बोधायन है, माता श्रीमायी है, पिता मायण है, कनिष्ठ भ्राता कवि भोगनाथ है, स्वामी संगम है और गुरु श्रीकण्ठनाथ है।

यही बात सायण के बड़े भ्राता माधव के लेख से स्पष्ट होती है। पराशर स्मृति की टीका में माधव लिखता है—

श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता।
सायणो भोगनाथश्च मनोबुद्धी सहोदरौ॥
यस्य बौधायनं सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी।
भारद्वाजकुलं यस्य सर्वज्ञः स हि माधवः॥

अर्थात् माता श्रीमायी, पिता मायण, सायण तथा भोगनाथ दो छोटे भाई, सूत्र बौधायन, याजुष शाखा, भारद्वाज गोत्र जिस का, ऐसा सर्वज्ञ माधव है। अलंकार सुधानिधि के लेख से भी यही बात ज्ञात होती है—

महेन्द्रवन्माननीयो मंत्री मायणसायणः।
मण्डलेषु कृतचारमण्डलः सायणो जयति मायणात्मजः।
मंत्री मायणसायणस्त्रिजगतीमान्यापदानोदयः।
इति श्रीमत्पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तर समुद्राधिपति॥

बुक्कराजप्रथमदेशिकमाधवाचार्यानुजन्मनः श्रीमत्संगमराजसकलराज्यधुरंधरस्य सकलविद्यानिधानभूतस्य भोगनाथाग्रजन्मनः श्रीमत्सायणाचार्यस्य कृतावलङ्कारसुधानिधौ। इन पंक्तियों से भी पूर्वोक्त अभिप्राय ही निकलता है। अलंकार सुधानिधि से यह भी ज्ञात होता है कि कम्पण, मायण और शिङ्गण नाम के सायण के तीन पुत्र थे। महाराज संगम को उस के बाल्यकाल से ही सायण ने स्वयं पढ़ाया था। सायण भगवान् व्यास का अवतार था। सायण योद्धा भी था। किसी चम्पराज पर उस ने विजय प्राप्त की थी—

विष्ट्या दैष्टिकभावसंभृतमहासंपद्विरोधोदयं।
जित्वा चम्पनरेन्द्रमूर्जितयशाः प्रत्यागतः सायणः॥

उस विजय का उल्लेख अलंकार सुधानिधि के इस श्लोक में है।

जन साधारण में एक भ्रम है कि विद्यारण्यवासी या तो सायण था, या माधव। यह नाम संन्यासी होते समय दोनों में से किसी एक ने धारण किया था। परन्तु विद्यारण्य तो इन दोनों से पृथक् एक तीसरा व्यक्ति था।

अपने से पूर्व के भाष्यकारों को सायण, केचन, अन्य आह, अपर आह, कश्चिदाह आदि ही कह कर संतुष्ट रहता है। उन को नाम लेकर नहीं उद्धृत करता है।

सायण के अन्य ग्रन्थ—सायण रचित जितने ग्रन्थों का अब तक पता मिला है, इन की सूची निम्न है—

(१) धातुवृत्ति।

(२) वैदिक भाष्य अर्थात् तैत्तिरीय, ऋक्, काण्व यजुः, साम, अथर्व, संहिताओं के भाष्य।

(३) ब्राह्मण भाष्य—तैत्तिरीय, ऐतरेय, साम आदि अष्ट ब्राह्मणों के भाष्य।
(४) आरण्यक भाष्य—तैत्तिरीयारण्यक, ऐतरेय आरण्यक भाष्य।
(५) ऐतरेय उपनिषद् दीपिका।
(६) सुभाषितसुधानिधि।
(७) प्रायश्चित सुधानिधि अथवा कर्मविपाक।
(८) अलङ्कार सुधानिधि।
(९) पुरुषार्थ सुधानिधि।
(१०) यज्ञमन्त्र सुधानिधि।

सायण के राज्य प्रतिष्ठालब्ध होने से ही उस के वैदिक भाष्यों का बहुत प्रचार हो गया। यही कारण था कि उस से पहले के वेदभाष्य मिलने भी कठिन हो गए थे। इसे ईश्वर कृपा ही समझनी चाहिए कि सायण का इतना प्रभाव बढ़ जाने पर भी प्राचीन भाष्यों के कुछ हस्तलेख अब मिल गए हैं।

(ख) कौषीतकि ब्राह्मण

१. भट्ट विनायक

कौषीतकि ब्राह्मण पर भट्ट विनायक ने भाष्य लिखा है। यह वृद्धनगर वासी भट्ट माधव का पुत्र था। सदर्थविमर्शनी नामक एक भाष्य मद्रास में सुरक्षित संस्कृत ग्रन्थ संग्रह-सूची की संख्या १९२८.३६५० और और ३७७९ में वर्णित है। अडयार सूची में संख्या ५९ में भी एक भाष्य का उल्लेख है। विनायक कौषीतकि ब्राह्मण भाष्य ३।१।। पर कालादर्श को उद्धृत करता है। यह बहुत पुराना ग्रन्थकार नहीं है।

२. मिताक्षरा टीका

आफ्रेक्ट वृहत्सूची भाग १, पृ० १३२ के अनुसार बनारस संस्कृत कालेज में कौषीतकि ब्राह्मण पर मिताक्षरा नाम की टीका का हस्तलेख है।

(ग) शतपथ ब्राह्मण

१. हरि स्वामी (कलि संवत् ३७४०, अथवा ६३८ ईसा)

वाराणसी के संस्कृत (क्वीन्स) कालेज के सरस्वती भण्डार में माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण के हविर्यज्ञ अर्थात् प्रथम काण्ड पर हरिस्वामी के भाष्य का एक हस्तलेख सुरक्षित है। उस के आरम्भ में निम्न श्लोक हैं—

नागस्वामी तन्न [त्ता] श्रीगुहस्वामीनन्दनः।
तत्र याजी प्रमाणज्ञ आढ्यो लक्ष्म्या समेधितः ॥५॥
तन्नन्दनो हरिस्वामी प्रस्फुरद्वेदवेदिमान्।
त्रयीव्याख्यानधौरेयोऽधीततन्त्रो गुरोर्मुखात् ॥६॥
यः सम्राट् कृतवान् सप्तसोमसंस्थास्तथर्क्कश्रुतिम्।
व्याख्या [ां] कृत्वाध्यापयन्मां श्रीस्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरुः ॥७॥

अर्थात् श्री गुहस्वामी का पौत्र और नागस्वामी का पुत्र याज्ञिक, प्रमाणज्ञ और लक्ष्मी से युक्त

हरिस्वामी था। वह वेदों के व्याख्यान में प्रवीण और गुरु मुख से विद्या पढ़ा हुआ था। जिसने सात सोम संस्था करके सम्राट् की पदवी प्राप्त की और ऋग्वेद पर व्याख्या करने के पश्चात् मुझे पढ़ाया था, वह श्री स्कन्दस्वामी मेरा गुरु है।

हरिस्वामी का काल—इसी प्रथम काण्ड के भाष्य के अन्त में हरिस्वामी पुनः लिखता है=

यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशच्छतानि वै।
चत्वारिंशत्समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिदं कृतम् ॥

अर्थात्—जब कलि के ३७४० वर्ष बीत गए तब यह भाष्य रचा गया। क्या इस का अर्थ कलि सम्वत् के ३०४७ वर्ष व्यतीत होने पर भी हो सकता है ? कुछ विद्वानों ने ऐसा ही माना है। उन्हों ने सप्त को पृथक् पद माना है। 'वै' पद का प्रयोग होने से इस प्रकार काल निर्देश हो सकता है। यदि यह व्याख्या ठीक हो तो द्वितीय श्लोक की पूर्व श्लोक के साथ संगति ठीक बैठ जाती है। ३७४० कलि अब्द अर्थ करने में एक आपत्ति यह भी है कि उस समय अर्थात् विक्रम संवत् ६९५ में अवन्ति अथवा उज्जैन में कोई विक्रम था इस की अभी इतिहास से सिद्धि नहीं हुई।

प्रथम काण्ड के ब्राह्मण भाष्य के अनेक अध्यायों की समाप्ति पर निम्नलिखित श्लोक लिखे हैं—

नागस्वामी सुतोऽवन्त्यां पाराशर्यो वसन् हरिः।
श्रुत्यर्थं दर्शयामास शक्तितः पौष्करीयकः ॥
श्रीमतोऽवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्य भूपतेः।
धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्याच्छातपथीं श्रुतिं ॥

अर्थात्—पराशर गोत्र वाले, नागस्वामी के पुत्र, पुष्कर निवासी, अवन्तिनाथ विक्रमार्क के धर्माध्यक्ष, हरिस्वामी ने शतपथ की श्रुति का व्याख्यान किया।

हरिस्वामी का काल सन्देह से परे है।

२. उवट—संवत् ११००

बीकानेर के सूचीपत्र पृष्ठ ६९ पर लिखा है कि उवट ने भी शतपथ ब्राह्मण पर भाष्य किया था। हम ने इस का कोई हस्तलेख नहीं देखा।

उवट अपने यजुर्वेद भाष्य की समाप्ति पर लिखता है—

आनन्दपुरवास्तव्यवज्रटाख्यस्य सूनुना।
उवटेन कृतं भाष्यं पदवाक्यैः सुनिश्चितैः ॥
ऋष्यादींश्च नमस्कृत्य अवन्त्यामुवटोऽवसन्।
मन्त्राणां कृतवान्भाष्यं महीं भोजे प्रशासति ॥२॥

अर्थात्—आनन्दपुर (गुजरात) निवासी वज्रट के पुत्र उवट ने सुनिश्चित पद वाक्यों से भाष्य किया। ऋषि मुनियों को नमस्कार करके, अवन्ति में रहते हुए उवट ने मन्त्रों का भाष्य पूर्ण किया, जब कि महाराज भोज पृथिवी पर शासन करते थे।

यही श्लोक स्वल्प पाठान्तरों के साथ अन्य हस्तलेखों के भिन्न-भिन्न अध्यायों के अन्त में भी आए हैं। वे नीचे दिए जाते हैं।

बड़ोदा के हस्तलेख संख्या १०४४७ के अन्त में लिखा है—

आनन्दपुरवास्तव्यवज्रटाख्यस्य सूनुना।
मन्त्रभाष्यमिदं क्लृप्तं भोजे पृथ्वीं प्रशासति ॥[1]

पूना के हस्तलेख संख्या २३२ के दशम अध्याय के अन्त में लिखा है—

ऋष्यादींश्च नमस्कृत्य ह्यवन्त्या उवटो वसन्।
मन्त्रभाष्यमिदं चक्रे भोजे राज्यं प्रशासति ॥

बड़ोदा का संख्या १०४४७ का हस्तलेख संवत् १४६४ का है। पूना का संख्या २३२ का हस्तलेख संवत् १४३१ का है।

काशी-मुद्रित वाराणसीय राजकीय संस्कृतपाठशालीय उवट भाष्यानुसारी पाठ में १३वें अध्याय के अन्त में लिखा है—

आनन्दपुरवास्तव्यवज्रटस्य च सूनुना।
उवटेन कृतं भाष्यमुज्जयिन्यां स्थितेन तु ॥

इन श्लोकों के देखने से निश्चित होता है कि उवट ने महाराज भोज के राज्यकाल में यह भाष्य लिखा था। भोज का राज्य काल संवत् १०७५-१११७ तक माना जाता है। अतः संवत् ११०० के समीप ही उवट ने यह भाष्य लिखा होगा।

उवट का कुल—उवट का नाम प्राचीन कोशों में उव्वट भी लिखा है।[2] उवट नागर ब्राह्मण था। आनन्दनगर गुजरात में है। जैसा पूर्वोक्त श्लोकों से ज्ञात हो गया होगा। उवट के पिता का नाम वज्रट था। आनन्दाश्रम पूना से ईशावस्योपनिषद् पर अनेक टीकाएं छपी हैं। उन में उवट भाष्य भी छपा है। उस के अन्त लेख से प्रतीत होता है कि उवट का पिता वज्रट कोई उपाध्याय था—

इति श्रीमद्वज्रटभट्टोपाध्यायात्मजसकलनिगमविच्चूडामणि श्रीमदुवटभट्टार्यविरचिते..... चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

उवट के अन्य ग्रन्थ—मन्त्रभाष्य के अतिरिक्त उवट ने निम्नलिखित ग्रन्थ रचे थे—

(१) ऋक् प्रातिशाख्य भाष्य।
(२) यजुः प्रातिशाख्य भाष्य।
(३) ऋक् सर्वानुक्रमणी भाष्य।

तीसरे ग्रन्थ का लेखक यही उवट है, इस बात का अभी निर्णय करना है।

उवट के मन्त्रभाष्य से शत्रुघ्न, महीधर आदि ग्रन्थकारों ने बड़ा लाभ उठाया है।

---

१. पृ० ७२, निरुक्त, डा० स्वरूप की सूचियां। दयानन्द कालेज, लाहौर, के पुस्तकालय की संख्या ३६६२ के २०वें और ३०वें अध्याय की समाप्ति पर भी यही श्लोक है।
२. वैदिक कोश, हंसराज, २५वें अध्याय का अन्त।

३. सायण (लगभग १३७२-१४४४ संवत्)

इस भाष्यकार के विषय में ऊपर लिखा है। शतपथ ब्राह्मण पर सायण कृत भाष्य के काण्ड १-३, ५-७ और ९ एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता से छप चुके हैं। सायण भाष्य का ढंग सर्वत्र एक जैसा ही है।

४. कवीन्द्राचार्य

बीकानेर के सूचीपत्र पृष्ठ ७१ संख्या १७९ के नीचे शतपथ के उषासम्भरण अर्थात् छठे काण्ड पर कवीन्द्राचार्य सरस्वती कृत भाष्य का उल्लेख है। प्रतीत होता है, ग्रन्थकार का नाम जानने में राजेन्द्रलाल मित्र को भूल हुई है। यद्यपि मैंने इस हस्तलेख को नहीं देखा फिर भी अनुमान है कि यह कवीन्द्राचार्य सरस्वती के पुस्तकालय की विख्यात हस्ताक्षरों की मुहर को इस कोश के ऊपर देखकर ही मित्र महाशय ने भूल की है। यह तो हरिस्वामी का भाष्य प्रतीत होता है।

(घ) काण्व शतपथ ब्राह्मण

(१) नीलकण्ठ

महाभारत वनपर्व १६२।११॥ की टीका करते हुए नीलकण्ठ लिखता है—

सूर्यामासा विचरन्ता दिवि, इति मन्त्रवर्णनात्। सूर्यामासा सूर्याचन्द्रमसावित्यर्थः। निपुणतरमुपपादितमेतदस्माभिः काण्वशतपथ भाष्ये एकपादी काण्डे।

काण्व शतपथ ब्राह्मण की भूमिका पृ० २६ के डाक्टर कालेण्ड के लेख से ज्ञात होता है कि काण्व ब्राह्मण के पाठों और विभागों की दृष्टि से मूल के दो भाग हो गए हैं। इन में से एक उत्तरीय और दूसरा दाक्षिणात्य है। उत्तरीय अथवा बनारस के निकटस्थ देशों में जो काण्व ब्राह्मण के हस्तलेख पाए गए हैं उन में प्रथम काण्ड का नाम एकपात् है। दाक्षिणात्य हस्तलेखों में इसी का नाम एकवायी काण्ड है। नीलकण्ठ ने पूर्वोक्त लेख में काण्ड का नाम एकपादी लिखा है। इस से प्रकट होता है कि यह नीलकण्ठ उत्तर देशीय, महाराष्ट्र अथवा बनारस के निकट का ही रहने वाला था। इस का काल लगभग ५०० वर्ष पूर्व का है।

२. अनन्ताचार्य

मद्रास के सूचीपत्र के अनुसार यह नागदेव भट्ट का पुत्र है।[1]

(ङ) शतपथान्तर्गत मण्डल ब्राह्मण

नारायणेन्द्र सरस्वती

बड़ोदा के सूचीपत्र भाग १, पृ० १२, संख्या ७३४ पर नारायणेन्द्र सरस्वती कृत मण्डल ब्राह्मण भाष्य की विद्यमानता बताई गई है। इस भाष्य का नाम पण्डितमण्डन भाष्य है।

(च) शतपथान्तर्गत पिण्डब्राह्मण

कात्यायनश्राद्धसूत्र पर श्राद्धकाशिका (सम्वत् १५०५) का लिखने वाला कृष्णमिश्र दूसरी कण्डिका की व्याख्या में लिखता है—**पिण्डब्राह्मणभाष्यकारोऽपि—अथ नीवीमुद्वृह्य नमस्करोतीति कण्डिकाव्याख्याने नाभेर्दक्षिणत एव नीवीस्थानमित्यमंस्त।**

---

१. संख्या २३९६, पृ० ३३१०-३३११, भाग ३, पार्ट एक बी, मद्रास कैटालाग, १९२२। तथा पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, का सूची पत्र भी देखें।

अर्थात्—अथ नीवीम् (माध्यन्दिन शतपथ २।४।२।२४॥) की व्याख्या में पिण्डब्राह्मण का भाष्यकार भी मानता है कि नाभि के दक्षिण में ही नीवी स्थान है। इस प्रकार का वचन सायण भाष्य में नहीं मिलता। श्राद्धकाशिकाकार का अभिप्राय किस ब्राह्मण भाष्य से है, यह विचारणीय है।

(छ) तैत्तिरीय ब्राह्मण

१. भवस्वामी

भट्ट भास्कर तैत्तिरीय संहिता भाष्य के प्रथम काण्ड के पृ० २ के अन्त में लिखता है—

वाक्यार्थैकपराण्यधीत्य च भवस्वाम्यादिभाष्याण्यतो।
भाष्यं सर्वपथीनमेतदधुना सर्वीयमारभ्यते॥

अर्थात्—वाक्यार्थ मात्र करने वाले भवस्वामी आदि के भाष्यों को पढ़ कर यह सर्वांग पूर्ण भाष्य का आरम्भ किया जाता है।

इस से स्पष्ट है कि भवस्वामी भट्ट भास्कर से पूर्व का व्यक्ति है। बर्नेल तञ्जोर के सूचीपत्र पृ० ७ पर लिखता है कि भट्ट भास्कर दशम शताब्दी में हुआ था। इसलिए यह निश्चित है कि भवस्वामी दशम शताब्दी से पहले हो चुका था।

त्रिकाण्ड मण्डन १।१०१॥ में केशव स्वामी का नाम मिलता है। त्रिकाण्ड मण्डन लगभग ११वीं शताब्दी का ग्रन्थ है।[1] केशव स्वामी इस से कुछ पूर्व हुआ होगा। यह केशव स्वामी अपने बौधायन प्रयोगसार के आरम्भ में लिखता है—

नारायणादिभिः प्रयोगकारैरेकं पक्षमाश्रित्य दर्शपूर्णमासादीनां प्रयोग उक्तः। आचार्यपादैः द्वैधे पक्षान्तराण्युक्तानि। भवस्वामीमतानुसारिणा मया तु उभयमप्यङ्गीकृत्य प्रयोगसारः क्रियते।

अर्थात्—नारायणादि प्रयोगकारों ने एक पक्ष का ही आश्रय लेकर प्रयोग कहा है। आचार्यपाद ने द्वैध में भी पक्षान्तर कहे हैं। भवस्वामी मतानुसार मैं दोनों को अङ्गीकार करके प्रयोगसार लिखता हूं।

जिस नारायण को केशव स्वामी उद्धृत करता है, वह बौधायन सूत्र का प्रयोगकार है। वह अपने प्रयोग में एक गोपाल को उद्धृत करता है—**पश्चार्धात् पूर्वार्धमवदायेति गोपालः।**[2]

केशव स्वामी गोपालकारिका को उद्धृत करता है और गोपालकारिका में भवस्वामी उद्धृत है। यही गोपाल है जो अपनी बौधायन-कारिकाओं में भवस्वामी का स्मरण इस प्रकार करता है—**इति द्वैधोदिताः पक्षा भवस्वामिमतानुगाः।**

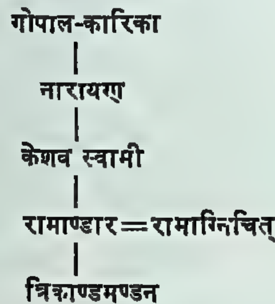
---

१. पाण्डुरंग वामन काणे का भी यही मत है। वह अपने धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० २५१ पर लिखते हैं—Trikanda Mandana (who flourished before 1100 A.D.).

२. सूचीपत्र, रायल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई शाखा, पृ० १८३, १८४, भाग २, सन् १९२८।

रामाग्निचित्त=भण्डार केशव स्वामी को आपस्तम्ब श्रौत वृत्ति ६।४।४२॥ पर उद्धृत करता है। रामाण्डार आपस्तम्ब श्रौत वृत्ति ६।२।८।३६॥ पर भवस्वामी को भी उद्धृत करता है।[1]

अतः यह सम्बन्ध इस तालिका से सुस्पष्ट हो जाता है—



ये ग्रन्थकार जिस प्रकार भवस्वामी का कथन करते हैं, उस से प्रतीत होता है कि भवस्वामी पर्याप्त प्राचीन ग्रन्थकार है। कम से कम वह आठवीं शताब्दी विक्रम से पहले अवश्य हुआ होगा।

कुतुहल वृत्ति पृ० १८३ में भवस्वामी की एक पंक्ति उद्धृत है।

भावनापुरुषोत्तम नाटक का कर्त्ता श्रीनिवास भवस्वामी का पुत्र था। यह भवस्वामी बौधायन श्रौत सूत्र विवरण का भी कर्त्ता था।[2]

भवस्वामी ने तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, और बौधायन श्रौत पर अपने भाष्य व विवरण लिखे थे। इन में से अब श्रौत विवरण के ही भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं।

एक भवस्वामी का नारद स्मृति भाष्य भी मिला है।

२. कौशिक भट्ट भास्कर मिश्र

ऋग्वेद के सायण भाष्य के स्वकीय संस्करण के प्राक्कथन में मैक्समूलर लिखता है—"सायण निम्न-लिखित स्थलों में भट्टभास्कर का उल्लेख करता है—

ऋग्वेद भाष्य १।६३।४॥; १।७१।४; १।८४।१५॥; ६।१।१३॥ तथा ७।१।७॥ इस के आगे मैक्समूलर लिखता है कि भट्ट भास्कर के ये प्रमाण सायण ने सम्भवतः उस के तैत्तिरीय भाष्यों में से लिए होंगे।"[3]

मैक्समूलर ने यह लेख सन् १८७४ में लिखा था। सन् १९०६ में सायण और भट्ट भास्कर भाष्ययुक्त रुद्राध्याय की भूमिका में वामन शास्त्री ने लिखा था—

भट्टभास्करीयं माधवाचार्यान्न प्राचीन इति तु निश्चितमेवेति। अर्थात् यह भट्ट भास्कर माधवाचार्य (सायण) से प्राचीन नहीं, यह निश्चित है।

---

१. पृ० १४७, भाग ३, मैसूर संस्करण।

२. देखें, टी० आर० चिन्तामणी कृत राजचूडामणि रुक्मणी कल्याण की भूमिका।

३.० पृ १३०, भाग ४, ऋग्वेद भाष्य, दूसरा संस्करण।

यहां यह वर्णन कर दिया जाय कि शिवरहस्य का बारहवां अंश रुद्रभाष्य कहाता है। इस में एक लाख श्लोक का इतिहास है। भास्कर ने अपने रुद्राध्याय भाष्य में इस से विशेष सहायता ली है। यह शिव रहस्य स्कन्द के शिव रहस्य खण्ड से पृथक् है। तंजोर सूचीपत्र में रुद्र भाष्य के अन्त में बहुधा ज्ञानयज्ञे लिखा है। इस से यही प्रतीत होता है कि भट्ट भास्कर मिश्र ही उस का कर्त्ता है।

सन् १९२१ में आर० शामशास्त्री ने भट्ट भास्कर भाष्य युक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण द्वितीयाष्टक के उपोद्घात में लिखा था—"स क्रिस्ताब्दानां पञ्चदशशतकस्यान्ते प्रायेण समासीदिति संभाव्यते। .. .. एष निष्पावके............।[1]

इत्ययं श्लोकस्तृतीयकाण्डभाष्यस्यादौ दृश्यते। अत्र 'निष्पावके शाके' इति शब्दयोजना कादिनवेत्याद्यक्षरगणितानुसारेण १४२० तमशकाब्दसमकालिकत्वं ग्रन्थकर्तुर्द्योतयतीति संभाव्यते।.........भट्टभास्करेण कृतं भाष्यं तदीय सायणभाष्यस्यैवानुवाद इति भाति।"

अर्थात्—भट्टभास्कर ईसा की १५वीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। इस में प्रमाण भास्कर का अपना श्लोक है। उस श्लोक के निष्पावके शाके का अर्थ १४२० शकाब्द बनता है। भट्टभास्कर का भाष्य सायण भाष्य का अनुवाद मात्र है।

भट्टभास्कर सायण का पूर्ववर्त्ती—भट्ट भास्कर भाष्य से लिए हुए पांच प्रमाणों में से, जिन्हें मैक्समूलर ने ऋग्वेद के सायण भाष्य में पाया, तीन ठीक उन्हीं शब्दों में भट्ट भास्कर के भाष्यों में मिलते हैं। वे निम्नलिखित हैं—

(१)	ऋग्वेद १।६३।४॥	सायण	पराचैरित्येतदव्ययं नीचैरुच्चैरिति वदति भट्टभास्करमिश्रः।
	तै० सं० १।४।३९[२]॥	भट्ट भास्कर	पराचैः......उच्चैराविववव्ययं द्रष्टव्यम्।
	तै० सं० १।८।२२[४२]॥	भट्ट भास्कर	पराचैः......निपातोयं यथा उच्चैः नीचैः।
(२)	ऋग्वेद १।८४।१५॥	सायण	अपीच्योऽप्रकाश इति भट्टभास्करमिश्रः।
	तै० सं० ७।४।१९[५८]॥	भास्कर	अपीच्यः अप्रकाशः।
(३)	ऋग्वेद ६।१।१३॥	सायण	भट्टभास्करमिश्रो ऽप्येकपदं सम्बुध्यंन्तं (वसुताते) चकार।
	तै० ब्रा० ६।१०[१३]॥[२]	भास्कर	हे वसुताते। वसूनां धनानां कर्तः।

सायणीय ऋग्वेद भाष्यान्तर्गत ७।१।७॥ पर उद्धृत चौथा प्रमाण तैत्तिरीय संहिता के चतुर्थ काण्ड से लिया गया प्रतीत होता है। निघण्टु भाष्यकार देवराज यज्वा भी २।१४।३७॥ पर भास्कर के इसी प्रमाण को उद्धृत करता है। तैत्तिरीय संहिता चतुर्थ काण्ड पर अभी तक भास्कर का भाष्य नहीं मिला। इसलिए हम इस प्रमाण के खोजने में अशक्त हैं।

---

१. यह श्लोक अन्तिम पद के थोड़े से परिवर्तन के साथ तैत्तिरीय ब्राह्मण भट्टभास्कर भाष्य के दूसरे अष्टक के पृ० ४३ पर भी मिलता है।

२. तैत्तिरीय संहिता में यह मन्त्र नहीं है।

ऋग्वेद १।७१।४।। का प्रमाण हम नहीं खोज सके। इतने से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि भट्टभास्कर मिश्र सायण से पूर्वकाल का था।

भट्ट भास्कर देवराज यज्वा का पूर्ववर्ती—देवराज यज्वा सायण से कुछ पूर्वकालीन है। सायण ऋग्वेद भाष्य १।६२।३।। में इति निघण्टुभाष्य कह कर एक वचन उद्धृत करता है। वह वचन देवराज यज्वा के निघण्टु भाष्य में पद के व्याख्यान में मिल जाता है। इस से कुछ कुछ निश्चित होता है कि देवराज सायण से पूर्वकाल का है। पर इस प्रमाण पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों की टीकाओं के पढ़ने से हम जानते हैं कि एक के पीछे दूसरा टीकाकार प्रायः वैसे ही शब्द रखता हुआ, टीका करता चला जाता है। इसी प्रकार सम्भव है कि देवराज यज्वा ने यह वचन निघण्टु के किसी पूर्वकाल के टीकाकार से ले लिया हो। सायण भी उसे ही उद्धृत करता हो। पर एक और बात है, जो इस सन्देह की उपस्थिति में भी निश्चित करती है कि देवराज यज्वा सायण से तीस चालीस वर्ष पहले हो चुका था।

देवराज यज्वा अपने निघण्टु भाष्य की भूमिका में चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ तक के भरत स्वामी आदि भाष्यकारों को उद्धृत करता है। पर सायण, माधव के भाष्यों को उस ने कहीं भी उद्धृत नहीं किया। यद्यपि किसी को उद्धृत न करना इस बात को सिद्ध नहीं करता कि ग्रन्थकार उसे जानता ही नहीं, अथवा वह व्यक्ति ग्रन्थकार के काल से उत्तरवर्ती है, पर इस स्थान विशेष पर हम जानते हैं कि सायण, माधव को उद्धृत न करने वाला देवराज यज्वा उन से पहले का है।

यही देवराज यज्वा अपने निघण्टु भाष्य में भट्ट भास्कर को उद्धृत करता है। उन उद्धरणों में से चार प्रमाण हम नीचे लिखते हैं—

(१) निघण्टु १।१।१६।।	देवराज	सर्वार्थपोषणात् पूषा इति भट्टभास्कर-मिश्रः।
तैत्तिरीय संहिता १।२।२[४]।।	भास्कर	पृथिवी पूषा सर्वार्थपोषणात्।
(२) निघण्टु १।१।१६।।	देवराज	भट्टभास्कर मिश्रेण......अध्नं परिवृढम् अरुषमारोचनम् इति।
तैत्तिरीय संहिता ७।४।२०[४]।।	भास्कर	अध्नं परिवृढमश्वं अरुषं अरोचणम् ?
तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।६।४[१]।।	भास्कर	आरोचनादरुषः।
(३) निघण्टु २।१४, ५६।।	देवराज	अग्ने संवेविष.........समन्तात्प्रापय, इति भट्टभास्करमिश्र।
तैत्तिरीय संहिता १।६।११[११]।।	भास्कर	सुसंवेविषः सुष्ठु समन्तात्प्रापय।
(४) निघण्टु १।११।२४।।	देवराज	भट्टभास्करमिश्रः— स्वयं सरस्वती आह ब्रूते। स्वैव ते वागित्यब्रवीत् इति ब्राह्मणम्।
तैं० सं० १।१।३[५]।।	भास्कर	स्वाहा स्वयमेव सरस्वती आह ब्रूते। स्वैव ते वागित्यब्रवीत्। इत्यादि ब्राह्मणम्।[१]

१. ३।२।३।। तैं० ब्रा०।

इस तुलना से पूरा निश्चित हो जाता है कि भट्ट भास्कर देवराज यज्वा से भी कुछ पहले काल में था।

सायण से कुछ ही पहले काल का[1] अस्यवामीय सूक्त का भाष्यकार आत्मानन्द भी अपने ग्रन्थ की भूमिका में वेद भाष्यकारों में भट्ट भास्कर का नाम लिखता है।

भट्ट भास्कर के भाष्यों में उस के काल पर प्रकाश डालने वाली सामग्री—तैत्तिरीय संहिता भाष्य १।८।१०[१६]॥ पर भट्ट भास्कर लिखता है—**तस्मादिममामुष्यायणं सिंहवर्मणः पुत्रं नन्दिवर्माणं......... सुवध्वम्।**

तैत्तिरीय संहिता भाष्य १।८।११[१]॥ में दो राजाओं के नाम मिलते हैं।

(१) राजसिंहवर्मा।
(२) राजेन्द्र वर्मा।

तैत्तिरीय संहिता भाष्य १।८।१२[२२]॥ पर लिखा है—**अयं च यजमानः असौ नरसिंहवर्मा आमुष्यायणः राजेन्द्रवर्मणो ऽपत्यमिति.........पितुर्नाम गृह्यते, राजेन्द्रायण इति यथा।**

पुनः तैत्तिरीय संहिता भाष्य २।३।१॥ तथा २।३।४॥ में राजा वीरसिंह वर्मा का नाम मिलता है।

यदि यह ऐतिहासिक नाम उस ने स्वयं लिखे हैं, तो बहुत सम्भव है कि वह इन में से किसी राजा का समकालीन हो। यदि उस ने पुराने भाष्यकारों से ही ले कर ये नाम लिख दिये हैं, तो वह इन का कितना उत्तरवर्ती हो सकता है। ऐसी दशा में बर्नल कथित दशम शताब्दी ही अभी तक भट्ट भास्कर का काल मानना पड़ता है।

बर्नल तन्जोर के सूची पत्र पृ० ७ के प्रथम कालम में लिखता है कि—**निष्पावके शाके** का अर्थ ही **अनुमुल भट्ट भास्कर** है। वह तैलुगु ब्राह्मण था। तैलुगु ब्राह्मण ही अपने कुल नामों के स्थान में पौधों के नाम लेते हैं। शामशास्त्री ने दाक्षिणात्य होते हुए भी इस बात का ध्यान नहीं किया, अतः उस का **निष्पावके शाके** का १४२० शकाब्द अर्थ, कल्पनामात्र है।

भट्ट भास्कर अपने भाष्यों में एक एक शब्द के बहुधा दो दो, तीन तीन अर्थ देता है। अपने काल का यह अच्छा विद्वान् होगा। स्वर प्रक्रिया का इसे प्रशस्त ज्ञान था। कहीं कहीं मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थ भी कर जाता है। पूर्व भाष्यकारों को केचित्, अपरे, अन्ये आदि कह कर ही उद्धृत करता है।

काल—(१) संवत् १४२० के समीप का विश्वेश्वर भट्ट या मान्धाता अपने महार्णव में भट्ट भास्कर को उद्धृत करता है—

इति तैत्तिरीयशाखानुसारेण चमकानुवाकाः ॥छ॥ अथ नमकैरवांतरवाक्यानां प्रयोगः। भास्करा-विविनिर्विष्टभाष्यदृष्टः।

---

१. देखें, मैक्समूलर कृत प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १२३। अस्यवामीय सूक्त भाष्य के पुस्तकालयों में तीन हस्तलेख ज्ञात हैं। (१) इण्डिया आफिस लण्डन में (२) पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर में। (३) बड़ोदा में।

(२) सायण भट्ट भास्करमिश्र को उदधृत करता है।

(३) देवराज यज्वा भट्ट भास्करमिश्र को उद्धृत करता है।

(४) सायण का समकालीन वेदान्तदेशिक अपने न्यायपरिशुद्धि, द्वितीय आह्निक, पृ० ८७ पर वेदाचार्य को उद्धृत करता है। यह वेदाचार्य अपरनाम लक्ष्मण सुदर्शन मीमांसा का कर्ता है। वेदाचार्य का काल संवत् १३०० से कुछ पहले का है। वह वल्लाल-नामक राजा का समकालीन था। वह सुदर्शन-मीमांसा के पृ० ४ और ८ पर क्रमशः लिखता है—

(क) तथा भाष्यकृता भट्टभास्करमिश्रेण ज्ञानयज्ञाख्ये भाष्ये एतत्प्राणव्याख्यानसमये चरणमिति देवताविशेष इति तदनुगुणमेव व्याख्यातम्।

(ख) एवं यजुर्वेदभाष्येषु कदैवत्यत्वं प्रवर्ग्योत्तरशान्त्यनुवादकत्वं ज्ञानयज्ञादिषु होतुराज्ये विनियोगादग्निदैवत्यत्वम्।

इन दोनों प्रमाणों से पता लगता है कि वेदाचार्य भट्ट भास्करमिश्र के ज्ञानयज्ञ भाष्य से सुपरिचित था।

(५) मद्रास विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सूर्यनारायण शास्त्री का मत है कि वेदान्त सूत्र का शैव भाष्यकार श्रीकण्ठ सम्भवतः भट्ट भास्कर के तैत्तिरीय आरण्यक भाष्य से परिचित था। इस आरण्यक के भाष्य में भट्ट भास्कर लिखता है—**सैषा मुक्तानामीश्वरस्य च साक्षादर्थक्रियाहेतुः परम्परया त्वन्येषाम्।**[1]

वेदान्तसूत्र के भाष्य में श्रीकण्ठ लिखता है—**परशक्तिर्हि ब्रह्मणः स्वरूपतया परमाकाश उच्यते या मुक्तानां परमेश्वरस्य च साक्षादर्थक्रियाहेतुः परम्परयान्येषाम्।**[2]

इस स्थान में और अन्य स्थानों में भी इन दोनों ग्रन्थकारों के वाक्यों में इतनी समानता है कि एक दूसरे से भाव ग्रहण करता हुआ प्रतीत होता है। इस से प्रो० सूर्यनारायण का अनुमान है कि श्रीकण्ठ जो रामानुज का समकालीन ज्ञात होता है, भट्टभास्कर को जानता है। परन्तु उक्त प्रोफेसर भी इस विषय में निश्चित नहीं है।[3] अस्तु, इन दोनों ग्रन्थकारों की सदृशता ध्यान में रखने योग्य है।

(६) भट्ट भास्कर आर्यभट्टीय,[4] अमरकोश,[5] और काशिका[6] को उद्धृत करता है। इस से इतना निश्चित होता है कि वह सातवीं शताब्दी ईसा से पश्चात् हुआ है।

(७) भट्ट भास्कर ने एकाग्निकाण्ड मन्त्रों पर अपना भाष्य लिखा था। तैत्तिरीय संहिता भाष्य की भूमिका में वह एकाग्निकाण्ड को तैत्तिरीयों के अन्तर्गत मानता है। मेरा अनुमान है कि भट्ट भास्कर के एकाग्नि-काण्ड भाष्य की ओर ही निम्नलिखित वाक्य में हरदत्त का संकेत है— **तत्र वैश्वदेवे सोमाय स्वाहेति द्वितीयाहुतिरिति मन्त्रव्याख्याकारेणोक्तम्।** ३।७।२१।। आपस्तम्बगृह्य भाष्य।

---

१. ५।१४।। तैत्तिरीय आरण्यक।
२. ४।४।१४।।
३. पृ० ७२, ७३, श्रीकण्ठ का शिवाद्वैत।
४. पृ० १८६, भाग ४, तै० सं० भाष्य।
५. पृ० ५४, रुद्रभाष्य।
६. पृ० ७३, वही।

आपस्तम्बगृह्य भाष्यकार हरदत्त का काल १२वीं शताब्दी विक्रम के समीप ही है। यदि उस का पूर्वोक्त संकेत भट्ट भास्कर मिश्र की ओर है, तो भास्कर का काल जानने के लिए यह एक और निश्चित प्रमाण हो जायगा।

हरदत्त भाष्य सहित एकाग्निकाण्ड के सम्पादक श्रीनिवासाचार्य का भी यही मत है कि एकाग्निकाण्ड का भाष्य करने में हरदत्त ने भट्ट भास्कर के एकाग्निकाण्ड भाष्य से बड़ी सहायता ली है। अपनी भूमिका के पृ० ३, ४ पर श्रीनिवासाचार्य ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है।

इतना लिखने के अनन्तर हमारा यही विचार है कि भट्ट भास्कर का काल विक्रम की ११वीं शताब्दी ही मानना चाहिए। डाक्टर बर्नेल ने भी प्राचीन मौखिक परम्परा के अनुसार ऐसा ही स्वीकार किया है।

३. रामाण्डार=रामाग्निचित्

त्रिकाण्डमण्डन के प्रथम काण्ड में लिखा है—

> दुर्ब्राह्मणं समाचष्टे कर्कः शाखान्तरश्रुतेः ॥१३५॥
> पक्षमङ्गीकरोत्येनं मन्त्रब्राह्मणभाष्यकृत् ॥१३६॥

अर्थात्—शाखान्तर श्रुति के प्रमाण से कर्क उसे दुर्ब्राह्मण कहता है। इसी पक्ष को मन्त्रब्राह्मण भाष्यकार स्वीकार करता है। त्रिकाण्डमण्डन का टीकाकार लिखता है—मन्त्रब्राह्मण भाष्यकृत् रामाण्डारः। यदि यह टीकाकार भूलता नहीं, तो रामाग्निचित् ने आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के समान तैत्तिरीय संहिता और ब्राह्मण पर भी वृत्ति व भाष्य किया होगा। रामाण्डार ने धूर्त स्वामी के आपस्तम्ब श्रौत सूत्र पर वृत्ति लिखी थी। उस वृत्ति के आरम्भ में वह लिखता है—

> आपस्तम्बं नमस्कृत्य धूर्तस्वामि प्रसादतः।
> तद्भाष्यवृत्तिः क्रियते यथाशक्ति निरूपिता ॥२॥
> कौशिकेन तु रामेण श्रद्धामात्रविजृंभितः।
> वेदार्थनिर्णये यत्नः क्रियते शक्तितोऽधुना ॥४॥

अर्थात्—आपस्तम्ब को नमस्कार करके धूर्त स्वामी की कृपा से यथाशक्ति उस के भाष्य की वृत्ति की जाती है। कौशिक गोत्र वाले राम ने श्रद्धा से प्रेरित होकर अब वेदार्थ का शक्ति भर यत्न किया है।

हमारे ज्ञान में अभी तक इस भाष्य का कोई हस्तलेख नहीं आया।

४. सायण (लगभग १३७२—१४४४ विक्रम)

सायण ने इस ब्राह्मण पर भी भाष्य लिखा था जो कलकत्ता और पूना में छप चुका है।

(ज) ताण्ड्य महाब्राह्मण

१. जयस्वामी

पीटर्सन अपनी दूसरी रिपोर्ट, एप्रिल सन् १८८३-मार्च १८८४, पृ० १७६, संख्या २१ पर ताण्ड्यब्राह्मण भाष्यटीका नाम के एक कोश का वर्णन करता है। वह इस का कर्ता हरिस्वामी पुत्र बताता है। यह ग्रन्थ अलवर के राजकीय पुस्तकालय का है। यह पूर्वोक्त रिपोर्ट सन् १८८४ में छपी थी। १८९२ में पीटर्सन

ने ही अलवर के ग्रन्थों का एक बड़ा सूचीपत्र छपवाया था। उस में संख्या २४३ पर इसी ग्रन्थ को ताण्ड्य ब्राह्मण भाष्य लिखा है। इस का कर्ता हरिस्वामी पुत्र जयस्वामी है। वह अपने भाष्य की समाप्ति पर लिखता है—

पञ्चविंशार्थमालेयं या जयस्वामिना कृता।
हरिस्वामीसुतेनास्यां दशाहः परिपंस्थितः॥

इस से ज्ञात होता है कि इस भाष्य का नाम पञ्चविंशार्थ माला है।

कृत्यकल्पतरु में धर्मसूत्र भाष्यकार जयस्वामी का वर्णन है।

जयस्वामी के विषय में इस से अधिक हम अभी तक कुछ नहीं जान सके।

२. सायण

सायणाचार्य का भाष्य कलकत्ता में छप चुका है। इस भाष्य में सायण द्राह्यायण श्रौत्र सूत्र के धन्विन् भाष्य से बहुत सहायता लेता है।

३. नारायणाचार्य

इस आचार्य के भाष्य का एक हस्तलिखित ग्रन्थ मैसूर के सूचीपत्र सन् १९२२, पृ० ६, पंक्ति १ पर उल्लिखित है। श्री शाम शास्त्री के पत्र से विदित हुआ कि यह भी सायणाचार्य का ही भाष्य है।

(झ) षड्विंश ब्राह्मण

१. सायण

सायण ने इस ब्राह्मण पर विज्ञापन भाष्य नाम की टीका लिखी है। यह छप चुकी है।

(ञ) मन्त्र ब्राह्मण

१. भट्ट गुणविष्णु (सन् ११५० से पूर्व)

हाईनरिश स्टोन्नर अपने मन्त्र ब्राह्मण की भूमिका पृ० ३१ पर लिखता है—"मन्त्र ब्राह्मण पर दो भाष्य हैं। पुराना भाष्य दामुक के पुत्र गुणविष्णु का है और नया सायण का। सायण अपने पूर्वज के ग्रन्थ को बहुधा काम में लाता है। गुणविष्णु का सुनिश्चित काल जानना असम्भव है।.........वह १४वीं शताब्दी से थोड़ा सा पहले हो सकता है।"

सायण ने कहीं नाम लेकर गुणविष्णु का प्रमाण दिया हो, ऐसा स्टोनर महाशय ने नहीं लिखा।

मन्त्रार्थदीपिका का कर्ता शत्रुघ्न अपने ग्रन्थ की भूमिका में लिखता है—उवटे मन्त्रव्याख्या गुणविष्णौ ब्राह्मणीयसर्वस्वे। अर्थात् उवट भाष्य में जो मन्त्रव्याख्या है, तथा गुणविष्णु के भाष्य में और ब्राह्मणसर्वस्व में। शत्रुघ्न का काल निश्चित है। वह अपनी भूमिका में लिखता है—आदेशादथ राज्ञस्तस्य श्रीधर्मचन्द्रस्य ॥८॥ अर्थात् महाराज श्री धर्मचन्द्र की आज्ञा से। इस से पूर्व वह प्रयागचन्द्र, और श्रीरामचन्द्र का नाम लिख चुका है। ये सब त्रिगर्त=काङ्गड़ा के राजा थे। प्रयागचन्द्र का काल सन् १४९५, रामचन्द्र का १५१० और धर्मचन्द्र का काल सन् १५२० है। इसलिए हम इतना तो निश्चय से कह सकते हैं, कि गुणविष्णु १६वीं शताब्दी से पहले का था।

हलायुध (सन् ११७५-१२००) अपने ब्राह्मणसर्वस्व में गुणविष्णु को उद्धृत करता है।[१]

छान्दोग्यमन्त्र भाष्य साम की कौथुम शाखा के मन्त्रों पर है।[२] इन में अधिकांश मन्त्र साम मन्त्र-ब्राह्मण के ही हैं। हां, कुछ मन्त्र ऐसे भी हैं, जो उस में नहीं हैं। श्री दुर्गामोहन भट्टाचार्य का अनुमान है कि इन मन्त्रों का आधार कोई लुप्त साम मन्त्र पाठ होगा।

गुणविष्णु बङ्गाल अथवा मिथिला के किसी भाग का रहने वाला था। उस के ग्रन्थ का अब तक वहां बड़ा प्रचार है।

इस इतिहास के दूसरे भाग के ४१वें पृष्ठ पर गुणविष्णु पर लिखते हुए हम ने लिखा था कि स्टोन्नर महाशय के विचारानुसार गुणविष्णु सायण से पहले हो चुका था। यही विचार श्री दुर्गामोहन का है। उन्हों ने मन्त्रब्राह्मण के सायण भाष्य के कतिपय स्थलों की तुलना गुणविष्णु के मन्त्रब्राह्मण भाष्य के तत्सम्बन्धी स्थानों से की है। उस को देख कर पूर्ण निश्चय होता है कि एक ग्रन्थकार दूसरे के वाक्य के वाक्य प्रयोग करता है। श्री दुर्गामोहन का विचार है कि हलायुध भी गुणविष्णु के ग्रन्थ का प्रयोग करता है। अतः सायण से पूर्व होने से गुणविष्णु सायण भाष्य को काम में नहीं लाता, प्रत्युत सायण ही गुणविष्णु से सहायता लेता है। श्री दुर्गामोहन की यह भी धारणा है कि गुणविष्णु महाराज बल्लालसेन और लक्ष्मणसेन के काल में राज पण्डित थे। इस प्रकार वह विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अन्त या १३वीं के आरम्भ में हुआ होगा।

षष्ठ खण्ड के अन्त में गुणविष्णु प्रत्येक वेद के आदि मन्त्र का भाष्य करता है। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र के सम्बन्ध में वह लिखता है—**विनियोगो ब्रह्मयज्ञे।** अर्थात् इस अग्निमीडे मन्त्र का विनियोग ब्रह्मयज्ञ में है।

यजुर्वेद के सम्बन्ध में एक शुक्ल यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र पढ़ता है। तथा सामवेद के प्रथम मन्त्र को पढ़ कर वह निम्नलिखित मन्त्र पढ़ता है—**शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥** इस के सम्बन्ध में वह लिखता है—**अथर्ववेदादिमन्त्रोऽयं पिप्पलादवृष्ट। वरुणदैवतः। छन्दो गायत्री। अत्र च शन्नो भवन्तु इत्यत्र आपो भवन्तु इतिपठ्यते।** अर्थात् यह अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र है। इस का द्रष्टा पिप्पलाद है। इस से निश्चित होता है कि शन्नो देवी मन्त्र पैप्पलाद संहिता का आदि मन्त्र था।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त गुणविष्णु ने मन्त्रब्राह्मण पर भी भाष्य किया था। उस के कोश लाहौर, बड़ोदा, आदि स्थानों में है। गुणविष्णु ने पारस्करगृह्य पर भी अपना भाष्य रचा था। पं० परमेश्वर झा छान्दोग्यमन्त्र भाष्य के अपने संस्करण की भूमिका में लिखते हैं—**एतत्कृतं पारस्करगृह्यभाष्यमप्यस्ति तच्च चन्दनपुरग्रामवासिनो मृतवैवकजयपालशर्मणः सविधेऽन्तिमभागे कतिपयपत्रविकलं मयावलोकितमासीत्।**[३] अर्थात् मैंने गुणविष्णु कृत पारस्करगृह्यसूत्र भाष्य का एक कोश जिस के अन्तिम कुछ पत्र त्रुटित थे, चन्दनपुर ग्रामवासी परलोकगत जयपाल शर्मा के घर देखा था। गुणविष्णु का भाष्य बड़ा सरल है।

दयानन्द कालेज, लाहौर के पुस्तकालय में गुणविष्णु के भाष्य का एक हस्तलेख संवत् १५७७ का था।

---

१. p. 330, JASB, 1915.

२. इण्डियन एण्टीक्वेरी, जुलाई सन् १८७७, पृ० १७५।

३. श्री दुर्गामोहन सम्पादित छान्दोग्यमन्त्र भाष्य की भूमिका, पृ० ३५ की टिप्पणी।

(ट) दैवत ब्राह्मण

१. सायण

सायण भाष्य के अतिरिक्त इस ब्राह्मण पर दूसरा भाष्य अभी तक नहीं छपा है।

(ठ) आर्षेय ब्राह्मण

१. सायण

सायण का आर्षेय ब्राह्मण भाष्य छप गया है।

२. काश्यप भट्ट भास्कर मिश्र

काश्यप भट्ट भास्कर ने सामवेदार्षेयदीप नाम का भाष्य लिखा था। यह कौशिक भट्टभास्कर से भिन्न व्यक्ति है। बर्नेल तन्जोर के सूचीपत्र पृ० ७, टिप्पणी १, में लिखता है कि, "इस ने सामब्राह्मणों पर भाष्य लिखे थे, ऐसा कहा जाता है। मैंने वे नहीं देखे। यह भट्ट भास्कर भरत स्वामी को उद्धृत करता है।" बर्नेल के सूचीपत्र पृ० ११ के अनुसार १३वीं शताब्दी के अन्त में भरत स्वामी जीवित था। अतः काश्यप भट्टभास्कर लगभग सायण का समकालीन होगा।

मैसूर के सूचीपत्र सन् १९२२, पृ० ४ पर इस के एक हस्तलेख की सूचना दी गई है।

(ड) सामविधान ब्राह्मण

१. भरतस्वामी

भरत स्वामी सामवेदादि ग्रन्थों का प्रसिद्ध भाष्यकार है। इस के पिता का नाम नारायण और माता का नाम यज्ञदा था। अपने सामवेद भाष्य की भूमिका में वह लिखता है—

होसलाधीश्वरे पृथ्वीं रामनाथे प्रशासति।
व्याख्या क्रियते ऽयं क्षेमेण श्रीरङ्गे वसता मया॥

अर्थात्—होसलाधीश्वर रामनाथ के राजत्व काल में श्रीरङ्गपटनम में निवास करते हुए मैंने यह व्याख्या की है। भाष्य के अन्त में भरतस्वामी लिखता है—

इत्थं श्रीभरतस्वामी काश्यपो यज्ञदासुतः।
नारायणार्यतनयो व्याख्यत्साम्नामृचोऽखिलाः॥

अर्थात् नारायण और यज्ञदा के पुत्र कश्यपगोत्री श्रीभरतस्वामी ने साम की सम्पूर्ण ऋचाओं का व्याख्यान किया। इस के ब्राह्मण भाष्य का एक हस्तलेख अलवर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। उस के अन्त में लिखा है—इति सामविधाने आचार्य भरतस्वामी कृतौ पदार्थमात्रविकृतौ तृतीयो ऽगात् प्रपाठक इति सामविधानभाष्यं समाप्तम्। होसलराज राम का काल बर्नेल के कथनानुसार १२७३—१३१० है।

(ढ) संहितोपनिषद् ब्राह्मण

१. सायण

सायण का भाष्य छप गया है।

२. विष्णु पुत्र द्विजराज भट्ट (संवत् १६४५)

द्विजराज भट्ट का भाष्य छप गया है।

(ण) वंश ब्राह्मण

सायण का भाष्य छप गया है।

(त) जैमिनीय ब्राह्मण

१. भवत्रात

मेरे मित्र संस्कृत वाङ्मय के अद्वितीय जीर्णोद्धारकर्ता श्री राम अनन्तकृष्ण शास्त्री ४ अगस्त १९२७ के अपने पत्र में लिखते हैं—"Yesterday I was at the Jaiminiya village............... Fortunately I discovered the following mss...............3. अष्ट ब्राह्मण On last page it was written भवत्रात-भाष्य on ब्राह्मण available at......"

अर्थात् कल (८-३-२७) मैं जैमिनीय ब्राह्मणों के ग्राम में था। सौभाग्य से मैंने निम्नलिखित ग्रन्थ खोज लिए। (३) अष्टब्राह्मण[1]—इस के अन्तिम पत्र पर लिखा है कि ब्राह्मण पर भवत्रात भाष्य है।

एक देवत्रात ने आश्वलायन श्रौतसूत्र पर भाष्य लिखा था। ऐशियाटिक सोसायटी कलकत्ता के सूचीपत्र सन् १९२३ के ग्रन्थ संख्या ३०७ में इसी का अपर नाम वराहदेव भी लिखा है। इस से आगे एक अन्य हस्तलेख में लिखा है—वराहकाय देवत्रात। बीकानेर के सूचीपत्र सं० १८७ में इसी का नाम वराहदेव-स्वामी लिखा है।

कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र पृ० १ पर आश्वलायन श्रौत पर देवत्रात के भाष्य का नाम मिलता है। देवत्रात एक पुराना भाष्यकार प्रतीत होता है। आश्वलायन श्रौतसूत्र पर इस के भाष्य का कुछ भाग अग्निहोत्र-चन्द्रिका (आनन्दाश्रम पूना, सन्, १९२१) में छप चुका है। क्या भवत्रात इसी का कोई सम्बन्धी था।

भवत्रात जैमिनीय श्रौत के भाष्य पृ० १५३ पर शबर स्वामी और भवदास को उद्धृत करता है।

ब्राह्मणभाष्यकारों पर एक सामान्य दृष्टि

इन भाष्यकारों में से कोई भी महाराज विक्रम के काल से पहले का नहीं है। इन भाष्यकारों और ब्राह्मणों के संकलन कर्ताओं में कम से कम तीन सहस्र वर्ष का अन्तर है। इस से पहले भी अनेक भाष्यकार हो चुके होंगे, पर उन के सम्बन्ध में अब हम कुछ नहीं जानते। ये सब भाष्यकार प्रायः एक ही ढंग का अर्थ करते हैं। इन में से जितने पुराने हैं, वे तो शब्दार्थ मात्र करके सन्तुष्ट रहते हैं। हां, सायणादि नवीन भाष्यकार कहीं कहीं व्याख्यान भी करते हैं। इन में ब्राह्मणों के रहस्यों का तात्पर्य बहुत कम दिखाया गया है। ईश्वरीय सृष्टि के आधिदैविक तत्त्वों के निदर्शन का, जो ब्राह्मणों में सर्वत्र मिलता है, ये भाष्यकार स्पष्टीकरण नहीं करते। यही कारण है, कि मध्यकाल के दुर्गाचार्य के अतिरिक्त सब वेदभाष्यकार आधिदैविक तत्त्वों को छूते तक नहीं। उन के वेद व ब्राह्मण के भाष्य शब्दार्थ जानने में कुछ कुछ सहायता कर सकते हैं, पर पुराने ऋषियों के भावों का ज्ञान नहीं करा सकते। हमें इन ब्राह्मणों के भाष्यों का बड़ी सावधानी से पढ़ना चाहिए। उपयोगी सामग्री को हम काम में ला सकते हैं, और भाष्यकारों की निज कल्पनाओं का त्याग कर सकते हैं।

---

१. इस का अभिप्राय जैमिनीय ब्राह्मण के आठ विभागों से है।

तेरहवां अध्याय

आरण्यक ग्रन्थ क्या हैं

अरण्य अर्थात् एकान्त जङ्गल में रह कर यज्ञों के रहस्य के बताने वाली जिस विद्या का पाठ किया जाता था, वह विद्या जिन ग्रन्थों में सुरक्षित है, उन्हें आरण्यक कहते हैं।

महाभारत शान्ति पर्व में लिखा है—

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा।
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ॥[1]

सायण और आरण्यक शब्द का अर्थ—बृहदारण्यक के सम्बन्धवार्त्तिक श्लोक ९ में सुरेश्वर लिखता है कि—अरण्याध्ययनाच्चैतदारण्यकमितीर्यते।

ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य के प्राक्कथन में सायण लिखता है—आरण्यव्रतरूपं ब्राह्मणम्। अर्थात् जङ्गल में रहने वाले जो वानप्रस्थ लोग थे, वे जो यज्ञ आदि करते थे, उन के इन यज्ञों को बताने वाले ब्राह्मण के समान जो ग्रन्थ हैं, वे आरण्यक हैं।

पुन: ऐतरेयारण्यक भाष्य के प्राक्कथन में सायण लिखता है—

ऐतरेयब्राह्मणे ऽस्ति काण्डमारण्यकाभिधम्।
अरण्य एव पाठ्यत्वादारण्यकमितीर्यते ॥५॥
सत्रप्रकरणे ऽनुक्तिररण्याध्ययनाय हि।
महाव्रतस्य तस्यात्र हौत्रं कर्म विविच्यते ॥८॥

अर्थात्—ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तर्गत ही आरण्यक नाम वाला काण्ड है। वन में ही पढ़ाये जाने के योग्य होने से इस का आरण्यक नाम है। सत्र प्रकरण में यह विषय नहीं कहा गया, क्योंकि इस का वन में ही पाठ होता है। उस वन मे पढ़े जाने वाले महाव्रत का यहां हौत्रकर्म विचार किया जाता है।

सायण प्रदर्शित पूर्वोक्त दोनों अर्थों में थोड़ा सा भेद है। योरुप में पहले को मानने वाले वैबर और डाइसन तथा दूसरे अर्थ को मानने वाले ओल्डनबर्ग और मैकडानल आदि हैं।[2]

---

१. ३३१।३॥ भण्डारकर संस्करण, पूना।
२. ऐतरेय आरण्यक, कीथ, पृ० १५, भूमिका।

हमारा विचार है कि अभी तक सारे आरण्यक ग्रन्थ नहीं मिले। सम्भव है ऐसे भी आरण्यक ग्रन्थ हों, जिन में सायण का एक अर्थ प्रकट हो और ऐसे भी हों, जिन में दूसरा अर्थ ठीक प्रकट हो।

रहस्य

आरण्यकों का पुराना नाम रहस्य भी है। गोपथ ब्राह्मण में यही नाम मिलता है।[1] मनुस्मृति में भी यही नाम मिलता है।[2] हम पृ० ६५ पर कह चुके हैं कि मस्करी रहस्य शब्द का आरण्यक ही अर्थ करता है। वासिष्ठधर्मसूत्र में निम्नलिखित पाठ है—तस्या भर्तुरभिचार उक्तं प्रायश्चित्तं रहस्येषु।[3] अर्थात् उस स्वतन्त्र (कुमार्गगामिनी) स्त्री के पति का अभिचार और प्रायश्चित रहस्यों में कहा गया है। इस सूत्र का संकेत बृहदारण्यक के अन्तिम भाग की ओर प्रतीत होता है। यदि हमारा अनुमान ठीक है, तो यहां भी रहस्य शब्द से आरण्यक का ही अभिप्राय लिया गया है।

अनेक आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग मात्र

पृ० ६५ पर बौधायन धर्मसूत्र ३।७।७।१६॥ के प्रमाण से लिखा गया है कि आरण्यक का वचन भी ब्राह्मण कह कर लिखा गया है। दूर क्यों जाएं, बृहदारण्यक शतपथ ही का तो भाग है। ऐसे ही जैमिनीय आरण्यक भी जैमिनीय ब्राह्मण का भाग है।

अनेक उपनिषद् आरण्यकान्तर्गत

इस समय जो अनेक उपनिषद् ग्रन्थ मिलते हैं, उन में से कई एक आरण्यक ग्रन्थों का भाग ही हैं। ऐतरेयोपनिषद् ऐतरेयारण्यकान्तर्गत है, कौषीतकि उपनिषद् शांखायनारण्यकान्तर्गत, तैत्तिरीयोपनिषद् तैत्तिरीयारण्यकान्तर्गत है, इत्यादि।

---

१. २।१०॥ पूर्व भाग।

२. २।१४०॥

३. ५।४॥

चौदहवां अध्याय

उपलब्ध आरण्यक ग्रन्थ

ऋग्वेदीय आरण्यक

१. ऐतरेय आरण्यक[1]

ग्रन्थ परिमाण—ऐतरेय आरण्यक में कुल पांच आरण्यक हैं। पहले आरण्यक में ५ अध्याय, दूसरे में ७, तीसरे में २, चौथे में १, और पांचवें में ३ अध्याय हैं। सब मिला कर अध्याय संख्या १८ है। प्रत्येक अध्याय खण्डों में विभक्त है।

विशेषताएं—प्रथमारण्यक में महाव्रत का वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मण ३।१-३८।। आदि में गवामयन का वर्णन है। उसी गवामयन में महाव्रत का भी एक दिन होता है। उस दिन के प्रातः, माध्यन्दिन और सायं सवनों का यहां उल्लेख है। इस आरण्यक की भाषा ब्राह्मण शैली जैसी ही है।

दूसरे आरण्यक के दो स्पष्ट विभाग हैं। अध्याय १-३ में उक्थ का अर्थ बताया गया है। अध्याय ४-६ उपनिषद् हैं।

तीसरे आरण्यक में संहिता के भेदों का कथन किया है—अथातो निर्भुजप्रवादाः। पृथिव्यायतनं निर्भुजं दिव्यायतनं प्रतृण्णमन्तरिक्षायतनमुभयमन्तरेण।[2] अर्थात् निर्भुज=बिना विभक्त हुई संहिता के अब उच्चारण (कहे जाते हैं।) इस निर्भुज=मूल संहिता का पृथिवी निवास है। प्रतृण्ण=पदपाठ का द्यो स्थान है। उभयमन्तरेण=क्रमपाठ का अन्तरिक्ष स्थान है। तीसरे आरण्यक के ३।५।। में स्वर, स्पर्श और ऊष्म आदि वर्णों के भेद कहे हैं। इस आरण्यक में ऋषियों के नाम अधिक आते हैं।

---

१. (क) ऐतरेय आरण्यकम्, सायणभाष्य सहित, सम्पादक राजेन्द्रलाल मित्र, एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता, सन् १८७६।

(ख) ऐतरेय आरण्यक, सम्पादक बाबा शास्त्री फड़के, पूना, आनन्दाश्रम, सन् १८९८।

(ग) ऐतरेय आरण्यक, डाक्टर कीथ सम्पादित, आक्सफोर्ड, सन् १९०९।

२. ३।१।३।।

चौथे आरण्यक में केवल महानाम्नी ऋचाओं का संग्रह है। ये ऋचायें सामवेद की नैगेय शाखा में भी मिलती हैं।

पांचवें आरण्यक में निष्कैवल्य शस्त्र का वर्णन है। यह महाव्रत के माध्यन्दिन सवन में पढ़ा जाता है। यह आरण्यक सूत्रों से मिलती जुलती भाषा में है।

सङ्कलन—ऐतरेय महिदास जो ऐतरेय ब्राह्मण का संकलन और प्रवचन कर्त्ता है, आरण्यक के भी पहले तीन आरण्यकों का प्रवचन करने वाला है। चौथे आरण्यक का संकलन आश्वलायन ने किया था। सामवेद की भूमिका में सायण लिखता है कि चतुर्थ आरण्यक आश्वलायन का है।

षड्गुरुशिष्य ऋक्सर्वानुक्रमणी वृत्ति की भूमिका में लिखता है—

शौनकीयं च दशकं तच्छिष्यस्य त्रिकं तथा।
द्वादशाध्यायकं सूत्रं चतुष्कगृह्यमेव च॥
चतुर्थारण्यकं चेति ह्याश्वलायनसूत्रकम्।

अर्थात्—शौनक ने ऋग्वेद सम्बन्धी दस ग्रन्थ लिखे और उस के शिष्य आश्वलायन ने तीन ग्रन्थ लिखे। वे तीन ग्रन्थ ये हैं—(१) बारह अध्याय का श्रौतसूत्र, (२) चार अध्याय का गृह्यसूत्र, और चौथा आरण्यक, यही आश्वलायन के सूत्र हैं। ऐसा ही वह वृत्ति में भी लिखता है।

पांचवें आरण्यक का संकलन शौनक ने किया है। ऐतरेय आरण्यक के भाष्य में सायण कहता है—

अत एव पञ्चमे शौनकेनोदाहृतः
ताश्च पञ्चमे शौनकेन शाखान्तरमाश्रित्य पठिताः ॥१।४।१॥

अर्थात्—पांचवें आरण्यक में शौनक ऐसा कहता है। इस से प्रतीत होता है कि सायण की दृष्टि में पांचवें आरण्यक का कहने वाला शौनक ही था।

ऐतरेय आरण्यक के पाठ के सम्बन्ध में अपने प्राक्कथन में कीथ कहता है—

"As might be expected they (the verbal coincidences between the Aitareya Brahmana and the Aranyaka) are constant and show unmistakably the connexion of the two works."

अर्थात्—ऐतरेय ब्राह्मण और आरण्यक की भाषा में, उन के शब्द-प्रयोग में बहुत सदृशता है। इस से ज्ञात होता है कि दोनों ग्रन्थों का परस्पर सम्बन्ध है।

फिर अपनी भूमिका पृ० १ पर कीथ ने लिखा है—

"but it (the use of additional Mss.) establishes the fact that the tradition as to the text seems unbroken."

अर्थात्—अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रयोग से निश्चित हो जाता है कि आरण्यक का पाठ बिना टूटने आदि के शुद्ध रूप में ही हमारे तक चला आ रहा है।

२. कौषीतकि आरण्यक

कौषीतकि ब्राह्मण के समान कौषीतकि आरण्यक भी पृथक् होना चाहिए। वैबर का मत देखें।

३. शांखायन आरण्यक[1]

ग्रन्थ परिमाण—शाङ्खायन आरण्यक में पन्द्रह अध्याय हैं। पहले अध्याय में ८, दूसरे में १८, तीसरे में ७, चौथे में १५, पाचवें में ८, छठे में २०, सातवें में २३, आठवें में ११, नवम में ८, दसवें में ८, ग्यारहवें में ८, बारहवें में ८ तेरहवें में १, चौदहवें में २ और पन्द्रहवें में १ खण्ड है। इस आरण्यक में सब मिला कर १३७ खण्ड हैं।

विशेषताएं—यह आरण्यक प्रायः सब ही विषयों में ऐतरेय आरण्यक से बहुत मिलता जुलता है। जो महाव्रत आदि कर्तव्य ऐतरेय आरण्यक में कहे गये हैं, वही इस में कहे गये हैं। इस के पहले दो अध्याय किसी २ हस्तलेख में ब्राह्मण का भाग ही माने गये हैं। इस में से उशीनर, मत्स्य, कुरुपञ्चाल और काशिविदेह आदि देशों का वर्णन मिलता है। इस के तीसरे अध्याय से कौषीतकि उपनिषद् का आरम्भ होता है और छठे के अन्त में उपनिषद् के चार अध्याय ही हैं।

सङ्कलन—आरण्यक के अन्त में एक वंश मिलता है। उस में कहा है—**गुणाख्याच्छाङ्खायनादस्माभिरधीतम्।** अर्थात् गुणाख्य शाङ्खायन से हम ने यह विद्या पढ़ी है। यह अस्माभिः शब्द का प्रयोग करने वाले गुणाख्य शाङ्खायन के अनेक शिष्य होंगे जिन्हों ने गुणाख्य शाङ्खायन से सुन कर इस आरण्यक को प्रचलित किया होगा। अथवा सारे १४ अध्यायों का प्रवचन शाङ्खायन ने किया और अन्तिम को उस के शिष्यों ने जोड़ा होगा।

यजुर्वेदीय आरण्यक

४. बृहदारण्यक (माध्यन्दिन)[2]

ग्रन्थ परिमाण—इस आरण्यक में ६ अध्याय हैं। पहले अध्याय में ६, दूसरे में ५, तीसरे में ९, चौथे में ५, पांचवें में १५, और छठे अध्याय में ४ ब्राह्मण है। सारे आरण्यक में ४४ अवान्तर ब्राह्मण हैं। प्रत्येक अवान्तर ब्राह्मण खण्ड या कण्डिकाओं में विभक्त है। पांचवें और छठे अध्याय को आचार्यों ने खिल माना है। इन छः अध्यायों से पहले कभी दो अध्याय और थे, जो आरण्यक का भाग माने जाते थे। उन में कर्मकाण्ड-विशेष लिखा है। शंकर आदि आचार्यों ने कर्मकाण्ड विषयक होने से उन पर अपना भाष्य नहीं किया। इसी लिये पीछे से वह दोनों अध्याय आरण्यक से जुदा हो गए और आरण्यक छः अध्याय का ही रह गया।

विशेषताएं—यह आरण्यक माध्यन्दिन शतपथ का ही भाग है। शतपथ १०।६।४॥ से इस का आरम्भ होता है। पर शतपथ का अगला सारा भाग ही आरण्यक नहीं है, जो आरण्यक है, वह ब्राह्मण में से छांट छांट कर निकाला गया प्रतीत होता है। काण्व आरण्यक से इन का अन्तर कुछ पाठभेदों के रूप में ही है। जो विशेषताएं काण्व बृहदारण्यक की आगे लिखी जायेंगी, वही इस शाखा की समझनी चाहिएं।

संकलन—इस का संकलन माध्यन्दिन शतपथ के साथ ही हुआ है।

---

१. (क) शांखायन आरण्यक, अध्याय १-२, सम्पादक डा० वाल्टर फ्राइडलण्डर, बर्लिन, सन् १९००।
(ख) शांखायन आरण्यक, अध्याय ७-१५, सम्पादक डा० कीथ, सन् १९०९।
(ग) शांखायनारण्यक, सम्पादक पं० श्रीधर शास्त्री पाठक, आनन्दाश्रम, पूना, सन् १९२२।

२. Brahadaranjakopanishad in der Madhjamdina Recension, सम्पादक ओटो विहर्ट्लिंक, सेंट पीटर्सबर्ग, सन् १८८९।

५. बृहदारण्यक (काण्व)[1]

ग्रन्थ परिमाण—इस आरण्यक में छः ब्राह्मण अथवा अध्याय हैं। पहले अध्याय में ६, दूसरे में ६, तीसरे में ९, चौथे में ६, और पांचवें में १५, और छठे में ५ ब्राह्मण हैं। सारे आरण्यक में ४७ ब्राह्मण हैं। प्रत्येक अवान्तर ब्राह्मण खण्ड या कण्डिकाओं में विभक्त है। अध्याय सम्बन्ध में इस का भी वैसा ही हाल हुआ है, जैसा माध्यन्दिन आरण्यक का हाल पहले लिखा जा चुका है।

विशेषताएं—वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करने वाले इस ग्रन्थ का पाठ करते हैं। अतएव इस का संक्षिप्त वर्णन ही यहां किया जाता है। इस आरण्यक को उपनिषद् भी कहते हैं। यह नाम कैसे हुआ। इस का उत्तर इतना ही दिया जा सकता है कि इस आरण्यक में आलंकारिक रूप से यज्ञ के रहस्य का थोड़ा सा वर्णन करके अधिकांश में आत्मज्ञान के तत्त्वों का ही उपदेश किया है। याज्ञवल्क्य इस आरण्यक का प्रधान पात्र है। उस के साथ विदेहराज जनक का भी इस आरण्यक में पर्याप्त भाग है। इसी आरण्यक में संन्यास का स्पष्ट शब्दों में विधान पाया जाता है—एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति एतद्ध स्म वै तत्पूर्वे विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नो ऽयमात्मा ऽयं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।[2] अर्थात् इसी आत्मा को जान कर मुनि होता है। इसी ब्रह्मलोक की इच्छा करते हुए परिव्राजक=संन्यासी संन्यास धारण करते हैं। पूर्व काल के विद्वान् भी ऐसा ही कहते हैं और प्रजा की कामना-नहीं करते। क्या प्रजा से हम करेंगे जब कि यह आत्मा और यह लोक ही हमारे लिए इष्ट है। वे कहते हैं, पुत्रैषणा, वित्तैषणा, और लोकैषणा त्याग कर भिक्षा वृत्ति करते हैं।

इसी आरण्यक में गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियां ब्रह्मवादिनियों का उत्कृष्ट रूप उपस्थित करती हैं। ब्रह्म, आत्मा और पुनर्जन्म का इस में बड़ा विषद वर्णन किया गया है। ये सब विषय आगे यथा स्थान लिखे जायेंगे।

संसार का कौन सा देश है, कौन सी सभ्यता है, कौन सा ज्ञान विज्ञान है, जो इतने सत्यवक्ता, निस्पृह आत्मज्ञानी उत्पन्न कर सका है, जिस का यहां उल्लेख मिलता है।

सङ्कलन—शतपथ के पाठ से हमारा यह दृढ़ विश्वास हो गया है, कि बृहदारण्यक का संकलन भी शतपथ ब्राह्मण के साथ ही हुआ था। आरण्यक ब्राह्मण का अङ्ग है, उस से किसी प्रकार भी पृथक् नहीं है।

६. तैत्तिरीयारण्यक[3]

ग्रन्थ परिमाण—इस आरण्यक में कुल दस प्रपाठक हैं। पहले दो प्रपाठक काठक हैं।[4] भट्ट भास्कर के

---

१. इस के अब तक अनेकों संस्करण छप चुके हैं।   २. ४।४।२२॥

३. (क) तैत्तिरीयारण्यक, सायणभाष्य सहित, सम्पादक राजेन्द्र लाल मित्र, एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता, सन् १८७२।
   (ख) तैत्तिरीयारण्यक, सायणभाष्य सहित, भाग १-२, सन् १८९७, १८९८।
   (ग) तैत्तिरीयारण्यक, भट्ट भास्करभाष्य सहित, तीन भाग, प्रपाठक १-८, सन् १९०२।

४. ऊपर पृ० १९ देखें।

भाष्य में कुछ प्रपाठकों की प्रश्न संख्या भी लिखी है। दसवें प्रपाठक की बड़ी अस्त व्यस्त दशा है। सायण अपने भाष्य के आरम्भ में इसे खिल काण्ड ही समझता है—यथा बृहदारण्यके सप्तमाष्टमाध्यायौ खिलकाण्डत्वेनाचार्येरुदाहृतौ, तथेयं नारायणीया व्याख्या याज्ञिक्युपनिषदपि खिलकाण्डरूपाल्लक्षणोपेतत्वात्। अर्थात् जिस प्रकार बृहदारण्यक में सातवां[1] और आठवां अध्याय आचार्यों ने खिल काण्ड रूप माने हैं, उसी प्रकार यह नारायणोपनिषद्रूपी नारायण की व्याख्या खिलकाण्डरूपी याज्ञिक्युपनिषद् है, वैसे ही लक्षणों से युक्त होने से।

पहले प्रपाठक में ३२ अनुवाक, दूसरे में २०, तीसरे में २१, चौथे में ४२, पांचवें में १२, छठे में १२, सातवें में १२, आठवें में ६, नवम में १० अनुवाक हैं। सारे मिला कर १७० अनुवाक हैं। भट्ट भास्कर दसवें प्रपाठक में ६४ अनुवाक मानता है। दसवां प्रपाठक खिल ही नहीं, प्रत्युत उस की अनुवाक संख्या भी निश्चित नहीं है। सायण इस प्रपाठक के भाष्य के आरम्भ में लिखता है—तत्र द्रविडानां चतुःषष्ठ्यनुवाकपाठः। आन्ध्राणामशीत्यनुवाकपाठः। कर्णाटकेषु केषाञ्चिच्चतुः सप्ततिपाठः। अपरेषां नवाशीतिपाठः। तत्र वयं पाठान्तराणि यथासम्भवं सूचयन्तो ऽशीतिपाठं[2] प्राधान्येन व्याख्यास्यामः। अर्थात् नारायणोपनिषद् में अथवा तैत्तिरीयारण्यक के दशम प्रपाठक के द्राविडपाठ में ६४ अनुवाक हैं। आन्ध्रपाठ में ८० अनुवाक हैं। कर्णाटक के कई पाठों में ७४ अनुवाक और दूसरों में ८९ अनुवाक हैं। ऐसी अवस्था में हम यथा सम्भव पाठान्तरों को देते हुए ८० अनुवाकों वाले आन्ध्रपाठ का प्रधानरूप से व्याख्यान करेंगे।

शङ्कर वेदान्त सूत्र ३।३।२४।। में ८० अनुवाक का पाठ उद्धृत करता है।

ये पाठान्तर अवान्तर शाखाओं के कारण से हो सकते हैं। कूरनारायणमुनि का तैत्तिरीय भाष्य आरण्यक विभाग के लिये विशेष द्रष्टव्य है। प्रक्षेपकों के प्रमाद ने इस आर्षग्रन्थ का कैसा हाल किया है। सायण भी पाठान्तर ही देता है। मूल ग्रन्थ का उसे भी पता नहीं चल सका।

विशेषताएं—तैत्तिरीयोपनिषद् इसी आरण्यक का भाग है। सातवें प्रपाठक के आरम्भ से नवम के अन्त में इस की समाप्ति होती है। इसी आरण्यक में कई उपयोगी निर्वचन पाये जाते हैं—कश्यपः पश्यको भवति। यत्सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्।[3] अर्थात् कश्यप देखने वाला होता है। जो (सर्वद्रष्टा परमात्मा) सब कुछ देखता है, सूक्ष्म होने से। इसी आरण्यक में व्यास और वैशम्पायन का नाम मिलता है—स होवाच व्यासः पाराशर्यः।[4] इति वैशम्पायनः।[5] अर्थात् वह पराशर का पुत्र व्यास बोला। यह वैशम्यापन का मत है।

इसी आरण्यक के १।१२।३।। में सुब्रह्मण्या मिलती है। १।२०।१।। में नरकों का वर्णन मिलता है। जलों के चार रूप कहे गये हैं—चत्वारि वा अपांँरूपाणि। मेघो विद्युत्। स्तनयित्नुर्वृष्टिः।[6] अर्थात् चार ही जलों के रूप हैं। बादल, बिजली, गर्जन और वर्षा।

---

१. पांचवां और छठा अध्याय।

२. यह पाठ राजेन्द्र लाल के संस्करण का है। उस के संस्करण में केवल ६४ अनुवाकों पर ही सायण भाष्य छपा है। आनन्दाश्रम संस्करण में इस स्थान पर मूल में चतुःषष्टिपाठं=६४ अनुवाकों के भाव का ही पाठ छापा गया है।

३. १।८।८।

४. १।७।२।।

५. १।९।२।।

६. १।२४।१।।

छः प्रकार के अन्य जल भी कहे गये हैं—

(१) वर्ष्याः—वर्षा का जल। १।२४।१॥

(२) कूप्याः—कूप का जल। १।२४।२॥

(३) स्थावराः—झील आदि के जल। १।२४।२॥

(४) वहन्तीः—नदी आदि में बहने वाले जल। १।२४।२॥

(५) सम्भार्याः—घड़े आदि में पड़े जल।

(६) पल्वल्याः—चश्मे आदि के जल।

एक मन्त्र में किसी विचित्र रथ का वर्णन है—रथँसहस्रबन्धुरं। पुरुश्चक्रँसहस्राश्वम्।[1] अर्थात् ऐसा रथ, जिस में एक हजार धुरे हैं, अनेक चक्र हैं, और एक हजार घोड़े हैं। यदि यह सूर्य का वर्णन नहीं है, तो अवश्य किसी विचित्र रथ का वर्णन है।

यज्ञोपवीत शब्द भी सर्वप्रथम इसी आरण्यक में मिलता है—प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः।...... यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत्।[2] अर्थात् यज्ञोपवीत धारण किए हुए का यज्ञ भले प्रकार स्वीकार किया जाता है। जो कुछ भी यज्ञोपवीत धारण किया हुआ ब्राह्मण पढ़ता है, वह यज्ञ ही करता है।

श्रमण शब्द जो बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं का द्योतक बना, इस आरण्यक २।७।१॥ में तपस्वी के अर्थ में मिलता है।

सब आरण्यकों में से तैत्तिरीयारण्यक बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है। दूसरे आरण्यकों के समान इस आरण्यक में अनेक मन्त्रों का व्याख्यान मिलता है।

७. मैत्रायणीय आरण्यक[3] अथवा बृहदारण्यक चरकशाखोक्त

ग्रन्थ परिमाण—इस आरण्यक में कुल सात प्रपाठक हैं। पहले प्रपाठक में ४ खण्ड, दूसरे में ७, तीसरे में ५, चौथे में ६, पांचवें में २, छठे में ३८ और सातवें में ११ खण्ड हैं। सम्पूर्ण खण्ड संख्या ७३ है।

विशेषताएं—यह आरण्यक आज कल मैत्र्युपनिषत् के नाम से प्रसिद्ध है। इस के प्रपाठकों की संख्या निम्न-लिखित प्रकार से है—

आनन्दाश्रम..................७ प्रपाठक
निर्णयसागर..................५ प्रपाठक
श्राडर संस्करण...............३ अध्याय
सामान्य वेदान्त उपनिषद्......४ प्रपाठक

---

१. १।३१।१॥ २. २।१।१॥

३. (क) उपनिषिदां समुच्चय, रामतीर्थविरचित दीपिका सहित, पृ० ३४५-४७५, आनन्दाश्रम, पूना।

(ख) मैत्रायण्युपनिषत्, पृ० १५९-१६५, निर्णयसागर, बम्बई।

(ग) मैत्रेयोपनिषद्, श्राडर, एफ, ओ., Minor Upanishads, पृ० १०८-१३६।

(घ) सामान्य वेदान्त उपनिषद्, पृ० ३३८-४१५, अड्यार, मद्रास।

आनन्दाश्रम संस्करण के अतिरिक्त शेष तीनों स्थानों के पाठ आनन्दाश्रम संस्करण के प्रथम प्रपाठक के दूसरे खण्ड से आरम्भ होते हैं। श्राडर का पाठ शेष तीनों से बहुत ही भिन्न है। खंड विभाग भी सब ग्रन्थों में बड़ा भिन्न है।

हमारे पास एक हस्तलिखित ग्रन्थ है।[1] उस के अन्त में लिखा है—

इति सप्तम प्रपाठक इति चर्कशाखोक्त बृहदारण्य उपनीषत सुसमाप्त ॥ शुभं भवतु ॥......॥ सके १६८७ माहे फाल्गुण......।

यद्यपि यह अन्तिम लेख बहुत अशुद्ध है, पर मूलपाठ में इतनी अशुद्धि नहीं है। यह ग्रन्थ मैं एक मैत्रायणी शाखा अध्येतृ ब्राह्मण के घर से लाया था।

इन सब ग्रन्थों के देखने से मेरा अनुमान है कि सप्तप्रपाठकात्मक मैत्र्युपनिषत् ही चरकशाखोक्त बृहदारण्यक है। मैत्रायणी चरकों का अवान्तर विभाग है। इसलिए जिस प्रकार कठ संहिता को चरकशाखायाम् कह सकते हैं, वैसे ही इस मैत्रायणी आरण्यक को भी चरक शाखोक्त बृहदारण्यक कह सकते हैं। मैत्रायणी उपनिषत् इसी आरण्यक का भाग है। मूल हस्तलेखों की अस्त व्यस्त दशा में उस का ठीक क्रम अभी तक नहीं जाना जा सकता।

सुदर्शनाचार्य ५वें प्रपाठक के मैत्रायणी उपनिषद् के वचन को पृ० ४०८, तथा पृ० १३७१ पर उद्धृत करता है। सातवें प्रपाठक का सप्तम खण्ड मैत्रेयी ब्राह्मण के नाम से पृ० १३५५ पर है।[2]

इस आरण्यक में कई भाग बहुत नवीन प्रतीत होते हैं। आर्यावर्त के प्राचीन अनेक चक्रवर्ती राजाओं के नाम इसी में मिलते हैं यथा—

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्नभूरिद्युम्न—इन्द्रद्युम्न—कुवलयाश्व—यौवनाश्व—वध्र्यश्व—अश्वपति—शशबिन्दु—हरिश्चन्द्र—अम्बरीष—ननक्तु—सर्याति—ययाति—अनरण्य—अक्षसे—नादयः। अथ मरुत्त भरत प्रभृतयो राजानः......।

अर्थात् सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वध्र्यश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, सर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त, भरत आदि। सब चक्रवर्ती राजा हो चुके हैं।

पांचवें प्रपाठक से कौत्सायनी स्तुति का आरम्भ होता है।

इस में ब्रह्म को अनेक नामों से स्मरण किया गया है।

इसी आरण्यक के ६।१॥ में प्राण, अग्नि और परमात्मा शब्दों को पर्यायवाची माना है—प्राणोऽग्निः परमात्मा। अर्थात् परमात्मा का ही प्राण और अग्नि नाम है।

इस आरण्यक के शुद्ध संस्करण की बड़ी आवश्यकता है।

---

१. यह वि० वै० शोध संस्थान, होशियारपुर में होना चाहिए।

२. पृ० ४०८,१३७१, १३५५, श्रुतप्रकाशिका।

सामवेदीय आरण्यक

८. तलवकार आरण्यक अथवा जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण

ग्रन्थ परिमाण—इस में चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय अनुवाक और खण्डों में विभक्त है। सारा विभाग निम्नलिखित प्रकार का है—

अनुवाक	प्रथमाध्याय	द्वितीयाध्याय	तृतीयाध्याय	चतुर्थाध्याय
१ अनुवाक में	७ खण्ड	२ खण्ड	५ खण्ड	१ खण्ड
२ ,, ,,	३ ,,	४ ,,	५ ,,	१ ,,
३ ,, ,,	४ ,,	३ ,,	४ ,,	१ ,,
४ ,, ,,	४ ,,	३ ,,	५ ,,	१ ,,
५ ,, ,,	१ ,,	३ ,,	९ ,,	१ ,,
६ ,, ,,	३ ,,		९ ,,	३ ,,
७ ,, ,,	२ ,,		५ ,,	२ ,,
८ ,, ,,	३ ,,			५ ,,
९ ,, ,,	३ ,,			२ ,,
१० ,, ,,	२ ,,			४ ,,
११ ,, ,,	२ ,,			५ ,,
१२ ,, ,,	५ ,,			२ ,,
१३ ,, ,,	२ ,,			
१४ ,, ,,	४ ,,			
१५ ,, ,,	४ ,,			
१६ ,, ,,	३ ,,			
१७ ,, ,,	३ ,,			
१८ ,, ,,	५ ,,			
खण्ड संख्या	६० ,,	१५ ,,	४२ ,,	२८=१४५

हम ने पृ० २६ पर खण्ड विभाग दिया है। तदनुसार उपनिषद् ब्राह्मण में १५४ खण्ड हैं। सम्भव है ५ और ४ के विपर्यय से १४५ का ही १५४ हो गया है।

विशेषताएं—इस आरण्यक की भाषा ब्राह्मण की भाषा है। चौथे अध्याय के १०वें अनुवाक से प्रसिद्ध केनोपनिषद् का आरम्भ होता है। उसी अध्याय के उसी अनुवाक अर्थात् चार खण्डों में ही उस की समाप्ति हो जाती है। इस आरण्यक में अनेक मन्त्रों की बड़ी सुन्दर व्याख्या पाई जाती है। अनेक सामों का इस में वर्णन है। बहुत से आचार्यों के नाम भी इस में मिलते हैं।

सङ्कलन—इस में कोई सन्देह नहीं कि ब्राह्मण के समान आरण्यक भाग का संकलन भी जैमिनि और तलवकार ने ही किया होगा।

पन्द्रहवां अध्याय

आरण्यक ग्रन्थों का संकलन काल

इस में कोई सन्देह नहीं कि आरण्यकों का पर्याप्त भाग, उन्हीं आचार्यों का प्रवचन किया हुआ है, जिन्हों ने वे ब्राह्मण कहे जिन के साथ इन आरण्यकों का सम्बन्ध है। ऐतरेय आरण्यक का वर्णन करते हुए लिखा जा चुका है कि ऐतरेय आरण्यक के चौथे और पांचवें आरण्यक का संकलन आश्वलायन और शौनक ने क्रमशः किया। यह भी ब्राह्मण ग्रन्थों के संकलनाध्याय में लिखा गया है कि ब्राह्मणों का संकलन लगभग महाभारत-काल में हुआ था। महाभारत काल से शौनक आदि आचार्यों के काल का कितना अन्तर है, यह विषय अब विचारणीय है। योरुप के विद्वान् ऐसा मानते हैं कि शौनक आदि आचार्य ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी पूर्व तक हुए हैं। हमारा मत है कि शौनक आदि आचार्य महाभारत काल से तीन चार पीढ़ियों के अन्दर ही अन्दर हुए हैं। अपने मत की पुष्टि के लिए हम पहले यह लिखना चाहते हैं कि शौनक, आश्वलायन, यास्क, पाणिनि, पिङ्गल, व्याडी और कौत्स आदि आचार्यों का क्या सम्बन्ध था। हमारा मत है कि शौनक, आश्वलायन, कात्यायन, यास्क, पाणिनि, पिङ्गल, व्याडी और कौत्स आदि आचार्य समकालीन थे।

शौनक[1]

शौनक के सम्बन्ध में षड्गुरुशिष्य ने अपनी ऋक् सर्वानुक्रमणी वृत्ति की भूमिका में लिखा है—

शौनकीया दशग्रन्थास्तत्रा ऋग्वेदगुप्तये।
आर्ष्यनुक्रमणीत्याद्या छान्दसी दैवती तथा॥
अनुवाकानुक्रमणी सूक्तानुक्रमणी तथा।
ऋक्पादयोर्विधाने च बार्हद्दैवतमेव च॥
प्रातिशाख्यं शौनकीयं स्मार्तं दशममुच्यते।

अर्थात्—शौनक के दश ग्रन्थ ऋग्वेद की रक्षा के लिए (थे।) (१) आर्षानुक्रमणी (२) छन्दोऽनुक्रमणी (३) देवतानुक्रमणी (४) अनुवाकानुक्रमणी (५) सूक्तानुक्रमणी (६) ऋग्विधान (७) पादविधान (८) बृहद्देवता (९) प्रातिशाख्य (१०) शौनक स्मृति।

---

१. देखें, पृ० २७७-२८५, भारतवर्ष का बृहद इतिहास, भाग प्रथम, द्वितीय संस्करण, भगवद्दत्त कृत।

इन में से बृहद्देवता के सम्पादक प्रो० मैकडानल का अनुमान है कि बृहद्देवता यदि शौनक का नहीं तो शौनक के किसी निकटवर्ती शिष्य का तो अवश्य ही है। मैकडानल लिखता है—my conclusion, therefore, is that the writer was not Saunaka, but a teacher of his school, who was not separated from him by any great length of time.[1]

हमारा अनुमान है कि बृहद्देवता शौनक का बनाया हुआ ही माना जा सकता है। हां, इस का परिवर्धन उस के किसी अत्यन्त समीपवर्ती शिष्य ने किया है। बृहद्देवता में यास्क का नाम और उस का मत बीस स्थलों पर उद्धृत है।

तैत्तिरीय यजुः शाखा अनुक्रमणीकार यास्क शौनक का नाम स्मरण करता है। यथा—

यजुर्वेदसर्वानुक्रमण्याम्—द्वादशिनः त्रयोऽष्टाक्षराश्च जगती ज्योतिष्मती। सापि त्रिष्टुब् इति शौनकः इति वचनात्।

बृहद्देवता के निम्नलिखित श्लोक में यास्क के निरुक्त का मत उद्धृत कर के उस पर विचार किया गया है—

पदमेकं समादाय द्विधा कृत्वा निरुक्तवान्।
पुरुषादः पदं यास्को वृक्षे वृक्ष इति त्वृचि॥ २।११॥

अर्थात्—वृक्षे वृक्षे ऋग्वेद १०।२७।२२॥ में आये हुए पुरुषादः एक पद का यास्क ने दो पदों में विभाग कर के निर्वचन किया है। यह बात निरुक्त २।६॥ के देखने से ज्ञात हो जाती है क्योंकि वहीं यास्क इस पद का अर्थ पुरुषानदनाय करता है। बृहद्देवता के इस से अगले श्लोकों में भी यास्कीय निरुक्त की अनेक बातें उद्धृत की गई हैं।

पुनः शौनक अपने प्रातिशाख्य में लिखता है—**न दाशतय्येकपदा काचिदस्तीति वै यास्कः।**[2] अर्थात् दशमण्डल युक्त ऋग्वेद में कोई एकपदा ऋक् नहीं है, ऐसा यास्क मानता है।

इसी बात को पिङ्गलकृत छन्दोविचिति का भाष्यकार यादवप्रकाश पिङ्गल सूत्र ३।७॥ पर भाष्य करता हुआ लिखता है—**पादजातीयकत्वादेवैकपदानामभ्यासवशाद् "दाशतया एकपदा (नास्ति) इति यास्क आचार्यः।" यदा अभ्यासः—**

वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नॄन् द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम तदवसा तरेम॥ ऋ० ६।२।११॥

वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। ऋ० १।१२७।१॥

इत्यादयो यमकाभासाः पादाः। पूर्वस्य ऋचः पादा एव। न पृथगृचः। एवमेकपदा अपि "भद्रं नो अपि वातय मनः। ऋ० १०।२०।१॥

इत्येकं पदं विना स तु पृथगेवेति यास्को मन्यते।

यादवप्रकाश का संकेत शौनक प्रदर्शित प्रातिशाख्यस्थ सूत्र की ओर ही है।

---

१. पृ० २४, भूमिका, बृहद्देवता।
२. सूत्र ९९३।

इन बातों से प्रतीत होता है कि यास्क या तो शौनक का पूर्ववर्ती था, अथवा उस का समकालीन ही था। ये दोनों आचार्य एक दूसरे के साथी ही थे।

आश्वलायन

आश्वलायन शौनक का शिष्य है। षड्गुरुशिष्य लिखता है—शौनकस्य तु शिष्योऽभूद्भगवानाश्वलायनः। अर्थात् भगवान् आश्वलायन शौनक का शिष्य था। इस सिद्धान्त को सब ही विद्वान् मानते हैं।

पहले कहा गया है कि बृहद्देवता शौनक के किसी निकटवर्ती का बनाया है। उस में आश्वलायन उद्धृत है। अतः इस प्रकार भी आश्वलायन शौनक के समीप ही है। निरुक्त ७।३१।। में आश्वलायन आदि श्रौत का मन्त्र उद्धृत है।

यदि शौनक और यास्क समकालीन हैं, तो शौनक का शिष्य होने से आश्वलायन भी इन्हीं का लगभग समकालीन है।

कात्यायन

कात्यायन[1] भी शौनक का शिष्य था। ऋक् सर्वानुक्रमणी वृत्ति में षड्गुरुशिष्य लिखता है—ननु च एको हि शौनकाचार्यशिष्यो भगवान् कात्यायनः। कथं बहुवचनम्। १।१।।

अर्थात्—शौनकाचार्य का शिष्य भगवान् कात्यायन अकेला ही है। यह बहुवचन अनुक्रमिष्यामः=क्रमशः आरम्भ करेंगे, कैसे प्रयुक्त हुआ है।

षड्गुरुशिष्य की सम्मति में यही कात्यायन है जिस ने कात्यायन श्रौतसूत्र, उपग्रन्थसूत्र, वार्तिक पाठ आदि अनेक ग्रन्थ बनाए हैं। इसी का एक श्लोकार्ध निम्नलिखित प्रकार से है—स्मृतेश्च कर्ता श्लोकानां भ्राजनाम्नां च कारकः।

मैक्समूलर इस का अर्थ इस प्रकार करता है—"the Slokas of the Smriti."

अपने नोट में वह लिखता है—Bhrajamana, is unintelligible, it may be Parshada.

अर्थात्—भ्राजमान पद समझ में नहीं आता। यह पार्षद हो सकता है। हमारा विचार है कि श्लोक बड़ा सरल है और इस का अनुवाद इस प्रकार होना चाहिए—कात्यायन स्मृति का कर्ता था और भ्राज नामक श्लोकों का भी कर्ता था। भ्राज नाम वाले श्लोक कात्यायन ने बनाये थे, ऐसा महाभाष्य पस्पशाह्निक में लिखा है।

यदि षड्गुरुशिष्य की यह सब बात मान ली जाय तो शौनक, आश्वलायन, कात्यायन, यास्क और पाणिनि समकालीन हो जाएंगे।

यास्क

आचार्य यास्क अपने निरुक्त में पाणिनि और शौनक का एक एक सूत्र उद्धृत करता है—परः सन्निकर्षः संहिता। पदप्रकृतिः संहिता। १।१७।।

---

१. देखें, पृ० २९६-३१४, व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, तीसरा संस्करण, युधिष्ठिर मीमांसक कृत।

यह सूत्र यास्क ने पाणिनि और शौनक दोनों आचार्यों के ग्रन्थों में से लिए हैं, इस के मानने में सन्देह नहीं होना चाहिए।

निरुक्तोद्धृत दूसरा सूत्र अवश्य ही किसी प्रातिशाख्य का है। भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय का टीकाकार पुण्यराज दो स्थलों पर इस सूत्र को ऐसे उद्धृत करता है—इह च "पदप्रकृतिः संहिता" इति प्रातिशाख्यम्। तथा—तत्कथं "पदप्रकृतिः संहिता" इति प्रातिशाख्यम्।

यास्क प्रणीत कल्प का नाम हारलता में मिलता है।[1]

शौनकीय प्रातिशाख्य में एक सूत्र है—संहिता पदप्रकृतिः। २।१॥

इस में कोई सन्देह नहीं कि शौनक के ऋक् प्रातिशाख्यान्तर्गत इस सूत्र को बदल कर ही यास्क ने पदप्रकृतिः संहिता में लिखा है। इस का कारण भी है। यास्क पाणिनीयाष्टक के सूत्र परः सन्निकर्षः संहिता को पहले उद्धृत करता है। इस में संज्ञापद संहिता अन्त में है। अतएव यास्क ने शौनक के वाक्य को भी वैसा ही बना दिया है।

स्पष्ट है कि यास्क पाणिनि और शौनक के सूत्रों को उद्धृत करता है।

निघण्टु और निरुक्त का कर्ता यास्क कितने और ग्रन्थों का कर्ता था, उस का पूरा पता नहीं। हां इतना पता चलता है कि उस ने छन्दशास्त्र पर कोई ग्रन्थ लिखा था। ऋक् प्रातिशाख्य का टीकाकार उवट प्रथम सूत्र की व्याख्या में लिखता है—तथा सर्वैश्छन्दोविचित्यादिभिः पिङ्गल-यास्क-सैतवप्रभृतिभिर्यत्सामान्ये-नोक्तं लक्षणं।[2]

इस से निश्चय होता है कि जिस प्रकार पिङ्गल का छन्दो विचिति ग्रन्थ है, वैसे ही यास्क और सैतव के भी छन्दः शास्त्र संबन्धी कोई ग्रन्थ थे।

निश्चय ही यास्क ने कोई छन्दः शास्त्र बनाया था। पिङ्गल स्वयं लिखता है—उरो बृहती यास्कस्य।[3] अर्थात् न्यंकुसारिणी को ही यास्क उरो बृहती मानता है। यह बात उस ने यास्क के छन्दः शास्त्र में ही देखी होगी।

पाणिनि

यास्क पाणिनि के सूत्र को उद्धृत करता है। यदि यह बात ठीक मान ली जाए, तो पिङ्गल का भी पूर्वोक्त सब आचार्यों का समकालीन मानना पड़ेगा।[4]

पिङ्गल[5]

(१) पिङ्गल अथवा पिङ्गलनाग भगवान् पाणिनि का कनिष्ठ भ्राता था। यह बात षड्गुरु-

---

१. पृ० ८।

२. पृ० १७, पंक्ति १६, १७, बनारस संस्करण।

३. ३।३०॥

४. देखें व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, तीसरा संस्करण, युधिष्ठिर मीमांसक कृत।

५. यह मेरा लेख है, जो आषाढ संवत् १९८२ के आर्य में छपा था।

शिष्य[1] वेदार्थदीपिका में लिखता है—तथा च सूत्र्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन "क्वचिन्नवकाश्चत्वारः" [पिङ्गलछन्दोविचिति ३।३३॥] इति परिभाषा ।७।६॥

अर्थात्—पाणिनि के अनुज=कनिष्ठ भ्राता भगवान् पिङ्गल ने क्वचित......सूत्र बनाया। यह सूत्र पिङ्गल के छन्दोविचिति ग्रन्थ का ३।३३॥ है। अतः निश्चय हुआ कि षड्गुरुशिष्य को जो परम्परा ज्ञात थी, तदनुसार पिङ्गल छन्दःसूत्र का कर्त्ता पिङ्गलनाग पाणिनि का छोटा भाई था। सब से पहले वैबर और फिर मैक्समूलर ने यह बात लिखी थी।

(२) पिङ्गलनाग किस पाणिनि का कनिष्ठ भ्राता था ? अष्टाध्यायी के रचयिता वा किसी अन्य का ? यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। पाणिनि चाहे कितने हो गए हों, पर पिङ्गल का ज्येष्ठ भ्राता, अष्टाध्यायी वाला ही पाणिनि था, यह बात अगले प्रमाण से स्पष्ट हो जायगी।

(३) ऋषि दयानन्द सरस्वती प्रणीत 'अष्टाध्यायी भाष्यम्' का मैं सम्पादन कर रहा हूँ।[2] उस में अष्टाध्यायी १।१।६॥ सूत्र पर भाष्य के प्रसङ्ग में मैंने एक टिप्पण लिखा था। उस का उद्धरण यहां आवश्यक प्रतीत होता है—प्रचलित पाणिनीय शिक्षा सम्प्रति दो शाखाओं में मिलती है। एक ऋग्वेदीय और दूसरी यजुर्वेदीय। ऋग्वेदीय शिक्षा में प्रायः ६० श्लोक मिलते हैं। यह "बनारस संस्कृत सीरीज" के शिक्षा-संग्रह में छपी है। इसी पर "शिक्षा प्रकाश" नामक व्याख्यान[3] भी उसी संग्रह में छपा है। वह व्याख्यान हलायुध अथवा यादवप्रकाश का है। सम्भव है, किसी और का भी हो। पर अधिक विचार इन्हीं दो में से किसी को मानने पर बाधित करता है। उस के आरम्भ में यह दूसरा श्लोक आया है—

> व्याख्याय पिङ्गलाचार्यसूत्राण्यादौ यथायथम्।
> शिक्षां तदीयां व्याख्यास्ये पाणिनीयानुसारिणीम् ॥

अर्थात्—प्रथम पिङ्गल सूत्रों का यथायोग्य व्याख्यान कर के अब उसी की शिक्षा का व्याख्यान करूंगा, जो पाणिनीयानुसारी है।

पिङ्गल छन्दःसूत्रों पर दो ही पुरुषों की टीका सम्प्रति मिलती है।[4] हलायुध की टीका छप चुकी है। दूसरी यादवप्रकाश की हस्तलिखित टीका पुस्तकालय में विद्यमान है। यह शिक्षाप्रकाश चाहे किसी का हो, पर इस का कर्त्ता भी इस शिक्षा को पाणिनीयानुसारी मानता था, पाणिनिकृत नहीं। जो उस ने यह लिखा है यह पिङ्गलाचार्य कृत है, इस पर पूरा विश्वास नहीं हो सकता।

---

१. षड्गुरुशिष्य वेदार्थदीपिका के अन्त में अपनी तिथि स्वयं देता है। उस का विस्तृत विवरण Indische Studien, 1863, page १६०, पर देखें।

२. समयाभाव से और लाहौर में प्रूफ न आने के कारण मैंने इस का सम्पादन छोड़ दिया था। तत्पश्चात् मेरे मित्र डा० रघुवीर एम० ए० ने इस का सम्पादन भार अपने ऊपर लिया था। उन के सम्पादित ग्रन्थ का पहला भाग छप चुका है।

३. इस व्याख्यान में २३ से अधिक श्लोकों की व्याख्या नहीं है।

४. दयानन्द कालेज, लाहौर, के पुस्तकालय में पहले दो टीका-ग्रन्थ थे। गत वर्ष किसी अज्ञातनाम ग्रन्थकार की एक और टीका हमें प्राप्त हुई है। आफ्रेखट की बृहत्सूची में और भी कुछ टीकाएं दी गई हैं।

दूसरी प्रचलित पाणिनीय शिक्षा यजुर्वेदीय है। इस में प्रायः ३५ श्लोक मिलते हैं। इण्डिया आफिस वाले ५४४ अंकस्थ पाणिनीयशिक्षा ग्रन्थ में बीस पूर्ण और एक आधा श्लोक ही हैं। ऐसी दशा में यह प्रचलित पाणिनीय शिक्षा है।

(४) पूर्वोद्धृत स्वकीय टिप्पण में जो मैंने लिखा था कि "ऋग्वेद पाणिनीयानुसारी शिक्षा पिङ्गलाचार्यकृत है, इस पर पूरा विश्वास नहीं हो सकता।" यह बात तो अब भी सत्य है। पर इतना मानने में कोई आपत्ति वा दोष नहीं कि आधुनिक पाणिनीय मतानुसारी शिक्षा का मूल तो अवश्य पिङ्गल का बना हुआ था। पाणिनि की सूत्रभूत शिक्षा को उस ने श्लोकबद्ध किया, इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। षड्गुरुशिष्य के लेख की उपस्थिति में उस का इस शिक्षा[1] को श्लोकबद्ध करना ही इस बात का संकेत है कि पिङ्गल का अष्टाध्यायी वा शिक्षा वाले पाणिनि से कोई सम्बन्ध था।

आचार्य पिङ्गलनाग की वही शिक्षा बढ़ते-बढ़ते ६० श्लोकों वाली बन गई। पर धन्यवाद हो "शिक्षाप्रकाश" नामक टीकाकार का, जिस ने पुरातन ऐतिह्य का उल्लेख करके वास्तविक परम्परा का ज्ञान सुरक्षित कर दिया।

(५) शिक्षाप्रकाश नामक टीका का करने वाला ही नहीं, प्रत्युत याजुष शाखीय[2] शिक्षा की पञ्चिका

---

१. यह सूत्रभूत मूल पाणिनीयशिक्षा दयानन्द सरस्वती ने बड़े यत्नों से उपलब्ध करके छपवाई थी। दयानन्द सरस्वती को वास्तविक पाणिनीय शिक्षा का ही हस्तलेख प्राप्त हुआ था और उस की सम्पादन की हुई शिक्षा को पाणिनीय ही मानना चाहिये। इस विषय में एक प्रमाण देखें—

अष्टाध्यायी पर की हुई काशिकावृत्ति का प्रतिसंस्कर्ता यद्यपि वामन (लगभग ७५० वि०सं०) है, (वही वामन जो कि वृत्तिसहित लिङ्गानुशासन का कर्ता है तुलना करें अष्टाध्यायी २।४।२१॥ तथा लिङ्गानुशासनवृत्ति कारिका ७) तथापि प्रथम पांच अध्याय अधिकांश में जयादित्य के हैं। जयादित्य लिखता है—

काशिका	पाणिनीय शिक्षा सूत्र, (षष्ठं प्रकरणम्)	
लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति।	,,	॥२॥
तं द्वादशप्रभेदमाचक्षते।	०शभेदमा०	॥३॥
सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति तान्यपि द्वादशप्रभेदानि।	,,	॥५॥
अन्तःस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिता यवलाः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च	,,	॥६॥
रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति।	,,	॥७॥
वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः।	,,	॥८॥

आचार्य चन्द्रगोमी व्याकरण में प्रायः पाणिनीय सूत्रों को बदल कर वा संक्षिप्त करके स्वप्रयोजन सिद्ध करता है। वैसे ही उस ने अपने वर्णसूत्रों में भी पाणिनि के सूत्रों को ही संक्षिप्त किया है। तुलना करें "चान्द्रवर्णसूत्र।"

२. पूर्वोक्त "शिक्षाप्रकाश" और यह शिक्षा पञ्चिकाविवरण, वस्तुतः २३ से अधिक श्लोकों का व्याख्यान नहीं करते। अतः प्रतीत होता है कि मूल शिक्षा जो पिङ्गलकृत थी, किसी प्रकार भी २३ से अधिक श्लोकों वाली नहीं थी।

का विवरणकर्त्ता महादेव-शिष्य धरणीधर (सं० १४५४) भी लिखता है—**पाणिनीयमतानुसारिणी श्रीपिङ्गलाचार्यविरचिता पाणिनीयशिक्षा समाप्ता।**[1]

सम्भवतः यह लेख उसी का ही है। कदाचित् किन्हीं पुरातन मूल पुस्तकों का भी हो। सम्पादक ने यह बात स्पष्ट नहीं की। अतः विवादास्पद होते हुए भी पाठान्तर पूर्वोक्त तथ्य को प्रकाशित करता है।

(६) इन सब बातों के अतिरिक्त "शिक्षाप्रकाश" का कर्त्ता षड्गुरुशिष्य-लिखित परम्परागत-ऐतिह्य को भी परिपुष्ट करता है। उस का लेख है—**जेष्ठभ्रातृभिर्विहितो [ज्येष्ठ-?] व्याकरणेऽनुजनुस्तत्र भगवान् पिङ्गलाचार्यस्तन्मतमनुभाव्य शिक्षां वक्तुं प्रतिजानीते।**[2]

इस से यह भी स्पष्ट होता है कि भगवान् पिङ्गल वैय्याकरण पाणिनि का ही अनुज था।

(७) यह पाणिनीय मतानुसारी शिक्षा अपने मूलरूप में पर्याप्त पुरानी है, इस में अणुमात्र सन्देह का स्थान नहीं। अब इस के लिये बाह्य साक्षी उपस्थित की जाती है।

(८) महाभाष्य पर त्रिपदी का रचयिता सुप्रसिद्ध भर्तृहरि (न्यूनातिन्यून सप्तम शताब्दी) है। उस का ग्रन्थ हमारे पास नहीं। व्याकरण भाष्य में कृतभूरिपरिश्रम डाक्टर कीलहार्न लिखता है—

In his commentary on the Mahabhashya, he (Bhartrihari) cites.........a verse the Paniniya-siksha in particular.[3]

पाणिनीय मतानुसारी शिक्षा के विषय में इस से अधिक पुरानी बाह्य साक्षी अभी तक मुझे नहीं मिली। यह असम्भव नहीं कि अगाध संस्कृत वाङमय में और भी पुराने ग्रन्थकार इसे उद्धृत कर गए हों। यह भावी अनुसन्धान से ज्ञात हो जाएगा।

(९) **प्राचीन साहित्य में पिङ्गल का उल्लेख**—भाष्यकार पतञ्जलि अपने प्रतिष्ठित आचार्य भगवान् पाणिनि के अनुज को कैसे न जाने? अतः जब पतञ्जलि **पिङ्गलकाणवस्यच्छात्राः पैङ्गलकाण्वाः**[4] लिखता है, तो उस का अभिप्राय इसी सुप्रसिद्ध पिङ्गल से है।

(१०) पतञ्जलि ही नहीं, प्रत्युत पाणिनि भी अपने कनिष्ठ भ्राता का ही स्मरण करता है, जब वह ६।२।६५।। के गण में "पिङ्गल" नाम पढ़ता है। ४।३।७३।। के गण में "छन्दोविचिति" पढ़ कर तो उसी के ग्रन्थ का परिचय कराता है। छन्दोविचिति नाम के अनेक ग्रन्थ हो सकते हैं, पर पूर्वोक्त समस्त ऐतिह्य को ध्यान में रख कर यही निश्चय होता है कि यहां पर पाणिनि अपने भ्राता के ही ग्रन्थ का विशेष ध्यान कर रहा है।

(११) निस्सन्देह पतञ्जलि और पाणिनि अनेक छन्दःशास्त्रों को जानते थे। पतञ्जलि कहता है—**सो ऽसौ छन्दःशास्त्रेष्वभिविनीत उपलब्ध्यावगन्तुमुत्सहते।** महाभाष्य १।२।३२।।

---

१. पृ० २३, पंक्ति ९, काशी संस्करण।
२. पृ० ३८५, पंक्ति ६, शिक्षा संग्रह।
३. Indian Antiquary, August 1883, p. 227 B, Kielhorn.
४. १।१।७३।।

पाणिनि भी ४।३।७३।। के गणपाठ पर—छन्दोमान। छन्दोभाषा।[१] छन्दोविचिति। आदि नाम पड़ता है।

पाणिनि के गणपाठ की कुछ पुस्तकों में एक नाम छन्दोविजिनि भी मिलता है। यह पाठ वस्तुतः पाणिनि का नहीं है। पाणिनि के कुछ काल पीछे किसी ने यह प्रक्षेप किया है। हस्तलिखित पुस्तकों की साक्षी ऐसा ही स्पष्ट करती है। इस में एक और भी प्रमाण है, जो हमारे विषय से भी सम्बन्ध रखता है।

आक्सफोर्ड के संस्कृत हस्तलेखों के सूचीपत्र पृ० ३८३B पर ४६६ संख्या के नीचे एक ग्रन्थ दिया है। वह है—विजिन्ति ? सामगानां छन्दः। यह सामपरिशिष्ट है। यहां लेखक प्रमाद से "विजिनि" का ही विजिन्ति बन गया है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में यह श्लोक है—

ब्राह्मणात्तण्डिनश्चैव पिङ्गलाच्च महात्मनः।
निदानादुक्थशास्त्राच्च छन्दसां ज्ञानमुद्धृतम्॥

इस से ज्ञात होता है कि विजिनि नामक ग्रन्थ, ताण्ड्य ब्राह्मण, पिङ्गल छन्दशास्त्र, निदान और उक्थशास्त्र के पीछे बना। इन में से उक्थशास्त्र याजुष परिशिष्ट है।[२]

याजुष परिशिष्ट कात्यायन प्रणीत होने से, यह भी कात्यायन की कृति है। अतः छन्दोविजिनि ग्रन्थ कात्यायन के उक्थशास्त्र बनाने के पीछे बना। उस से भी लेकर बनने वाला ग्रन्थ पाणिनि के गणपाठ के काल का नहीं हो सकता। हां, कुछ वर्ष पीछे का हो सकता है।

(१२) यह बात प्रसङ्गतः कही गई है। इस से ज्ञात होता है कि पिङ्गल पर्याप्त पुराना व्यक्ति है और उस का ग्रन्थ निदान वा उक्थशास्त्र से कुछ पहले बना।

छन्दोविचिति का अध्याय परिमाण

(१३) पाणिनीय व्याकरण और पिङ्गल छन्दोविचिति दोनों शास्त्र आठ आठ अध्यायों में समाप्त हुए हैं। पिङ्गल ने अपने भ्राता का अनुकरण करके ही अपने ग्रन्थ में आठ अध्याय रखे हैं, इस में कोई आश्चर्य नहीं है।

पिङ्गल का छन्दःशास्त्र का ज्ञान

(१४) अपने भाष्य की समाप्ति पर यादवप्रकाश निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करता है—

छन्दोज्ञानमिदं भवाद्भगवतो लेभे सुराणां गुरुः
तस्माद्दुश्च्यवनस्ततो ऽसुरगुरुर्माण्डव्यनामा ततः।
माण्डव्यादपि सैतव [वतस्त ऋषिर्यास्कः][3] स्ततः पिङ्गलस्
तस्येदं यशसा गुरोर्भुवि धृतं प्राप्यास्मदाद्यैः क्रमात्॥इति॥

---

१. यह नाम शौनकोक्त चरण-व्यूह द्वितीय कण्डिका में भी है। महिदास इस की बड़ी अशुद्ध व्याख्या करता है।
२. देखें चरणव्यूह, दूसरा खण्ड।
३. No. 795, Vol. I, Descriptive Catalogue, Vedic, Adyar.

(१) भगवान् भव = शिव
(२) सुरगुरु = बृहस्पति
(३) दुश्च्यवन = इन्द्र
(४) असुर गुरु = शुक्र
(५) माण्डव्य
(६) सैतव
(७) [यास्क]
(८) पिङ्गल]

(१५) अडयार, वैदिक, संख्या ७९१ के अनुसार सखाराम दीक्षित की पिङ्गल सूत्र वृत्ति पर उस के पिता और चचा ने वार्तिकराज और भाष्यराज लिखे।

वार्तिकराज में लिखा है—

शिवगिरिजा नन्दि फणीन्द्र बृहस्पति-च्यवन-शुक्र-माण्डव्याः।
सैतवपिङ्गल गरुडप्रमुखा आद्या जयन्ति गुरुचरणा॥

(१६) इस के अतिरिक्त एक और क्रम भी है। यह भी यादवप्रकाश भाष्य के हस्तलेख की समाप्ति पर है। यह श्लोक यादवप्रकाश ने नहीं लिखा। उस का ग्रन्थ इति भगवतो यादवप्रकाशस्य कृतौ......इत्यादि कह कर समाप्त हो जाता है। तत्पश्चात् ये श्लोक या तो नकल करने वाले ने या हस्तलेख के स्वामी ने दिये हैं। चाहे उन्हों ने किसी पुराने कोष से ही नकल किये हों। पर यादवप्रकाश के वा उस से उद्धृत किये गये ये नहीं हैं। वे निम्न हैं—

छन्दश्शास्त्रमिदं पुरा त्रिनयनाल्लेभे गुहो नादितः।
तस्मात् प्राप सनत्कुमारकमुनिस्तस्मात् सुराणां गुरुः।
तस्माद्देवपतिस्ततः फणिपतिः[1] तस्माच्च सत्पिङ्गलः।
तच्छिष्यैर्बहुभिर्महात्मभिरथो मह्यां प्रतिष्ठापितम्॥

यह परम्परा-क्रम सत्य प्रतीत नहीं होता। यहां पिङ्गल से पूर्व फणिपतिः का उल्लेख है। यद्यपि प्रथम क्रम में पिङ्गल से पहले आचार्य का नाम लुप्त हो गया है, तथापि हमें निश्चय है कि वहां फणिपति शेष, वा पतञ्जलि का नाम है। पतञ्जलि रचित एक छन्दः शास्त्र अडयार के पुस्तकालय में भी है। अतएव यह पतञ्जलि पिङ्गल के कुछ पूर्व और देवपति=इन्द्र के ठीक पीछे नहीं हो सकता। फलतः यह परम्परा-क्रम विश्वसनीय नहीं। यह क्रम क्यों चला इस पर पुनः लिखेंगे।

(१७) प्रथम क्रम के ८ नामों में से पहले चार के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। पांचवां और छठा तो सुप्रसिद्ध हैं। इन दोनों को पिङ्गल स्वयं अपने छन्दोविचिति में उद्धृत करता है। अध्याय पांच का सातवां सूत्र सर्वतः सैतवस्य द्रष्टव्य है।

---

१. फणिपति पतञ्जलि को ही कहते हैं। उस का छन्दः शास्त्र, निदान ग्रन्थ के पहले अध्याय में है।

इसी पर यादवप्रकाश सातवें अध्याय में निम्न श्लोक उद्धृत करता है—

सैतवस्य पथस्यली स्त्री च पूजितलक्षणा ।
गन्तृवर्गमिमं सदा रक्षतो विपुलापदः ॥
सिंहोन्नता काश्यपस्य ॥८॥
उद्धर्षिणी सैतवस्य ॥९॥
अन्यत्र रातमाण्डव्याभ्याम् ॥३४॥

वृत्तरत्नाकर का कर्ता केदारभट्ट दूसरे अध्याय में लिखता है—सैतवस्याखिलेष्वपि ।

सैतव का श्लोक बद्ध छन्दःशास्त्र अभी तक भारत में विद्यमान है। परलोकगत अमृतसर निवासी उदासीनवर्य-पण्डित स्वरूपदास ने सितम्बर १९२२ के अन्त में हम से कहा था कि सैतव छन्दःशास्त्र के सात अध्याय उन के पास हैं। उन्हों ने उस की प्रतिलिपि देने की प्रतिज्ञा की थी। दैवयोग से इस के कुछ दिन पश्चात् ही उन का देहावसान हो गया। उस ग्रन्थ की प्राप्ति के लिए मैं अब भी यत्न करता हूं।

(१८) माण्डव्य का ग्रन्थ भी श्लोक बद्ध था। पूर्वोक्त पिङ्गल सूत्र ७।३४॥ में रात सम्भवतः आधा नाम है। यथा देवरात इत्यादि। माण्डव्य से पूर्व माण्डव्य का कोई बड़ा या गुरु हो सकता है। उसी के ग्रन्थ को माण्डव्य ने परिवर्धित किया, ऐसा प्रतीत होता है। भट्टोत्पल बृहत्संहिता विवृत्ति पृ० १२४८ में पूर्व प्रदर्शित पिङ्गल सूत्र ७।३४॥ को ध्यान में रख कर लिखता है—

इहास्मिन् छन्दो लक्षणे प्रथमको दण्डकश्चण्डवृष्टिप्रयातसञ्ज्ञः सप्तविंशत्यक्षरपादो भवति पिङ्गलादी-नामार्षाणां मतेन राज [रात] माण्डव्यौ वर्जयित्वा। तयोस्तु मते एष सुवर्णाख्यः। तथा च तावूचतुः—

सुवर्णश्चण्डवेगश्च प्लवो जीमूत एव च।
बलाहको भुजङ्गश्च समुद्रश्चेति दण्डकाः ॥

तथा च पाठान्तरम्—

अर्णो ऽर्णवः प्लवश्चैव जीमूतो ऽथ बलाहकः।
समुद्रश्च भुजङ्गश्च सप्तैते दण्डकाः स्मृताः ॥

माण्डव्य का ग्रन्थ भी यत्न करने पर मिल सकेगा, ऐसी हमें पूरी आशा है।

पिङ्गल पाणिनि का छोटा भाई था। पिङ्गल ने ही पाणिनि की सूत्रभूतशिक्षा को श्लोकबद्ध किया। पिङ्गल को शबर, पतञ्जलि पाणिनि आदि जानते थे। पिङ्गल से पहले छन्दःशास्त्र के कौन आचार्य हो गये थे, इतना लिखने पर अन्त में हम एक बात कहनी चाहते हैं।

(१९) पिंगल यास्क को उद्धृत करता है—पिङ्गल का सूत्र है—उरोबृहतीति यास्कस्य।३।३०॥

अर्थात्—न्यंकुसारिणी को ही यास्क उरोबृहती कहता है।

अतः यदि निरुक्त और छन्दःशास्त्र वाले यास्क एक ही हैं, तो यास्क पिङ्गल से कुछ पहले वा उस का समकालीन होगा। हां पूर्वोक्त लेख से यह बात सिद्ध हो जाती है कि पाणिनि का समकालीन और कनिष्ठ-भ्राता होने से पिङ्गलनाग यास्कादि का भी समकालीन था।

व्याडि

आचार्य व्याडि[1] पाणिनि का मामा था। वह रसशास्त्र का विशेष आचार्य तथा दीर्घ जीवी था। उस का संग्रह नामक ग्रन्थ लक्ष श्लोकात्मक कहा जाता है। महाभाष्य में लिखा है—

शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृतिः।
शोभना खलु दाक्षायणेन संग्रहस्य कृतिः।[2] २।३।६६॥

अर्थात्—दाक्षायण के संग्रह की कृति बड़ी शुभ है। हम महाभाष्य के प्रमाण से जानते हैं कि पाणिनि=दाक्षी और दाक्षायण एक ही कुल के व्यक्ति हैं। यह बात तद्धित प्रत्यय के रूप से भी जानी जाती है। इसी दाक्षायण का असली नाम व्याडि था। व्याडि ने पूर्वोक्त संग्रह लक्ष श्लोकात्मक लिखा, ऐसा कैयट आदि ने लिखा है।

हम पहले पृ० ८० पर काव्य मीमांसा का एक श्लोक लिख चुके हैं। उस पर इस समय विचार करना आवश्यक है। राजशेखर लिखता है—

श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा—
अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिर्पिंगलाविह व्याडिः।
वररुचिपतञ्जलि इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः॥

इस श्लोक में आये हुए नामविशेषों पर विचार करना चाहिए। निश्चय ही पतञ्जलि से वररुचि=कात्यायन आयु में बड़ा है। कात्यायन की अपेक्षा व्याडि आयु में छोटा होता हुआ भी पाणिनि और पिङ्गल के अधिक निकट है। वह तो इन का सम्बन्धी ही है। पाणिनि उस का नाम स्वयं पढ़ता है—क्रौडि। लाडि। व्याडि। आपिशलि।[3] व्याडि।[4]

इस के अतिरिक्त व्याडि का दूसरा गोत्रवाची नाम भी पाणिनि लिखता है—दाक्षायण।[5] यही नहीं, पाणिनि उस की शुभकृति 'संग्रह' को भी जानता था—पद। क्रम। संघात। वृत्ति। संग्रहः। गणपाठ ४।२।६०॥

सम्भवतः सुप्रसिद्ध सांख्याचार्य विन्ध्यवासी ही व्याडि था। यदि ऐसा हो, तो वह बौद्ध नहीं था।[6]

व्याडि नाम के दो आचार्य

दाक्षायण व्याडि पाणिनि का सम्बन्धी और आर्य अर्थात् वैदिक मतस्थ था। बौद्ध काल में एक दूसरा आचार्य व्याडि हुआ है। उस ने एक बृहत् कोश भी लिखा है। उस के कोश के सब प्रमाणों का संग्रह अनेक कोश ग्रन्थों की टीकाओं से हम ने किया है।

प्रथम व्याडि के संग्रह के तीन श्लोक भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय के टीकाकार पुण्यराज ने उद्धृत

---

१. देखें पृ० २७५-२९१, व्याकरण शास्त्र का इतिहास, तीसरा संस्करण, युधिष्ठिर मीमांसक कृत।

२. महाभाष्य में अन्यत्र भी व्याडि का मत उद्धृत किया गया है—द्रव्याभिधानं व्याडिः। द्रव्याभिधानं व्याडिराचार्यो न्याय्यं मन्यते॥ महाभाष्य १।२।६४॥

३. ४।१।८०॥ गणपाठ। ४. ४।२।१३८॥ गणपाठ। ५. ४।२।५४॥ गणपाठ।

६. देखें आर० राम कृष्ण कवी का लेख—Journal of the Andhra Research Society, Oct. 1927.

किए हैं ।[1] जो व्याडि पाणिनि का सम्बन्धी है, वह शौनक आदि पूर्वोक्त आचार्यों का लगभग साथी ही होगा। शौनक अपने प्रातिशाख्य में व्यालि को स्मरण करता है—**व्यालिशाकल्यगार्ग्याः ।१३।१२।।**

इस से निश्चित होता है कि जो शौनक व्याडि को जानता था, वह पाणिनि आदि को भी जानता ही होगा। व्याडि अपने जटापटल के १६वें श्लोक में शौनक को उद्धृत करता है—**उदात्तादिविधानं तच्छौनकोक्तं भवदिह ।**

कौत्स

कौत्स नाम के कई आचार्य प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। एक कौत्स **कदा वसो** ऋ० १०।१०५।। सूक्त का ऋषि है। उस के सम्बन्ध में बृहद्देवता ८।१७।। में लिखा है—

कौत्सः कदा वसो सूक्तं दुर्मित्रो नाम नामतः ।
सुमित्रश्चैव नाम स्याद् गुणार्थमितरत्पदम् ।।

अर्थात्—ऋ० १०।१०५।। का ऋषि कौत्स है।

दूसरा कौत्स रघुवंश में स्मरण किया गया है—

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोषजातम् ।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ।।५।१।।

अर्थात्—उस विश्वजित् नाम के यज्ञ में ऐसे महाराज के पास, जिस ने अपना सब कोष दक्षिणा में दे दिया, वरतन्तु का शिष्य कौत्स,[2] जिस ने विद्या समाप्त कर ली है, गुरु को दक्षिणा देने की इच्छा वाला पहुँचा। एक और कौत्स आचार्य है। इस का स्मरण निरुक्त में किया गया है—**अनर्थकं भवतीति कौत्सः ।**[3] एक कौत्स का उल्लेख पतञ्जलि अपने महाभाष्य में करता है—**उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् ।** इतना अनुमान करने में कोई अनौचित्य नहीं कि यास्क वाला कौत्स वही है, जो कि पाणिनि के समीप कुछ काल तक रहा।

इस प्रकार एक दूसरे को स्मरण करने से ये सब आचार्य समकालीन ही प्रतीत होते हैं। ये सारे ही आचार्य महाभारत काल के आचार्यों से कुछ ही पीछे के थे। हमारा विचार है कि प्रातिशाख्य और बृहद्देवता वाला शौनक वही शौनक है, जिस के सम्बन्ध में पाणिनि ने लिखा है—**शौनकादिभ्यश्छन्दसि ।४।३।१६०।।**

यह शौनक आथर्वण शौनक शाखा का प्रवचनकर्ता हो सकता है। शाखा-प्रवचन-कर्त्ता आचार्य लगभग महाभारत काल में ही अथवा उस से एक दो पीढ़ी पीछे के थे। इसलिए हम कह सकते हैं कि शौनक आदि आचार्य जिन्हों ने ऐतरेय आरण्यक आदि के कुछ भागों का संकलन किया, महाभारत से दो चार पीढ़ी पश्चात् के ही हो सकते हैं।

यदि इन आचार्यों को समकालीन न माना जायगा, तो इतिहास में बड़ी अड़चनें आएंगी, उन का वर्णन अगले भागों में होगा।

---

१. देखें ब्रह्मकाण्ड १।२६।। की टीका।   २. १।१।१५।।

३. इसी वरतन्तु का उल्लेख पाणिनि तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण सूत्र ४।३।१०२।। में करता है।

सोलहवाँ अध्याय

आरण्यक ग्रन्थों के भाष्यकार

(क) ऐतरेय आरण्यक

हम पहले लिख चुके हैं कि उपनिषद आरण्यक ग्रन्थों का भाग हैं। इन उपनिषदों पर अनेक भाष्य हो चुके हैं। आरण्यक ग्रन्थों का वर्णन करते हुए हम उपनिषदों के भाष्यकारों का वर्णन नहीं करेंगे। यहां तो उन्हीं टीकाकारों का वर्णन किया गया है, जिन्हों ने समग्र ग्रन्थ पर अपने भाष्य किए हैं।

१. षड्गुरुशिष्य

षड्गुरुशिष्य का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों के भाष्यकार नाम के अध्याय में हो चुका है। इस ने मोक्षप्रदा नाम की टीका ऐतरेय आरण्यक पर की है। इस भाष्य के हस्तलेख त्रिवन्दरम और मद्रास में विद्यमान हैं।

२. सायण

सायण का भाष्य छप चुका है। इस का प्रकार वैसा ही है, जैसा सायण के अन्य भाष्यों का है।

३. गोविन्दस्वामी

इस के विषय में भी ऊपर लिखा जा चुका है।

(ख) शांखायन आरण्यक

इस आरण्यक पर अभी तक किसी के भाष्य का कोई हस्तलेख प्राप्त नहीं हुआ है।

(ग) कौषीतकि आरण्यक

इस का भी कोई भाष्य उपलब्ध नहीं है।

(घ) माध्यन्दिन बृहदारण्यक

१. भर्तृप्रपञ्च

भर्तृप्रपञ्च नाम का एक बड़ा आचार्य शंकर से पहले इस देश में हो चुका है। आनन्दगिरि अथवा आनन्दज्ञान के बृहदारण्यक भाष्य से हमें पता चलता है कि शंकर ने इस के भाष्य को देखा था। शंकर के बृहदारण्यक भाष्य में भी विना नाम लिये, इस के कुछ प्रमाण पाए जाते हैं।

शंकर १।१।१।। पर अपने भाष्य में लिखता है—तस्या इयमल्पग्रन्था वृत्तिरारम्यते। अर्थात् उस (ब्राह्मणोपनिषत्) की यह अल्पग्रन्थ=संक्षिप्त वृत्ति आरम्भ की जाती है। इसी पर आनन्दगिरि लिखता है—तस्या इति। भर्तृप्रपञ्चभाष्याद्विशेषान्तरमाह। अल्पग्रन्थेति। अर्थात् भर्तृप्रपञ्च के भाष्य से इस शंकरवृत्ति का यह अन्तर है कि भर्तृप्रपञ्च का भाष्य बड़ा विस्तृत था, परन्तु शंकर की वृत्ति यद्यपि उस की अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है, तथापि अर्थ की दृष्टि से संक्षिप्त नहीं। अल्प होते हुए भी इस में अर्थ का बड़ा विस्तार किया है।

भर्तृप्रपञ्च का भाष्य माध्यन्दिन आरण्यक पर था क्योंकि आनन्दगिरि अपनी टीका में लिखता है कि......माध्यन्दिनश्रुतिमधिकृत्यप्रवृत्तम्।

मैसूर के प्रो० हिरियाना ने भर्तृप्रपञ्च के भाष्य के सब प्रमाण जो आनन्दगिरि ने दिये हैं, एक स्थान पर एकत्र कर दिए हैं। उन्हों ने इस विषय का अपना लेख मद्रास के ओरियण्टल कान्फ्रेंस में १९२४ में पढ़ा था। वह लेख उस कान्फ्रेंस के प्रोसीडिंगस में छप चुका है।[1]

यह भर्तृप्रपञ्च न ही अद्वैतवादी था और न पूरा द्वैतवादी। अभी तक इस के ग्रन्थ का कोई टूटा फटा या सम्पूर्ण हस्तलेख प्राप्त नहीं हुआ।

२. द्विवेदगंग

माध्यन्दिन बृहदारण्यक पर बहुत थोड़े भाष्य स्वतन्त्र रूप से हुए हैं। जिन विद्वानों ने माध्यन्दिन शतपथ पर अपने भाष्य लिखे हैं, उन्हों ने इस आरण्यक पर भी अपने भाष्य अवश्य लिखे होंगे, ऐसा अनुमान हो सकता है। परन्तु वे सब भाष्य भी अभी तक उपलब्ध नहीं हुए।

जब से आचार्य शंकर ने काण्व बृहदारण्यक पर अपना भाष्य लिखा है, तभी से उन के उत्तरवर्ती विद्वानों ने काण्व पाठ पर ही अपने भाष्य लिखे हैं। हां द्विवेदगङ्ग नाम के विद्वान् ने मुख्यार्थप्रकाशिका नाम की व्याख्या माध्यन्दिन आरण्यक पर लिखी है। वेबर ने उस का संक्षेप अपने शतपथ ब्राह्मण के संस्करण के अन्त में छापा है। इस का एक समग्र पुस्तक विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर में विद्यमान है। जैसा इस के नाम से प्रकट है, इस में प्रत्येक पद का ही भाष्य नहीं किया गया है प्रत्युत मुख्य-मुख्य पदों का ही भाष्य किया गया है।

द्विवेदगङ्ग के काल के विषय में हम अभी तक कुछ नहीं कह सकते।

(ङ) बृहदारण्यक काण्व

इस आरण्यक पर आफरेख्ट के बृहत्सूची में निम्नलिखित भाष्यों और भाष्यकारों के नाम दिए गए हैं—

(१) सिद्धान्त दीपिका।
(२) शांकरभाष्य।

---

१. देखें, Proceedings and Transactions of the Third Oriental Conference, Madras 1924, पृ० ४३०-४५०। तथा देखें, प्रो० एम० हिरियाना का लेख, इण्डियन एण्टीक्वेरी, पृ० ७७-८६, एप्रिल सन् १९२४।

(३) आनन्दतीर्थ की शांकरभाष्य पर टीका।
(४) आनन्दतीर्थ का स्वतन्त्र भाष्य।
(५) रघूत्तम की परब्रह्मप्रकाशिका टीका।
(६) व्यासतीर्थ का भाष्य।
(७) दीपिका।
(८) गङ्गाधर (अथवा गङ्गाधरेन्द्र) की दीपिका।
(९) नित्यानन्दशर्मा की मिताक्षरा टीका।
(१०) मथुरानाथ की लघुवृत्ति।
(११) रङ्गरामानुज भाष्य।
(१२) सायण भाष्य।
(१३) राघवेन्द्र का बृहदारण्यकोपनिषत्खण्डार्थ।
(१४) राघवेन्द्र का बृहदारण्यकोपनिषदार्थसंग्रह।
(१५) बृहदारण्यकविषयनिर्णय।
(१६) बृहदारण्यकविवेक।
(१७) विज्ञानभिक्षु का भाष्य।
(१८) नारायण की दीपिका।

सम्भव है, दीपिका नाम के जो भाष्य पहले दिये गये हैं, यह उन्हीं में से कोई एक हो।

वार्तिक—भाष्य और टीकाओं के अतिरिक्त इस आरण्यक पर कई वार्तिक भी लिखे गये हैं। आफरेक्ट के अनुसार उन के नाम नीचे दिये जाते हैं—

(१) शंकरभाष्य का ही वार्तिक रूप सुरेश्वराचार्य कृत।
(२) आनन्दतीर्थ की शास्त्रप्रकाशिका।
(३) न्यायकल्पलतिका, आनन्दपूर्ण विरचित।
(४) बृहदारण्यकवार्तिकसार।

इन सब भाष्यों के अतिरिक्त और भी कई पुराने भाष्य होंगे, जिन का पता नहीं लग सका।

१. शंकराचार्य

इस आरण्यक के प्रसिद्ध भाष्यकारों में से सर्वश्रेष्ठ भाष्यकार श्री शंकराचार्य के सम्बन्ध में अब कुछ लिखा जाता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संवत् १९३९ में सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा था कि भाष्यत्रयी का कर्त्ता आदि शंकराचार्य कोई २२ सौ वर्ष हुए, हुआ था। ऐसी ही किंवदन्ति अन्य संन्यासियों में भी प्रचलित है। "एज आफ शंकर" के कर्ता हमारे मित्र स्वर्गीय टी० एस० नारायणशास्त्री ने लिखा था कि शंकर लगभग पांचवीं शताब्दी पूर्व विक्रम में हुआ था। प्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् तैलङ्ग ने लिखा था कि शंकर पांचवीं, छठी शताब्दी में हुआ होगा। योरुप के अनेक विद्वान् शंकर को आठवीं शताब्दी ईसा के अन्त में या नवम शताब्दी आरम्भ में रखते हैं। आश्चर्य है कि इतने प्रसिद्ध आचार्य का काल भी भारतीय इतिहास में अभी अनिश्चित ही है।

शङ्कर का काल—आचार्य शंकर के काल पर प्रकाश डालने वाली जो सामग्री हमें उपलब्ध हुई है, उस का लिख देना हम यहां आवश्यक समझते हैं। उस सामग्री को दृष्टि में रख कर आगे सब विद्वान् स्वतन्त्र विचार कर सकते हैं। परन्तु इस सब विचार को करते हुए भी एक परम आवश्यक बात है, जिस का ध्यान रखना अत्यन्त उपयोगी होगा। हमारा विश्वास है कि शंकराचार्य के भाष्यों के मुद्रित संस्करण और अनेकों हस्तलिखित ग्रन्थ विश्वसनीय नहीं हैं। जितना परिवर्तन और संशोधन शंकर के ग्रन्थों का हुआ है, उतना कदाचित् ही किसी अन्य के ग्रन्थों का हुआ होगा। अतएव आन्तरिक साक्ष्य पर विचार करते हुए यह सन्देह सदा ही बना रहना चाहिए कि किसी परिणाम पर पहुँचने के लिए प्रमाण रूप से उद्धृत किए वचन सम्भवतः शंकर के न हों। शंकर के काल विषयक सामग्री निम्न है—

(१) चीनी यात्री इत्सिङ्ग (सन् ६५१-६५२)[1] अपने यात्रा विवरण में लिखता है—**इस के अनन्तर भर्तृहरि शास्त्र है......। यह विद्वान् भारत के पांचों खण्डों में सर्वत्र बहुत प्रसिद्ध था और उस की विशिष्टताओं को लोग आठों दिशाओं में जानते थे।......उसकी मृत्यु हुए चालीस वर्ष हुए हैं।** यदि इत्सिङ्ग का पूर्वोक्त कथन सत्य मान लिया जाए, तो निम्नलिखित बातें विचारणीय हो जाती हैं।

आचार्य कुमारिल भट्ट अपने तन्त्रवार्तिक में भर्तृहरि कृत वाक्यपदीय के एक श्लोक को इस प्रकार उद्धृत करता है—**तथा चोक्तम्—तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।** यह श्लोक वाक्यपदीय का १।१३।। है। इत्सिंग के कथन के अनुसार सन् ६५१-६५२ में होने वाले भर्तृहरि के ग्रन्थ के श्लोक को उद्धृत करने वाला कुमारिल अवश्य ही सन् ६५२ से पीछे का होगा।

इस प्रकार भट्ट कुमारिल सन् ६८० के लगभग का मानना पड़ेगा।

(२) अब अनेक विद्वान् इस बात में सहमत हैं कि विश्वरूप, सुरेश्वर, मण्डन आदि एक ही आचार्य के नाम हैं। यह विश्वरूप अपनी बालक्रीडा टीका पृ० १४ में कुमारिल भट्ट के एक श्लोक को उद्धृत करता है—

तथा हि—शाखानां विप्रकीर्णत्वात् पुरुषाणां प्रमादतः।
नानाप्रकरणस्थत्वात् स्मृतिमूलं न गृह्यते॥

यह श्लोक तन्त्रवार्तिक चौखम्बा संस्करण पृ० ७६ पर पाया जाता है।

विश्वरूप कुमारिल के इसी श्लोक को उद्धृत नहीं करता, प्रत्युत उस ने कुमारिल का एक और श्लोक भी पृ० २ पर लिखा है—

तथा चाह—सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत्केन गृह्यते॥

यह श्लोक कुमारिल के श्लोकवार्तिक चौखम्बा संस्करण, पृ० ४ पर मिलता है। विश्वरूप ने इसे वहीं से लेकर उद्धृत किया है।

(३) मण्डन अथवा सुरेश्वर शंकराचार्य का शिष्य था। जब शंकर का शिष्य कुमारिलभट्ट को उद्धृत करता है, तो शंकर भी लगभग कुमारिल के ही समय का होगा। शंकर-विजय में तो यह बात लिखी भी

---

१. पृ० २७३-२७५, इत्सिङ्ग की भारत-यात्रा, अनुवादक सन्तराम, प्रयाग, १९२५।

है। इसलिए जब कुमारिल ही लगभग सन् ६८० के निकट हुआ है तो शंकर का काल ईसवी सप्तम शताब्दी के अन्त में ही हो सकता है।

यह शृंखला चीनी यात्री के वाक्य को सत्य मान कर ही जोड़ी जा सकती है।

(४) वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड पर पुण्यराज की व्याख्या छपी है। उस के अन्त में कई श्लोक पाये जाते हैं। वे श्लोक बहुत असंगत दशा में मिलते हैं। उन में से कुछ श्लोक इस प्रकार से हैं—

मूलभूतमवाप्याथ पर्वतादागमं स्वयम्।
आचार्यवसुरातेन न्यायमार्गान्विचिन्त्य सः ॥५४॥
प्रणीतो विधिवच्चायं मम व्याकरणागमः।
मयापि गुरुनिर्दिष्टाद्भाष्यान्न्यायाविलुप्तये ॥५५॥
काण्डत्रयक्रमेणायं निबन्धः परिकीर्तितः ॥५६॥
शशाङ्कशिष्यात्श्रुत्वैतद्वाक्यकाण्ड समासतः ॥५६॥

इन श्लोकों से आचार्य वसुरात, भर्तृहरि, और शशाङ्क=चन्द्रगोमी का घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट है।

(५) हम राजतरंगिणी १।१७६।[1] से जानते हैं कि कश्मीर के महाराज अभिमन्यु प्रथम के समय में आचार्य चन्द्रगोमी ने महाभाष्य का पुनः प्रचार किया था। राजतरंगिणी के सम्पादक स्टाईन के अनुसार अभिमन्यु प्रथम लगभग चौथी पांचवीं शताब्दी का ही है। इसलिये भर्तृहरि का काल अधिक से अधिक छठी शताब्दी होगा। यदि यह अनुमान ठीक हो जावे, तो चीनी यात्री इत्सिंग का लेख अशुद्ध मानना पड़ेगा, और भर्तृहरि का काल कुछ ऊपर चले जाने से शंकर आदि आचार्यों का काल भी लगभग छठी शताब्दी हो जायगा। इस प्रकार विषय की गम्भीरता चाहती है कि चीनी यात्री के कथन को अन्य प्रमाणों से पुष्ट किया जाय और इसे वैसे ही सत्य न मान लिया जाए। हम ने तो यहां दोनों प्रकार के भाव इस समय रख दिये हैं।

भर्तृप्रपञ्च सम्बन्धी पूर्वोक्त वर्णन से पता लग जाता है कि शंकर से पहले भी बड़े बड़े आचार्यों ने उपनिषदों पर भाष्य लिखे थे। ऐसा भी अनुमान होता है, कि जिन आचार्यों ने उपनिषदों पर भाष्य लिखे, उन्हों ने वेदान्त सूत्रों पर भी भाष्य लिखे होंगे। "जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च मद्रास" जनवरी सन् १९२७ में पं० कुप्पु स्वामी शास्त्री ने एक लेख पृ० ५-१५ तक लिखा है। उस में बताया गया है कि शंकर ने वेदान्त सूत्र १।१।४॥ के भाष्य के अन्त में जो कुछ श्लोक बिना नाम लिये उद्धृत किये हैं वे आचार्य सुन्दर पाण्ड्य के हैं। सम्भव है, इस आचार्य ने उपनिषदों पर भी भाष्य लिखे हों। अस्तु, हमारा लिखने का इतना ही अभिप्राय है कि संस्कृत विद्या के गवेषणा करने वालों को अभी बहुत कुछ खोजने की आवश्यकता है। शेष भाष्यकारों का वर्णन उपनिषदों के भाग में ही किया जाएगा।

तैत्तिरीयारण्यक

(१) भट्ट भास्कर तथा (२) सायण

तैत्तिरीय आरण्यक पर भट्ट भास्कर और सायण इन दोनों आचार्यों के भाष्य इस समय तक छप

---

१. चन्द्राचार्यादिभिर्लब्ध्वादेशं तस्मात्तदागमम्।
प्रवर्तितं महाभाष्यं स्वं च व्याकरणम् कृतम्॥

चुके हैं। अन्य कई भाष्य इस आरण्यक पर हो चुके होंगे, परन्तु एक दो के अतिरिक्त उन के अस्तित्व का अभी तक पता नहीं लगा। भट्ट भास्कर और सायण दोनों आचार्यों का वर्णन पहले किया जा चुका है।

३. वरदराज

आफरेक्ट की बृहत्सूची में तैत्तिरीयारण्यक का तीसरा भाष्यकार भी लिखा हुआ है। आफरेक्ट का आधार आपर्ट की सूची है। आपर्ट ने दक्षिण के ही घरों से सूची तैयार करवाई थी। इस से ज्ञात होता है कि यह भाष्यकार दाक्षिणात्य था। पुनः आफरेक्ट बताता है कि इस वरदराज के पिता का नाम वामनाचार्य और पितामह का नाम अनन्त नारायण था। इस ने सामवेदीय कई सूत्रों पर वृत्ति व भाष्य लिखे हैं। इस के आरण्यक के भाष्य का कोई हस्तलेख हमें नहीं मिल सका। इस के सम्बन्ध में भी अधिक नहीं लिखा जा सकता।

हमारा अनुमान है कि भवस्वामी ने इस आरण्यक पर भी अपना भाष्य लिखा होगा।

मैत्रायणीय आरण्यक

१. रामतीर्थ

पहले पृ० २३७ पर लिख चुके हैं कि रामतीर्थ ने इस आरण्यक पर अपनी दीपिका लिखी है। वह आनन्दाश्रम के उपनिषदों के समुच्चय में छपी है। इस आरण्यक या उपनिषद् पर इस के अतिरिक्त आफरेक्ट ने निम्नलिखित भाष्य बताए हैं—

(१) शंकराचार्य का भाष्य।
(२) नारायण की दीपिका।
(३) प्रकाशात्मन् की दीपिका।
(४) विज्ञानभिक्षु का मैत्रेयोपनिषदालोक।

ये टीकाएं उपनिषद् भाग पर ही हैं या सारे आरण्यक पर, यह अभी पता नहीं लग सका।

तलवकार आरण्यक

१. भवत्रात

भवत्रात ने जैमिनीय ब्राह्मण और आरण्यक के समान जैमिनीय श्रौत सूत्र पर भी अपना भाष्य लिखा है। उस की दो प्रतियां हमारे पास आ गई हैं। उन के पाठ से इस के काल आदि के सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं जाना जा सका।

इन आरण्यकों के अतिरिक्त कठ आरण्यक के सम्बन्ध में उपरिलिखित पृ० ४० का लेख देख लेना चाहिए।

सत्रहवां अध्याय

आरण्यक ग्रन्थ और वेदार्थ

जिस प्रकार से ब्राह्मण ग्रन्थ वेदार्थ में अत्यन्त सहायता देते हैं, वैसे ही आरण्यक ग्रन्थ भी इस विषय में सहायता देते हैं। इन में से भी जैमिनीय आरण्यक मन्त्रों का बड़ा ही स्पष्ट अर्थ करता है। इस लिये अब कुछ मन्त्रों का अर्थ, जैसा कि इस आरण्यक में मिलता है, उसका उदाहरण दिया जाता है।

तद्यथा ह वै सुवर्णं हिरण्यमग्नौ प्रास्यमानं कल्याणतरं कल्याणतरं भवति एवमेव कल्याणतरेण कल्याणतरेणात्मना सम्भवति य एवं वेद ॥६॥ तदेतदृचाभ्यनूच्यते ॥७॥

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः।
समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधस इति ॥१॥

पतङ्गमक्तमिति। प्राणो वै पतङ्गः। पतन्निव ह्येष्वङ्गेष्वति रथमुदीक्षते। पतङ्ग इत्याचक्षते ॥२॥ असुरस्य माययेति। मनो वा असुरम्। तद्ध्यसुषु रमते। तस्यैव माययाक्तः ॥३॥ हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चित इति। हृदंव ह्येते पश्यन्ति यन्मनसा विपश्चितः ॥४॥ समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षत इति। पुरुषो वै समुद्र एवंविद उ कवयः। त इमां पुरुषे ऽन्तर्वाचं विचक्षते ॥५॥ मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधस इति। मरीच्य इव वा एता देवता यदग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमाः ॥६॥ न ह वा एतासां देवतानां पदमस्ति। पदेनो ह वै पुनर्मृत्युरन्वेति ॥[1]

अर्थात्—जिस प्रकार सोना आग में डाला हुआ पवित्र होता है, बहुत पवित्र होता है, वैसे ही पवित्र आत्मा से, बहुत पवित्र आत्मा से वह प्रकट होता है, जो ऐसा जानता है। ऐसा ही ऋग्वेद १०।१७७।१॥ में कहा गया है। प्राण ही पतङ्ग है। मन ही असुर है। उसी की माया से यह युक्त है। ये विद्वान् हृदय और मन से ही जानते हैं। पुरुष ही समुद्र है। ऐसा जानने वाले कवि=ज्ञानी इस वाणी को पुरुष के अन्दर कहते हैं। मरीची के समान ही ये देवता हैं, जो अग्नि, वायु, आदित्य और चन्द्रमा हैं। इन देवताओं का पद नहीं है। पद से ही बार बार की मृत्यु को प्राप्त होता है।

पतङ्गो वाचम्मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तः।
तां द्योतमानां स्वर्यम्मनीषामृतस्य पदे कवयो निपान्ति ॥१॥

---

१. ३।३५॥ जै० उप० ब्रा०।

पतङ्गो वाचाम्मनसा बिभर्तीति । प्राणो वै पतङ्गः । स इमां वाचं मनसा बिभर्ति ॥२॥ तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तरिति । प्राणो वै गन्धर्वः पुरुष उ गर्भः । स इमाम्पुरुषे ऽन्तर्वाचं वदति ॥३॥ तां द्योतमानां स्वर्यम्मनीषामिति । स्वर्या ह्येषा मनीषा यद्वाक् ॥४॥

ऋतस्य पदे कवयो निपान्तीति । मनो वा ऋतमेवंविद उ कवयः । ओमित्येतदेवाक्षरमृतम् । तेन यदृचं मीमांसन्ते यद्यजुर्यत्साम तदेनां निपान्ति ॥५॥[1]

अर्थात्—ऋ० १०।१७७।२॥ का व्याख्यान इस प्रकार किया गया है—प्राण ही पतङ्ग है। वह (प्राण) इस वाणी को मन से धारण करता है। प्राण ही गन्धर्व है। पुरुष ही गर्भ है। वह (प्राण) इस वाणी को पुरुष के अन्दर बोलता है। यह वाणी ही है, जो स्वर्या मनीषा है। मन ही ऋत है। ऐसा जानने वाले ज्ञानी हैं। ओम् ही यह ऋत अक्षर है। इसी ओम् से जब ऋचा, यजु और साम की मीमांसा करते हैं, तो उस (वाणी की) रक्षा ही करते हैं।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥१॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमिति । प्राणो वै गोपाः । स हीदं सर्वमनिपद्यमानो गोपायति ॥२॥ आ च परा च पथिभिश्चरन्तमिति । तद्ये च ह वा इमे प्राणा अमी च रश्मय एतैर्हं वा एष एतदा च परा च पथिभिश्चरति ॥३॥ स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान इति सध्रीचीश्च ह्येष एतद्विषूचीश्च प्रजा वस्ते ॥४॥ आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरिति । एष ह्येवैषु भुवनेष्वन्तरावरीवर्ति ॥५॥[2]

अर्थात्—प्राण ही गोप है। ये प्राण ही हैं, जो यह रश्मियां हैं। इन्हीं से यह मार्गों से चलता है। वह सीधे और उलटे प्रजा को बसाता है। वह ही भुवनों में व्यापक है।

दूसरे आरण्यकों में भी अनेक वेदमन्त्रों का व्याख्यान पाया जाता है। पर वह इतनी विस्तृत रीति से नहीं मिलता। पूर्वोक्त तीन मन्त्रों वाले ऋग्वेदीय सूक्त के भाष्य से स्पष्ट पता लगता है कि आरण्यक कार किस प्रकार का मन्त्रार्थ करते थे। यह अर्थ प्रायः अध्यात्म शैली का है। पर सर्वत्र ऐसा नहीं है। कहीं कहीं आधिदैविक अर्थ भी मिल जाता है।

आरण्यकों का यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रीति से किया गया है। इन के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विशेष विचार उपनिषदों के साथ ही किया जायगा। ऐसा करना है भी आवश्यक क्योंकि आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, पुनर्जन्म, मुक्ति आदि का वर्णन उपनिषदों और आरण्यकों का समान ही है।



---

१. ३।३६॥ जै० उप० ब्रा०।
२. ७।३७॥ जै० उप० ब्रा०।

अशुद्धि-शुद्धि पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२४	१९२४	१९५४
५	१३	अग्रया	अग्र्याः
८	१३	ब्राह्मणाच्छंसि	ब्राह्मणाच्छंसी
९	७	याज्ञवल्कानि	याज्ञवल्क्यानि
१०	२८	ज्येष्ठाया......	ज्येष्ठया......
१३	९-११	पंक्ति ९-११	पंक्ति ३-५
१३	५	में	ने
१५	७	षष्टिपद	षष्टिपथ
२७	१९	जैमिनी	जैमिनि
३८	३	मृगम्यामिति	मृगम्यामिति
३८	८	स्वरशन्चरकाणाम्	स्वरश्चरकाणाम्
३९	१६	काशका	काशिका
४२	६	जर्नसिह	जर्नहिस
४७	२०	बहद्देवता	बृहद्देवता
५४	१६	ककुबब्रवीद	कुकदब्रवीद
५७	१५	यत्सन्धीः	यत्सन्धिः
६८	१०	हृरि	हारि
८१	२८	Vamasya Kuhnan Hymn Raja	Vamasya Hymn Kuhnan Raja
१००	१८	...	पृ० ९३
१०१	२	गुरा	गुरो
१०८	१५	ब्रह्मणादि	ब्राह्मणादि
११८	१	निघण्ट	निघण्टु
१२१	२३	गसृर	गास्ट्र
१४७	११	अमत	अमृत
१५७	२८	सुकयद्दी	—
१७४	२२	हिरण्डगर्भ	हिरण्यगर्भ
१७६	१४	अपों	आपों
१८८	३०	काठ	कठ
१९३	२४	पथिव्यां	पृथिव्यां
२००	३०	ब्रा०	ब्रा०
२११	२०	वन्दाया	विन्दाया
२१६	१७	श्रति	श्रुति
२१७	२०	ईशावस्योपनिषद्	ईशावास्योपनिषद्
२१९	८	दधना	दध्नुना
२३३	१८	दष्टि	दृष्टि
२३८	२१	वघ्रयश्व	वध्र्यश्व
२३८	२२	अवरणि	अनरणि

उद्धृत ग्रन्थ सूची

वैदिक, संस्कृत तथा हिन्दी पुस्तकें

अग्निहोत्रचन्द्रिका—आनन्दाश्रम, पूना, १९२१।

अथर्ववेद—१. दामोदर पाद सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, १९५८।
२. सायण भाष्य, शंकर पाण्डुरंग पण्डित, बम्बई १८९५-९८।

अनुभ्रमोच्छेदन—दयानन्द सरस्वती, बनारस, सं० १९३७।

अमरकोष (लिङ्गानुशासन)—अमरसिंह, १. हरदत्त शर्मा तथा सारदेसाई, पूना, १९४१।
२. आर० शाम शास्त्री, मैसूर, १९२०।

अष्टाध्यायी—पाणिनि, १. श्रीशचन्द्र वसु, मोतीलाल बनारसी दास, १९६२।
२. दयानन्द सरस्वती भाष्य, रघुवीर तथा ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, अजमेर, संवत् १९८४।
३. मूल, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, १९५५।
४. पूर्वार्द्धम्, गंगादत्त, हरिद्वार, १९६१।

आथर्वण चरणव्यूह—

आथर्वण परिशिष्ट—G. M. Bolling and J. von Negelein, Leipzig, 1909-10.

आथर्वण प्रातिशाख्य (शौनकीय चतुराध्याय)—१. विश्वबन्धु, पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर, १९२३।
२. William D. Whitney, चौ० सं० सी०, १९६२।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र—१. हरदत्त मिश्रकृत अनाकुला टीका, चौ० सं० सी०, १९२८।
२. M. Winternitz, Vienna, १८८७।

आपस्तम्ब धर्म सूत्र—G. Buhler, बम्बई संस्कृत सीरीज, १९३२।

आपस्तम्ब परिभाषा सूत्र—कपर्दि टीका, देखें दर्शपूर्ण मास प्रकाश, आनन्दाश्रम, पूना।

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र—१. Richard Garbe, कलकत्ता, १८८२-१९०२।
२. धूर्त स्वामी भाष्य, बड़ोदा, १९५५।
३. नरसिंहाचार, मैसूर, १९४५।
४. Caland, Gottingen, १९२१।

आर्य सिद्धान्त—पं० भीमसेन, इटावा।

आर्षम् पाणिनीयं व्याकरणम्—हरिशंकर पाण्डेय, पटना, १९३८।

आर्षानुक्रमणी—राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, १८९२।

आर्षेय ब्राह्मण—१. A. C. Burnell, मंगलोर, १८७६।
२. सायणाचार्य कृत वेदार्थ प्रकाश, बी० आर० शर्मा, तिरुपति, १९६७।

आश्वलायन गृह्य कारिका—वासुदेव शर्मा पणसीकर, निर्णयसागर, बम्बई, १८९४।

आश्वलायन गृह्य सूत्र—१. A. G. Stenzler, Leipzig, १८६४।
२. भवानीशंकर शर्मा, बम्बई, १९०९।
३. हरदत्ताचार्य टीका, टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९२३।
४. आनन्दाश्रम, पूना, १९३७।
आश्वलायन श्रौत सूत्र—१. विद्यारत्न, कलकत्ता, १८७४।
२. नारायण विवृत्ति, गणेश शास्त्री गोखले, आनन्दाश्रम, पूना, १९१७।
आह्निक प्रकाश—वीर मित्रोदय कृत, नित्यानन्द शर्मा, चौ० सं० सी०, १९१०।
इत्सिङ्ग की भारत यात्रा—सन्तराम, प्रयाग, १९२५।
उपग्रन्थ सूत्र—सामवेदीय, श्रौतसूत्र परिशिष्ट, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, १८९५-९७।
उपनिषदां समुच्चय—रामतीर्थ विरचित दीपिका, विनायक गणेश आप्टे, आनन्दाश्रम, पूना, १९२५।
उक्थ शास्त्र—
ऋक्सर्वानुक्रमणी—कात्यायन कृत, A. A. Macdonell, आक्सफोर्ड, १८८६।
ऋग्वेद पर व्याख्यान—भगवद्दत्त, लाहौर।
ऋग्वेद (ऋ०)—१. स्कन्द स्वामी भाष्य, विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान (वि० वै० शोध सं०), होशियार पुर, १९६५।
२. सायण भाष्य, F. Max Muller, चौ० सं०, सी०, १९६६।
३. सायण भाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल (वै० सं० मं०) पूना, १९४१।
४. वेङ्कट माधव भाष्य, लक्ष्मण स्वरूप, लाहौर, १९३९।
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका—दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, देहली, १९६९।
ऋक् प्रातिशाख्य—उवट भाष्य, मंगलदेव शास्त्री, १९३१।
ऐतरेय आरण्यक—सायण भाष्य, बाबा शास्त्री फडके, आनन्दाश्रम, पूना, १८९८।
ऐतरेयारण्यक पर्यालोचनम्—मंगलदेव शास्त्री, बनारस, १९५३।
ऐतरेयालोचनम्—सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, १९०६।
ऐतरेय ब्राह्मण—१. Theodor Aufrecht, Bonn, १८७९।
२. Martin Haug, बम्बई, १८६३।
३. अनुवाद सहित, A. B. Keith, Oxford, १९०९।
४. सायण भाष्य, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, सम्वत् १९५२।
५. सायण भाष्य, काशीनाथ शास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना, १९३१।
६. षड्गुरुशिष्य कृत सुखप्रदावृत्ति, अनन्तकृष्ण शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, १९४२।
कठोपनिषद्—अष्टादश उपनिषदः, लिमये तथा वाडेकर, वै० सं० मं०, पूना, १९५८।
कथासरित्सागर—सोमदेव कृत, दुर्गाप्रसाद तथा पाण्डुरंग परब, निर्णय सागर, बम्बई, १९३७।
कपिष्ठल कठ संहिता—रघुवीर, लाहौर, १९३२।
कर्मप्रदीप (छान्दोग्य परिशिष्ट)—कात्यायन कृत, चन्द्रकान्त तर्कालंकार, कलकत्ता, १९२३।
काठक गृह्यसूत्र—देवपाल भाष्य, Willem Caland, लाहौर, १९२५।
काठक संकलनम्—सूर्यकान्त, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर, १९४३।
काठक संहिता—१. दामोदरपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, औन्ध, १९४३।
२. L. von Schroeder, Leipzig, 1900-11.

काण्डानुक्रमणिका—A. Weber, Indische Studien, Vol III, 1885, pp. 247-83.
काण्व संहिता—दामोदर पाद सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, औन्ध, १९४० ।
कात्यायनीय परिशिष्ट दशकम्—श्रीधर अण्णा शास्त्री वारे, नासिक ।
प्रतिज्ञा सूत्र परिशिष्ट—कात्यायन, कात्यायन प्रातिशाख्य के अन्त में संगृहीत, चौ० सं० सी०, वाराणसी ।
कात्यायन श्रौत सूत्र—१. याज्ञिक देव भाष्य, चौ० सं० सी०, १९०८ ।
२. विद्याधर शर्मा, बनारस, १९३३-३७ ।
कादम्बरी—बाणभट्ट, उपेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद, १९६४ ।
काम सूत्र—वात्स्यायन कृत यशोधर की जयमंगला टीका, बम्बई ।
काव्य माला—कूरनारायण कृत सुदर्शन शतक, दुर्गाप्रसाद, काशीनाथ पाण्डुरंग परब, निर्णय सागर, बम्बई ।
काव्य मीमांसा—राजशेखर कृत, दलाल तथा शास्त्री, बड़ोदा, १९३४ ।
काशिका वृत्ति—वामन तथा जयादित्य कृत, १. शर्मा, संस्कृत परिषत्, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद ।
२. भगवत्प्रसाद त्रिपाठी, बनारस, १८९० ।
कुतूहल वृत्ति—
केनोपनिषद्—१. अष्टादश उपनिषदः, लिमये तथा वाडेकर, वै० सं० मं०, पूना, १९५८ ।
२. शांकर भाष्य, आनन्दाश्रम, पूना ।
कौशिक सूत्र—अथर्ववेदीय, दारिल तथा केशव टीका, Maurice Bloomfield, JAOS, Vol. XIV, 1890.
कोषीतकि उपनिषद्—अष्टादश उपनिषदः, लिमये तथा वाडेकर, वै० सं० मं०, पूना १९५८ ।
कौषीतकि गृह्य सूत्र—भवत्रात भाष्य, टी० आर० चिन्तामणी, मद्रास, १९४४
कौषीतकि ब्राह्मण—१. B. Lindner, 1887.
२. E. B. Cowell, Calcutta, 1861.
३. गुलाबराय वजे शंकर छाया, आनन्दाश्रम, पूना, १९११ ।
कौशिक सूत्र पद्धति—देखें कौशिक सूत्र ।
खादिर गृह्य सूत्र—रुद्रस्कन्द व्याख्या, महादेव शास्त्री तथा श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, १९१३ ।
गणपाठ—पाणिनि कृत, कपिल देव शास्त्री, कुरुक्षेत्र ।
गणरत्नमहोदधि—१. वर्धमान् कृत, J. Eggeling, Leyden, 1879 ।
२. इटावा संस्करण ।
गोपथ ब्राह्मण—१. राजेन्द्रलाल मित्र तथा हरचन्द विद्या भूषण, कलकत्ता, १८७२ ।
२. D. Gaastra, Leyden, १९१९ ।
गोभिलगृह्य कर्म प्रकाशिका—शुकदेव वर्मा, १९३२ ।
गोभिलगृह्य सूत्र—चिन्तामणि तथा भट्टाचार्य, कलकत्ता, १९२६ ।
गृह्यरत्न—
गौतम धर्म सूत्र—१. मस्करी भाष्य, श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, १९१७ । २. वेदमित्र, देहली, १९६९ ।
चतुर्वर्ग चिन्तामणि—हेमाद्रि कृत ।
चरक संहिता—यादवजी त्रिकमजी आचार्य, निर्णय सागर बम्बई, १९३५ ।
चरणव्यूह—शौनक कृत, महिदास टीका, चौ० सं० सी०, १९३८ ।
चान्द्र व्याकरण—चन्द्रगोमी कृत, क्षितीशचन्द्र चैटर्जी, पूना, १९५३ ।
छान्दोग्योपनिषत्—१. अष्टादश उपनिषद, लिमये तथा वाडेकर, वै० सं० मं०, पूना, १९५८ ।
२. आनन्दाश्रम, पूना, १९३४ ।

छान्दोग्यपरिशिष्ट (कर्मप्रदीप)—चन्द्रकान्त तर्कालंकार, कलकत्ता, १९०९।
छन्दः शास्त्रम्—पिंगलकृत १. हलायुधभट्ट कृत संजीवनी टीका, केदारनाथ तथा वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणसीकर, निर्णय सागर, बम्बई, १९२७।
छन्दो विचिति—पी० के० नारायण पिल्ले, त्रिवेन्द्रम, १९४०।
जाबाल उपनिषद—राममय तर्करत्न, कलकत्ता।
जैमिनीय ब्राह्मण (जै० ब्रा०)—रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, १९५४।
जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण—१. A. C. Burnell, मंगलोर, १८७८।
२. बी० आर० शर्मा, तिरुपति, १९६७।
जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (जै० उ० ब्रा०)—१. रामदेव, लाहौर, १९२१।
२. H. Oertel, Journal of the American Oriental Society, (JAOS), Vol- XVI, 1896.
३. बी० आर० शर्मा, तिरुपति, १९६७।
जैमिनीय श्रौत सूत्र—Dieuke Gaastra, Leiden, 1906.
ज्योतिष शास्त्र का इतिहास—शंकर बालकृष्ण दीक्षित, पूना, १८९६।
तन्त्रवार्तिक—कुमारिल भट्ट, देखें मीमांसा दर्शन, शाबर भाष्य, आनन्दाश्रम, पूना।
तलवकार श्रौत सूत्र—भवत्रात भाष्य।
ताण्ड्य महा ब्राह्मण (ता० ब्रा०) (पंचविंश ब्राह्मण)—१. सायण भाष्य, चिन्न स्वामी शास्त्री, चौ० सं० सी०, सं० १९९३।
२. सायण भाष्य, आनन्द चन्द्र वेदान्त वागीश, कलकत्ता, १८७०।
तैत्तिरीय आरण्यक—१. कृष्ण यजुर्वेदीय, बाबा शास्त्री फडके, आनन्दाश्रम, पूना, १८९८।
२. सायण भाष्य, राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, १८७२।
३. भट्ट भास्कर भाष्य, १९०२।
तैत्तिरीय प्रातिशाख्य—माहिषेय भाष्य, वेंकट राम शर्मा विद्याभूषण, मद्रास, १९३०।
तैत्तिरीय ब्राह्मण—१. सायण भाष्य, राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, १८६२।
२. सायण भाष्य, नारायण शास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना, १९३४।
३. भट्ट भास्कर भाष्य, महादेव शास्त्री तथा श्रीनिवासाचार्य, मैसूर।
तैत्तिरीय संहिता—१. A. Weber, Berlin, 1871-72.
२. दामोदर पाद सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, संवत् २०१३।
३. कृष्ण यजुर्वेदीय, सायण भाष्य, काशीनाथ शास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना।
तैत्तिरीय उपनिषद्—शांकर भाष्य, आनन्दाश्रम, पूना, १९२९।
तृतीय प्रतिज्ञा परिशिष्ट सूत्रम्—अण्णा शास्त्री वारे, नासिक, १९४३।
त्रयी परिचय—सत्यव्रत सामश्रमी।
त्रिकाण्ड मण्डन—भास्कर मिश्र तथा सोमयाजी टीका, चन्द्रकान्त तर्कालंकार, कलकत्ता, १८९८।
दर्शपूर्ण मास प्रकाश—आनन्दाश्रम पूना, १९२४।
दूसरा निवेदन—राजा शिवप्रसाद।
दैवत ब्राह्मण—१. जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८८१।
२. सायण भाष्य, बी० आर० शर्मा, तिरुपति, १९६५।

दैवम्—देव कृत, श्रीकृष्णलीला शुकमुनि कृत पुरुषाकाराख्य वार्तिक, युधिष्ठिर मीमांसक, अजमेर, २०१६।
द्राह्यायण श्रौत सूत्र—१. J. N. Reuter, Luzac and Co., London, 1924.
२. धन्विन् भाष्य, रघुवीर, देखें Journal of Vedic Studies, Vol. I, No. 1, Lahore.
धातुवृत्ति—माधवीय, सूर्यनारायण शुक्ल, चौ० सं० सी०, बनारस।
न्यायमञ्जरी—जयन्त भट्ट कृत, विजय नगर ग्रन्थमाला, वाराणसी।
नारदपरिव्राजकोपनिषद्—F. Otto Schrader, Adyar, Madras, 1912.
नारद शिक्षा—शोभाकर भाष्य, देखें शिक्षा संग्रह, काशी, १८९३।
नारायणोपनिषद्—वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, निर्णयसागर बम्बई, १९०६।
निघण्टु—१. देवराज यज्वा भाष्य, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, १८८२।
२. विट्ठल पुरन्दरे, आनन्दाश्रम, पूना, १९२५।
निदान सूत्र—कैलाशनाथ भटनागर, देहली, १९७१।
निरुक्त—१. राजाराम, लाहौर।
२. भगवद्दत्त, अमृतसर, सं० २०२१।
३. भदकमकर, आनन्दाश्रम, पूना।
४. लक्ष्मण स्वरूप, लाहौर।
५. दुर्गवृत्ति, वी० के० राजवाडे, पूना।
निरुक्त—कौत्सव्य प्रणीत।
निरुक्त आलोचन—
न्याय सूत्र—गौतममुनि प्रणीत, वात्स्यायन भाष्य, दिगम्बर शास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना, १९२२।
पंचतन्त्र – पूर्णभद्र शाखीय, Dr. Johannes Hertel, Harvard University, 1908.
पंचविंश ब्राह्मण—देखें ताण्ड्य महा ब्राह्मण।
पारस्कर गृह्य सूत्र—१. एम० गङ्गाधर, बम्बई, १९१७। २. गोपाल शास्त्री नेने, बनारस, १९२६।
पुष्प सूत्र (साम प्रातिशाख्य)—अजातशत्रु कृत भाष्य, लक्ष्मण शास्त्री, चौ० सं० सी०, १९२२।
प्रतिमा नाटक—भास कृत, शिवराम परांजपे, पूना, १९३०।
प्रपञ्चहृदय—टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम् १९१५।
प्रमाणवार्तिक—धर्मकीर्ति कृत, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, १९४३।
प्रयोगपारिजात—
प्रतिज्ञासूत्र परिशिष्ट—शुक्लयजुर्वेद सम्बन्धी, कात्यायन प्रातिशाख्य के अन्त में संगृहीत, चौ० सं० सी०।
प्रवरमंजरी—पुरुषोत्तम कृत, गोत्रप्रवर निबन्ध कदम्ब में संगृहीत, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९१७।
पाणिनि कालीन भारत—वासुदेव शरण अग्रवाल।
पाणिनीय शिक्षा सूत्र—दयानन्द सरस्वती कृत।
पाणिनीय शिक्षा पञ्जिका—धरणीधर कृत, गोपाल शास्त्री नेने तथा सुदामा शर्मा मिश्र, चौ० सं० सी०।
पाणिनीयाष्टक—गंगादत्त, हरिद्वार, १९६१।
ब्रह्मसूत्र—शांकर भाष्य, निर्णय सागर, बम्बई, १९१५।
ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य—१. भामति, कल्पतरु और परिमल टीका, निर्णयसागर, बम्बई, १९३८।
२. पाराशर्य विजय व्याख्या।
ब्राह्मणोद्धारकोष—विश्वबन्धु, वि० वै० शोध सं०, संवत् २०१३।

बृहज्जाबालोपनिषद्—देखें जाबाल उपनिषद् ।
बृहद्देवता—१. A. A. Macdonell, १६४० ।
२. राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता ।
बृहदारण्यकोपनिषद्—१. शंकर भाष्य, आनन्दाश्रम, पूना, १६२७ ।
२. आनन्दगिरि टीका, आनन्दाश्रम पूना, १८६४ ।
३. द्विवेदगङ्ग व्याख्या ।
ब्रह्माण्ड पुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १६०६ ।
बुद्धचरित—E. H. Johnston, कलकत्ता, १६३५ ।
बौधायन गृह्य सूत्र—आर० शाम शास्त्री, मैसूर, १६२० ।
बौधायन धर्म सूत्र—१. चिन्न स्वामी शास्त्री, चौ० सं० सी०, वाराणसी, १६६१ ।
२. गोविन्द स्वामी विवरण, उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौ० सं० सी०, वाराणसी ।
३. E. Hultzsch, Leipzig, 1884.
बौधायन पितृमेध सूत्र—W. Caland, Leipzig, 1896.
बौधायन प्रयोग सार—केशव स्वामी ।
बौधायन शुल्ब सूत्र—Willem Caland, कलकत्ता, १६१३ ।
बौधायन श्रौत विवरण—भवस्वामी कृत ।
बौधायन श्रौत सूत्र—Willem Caland, कलकत्ता, १६०४ ।
बृहत्संहिता—वराहमिहिर कृत, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८६५-६७ ।
बृहदारण्यक—१. माध्यन्दिन, Brahadaranjakopanishad in der Madhjamdina Recension, Otto Whitling, St. Petersburg, 1889.
२. काण्व ।
बृहदारण्यकोपनिषद्—अष्टादश उपनिषदः, लिमये तथा वाडेकर, वै० सं० मं०, पूना, १६५८ ।
भागवत पुराण—भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १६६५ ।
भारतवर्ष का बृहद् इतिहास—प्रथम तथा द्वितीय भाग, भगवद्दत्त, १/२८ पंजाबी बाग, देहली ।
भारद्वाज गृह्य सूत्र—H. J. W. Salomons, Leyden, 1913.
भाषिक सूत्र—कात्यायन कृत यजुर्वेद प्रातिशाख्य पर उवट भाष्य, युगलकिशोर पाठक, अनन्त देव कृत टीका सहित, बनारस, १८८३ ।
मत्स्य पुराण—आनन्दाश्रम, पूना ।
मदन पारिजात—E. Hultzsch, Leipzig, 1906.
मनुस्मृति—१. मेधातिथि भाष्य, गङ्गानाथ झा, कलकत्ता ।
२. कुल्लूक भट्ट भाष्य, प्राण जीवन शर्मा, बम्बई, १६१३ ।
मन्त्र ब्राह्मण—१. सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, सं० १६४७ ।
२. Heinrich Stonner, १६०१.
३. दुर्गामोहन भट्टाचार्य, कलकत्ता, १६५८ ।
मन्त्रार्थ दीपिका—
मन्त्रार्थाध्याय—चारायणीय, विश्वबन्धु, लाहौर, १६३५ ।

महाभारत—१. भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, (भण्डारकर)।
२. चित्रशाला प्रेस, पूना।
३. नीलकण्ठ भाष्य, पंचानन तर्करत्न भट्टाचार्य, कलकत्ता, १९०४।
महाभाष्य—F. Kielhorn, बम्बई, १९०६।
महाभाष्य दीपिका—भर्तृहरि टीका, वी० स्वामी नाथन, वाराणसी, सं० २०२१।
महामोहविद्रावण—राममिश्र शास्त्री।
महावस्तु—J. J. Jones, London, 1949-56.
मीमांसादर्शन—जैमिनि प्रणीत, शाबर भाष्य, आनन्दाश्रम, पूना।
मुण्डकोपनिषद्—अष्टादश उपनिषदः, लिमये तथा वाडेकर, वै० सं० मं०, पूना।
मेदिनी कोष—सोमनाथ मुखोपाध्याय, कलकत्ता, १८६९।
मैत्रायणी संहिता—१. F. O. Schraeder, Leipzig, 1923.
२. दामोदर पाद सातवलेकर, औन्ध, १९४२।
मैत्र्युपनिषद्—मैत्रायण्युपनिषद्—मैत्रेयोपनिषद्—अष्टादश उपनिषदः, लिमये तथा वाडेकर, वै० सं० मं०।
मैत्रायणीयारण्यक भाष्य—रामतीर्थ।
यजुर्वेद—१. दामोदर पाद सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, १९५७।
२. उवटभाष्य, निर्णयसागर प्रेस, १९२९।
यतिधर्मसंग्रह—विश्वेश्वर सरस्वती, आनन्दाश्रम, पूना, १९०९।
याज्ञवल्क्य संहिता—मन्मथ नाथ दत्त, कलकत्ता, १९०८।
याज्ञवल्क्य स्मृति—१. अपरार्क टीका, आनन्दाश्रम, पूना, १९०३।
२. बालक्रीडा टीका, टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, १९२४।
रघुवंश—कालिदास, करण्डीकर, बम्बई, १९५३।
राजतरंगिणी—कल्हण कृत, M. A. Stein, मोतीलाल बनारसी दास, १९६१।
रुद्राध्याय—सायण तथा भट्ट भास्कर भाष्य, तृतीय संस्करण, आनन्दाश्रम, पूना, १९०६।
लाट्यायन श्रौत सूत्र—१. आनन्दचन्द्र वेदान्त वागीश, कलकत्ता, १८७२।
२. चौ० सं० सी०, वाराणसी।
लिंगानुशासन—देखें अमरकोष।
वंश ब्राह्मण—१. A. C. Burnell, मंगलोर, १८७३।
२. A. Weber, Indian Studies, Vol. IV, pp-371 ff.
३. सायण भाष्य, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, सं० १९४९।
४. सायण भाष्य, बी० आर० शर्मा, तिरुपति, १९६५।
व्याकरण शास्त्र का इतिहास—तीन भाग, युधिष्ठिर मीमांसक (यु० मी०), बहाल गढ़, हरियाणा।
वाक्य पदीय—भर्तृहरि विरचित १. हेलाराज कृत टीका, के० साम्बशिव शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, १९३५।
२. पुण्यराज टीका, चारुदेव शास्त्री, लाहौर।
वाजसनेयिप्रातिशाख्य—कात्यायन, उवट तथा अनन्त भट्ट भाष्य, वेंकटराम शर्मा, मद्रास, १९३४।
वाधूल श्रौत सूत्र—W. Caland, Acta Orientalia, 2, 4, 6.
वायुपुराण—आनन्दाश्रम, पूना, १९०५।

वाल्मीकीय रामायण—१. बड़ोदा संस्करण, १९६०।
२. लाहौर संस्करण, १९२८-४७।
३. मैसूर संस्करण, १९६०।

वासिष्ठ धर्म सूत्रम्—A. A. Fuhrer, भण्डारकर, १९३०।
विज्ञान भैरव—शिवोपाध्याय विवृत्ति, मुकुन्दराम शास्त्री, श्रीनगर, १९१८।
विष्णुधर्मोत्तर पुराण—प्रियबाला शाह, बड़ोदा, १९५८।
वृत्तरत्नाकर—केदारभट्ट कृत, भट्ट नारायण टीका, वैद्यनाथ शास्त्री, चौ० सं० सी०, बनारस, १९२७।
विष्णु सहस्र नाम—मुंशीराम, देवसदन, भिवानी, १९६९।
वेदभाष्य विज्ञापन—दयानन्द सरस्वती।
वेदविद्या निदर्शन—भगवद्दत्त, १/२८ पंजाबी बाग, देहली।
वेदसर्वस्व—हरिप्रसाद वैदिक मुनि, देहली, १९१६।
वेदान्त सूत्र—बादरायण कृत,—१. शांकर भाष्य, देखें ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य।
२. भास्कर भाष्य, विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौ० सं० सी०, बनारस।
वैजयन्ती कोष—यादवप्रकाश कृत, Gustav Oppert, मद्रास, १८९३।
वैदिक कोष—हंसराज, प्रथम संस्करण, लाहौर, १९२६।
वैदिक वाङ्मय का इतिहास—भगवद्दत्त, तीन भाग, १/२८ पंजाबी बाग, देहली।
शतपथ ब्राह्मण—माध्यन्दिन, १. Catapatha Brahmana, A. Weber, Leipzig, 1964.
२. अजमेर, संवत् १९५९।
३. सायण भाष्य, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
४. सायण भाष्य, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, १९०३-११।
५. वंशीधर शास्त्री, काशी।
शतपथ ब्राह्मण—काण्व, W. Caland, Moti Lal Banarsi Das, 1926.
शाकटायन व्याकरण—शम्भुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९७१।
शाङ्खायन गृह्य सूत्र—सीताराम सहगल, देहली, १९६०।
शाङ्खायन ब्राह्मण—गुलाबराय वजेशंकर, आनन्दाश्रम, पूना, १९११।
श्लोक वार्तिक—कुमारिल कृत, सुचरित मिश्र टीका, त्रिवेन्द्रम, १९४३।
शाङ्खायन श्रौत सूत्र—आनर्त्तीय वरदत्त सुत कृत टीका, Alfred Hillebrant, कलकत्ता, १८८८।
शाङ्खायनारण्यक—१. Friedlander, Berlin, 1900.
२. E. B. Cowell, Calcutta, 1861.
३. आनन्दाश्रम, पूना, १९२२।
४. A. B. Keith, Oxford, 1909.
शार्ङ्गधर पद्धति—Peter Peterson, भाग १, बम्बई १८८८।
शिक्षा (ऋग्वेदीय) व्याख्यान—
शुक्लयजुर्वेदीय काण्व संहिता—सायण भाष्य, माधव शास्त्री, चौ० सं० सी०, १९१५।
शुद्धिकौमुदी—गोविन्दानन्द, कमल कृष्ण स्मृतिभूषण, कलकत्ता, १९०५।
शौनक प्रातिशाख्य—ऋग्वेदीय, उवट भाष्य, युगलकिशोर व्यास तथा प्रभुदत्त शर्मा, बनारस, १८९४-१९०३।
श्राद्धकल्प—हेमाद्रि।
श्राद्धकाशिका—कृष्णमिश्र कृत।

श्रुत प्रकाशिका—ब्रह्मसूत्र पर सुदर्शनाचार्य कृत टीका, पंडित में, १८८५-१८६७ तक प्रकाशित।
श्वेताश्वतरोपनिषद्—अष्टादश उपनिषदः, लिमये तथा वाडेकर, वै० सं० मं०, पूना, १६५८।
षड्विंश ब्राह्मण—१. सायण भाष्य, जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८८१।
२. विज्ञापन भाष्य सहित, H. F. Eelsingh, Leyden, 1908.
३. सायण भाष्य, कुर्ट क्लेम्म, गटर्स्लोह, १८६४।
४. सायण भाष्य, बी० आर० शर्मा, तिरुपति, १६६७।
स्पन्द प्रदीपिका—उत्पलाचार्य कृत, वामन शास्त्री, विजय नगर संस्कृत ग्रन्थ माला, वाराणसी, १८६८।
संक्षिप्तसार व्याकरण—टीकाकार गोपीचन्द औत्थासानिक।
संस्कार तत्व—रघुनन्दन भट्टाचार्य कृत ग्रहयाग तत्व, सतीशचन्द्र, संस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता, १६२५।
संस्कार प्रकाश—वीर मित्रोदय कृत, चौ० सं० सी०, १६१३।
संहितोपनिषद् ब्राह्मण—१. A. C. Burnell, मंगलोर, १८७७।
२. द्विजराजभट्ट भाष्य तथा वेदार्थप्रकाश सायण विवृत्ति, बी० आर० शर्मा, तिरुपति, १६६५।
सत्याषाढ श्रौत सूत्र—गोपीनाथ व्याख्या तथा महादेव कृत वैजयन्ती व्याख्या, आनन्दाश्रम, पूना १६०७।
सत्यार्थप्रकाश—दयानन्द सरस्वती।
सनातनधर्मोद्धार—नकछेदराम।
सम्प्रदाय पद्धति—
सर्वदर्शन संग्रह—माधव कृत, कें० साम्बशिव शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १६३८।
सर्वानु क्रमणी वृत्ति—षड्गुरुशिष्य भाष्य, A.A. Macdonell, Oxford, १८३६।
सरस्वती कण्ठाभरण—भोजदेव विरचित, के० साम्बशिव शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १६६५।
सामतन्त्र—
सामविधान ब्राह्मण—१. सायण भाष्य, सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, सं० १६५१।
२. सायण भाष्य, A.C. Bnrnell, London, 1873.
३. सायण भाष्य तथा भरत स्वामी विवृति, बी०, आर० शर्मा, तिरुपति, १६६४।
सामवेद—१. दामोदर पाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, १६३६।
२. सायण भाष्य, जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८६२।
सुश्रुत संहिता—सुश्रुत कृत, निर्णय सागर, बम्बई।
स्मृति चन्द्रिका—देवण भट्ट, आर० शाम० शास्त्री, मैसूर १६२१।
हिरण्यकेशीपितृमेध सूत्र—W. Caland, Leipzig, 1896.

English Works

Caland, W.— Das Jaiminiya Brahmana in Auswahal, 1919.
Conybeare, F. C.— Life of Appollonius, Book VII, by Philostratus.
Barth— Religions of India, London, 1882.
Belvalkar, S. K.— Four Unpublished Upanishadic Texts. 1926.
Bhagavad Datta— Story of Creation, 1/28, Punjabi Bagh, New Deihi.
Dubreuil, Jouveau— Ancient History of Deccan, Tr. by Dikshit, 1920.
Eggeling, J.— Catapatha Brahmana.
Gamow, G.— Biography of the Earth.
Ghate, V. S.— Lectures on the Rgveda, Bombay, 1915.
Ghosh, Batakrishna—Collection of the Fragments of the Lost Brahmanas, Calcutta, 1947.
Guha, Abhayakumar—Jivatma in the Brahma-sutras, 1921.
Gune, P. D.— Brahmana Quotations in the Nirukta.
Gurudutta— Works of Pt. Guru Dutt.
Hoernle, R.— Medicine in Ancient India.
Hopkins— Religions of India, Boston, 1895.
Jha, Ganganath— Manusmriti, Eng. Tr., Calcutta.
Kane, P. V.— History of Dharmasastra.
Keith. A. B.— Aitareya Aranyaka.
Karma Mimansa, 1921.
Rgveda Brahmanas, 1971.
Lakshmana Swarup—Nighantu and Nirukta, Lahore.
Macdonell, A. A.— History of Sanskrit Literature.
Vedic Grammar for Students.
Vedic Mythology.
Vedic Reader.
Maxmueller, F.— History of Ancient Sanskrit Litreture.
Narayan Shastri, T.S.–Age of Sankara.
Oldenberg, M.— Vedic Hymns.
Pargiter, F. E.— Ancient Indian Historical Tradition.
Pathak, B. D.— Hindu Aryan Astronomy and Antiquity of the Aryan Race.
Raja, Kuhnan C.— Asya Vamasya Hymn, Madras, 1956.
Raychaudhari, H.— Political History of Ancient India.
Schraoder, F. O.— Minor Upanishads, Adyar, 1972.
Weber, A.— History of Indian Literature, London.
Zimmerman, R.— A Second Selection of Hymns from the Rgveda.

Journals, Catalogues etc.

Acta Orientalia, Vol. IV.
Arya, edited by Aurobindo Ghosh.
A Second Report for the Search of Manuscripts, P. Peterson.
Bhandarkar Commemoration Volume.
Catalogus Catalogorum, Aufrecht.
Catalogue of Manuscripts in the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.
Catalogue of Manuscripts in Bikaner Library.
Catalogue of Bodelian Library, Oxford.
Catalogue of Manuscripts in Ulwar Library, P. Peterson.
Catalogue of Manuscripts in the Mysore Library.
Catalogue of Sanskrit Manuscripts by G. Oppert.
Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Asiatic Society of Bengal, Calcutta.
Catalogue of Manuscripts, Adyar, Madras.
Catalogue of Manusripts, Government Oriental Manuscripts Library, Madras.
Catalogue of Manuscripts in the Royal Asiatic Society, Bombay Branch.
Catalogue of Manuscripts in the Punjab University, Lahore.
Catalogue of Manuscripts in the Gaekwad Oriental Research Institute, Baroda.
D.A.V. College, Lahore, Union Magazine.
Epigraphia Indica.
Indian Antiquary.
Indische Studien.
Journal of the American Oriental Society, (JAOS)
Journal of the Andhra Research Society, October, 1927.
Journal of the Mythic Society.
Journal of Oriental Research, Madras.
Proceedings and Transactions of the Third Oriental Conference, Madras, 1924.
Sitz. Ber der Kais. Akad. der Wiss, Wien, Phil. hist. Kl.
Versl. en Meded der Kon. Afd. let., Ve. R., IVe deel.
W.Z.K.M., Vol. XXVIII.
Z.D.M.G., 1901.

शब्द सूची

क

(ख)

ग

थ

द

य

ष

स

नोट—पृष्ठ २७६ पर 'ऋ' भाग 'ऊ' भाग के पश्चात् देखें।



अन्ततः वैदिक वाङ्मय का इतिहास तीन खण्डों में प्रकाश में आया। सर्वप्रथम इसका द्वितीय भाग शोध विभाग डी. ए. वी. कालेज लाहौर द्वारा १६२४ में छपा। लेखक ने द्वतीय खण्ड में _ब्राह्मण और आरण्यक_ साहित्य का विचार किया है। उपलब्ध और अनुपलब्ध ब्राह्मणों के विवरण के पश्चात् इन ग्रन्थों पर लिखे गए भाष्यों और भाष्यकारों की पूरी जानकारी दी गई है। चारों वेदों से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न आरण्यकों की विषय-सामग्री का उल्लेख करने के पश्चात् आरण्यकों का संकलन काल, इन ग्रन्थों के भाष्यकारों की जानकारी तथा अन्य आवश्यक तथ्य प्रस्तुत किए हैं। अपने विषय का यह प्रथम मौलिक ग्रन्थ था।

_वेदों के भाष्यकार_ शीर्षक से तृतीय खण्ड का प्रकाशन १६३१ में हुआ। वेद भाष्यकारों के काल का निर्धारण करने में लेखक ने महत् परिश्रम किया है। यहाँ अनेक ऐसे भाष्यकारों की चर्चा हुई है जिनके अस्तित्व की जानकारी भी लोगों को नहीं थी।

वैदिक वाङ्मय के इतिहास का प्रथम खण्ड जिसमें मुख्यतः _वैदिक शाखाओं पर विचार_ किया गया है। विद्वान् लेखक ने भाषा शास्त्र तथा भारत के प्राचीन इतिहास विषयक अपने मौलिक चिन्तन का सार भी प्रस्तुत किया है। पं. भगवद्दत्त की धारणाएँ और उपपत्तियाँ विद्वत् संसार में हड़कम्प मचा देने वाली थीं। ऋषि दयानन्द के शास्त्रों के विषय में प्रस्तुत मन्तव्यों की पूर्ण रक्षा करते हुए पं. भगवद्दत्त ने इस ग्रन्थ के द्वारा पुरातन वैदिक वाङ्मय की जो समीक्षा की है वह सचमुच अद्वितीय है।



पं. भगवद्दत्त बी.ए. रिसर्च स्कॉलर

आर्यसमाज में वैदिक शोध के सही अर्थ में प्रवर्तक पं. भगवद्दत्त ही [illegible] सकते हैं। हिन्दी में लिखे गए उनके शोधपरक ग्रन्थों का आशय समझ[illegible] लिए पश्चिमी विद्वानों को हिन्दी सीखनी पढ़ी थी। कहने को तो वे मात्र [illegible] ही थे किन्तु उनके शोध निष्कर्ष बड़े–बड़े प्राच्यविद्याविदों को चमत्कृत कर देते थे तथा उन्हें अपना मत बदलने के लिए विवश कर देते थे।

उनका जन्म अमृतसर में २७ अक्टूबर १८९३ को लाला चन्दनलाल के यहाँ हुआ था। १९१५ में बी.ए. करने के पश्चात् वे सर्वात्मना वैदिक अध्ययन और शोध में लग गए। कुछ काल डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में अध्यापन करने के पश्चात् महात्मा हंसराज के अनुरोध से वे उसी कॉलेज के अनुसंधान विभाग में आ गए तथा १६ वर्ष तक इसी कार्य में लगे रहे। इस अवधि में उन्होंने कॉलेज के शोध पुस्तकालय के लिए ७००० पांडुलिपियों का संग्रह किया और अनेक ग्रंथों का लेखन एवं संपादन किया। देश विभाजन के पश्चात् वे दिल्ली आ गए और पंजाबी बाग में रह कर पुनः लेखन एवं शोध में लग गए। परोपकारिणी सभा ने १९२३ में उन्हें अपना सदस्य मनोनीत किया। २२ नवबंर १९६८ को उनका निधन हो गया।

उनके द्वारा लिखित व सम्पादित ग्रन्थ निम्न हैं– वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ऋग्वेद पर व्याख्यान, ऋङ्मंत्र व्याख्या, वेद विद्या निदर्शन, निरुक्त भाषा भाष्य, अथर्ववेदीया पञ्चपटलिका, अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा, बैजवाप गृह्य सूत्र संकलन, आथर्वण ज्योतिष, धनुर्वेद का इतिहास Extra Ordinary Scientific Knowledge in Vedic Works, Western Indologists : A Study in Motives.